

श्रीकल्कि-पुराण

ॐ



लेखक:

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०० उपनिषद् छद्-दशान, २० स्मृतियों

एवं १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार

५

प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

स्वाजा कुतुब (वेद नगर)

वरेली [उ०प्र०]

प्रकाशक

डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति मन्दान, राज्या कुन्द,
बरेली ।

नेतृत्व

प० श्रीराम रामां आचार्य
श्री राममठ

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण

१९७०

मुद्रक.

शेखर प्रिण्टर्स

वृन्दावन दर्वाडा,

मूल्य

सात रुपए पिनहत्तर पैसे (रु० ७ ७५)

कल्क अवतार-रहस्य

प्रथम अध्याय

ईश्वरीय शक्ति का प्राकट्य

समस्त धर्मों का मूल ईश्वर को भक्ता में विस्तार करना है। यदि बिनापूर्वक देखा जावे तो 'धर्म' की भावना तभी जन्म लेती है, जब मनुष्य समय-व्यय को समझना का मनन करने हुए उसके प्रादि सोच को दुःखों का प्रदलन करना है। यों माना, पतिता श्री प्रजनन सभी प्राणियों के विषे एक स्वाभाविक नियम है, पर मनुष्य जैसे विवेक-युक्त प्राणी का प्रधान ध्येय यों है कि वह जो कार्य करे, तिन तिनकी और परम्पराओं को प्रदलन करे उनको सुनिश्चयता तथा शून्य बाध पर भी बिनार नाने। इसी महान् प्रावण्यका की पूर्ण के विषे विज्ञाने तबार्थ यों ने सब देनों और शक्तियों के विद्वान् ईश्वर के धर्मिय और मानव-कर्मों पर तिनका - विमर्ष करणे काये है। उनमें से किसी ने उनको आकट्य स्थित किसी सर्वोध स्थान में निराश्रय, सर्वधिक शक्तिमानो देवता के रूप में दलन और किसी ने समस्त विश्व में व्याप्त एक सत्तापति के रूप में। ईश्वर मान्यी एही विचारगुण थी। जसमें जलन होने माने मन-बिन्दो प्रता तथा उनके सहायानो का संकट ही 'महदुःख या शून्य' कहलाया। यों सामान्य दृष्टि में योग साम्यात्मक, गीति-विचारों परम्पराओं, आचार-विचार सम्बन्धी विषयों को भी 'धर्म' कहने मयने है, पर जब तक उनका सम्बन्ध ईश्वर में नहीं होता जाता है, उनको ईश्वरीय धर्मों के समुद्रम मिड नहीं किया जाता है, जब तक उनका महदुःख साम्यात्मक ही रहता है, उन्हें 'धार्मिक धर्म' का दर्ता प्राप्त नहीं हो सकता।

दो शब्द

'कलियुग' का महत्व वर्तमान समय में विशेष बढ गया है। यह सुमय 'युग-परिवर्तन' से सम्बन्ध रखता है और इस समय परिवर्तन की भावना समागम्यापी हो रही है। लोग यह नहीं मानते कि एक सरफ मनुष्य ज्ञान-विज्ञान में प्रायात्त उन्नति करके प्रकृति का स्वामी बन रहा है और दूसरी तरफ वह जीवन-निर्वाह के साधनों की प्राप्ति में प्रावशक्तानुसार बाँट कर व्यवहार में भी नहीं ला सकता। इस परस्पर विरोधी दृश्य को देख कर यही प्रतीत होता है कि हमारी 'सम्यता' के अदम्य में ही कोई क्षराबी है। यह तो सब कोई खन्ती तरह जानते हैं कि अब तक ग सार में श्माय और मध्य की स्थापना न होगी और प्रत्येक मनुष्य को हमका स्वायत्तित्त मान प्रदान न किया जायगा तब तक प्रसतोप और अज्ञानि की अग्नि किनी रूप में बचकती ही रहनेगी।

'कलिक' की विशेषता हमी दान में है कि ये हम उशाना की शान्त करके ससार में 'मायुग' की स्थापना करेंगे इसमें तो सन्देह नहीं कि दैवी-शक्ति के अतिरिक्त और किसी दशाय से काम लेकर वर्तमान अज्ञ और स्वायत्तता की भावना में फोल-प्रोत दुनिया का मुषार नहीं किया जा सकता। क्योंकि इस समय स सार में, राष्ट्रों में, समाज में, ज्यति में जा दोष उत्पन्न हो गये हैं, उनको कोई मममता न हो ऐसी बात नहीं है। इस समय विद्या, शिक्षा और प्रचार-कार्य की इतनी अधिकता हो गई है कि छोटी मायु के सडके भी सावन्तिक-जीवन और सभारव्यापी परिवर्तनों की बातों को इतना जाठ लेते हैं अिदना गो, दोमौ पूर्व परिपक्व मायु के पदे-निसे व्यक्ति भी नहीं जान पते थे। हम समय समाचार पत्र रेडियो, टेली-विजन, दूरदर्शी देशों के अमण की सुविधा आदि की इतनी अरमार हो गई है कि राह बसता व्यक्ति भी हथर-हथर से सुनकर स सार की सावन्तिक और सामाजिक प्रगति का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

पर यह जान कर भी कि इस समय मनुष्य मात्र की एकता, पारस्परिक सहयोग और सामूहिक प्रयत्नों के बिना मनुष्य का जीवन

मन ही उदरेण । यहाँ पर ऐसे भी व्यक्ति हैं जो मन्द पर पत्रे पत्तर ही सेदुर बना कर वेदता के रूप में पून जैसे हैं और ऐसे 'वैष्णवज्ञानों' भी मौजूद हैं जो समस्त धर्म व्यवहारों को 'माया' बताते हैं और ईश्वर को एक भाव-रूप शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते । वे लोग निसाखोव भाव से 'ब्रह्म ब्रह्मास्मि' का उद्घोष करने स्थल ही 'ईश्वर' होने का दावा करते हैं और एक लीगो से सभी प्रकार का व्यवहार किये जाने की माँग करते हैं ।

वास्तव में हिन्दू-धर्म शास्त्रों का प्रवृत्त अधिक विस्तार हो गया है कि उससे एक विशिष्ट मत या तथ्य का निकाल लेना और सब लोगों को तदनुसार मान्यता-व्यवहार करने की प्रेरणा दे सकना बड़ा कठिन कार्य है । जब तक इस शास्त्र लीगो सागर का भनी प्रकार मध्य न किया जाय तब तक शत-शत सभी समीत क प्रश्न ही समझा समझ नहीं हो सकता ।

यहाँ समार के प्रायः सभी धर्मों ने ईश्वर के निराकार वा मतान्त—धो लीगो में से किसी एक को स्वीकार कर लिया है और लीगो प्रकार के उसकी पूजा उपान्यास करते रहते हैं, यहाँ हमारे शास्त्रों में एक ही स्थान पर ईश्वर को "निर्गुण और सगुण" दोनों बताकर गया है और कह दिया गया है कि—

सगुणहि अगुणहि नहि कछु भेदा ।

गादाहि मुनि पुरान वुध वेदा ॥

अगुन अरूप अकल अज सोई ।

मगत प्रेम यस सगुन लो होई ॥

वास्तव में नियते धर्म-कर्म का रहन अध्ययन करके उनके सार-तत्त्व को ज्ञात किया है उनकी व्यापक दृष्टि में साकार-निराकार वा सगुण-निर्गुण का नेद अधिक देर तक नहीं टकर सकता । यह जानना है कि स्थूल-जगत में भी सब वस्तुओं प्रादावन्वा में इनके छिपे रूप में रहती हैं कि उनको किसी प्रकार नहीं देना अ

नये उपाय निकालने लगता है, जिनमें से कुछ तो ऐसे क्रूरतापूर्ण होते हैं कि जिनका वर्णन कर सकना भी संभव नहीं ।

'कल्कि' की वास्तविकता का आशय हम वर्तमान हिंसक-भावना युक्त मानवीय सभ्यता के खान पर एक ऐसी नई सभ्यता की स्थापना समझते हैं जिसमें मनुष्य किसी अन्य मनुष्य को मारने, काटने, सूटने का विचार भी मनमें न ला सकेगा । आज हम प्रायः 'माध्यमिकता' का नाम लेते हैं, पर वह कभी सार्वजनिक व्यवहार में लाई गई या नहीं इसका कह सकना कठिन है । शायद प्राचीन ऋषि-मुनियोंमें से थोड़े बहुत ऐसे हुये हों कि जिन्होंने ने हिंसा का गर्वथा त्याग कर प्रेम के सिद्धांत के आधार पर व्यवहार किया हो । ऐतिहासिक युग में महावीर, बुद्ध और ईसा ने इसका उदाहरण उपस्थित करके नई सभ्यता की स्थापना भी चेष्टा की, पर उनको बहुत थोड़ी और अस्थायी सफलता ही मिली । आज ईसा और बुद्ध के 'अनुयायी' कहे जाने वाले ही हिंसा और बुद्ध के सब से बड़े समर्थक और संजानक बने हुये हैं ।

'कल्कि' को यद्यपि ह्राय में तलवार लिये विधित किया गया है पर हमका आशय 'ज्ञान की तलवार' में है । अनेक 'कल्कि-भक्तों' का ध्येय भी यह मन है कि भारी अस्त्रों को 'निष्कलक' नाम से पुकारने का कारण यही है कि वह संसार में हिंसा, द्वेष, रक्तपात आदि का कोई ऐसा काम न करेंगे, जिनमें किसी प्रकार का कलंक लगने की संभावना हो । 'कल्कि पुराण' आदि में भारी अस्त्रों द्वारा समस्त दुष्टों के संहार का वर्णन है, पर वास्तव में वे पापस में ही लट-भिट कर मरें होंगे । जब इन प्रकार 'हिंसा' की प्रति हो जायगी और मानव जाति अपने ही बनाये मध्य-अस्त्रों के प्रयत्न नश करने को सज्ज होगी तब इन भयंकर हत्या कार्यों को रोकने और हिंसा की मनोवृत्ति की हानि और अमानुषिकता को समाप्त कर मनुष्यों को गृहस्थ और प्रेम के मार्ग पर चलने की शिक्षा देने के लिये ही 'अस्त्र' का आविर्भाव होगा । वह 'अस्त्र' मनुष्य रूपमें होगा, या किसी संस्था या संगठन के रूप में होगा या भाषा रूप होगा, इस सम्बन्ध में विवाद रहना अनिवार्य है । वास्तव

भारतीय धर्मशास्त्रों की मजबूती है कि सभी मुख्य व्यवहारों का एक विशेष उद्देश्य किसी सत्कार व्यापकता को प्राप्त करने का रहता है। अथवा भोज के शब्दों में यह कहना चाहिये कि "जब सत्कार में धर्म की वृद्धि और धर्म की हानि होने लगती है और इस कारण मानव-प्रकृति का मार्ग प्रबन्ध हो जाता है और दुष्ट स्वभाव के लोग उसे मनमाने ढंग से चलाया जाते हैं, तब भगवान् उस गति-रूप को समाप्त करने के लिये और साथ ही भक्तियों को यह शिक्षा देने के लिये आते हैं कि वे प्रकृत्य में वैसा अनुचित काम करके धर्म और राज्य लोगों के ऊपर अंकुश न डालें।" हिन्दू शास्त्रों के अनुसार प्रत्येक धर्म का अर्थ ही है कि वे उनमें से अनु-व्यक्त से सम्बन्धित जीवन—मरत्य, कर्त्तव्य और धारण को छोड़ कर तब ही विश्व की किसी महती आवश्यकता अथवा सत्कार के निवारणार्थ ही प्रवर्तित हुए, उनके शब्दों का उद्देश्य क्या था इसकी जो जाया विभिन्न दृष्टिकोणों से की जाती है उसमें कुछ अन्तर होने पर भी मूल तथ्य में समता ही देखने में आती है।

सबसे पहला स्थान हमारे पुराणों का है, क्योंकि उन्होंने धर्मकारों को जीवन-मृत्युओं की अधिक से अधिक विस्तार देकर रीतिक कथाओं की मर्यादा प्रकृतिक की है। इन कथाओं का सौंन्य जमान के महाकवि अथर्व ने अपने 'गीत गोविन्द' काव्य ग्रन्थ में निम्न लीनों में दिया है—

सर्व कर कर्मत उदै भरमद्भुज गृहम्

दलित हिरण्यकशिपु तनु भूषम् ।

केशव धूल नरिहरि रूप जय जगदीश हरि ॥

"हे नृसिंह देव ! धामने प्रकृत्य विनाश करने के लिये तबसे मैं महारक्षक हिरण्यकशिपु के शरीर के दुष्ट-पुष्ट कर दाने । हे भगवान् प्राणकी पदा जय हो ।"

जैसे जैसे हमें परिवर्तित आरम्भ में विचारमूवक और भाव रूप हो जाने है पर भाग बन कर वे किसी व्यक्ति या स एडल में 'सुर्त रूप' भी बदल कर लेते हैं। सामान्य बुद्धि की अवस्था, जो विचार शक्ति के स्वरूप और हीन समाज की अनभव करने में असमर्थ होती है, व्यक्ति को ही प्रधान रूप में 'प्रवर्तार' मानने लग जाती है।

'वर्तित पुराण' में धार्मिक व्यवहार की जो तथा धार्मिक की शक्ति और जो भी व्यवहार की एक मात्र ही रूप में विचार शक्ति तककी यह स एडल शक्तियों और पुत्री का भागन किया गया है, तथा अपने बुद्धि व दादा पक्षों की बदलन कीरना शिष्टताई गई है, उनका मूल उद्देश्य हमारा जो पुराणों के समान भावपूर्ण और धार्मिक शक्तियों में युक्त बनाना ही है। पर सामान्य पाठना में जब वह एक साथ वही भावना रूप न होता है कि व्यक्ति कोई भी धार्मिक बुद्धि विषय कुर सोडा भाग जो अपना अधिर्जन जीवन में तब भी एक ही नदिशा के बंधने में ही रहनी कर्मा। अब यह धार्मिक व्यवस्था ही है। जो व्यक्ति व्यवहार के साम्य-विक रक्षण का उही लक्ष्य और बोधना की रचना में ही व्यवहार, रूपन, उपाय शक्ति की समर्थ कर, उनका साम्यविक भाग में उद्भव सम करने में समर्थ नहीं जानें वे ही हमें सत्य में रहने हैं।

सांगी और धार्मिक महापुरुषों में 'वर्तित' व्यवहार का क्या रूप बननावा है, उनका सोलासी (६५०) का सांख्यिक धर्म क्या है, और वे किस कवोल भाग का अनुसरण करके नये जगत् का निर्माण करेगे इस सब प्रश्नों का विवेकम और व्याख्या करने के लिए हमें ही आरम्भ में श्री सांख्यशास्त्र द्वारा निर्मित 'वर्तित व्यवहार रहस्य' शेष का विवरण दिया जा रहा है, जिसमें पाठकों की सब शक्तियों का निराकरण ही व्यवस्था और सब को निर्दिष्ट ही जायगा कि 'प्रवर्तार' किन महापुरुषों की शक्ति के लिए कौन कौन रूप में शक्य होत है।

का कुछ पालन भी करने लगता है, तो भी उसमें भाषायापी की प्रवृत्ति ऐसी प्रबल होती है कि वह चाहता है कि उसपर के समस्त पदार्थ उसी की मित्त जायें। 'ब्रह्मण भववान्' देखने में तो छोटे में वे, पर हान में पृथ्वी की भाषा तो तीन ही चरणों में हीनो जीवों को प्रक्षुण्ण कर दिया। इसे प्रवृत्ति-मार्ग का कुछ उदात्त रूप माना गया है। इसे जीव की 'वैभवावस्था' भी कह सकते हैं।

तीसरा अवतार परशुराम जी का हुआ। यह जीव की उस अवस्था की सूचना देता है। जब मनुष्य स्थूल पदार्थों को बना करने-करते उनमें बह जाता है, उसे सामयिक शक्ति नहीं मिलती तो वह प्रवृत्ति-मार्ग से हटकर निवृत्ति की तरफ ध्यान देने लगता है। वह एक साथ तो प्रवृत्ति को नहीं त्याग सकता पर स्थूल पदार्थों के बजाय शक्ति और अधिकांश की वास्तव्य करने लगता है। परशुराम कुछ प्रशंसे में त्वष्ठी में पर बड़े श्रेणी शक्ति के उपासक में। वह जीव की मध्यम अवस्था (प्रवृत्ति-निवृत्ति का संयोग) का प्रथम स्वरूप है। इसे 'शक्ति-अवस्था' का पूर्ण भाग भी कह सकते हैं।

चिर रामचन्द्रावतार का वर्णन आता है। भगवान राम के जीवन में प्रवृत्ति और निवृत्ति का काफी सम्पर्क दिखलाई पड़ता है। वहाँ उनके पारिवारिक जीवन की देखा जाय और वहाँ राजनैतिक-जीवन पर दृष्टि डाली जाय उनको सदा दोनों और धींचने वाली शक्तियों के बीच में घूमकर प्रवृत्तिपूर्वक ही अपना मार्ग निश्चलता पड़ा। जन-धन और हीता-वशियत की चेतनाएँ इसी की उदाहरण हैं। इस तरह का जीवन ऊपर से जो कठिनताओं से भरा और काट-पूरन जान पड़ता है, पर कर्तव्य-भावन की दृष्टि मनोवृत्ति का समन करते से उसमें मनुष्य की बड़ा आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता जाता है। यह जीव की 'शक्ति-अवस्था' का उच्च आदर्श-युक्त जीवन कहा जा सकता है।

चतुर्थावतार मनुष्य की कर्मोन्मत्ति में उस अवस्था का सूचक है जब मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति के सम्पर्क में में गुजर कर निवृत्ति की

कल्कि पुराण की विषय-सूची

(कल्कि अवतार-रहस्य)

१. ईश्वरीय शक्ति का प्राक्त्य ६
 अवतारवाद का सिद्धांत-मनुष्य जीवन की अवस्थाएँ और अव-
 तार-प्रकारों का उदाहरण - भौतिकवादी दृष्टिकोण ।
२. अवतार-भावनात्मक और मानव रूप में २८
 धार्मिक अवतार के उदाहरण-अत्यंत अवतार के मध्य-
 स्थित देवी अवतार-वर्तमान जगत की समस्या ।
३. अवतार के सम्बन्ध में शास्त्रों तथा महात्मियों का अभिमत ४३
 भगवान के ग्रहण्य अवतार-महाभारत में अवतार की महिमा-
 राम अवतार-विष्णु अवतार को महिमा-विभिन्न पुराणों में अवतार
 वर्णन
४. अवतार के विषय में मतभेद ८७
 निर्गुण और सगुण का विवाद-भोता का अवतारवाद
५. कल्कि अवतार का विद्वद्ब्यापी प्रभाव १११
६. कलिधुम और कल्कि १३१
७. कल्कि पुराण पर एक दृष्टि और उसका तात्पर्य १५०
 कल्कि और कलिधुम का संबंध-कल्कि के धर्मक रूप-
८. कल्किपुराण और भक्ति मार्ग १६७
 भक्ति का स्वरूप-भक्ति और कृत्य-निष्ठा ।
९. कल्कि पुराण का माया वर्णन १८८
 भगवत का पुराण उपाख्यान-विष्णु पुराण की उद्भवत की
 कथा-कल्कि पुराण मायास्तव ।
१०. अवतार का प्रचार और उसकी प्रतिक्रिया २१३
 क्या अन्तिम समय में पृथ्वी-वर्णन की समस्या को भव-
 शान की पुनर्स्थापना-प्राणियों की शक्तिपूर्ण विरचित हो रही है-पुराणों

सही को माना और उनके गुणों का वर्णन करते लोगों को उससे साध
 उठाने की प्रेरणा दी। यह तो प्रत्यक्ष ही है कि सब जीवात्मा एक साथ
 कितनी ही लीच का उद्य अपस्था को प्राप्त नहीं हो सकते। यदि ऐसा हो
 तो भगवान् की मनाई इस सङ्घर्षी दुनिया की विशेषता और प्राकारण
 हो समाप्त हो जाय। इस लिए सब भी सत्कार से लेकर
 योगियों और महात्माओं तक छ श्रेणियों में से प्रत्येक के व्यक्ति-
 मोक्ष है। और सब पूरा जाय तो सभी नीची श्रेणियों के व्यक्तियों
 की ही भरपूर है। उन्नी श्रेणियों के निस्वार्थ भावना वाले तो सों में
 से दो-चार और दिव्य-काम्य के यत्नारो ह्वारों-वासों में से एक
 मिल सकते हैं।

इस त्रिंजद हम सबतारों की प्रत्यक्ष लीलाओं का वर्णन
 या वर्णन करते हैं और उनको भगवान् के स्वरूप में पूजते हैं तो सब
 ही हमनो उनकी भान्तरिक विशेषताओं पर भी ध्यान देना चाहिये।
 उनके उदाहरण से हमको समझना चाहिये कि सत्कार में भावाओं
 मयका कर्तव्यताओं से घबराना और भागना ठीक नहीं, वरन् छोटा-बड़ा
 धटिया-जडिया जो कुछ दिखाईगदटा है वह सब भगवान् के विद्याओं के अनु-
 शार ही है भगवान् ने लीच को प्रपन्न करने की शक्ति प्रवर्ष्य ही है जिससे
 वह सारे ती प्रपन्न करके कितनी भी उद्य को प्रपन्न लोगों की प्रेरणा
 नीच पार कर सकता है, पर निश्चित विकास के लिए सब जीवा-
 रमाओं को उभरीक सभी अवस्थाओं में से गुजर कर उसका अनुभव
 प्राप्त करना अनिवार्य है।

अवतारों के जीवन का निष्ठा करने कर यह एक बुद्धिमत्
 और साधनायक तरीका है। इसकी ठीक प्रकार समझ लेने से हम किसी
 भी अवस्था में रहने पर उसका उत्तमवर्ण-पूर्वक उपयोग कर सकते हैं
 और अध्यात्मिक भावे बढ़ने वाले जा सकते हैं। अवतार एक प्रकार से
 हन गवके, मानव-व्यक्ति में आरंभ करवा है और ये ही प्राचीन काल से
 ह्वारों माण-दमन करते प्रत्ये हैं। उनकी भक्ति और पूजा करने के लिये

दुनिया सवम् मरेयो-सुबोदय पूर्व दिशा म ही होगी- भारतीय म तो के
 अक्षिण अक्ष 71 दक्षिण-अक्षा की दिशा मी दस-सप्तसुधन दिशा-
 सत्य-मयात्र का सननास्वाद-सुबोदय मी महर बाग 'सुनाय' सप्तम
 कादिशानी धानि का ह म-सवनारा की मोट-नकरी सवनारा स वयो ।

११ सवनार की सवनार-सवनार सवनार सवनार २१६

मानक-मानक के विनाग की सवनार-सवनार (विद्वत्सला)
 की विद्वत्सला-सवनार पुनः की सवनार-सवनार सवनार 'सवनार' ही
 सवनार सवनार का सवनार २१ सवनार सवनार का सवनार-
 सवनार का सवनार १ सवनार सवनार ६ । *सवनार २१ ११*

(१) सवनार ११ सवनार २१७ (२) सवनार का सवनार २१६
 (३) सवनार सवनार ११ सवनार २१६, (४) सवनार सवनार २१६
 (५) सवनार की सवना २१६ (६) सवनार सवनार सवनार की सवना २१६, (७)
 सवनार सवनार सवनार २०१ । ॥ २ ॥

(१) सवनार का सवनार सवनार २०६ (२) सवनार-सवनार सवनार,
 २१६ (३) सवनार सवनार सवनार (४) सवनार सवनार सवनार सवनार २१६
 (५) सवनार का सवनार सवनार २३६, (६) सवनार सवनार का सवनार सवनार २३७,
 (७) सवनार सवनार २१६ । ॥ ३ ॥

(१) सवनार का सवनार सवनार, २३६, (२) सवनार की सवनार
 २३७, (३) सवनार सवनार सवनार का सवनार २३६, (४) सवनार सवनार सवनार
 २३६, (५) सवनार सवनार सवनार ४०१, (६) सवनार से सवनार का सवनार
 ४०१, (७) सवनार-सवनार से सवनार ४०१, (८) सवनार सवनार पर सवनार-
 सवनार ४०१, सवनार-सवनार सवनार सवनार ४०१, (९) सवनार-सवनार की सवनार से
 सवनार (१०) सवनार-सवनार का सवनार सवनार ४०१, (११) सवनार-सवनार
 सवनार ४०१, (१२) सवनार सवनार की सवना ४०१, (१३) सवनार-सवनार का
 सवनार सवना ४०१, (१४) सवनार सवना ४०१ (१५) सवनार का सवनार-सवनार
 ४०१, (१६) सवनार सवनार की सवना ४०१, (१७) सवनार का सवनार
 सवनार ४०१, (१८) सवनार का सवनार सवनार ४०१, (१९) सवनार सवनार की
 सवना ४०१, (२०) सवनार सवनार का सवनार ४०१,

में जरदुस्त, कलकपुत्र, भूषा, ईसा, मुहम्मद भाँद का प्राविर्भाव होने ही भवतारों पर हुआ था। देखने में वे भी अन्य लोगों की तरह चार हाथ-पाँव और पाँच इन्द्रियों से युक्त मनुष्य ही थे, पर उनके अन्तर में विश्व-ब्रह्माण्ड का सञ्चालन करने वाली उस अदृश चैतन्य-सत्ता का प्रकाश इस प्रकार जगमगा रहा था कि उनको उस विराटा के अन्धकार में सत्य-मार्ग दिखलाई पड़ गया और उन्होंने उसके द्वारा सत्कार में एक नई शक्ति उपस्थित करके मानव-समाज को नष्ट होने से बचा लिया। तब सर्व साधारण ने उनकी पूजा की और उनकी धराधारण शक्ति को देखकर उनको 'मौलौदिक पुरुष' मान लिया। इसी भाव को हम 'भवतार' के द्वारा प्रकट करते हैं।

जब 'भवतार' का जो विवेचन मनुष्य के मानसिक-विकास और सामाजिक-विकास ही दृष्टि में किया गया है, उक्त भाषण यह नहीं कि 'भारत के अवतार' कल्पित है अथवा वे सामान्य व्यक्ति ही थे इस बात को सभी समस्त लोग स्वीकार करते हैं कि अवतारके रूप में प्रसिद्ध वे महापुरुष, एक नवीन युग के स्थापनकर्ता हुए हैं और उन्होंने किसी महाकर्म से मानवता की रक्षा करके उसे प्रगति मार्ग पर अग्रसर होने की शक्ति प्रदान की है। कुछ लोग, जिनको हम 'शास्त्रमार्गी' कह सकते हैं, इस युग-परिवर्तन की घटना को प्रधान रूप से भावनात्मक मानते हैं और उन्होंने किसी व्यक्ति विशेष के भाव को मोल ही नतमाते हैं। दूसरे लोग जिनको 'भक्ति-मार्गी' कहा जा सकता है, हमारे भगवान के 'साकार अवतार' की महिमा का ही वर्णन करते हैं। इन दोनों विचार-धाराओं का विवेचन हमें भगवत् के किना जायगा।

बहादुर मयस्त आर्पितों पर एकतर्फी अधिकार जमाने की चेष्टा की। पर भगवान राम ने उसे अपनी हठता और दशम-तपस्या के बल पर मजबूत कर दिया, जिसके उपलक्ष्य में वे भाव तक भारतवासियों की दृष्टि में परमात्मा के एक विशेष सञ्चार के रूप में पूज्य और उपास्य बने हुये हैं।

भगवान कृष्ण भी साम्राज्यों और साम्राज्यनिर्मातृओं के विषय में। कर्ण के साथ तो जन्मकाल से ही उनका विशेष पक्ष और मुखावहारा में परास्मृ करते ही जरासन्ध से भी-बो उग्र समय एक बड़े भूभाग की सम्राट पदवी की प्राप्ति कर चुका था—उनकी सम्पत्ता ही नहीं। इसके विवाह उस समय दुर्योधन, शिशुपाल, भीष्मक, हत-विष्मक आदि और भी अनेक राजा सम्राट बनने की चिन्ता में व्यस्त थे और शरीर प्रजा का शोषण करने के लिये शक्ति को बढ़ाने में जुटे हुये थे। भगवान कृष्ण ने अपनी नीतिमत्ता और दूरदर्शिता से इन स्वार्थपर एकतात्मक शासकों का शत्रु करके ऐसी परिस्थिति लादी जिसमें हजारों वर्ष तक देश में गण-राज शासन प्रचलित रह सका। देश की राजनीतिक स्थिति का परिवर्तन करने के साथ ही भगवान कृष्ण समाज में सेवा, सहयोग, प्रेम-भाव और कल्याण की प्रवृत्तियों के प्रवर्तक और वृद्धि करने वाले भी हुये। उन्होंने लोगों को धर्म-भावना का उपदेश दिया और समाज तथा धर्म की रक्षा के लिये मनुष्य की किस प्रकार निस्वार्थ और निरंजय भाव से उद्वत रहना चाहिये इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण भीता द्वारा उपस्थित किया। उनका यही एक महान दीर्घ कार्य ऐसा है जिसके बाद हम भारतवर्षी ही नहीं ससार के अन्य देशों के भी बहुसंख्यक व्यक्ति जनको खतार की सबसे महान दीर्घवीर्य विभूति स्वीकार करते हैं।

भगवान बुद्ध का आधिभारिक समाज में उत्थान ही सर्व किल-ही भयकर सामाजिक कुदृष्टियों के उन्मूलन के लिए हुआ। उस समय जनों में पशुविद्या की प्रत्यक्ष वृद्धि के कारण अनेक प्रकार

ईश्वर और धर्म की दृष्टि में हमारा देश का स्थान विशिष्ट है। अन्य देश कभी न तो इस सम्बन्ध में शांति-भाव बिचार करने ईश्वर को एक महान शासक की तरह दण्ड और पुरस्कार का कर्ता मान लिया और अपने समाज में पंचतन्त्र नियमों तथा ईश-आर्पण के विधि-नियमों को ही 'धर्म' का नाम दे दिया। पर भारतीय मनीषियों ने अपना समस्त जीवन ही इस तत्त्वों का विवेक करने में लगा दिया और इस सम्बन्ध में सूर्य से सूर्य तक बरफे धर्म-कमेन्टर को इतना विज्ञान रूप दे शाना कि समार की बोर्ड मयम्या, जीवन का कोई घंष तथा समाज और व्यक्ति का कोई व्यवहार उनसे पृथक न रह सका। यदि यह कहा जाता है कि 'एक हिन्दू का सारा जीवन ही धर्ममय है' तो इसके बोर्ड कल्पित नहीं। यहाँ के धर्म से धर्म व्यक्ति भी अपने छोटे-बड़े कार्य में 'धर्म' का नाम ले लेते हैं और 'धर्म' से सदा बचने की चेष्टा करते हैं। यह बात दूसरी है कि बिना और ज्ञान के धर्मों से धर्मों समय के प्रभाव से न धर्म के बाह्यिक रूप को भूल गये हों और किन्तु ही विपरीत बातों का भी सम्बन्ध 'धर्म' मान बैठे हों।

ईश्वर का स्वरूप और उसके कार्य—

यद्यपि गृही, सिद्ध, सुतलमान जैसे प्राणीय और प्रकृतिय धर्मों के अनुसंधानों में ईश्वर को एक निश्चित साकार रूप देकर उनसे आदिता का पालन करना स्वयं मान लिया है और यही एक अधि-कृतिक में वे तदनुसार भावना भी करते आये हैं। उन्होंने अपने धार्मिक विचारों की अपनी भौतिक परिस्थिति की दृष्टि में अप्रत्यक्ष उपयोगी और सामदायक निश्चित रिचे हैं, जिन्से कौन ही अधिक मनभर होने की गुणात्मक नहीं रहती। पर हिन्दू-धर्म की स्थिति इस सम्बन्ध में बड़ी द्विविधापूर्ण है। यदि यह कहा जाय कि यहाँ के समाज में जितने स्तर के धर्मिक विचार हैं, उनके नियम उनी स्तर की धर्म-व्यवस्था का निर्माण कर दिया गया है, तो यह अधिप्राप्त न

दिना कुछ नहीं कर सकता। यह सामूहिक चरम की प्रवृत्ति अद्वय अवतार (महाकाल) ही समय-समय पर भड़काते हैं। वे निराकार हैं, इन लिए उनका कार्य-क्षेत्र भी मूल्य जगत् ही होता है। वे भाव-स्वरूप-चैतन्य हैं, इस लिये विषयव्यापी अज्ञान-मूल में ही उनकी दृष्टि सक्रिय होती है। उन्हें ही स्फुरण से प्रबुद्ध व्यक्ति बने-उठे काम करने लगते हैं। उन्हें महशुस, धर्म, आत्मता उपलब्ध होता है। इस लिये उन्हें को कर्ता, विजयी, उद्धारक, अवतार मानते हैं। पर वास्तविकता कुछ और ही होती है। उनको प्रेरणा देने वाला मूलधार उन्हें के पीछे खिंचा बैठा रहता है, उसे चर्म-मूल्य रूप देव मानते हैं।

धर्मोक्ति को स्टाफर उनके स्वाम पर धर्मोक्ति एवं विवेक को प्रतिपादित करने का बेसी प्रयोजन अनेक व्यक्ति पूर्ण करते हैं और बाको यथा भी प्राप्त होता है। महान-पूर्व अवसरों पर यह अवतार प्रकिया प्रतारि काल से उपस्थित होती पाई है। जब फिर बेसी ही परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाँच पर उनी प्रकार की पुनरावृत्ति होने वाली है।

भावनात्मक अवतरण के उदाहरण—

“प्राचीन काल में एक बार उत्पादन और वैभव क्षय हो गया। मसी देव और समुद्र घातक में प्रसिद्ध होकर बंद कये तब “महाकाल” ने समुद्र-मग्न्य की प्रेरणा की। देवता और समुद्रों का सम्मिलित मर्यादा समाप्त ही गया और समुद्र में ऐसे १४ ‘रत्न’ निकले जिन्हें पा कर समार की समृद्धि अनेक सुनी अट गई। पर समुद्र-मग्न्य का कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए इन रत्न की आवश्यकता पड़ी कि इनकी मानी मयानी (सर्वज्ञ) को कहाँ रखा जाय ? उनका भार कौन सम्भालेगा ? तब कच्छरा-अवतार भागें छाया। उनमें माया वगैरा स्वीकार दिया। उनी की पीठ पर समुद्र-मग्न्य हो गया। कच्छरा-अवतार की जब बोली गई, कर्मोक्ति उनमें एक बड़ा उत्तरदायित्व मंगला था।

भाषा में प्राथमिक सहायता की आवश्यकता है। इस समय मनुष्य के ज्ञान शक्तिशाली का तथा, जिस प्रकार मनुष्य है, उसे देखते हुए आवश्यकता है कि वह भगवान की फिर से सगभे उनके लिये भगवान की फिर से सिद्ध करने की आवश्यकता है। उन्होंने 'एतन् वन' और 'हृण्मन्मन नम' की शक्ति का देख लिया है, अब आवश्यकता है कि वे दुष्टता पर विजय पाने की ईश्वरीय-शक्ति को भी देखें। मनुष्य के सम्मुख यह प्रकट हो जाना चाहिये कि ईश्वर की महिमा कोई बहानी किम्बा है यावदा एक वास्तविक तथ्य ? इस समय बहुत आवश्यक है कि कोई इस बात का समुचित लोभ के सामने उपस्थित करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मनुष्य को ईश्वर की ऊँचाई तक पहुँच नहीं सकता इस कारण कल्याण-सागर भगवान की ही मनुष्य-लोक में प्रवेश ही होना चाहिये।

देवी अवतरण—

जैसा कि इस समय देखने में आ रहा है, मनुष्य भगवान की उसी समय ठीक तरह से समझ सकता है जब वह मानव-शरीर में उसके सामने सदा ही, जैसे-फिर और उसके साथ मिलकर विविध प्रकार की भीलकें करे। नगर को भगवान की पूर्ण रूप से आवश्यकता है, वह भी केवल मानव रूप में नहीं बरत स्याद दृष्टि में भी।" वे ऐसा भगवान माहो है जो उनकी में ने एक बात थी, उनकी चिन्ता करें, उनको श्रेय करें, उनके लिये परिश्रम करें, उनके लिये कष्ट महत्त्व करें। वे चाहते हैं कि भगवान उनके पास आकर उनको शिक्षा दें, उनको तर्क देवी-सम्पदा का मार्ग-दर्शन कराए और यह सब काम वह उन पर विशेष शान्ति दाने चिन्ता स्वयं ही पूरा करें।"

मानव-जाति का इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से भर हुआ है, जब दशमनु भगवान ने पृथ्वी पर प्रकट होकर मानवता की रक्षा की। मनुष्य इस बात को जानते हैं, पर 'देवी भाषा' के प्रभाव से फिर भ्रम जाते हैं। इस समय तो वे इस बात को स्वीकार करने

सबता चीज फिर वे ही प्रवृत्त' मूल बलने द्वये दियारं पड़ने चीज
तो बानी है । इसी प्रकार प्रत्येक प्रकार की शक्ति भी जब तक
निश्चित्य प्रवृत्तता के रहनी है तब तक ऐसी अव्यक्त शक्ति है जिसका
कोई प्रमाण नहीं दिया जा सकता । पर जब वही किसी व्यवहार में
आव लायी है तो उसका प्रतिफल सब पर प्रकट हो जाता है और
तबही उसे वा ज्ञानान करना पड़ता है ।

अवतारवाद का सिद्धान्त—

सबसे पुराने धर्मों के अनुयायी ईश्वर की आज्ञा का पता
चीज संचालक मानते हैं चीज साथ ही यह भी स्वीकार करते हैं कि
इसकी तरफ से समय-समय पर ऐम देवोदूत (पैगम्बर) या प्राणी-
महत्त्वा (जोष मुक्त) भेजे जाते हैं, जो सदाशासन का मार्ग-दर्शन
करते लोकांतुमुक्त और समाधि शक्ति विद्या के पालन की शिक्षा
देते हैं । इन ईश्वर धर्म में इनमें भी जब तक यह प्रतिबन्धित विद्या
पदा है कि यद्यपि वे व्यवस्था लागू करने और विशेष विद्विषी
के एक काम के लिये प्रयत्न करण व्यवस्था में उपनीया होते हैं ।
साकारिक लव-शक्तिमान है और वे सभी परिस्थिति देखते हैं वेना भी
व्यवस्था कर सकते हैं समर्थ हैं । उनका उद्देश्य, जिसकी पूर्ति के
लिये उन्होंने सृष्टि-कर्मों का प्रवृत्तता की सहाय्य करना है,
यही है कि उनका प्रवृत्त विमान और उत्पन्न हो चीज वह निश्चय
प्रति कर्ता हुआ शक्तिपूर्ण उनका सामर्थ्य प्राप्त कर ले । इन लिये
सहाय्य में जब सिते मार्गदर्शन शक्तिमान या किसी समयका द्वारा
इस प्रवृत्त-लय में बंधा डाली आज्ञा लायी है—दिसान की प्रति में
सहाय्य प्रकटा जाने अपना है, तभी में उन परमेश्वर का विद्यमान के
लिये स्वयं प्राप्त है भवता प्रोग्या देकर जिस लोकांतुमुक्त सहाय्य का
इसकी पूर्ति में सहाय्य है । इसी भावना के आधार पर भारतका
में राम, शृष्टि, बुद्ध आदि का अवतार और विरोधी में अर्जुन,
सूना, ईश्वर, अवतारका सौन्दर्य प्राप्त की ईश्वर के प्रतिबन्धि
(पैगम्बर) माना गया है ।

भरने के लिए, एक नवीन सम्मता का धीमे-धीमे करने के लिए और पृथ्वी पर सुख-शांति-समृद्धि को लाने के लिए। यही जगत-मानव का काम हो सकता है। इसके लिए शांति को भावनाकाया हीमी, और वह शपथ उदारक इतनी प्राकृतिक शक्ति तकन प्रायेण जिनकी मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकते। वे केवल श्री-गुरु-पुन को देखकर ही उनका निर्णय कर सकते हैं।

वर्तमान जगत और उसकी समस्या—

प्राज की दुनिया मरदान कृष्ण, या मुठ देव, अथवा ईशानवीर सुहृदर धारि के सामने की दुनिया से सबसे भिन्न है। उस समय समार छोटे-छोटे टुकड़े में बंटा था, जो एक दूसरे से अलग-अलग थे और कभी धक्का-पट्टने पर नहीं आते। वे एक दूसरे के निकट पहुँच पाते थे। पर आज समस्त पृथ्वी एक साधारण देज की तरह बन गई है, जिसके विरासी प्रति दिन वास्तव मिलते-जुलते रहते हैं और जिनके स्वामें भी अधिकार में एक ही होते हैं। यद्यपि इन समस्त समार की समस्याएँ—भोजन, वस्त्र, बकान, शान्ति, प्रसन्नता मन्त्र-धी एक ही हैं, पर उनकी विभिन्न दृष्टि-रीति से देखा जाता है। हमने बड़ी उन्नतता पाई हो गई है, जिसे सुनना करना मानव-बुद्धि के लिये असम्भव सिद्ध हो रहा है।

प्राज की सबसे बड़ी समस्या पृथ्वी पर मानव-जाति का अस्तित्व स्थिर रह सकने की है। यह प्रश्न किया जाता है कि मनुष्य पृथ्वी पर अस्तित्व रहने या धरने ही अविच्छिन्न के 'एक स्वर्ग' में गिरने? आज की सबसे बड़ी समस्या है 'एक स्वर्ग' और 'एक स्वर्ग' का अन्त करने की। आज की बड़ी समस्या है सदा के लिए गुरु का अन्त करने की और पूर्ण विभक्तिकरण करने की और उनके मूल कामर्गों का भी अन्त कर लेने की। आज की समस्या है मानसिक और नैतिक दृष्टि से अस्तित्व का सर्वथा स्थान करके मानव-जाति के प्राकृतिक पुनर्जन्म होने की। आज की प्राथम्यता है एक

“इस लिए भ्रष्ट सत्तार में कभी इस बात की आवश्यकता थी कि पृथ्वी पर ‘मजदूरी-शक्ति’ को प्रवृत्त हो और वह मानवीय रूप और मानवीय प्रणाली से सत्तार का उद्धार-कार्य करने लगे वह भ्रष्टार इस क्षण उपस्थित है। अगर किसी जमाने में छुप्य, मुद, ईसा और अन्य दिव्य भावनाओं के पाने की आवश्यकता थी, तो वह आवश्यकता इस समय मंकोले गुने नचे रूप में मौजूद है। यह स्थिति किसी उपयुक्त मानने से पुनः ‘मजदूरी शक्ति’ के आविर्भाव की राह देव रही है। इस समय भ्रष्ट ईश्वरीय हस्तक्षेप न हुआ तो सत्तार नष्ट हो जायगा और मानव जाति भर जायगी। अतः इस समय सत्तार के प्रायेक तर, नारी और वामक के लिये जगद-उद्धारक का आवयन जीवन और मरण का प्रसंग है।”

“इस धार अवता लेने पर भगवान सत्तार के लोगों की एक ईश्वर, एक धर्म, एक राष्ट्र की जिज्ञा देने, जिज्ञासे मनुष्य-मात्र एक परिवार की तरह रहने लगे। यह भगवान का विशाल परिवार होगा। इसी क्रम में सत्तार की समस्या मुद नही सकती। जब तक किसी प्रकार का भेद भाव रहेगा तब तक पारस्परिक कलह का बीज बना ही रहेगा जो किसी समय भ्रष्टार पाकर पनप सकता है। इस प्रकार का परिवर्तन मात्र मन-मन चल पड़ता है पर जब काल चप के प्रभाव से भट्टरपनी लोगों का मन हो जायगा और शेष लोग का प्राध्यात्मिक पुनर्जन्म होगा तो वे जगदोद्धारक भ्रष्टार के प्रादेवों की प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करेंगे, क्योंकि इसी में उनको धपनी रखा और मुक्ति दिसवाई पड़ेगी।”

‘जयत-शक्ति’ के लेखक का कथन है कि “इस परिवर्तन के लिये ‘भ्रष्टार’ एक-एक व्यक्ति को समझाने नहीं फिरिये। बरन् इसके लिये वे धपनी प्रबल विचार शक्ति में मानसिक जगद को प्रभावित करेंगे, जिसमें सब श्रेणी के व्यक्ति स्वयं ही नवीन प्रादश्यों, निदानों की तरफ आकर्षित होंगे। भ्रष्टार के सभी कार्य मूलक जगद (ऐश्वर्य-

छलयसि विक्रमणे वलिमद्भुत वामन
पद नक्ष नीरज_नित जन पावन ।
केशव धृत वामनरूप जय जगदीश हरे ॥

“हे वामन भववान् ! आपने राजा वनि को घम में डाल कर जगमें तीनों लोकों का राज स्वीन लिया । आप ही आपने पंर के नापून से लोक बधिप्रवारी गता की घारा को प्रवाहित करने वाले है । हे भगवान् आपकी प्रय विजय हो ।”

क्षत्रिय रुधिरमये जगदप गत पाप,
स्नपयसि पयसि शमित भव ताप ।
केशव धृत भृगुपति रूप जय जगदीश हरे ।”

हू भृगुपति परबुगम ! आपने अनेक बान क्षत्रियों की रधिर घारा बहाकर उनसे पापा को धो जगता घोन नमार के ताप को गन्त कर दिया । हू भगवान् आपकी जय-जय हो ।”

वितरसि दिक्षुरणे दिक्पति कमनीयम्
दशमुख मोलि वलि रमणोयम्
केशव धृत रघुपति रूप जय जगदीश हरे ॥

हू भगवान् राम ! आपने नमार के शामन्प गदामगज गवण के दश मुखों को बाट कर दशों दिगाखों के दिग्पाली को भेट रमण दे दिया । सय नामा में और सब देगों में आपकी जय हो ।”

उसी तरह भगवान् वृषण बुद्ध और वल्कि की भी स्तुति की गई है । उन्होंने दग, पाँव चबरा में ही कल्कि की महाभक्ति की पराक्रम रा जो विज खीन्ता है वह गार्हित्यक दुष्टों से भी धनुषम है । श्री जयदश में कल्कि की जय जयवान करने हुए कहा है—

म्लेच्छानि बहनिघने कलियसि करवालम्
धूमकेतुमिव किमपि करात्तम् ।
केशव धृत कल्कि शरीर जय जगदीश हरे ॥

तीसरा अध्याय

अवतार के सम्बन्ध में शास्त्रों और

महात्माओं का अभिमत

गत अध्यायों में पाठकों ने अवतार के सम्बन्ध में सामान्य विवेचन तथा उनके और बुद्धि-व्यतिरेकी के सम्बन्ध पर हिन्दू, ब्राह्मणों तथा विभिन्न देशों के महापुरुषों के कथनों का विवेचन करके, क्योंकि अवतार सम्बन्धी विचारों के उद्भव नहीं हमारे शैक्षणिक-क्षेत्र ही है। तथा अथवा चोरीम अवतारों का वर्णन एवं प्रथम पुराणों में ही किया गया है। इस विषय पर यदि इस विषय को ठीक तरह से समझना हो हमको पुराणों में पढ़ने वाले वाले अवतार सम्बन्धी ग्रन्थों को ध्यानपूर्वक पढ़ना और मनन करना चाहिये जिससे हम सम्बन्ध में ठीक निर्णय कर सकना समर्थ हो सकें।

ये तो अवतारों का न्यूनतमिक वर्णन सभी पुराणों में पाया जाता है, और एक-एक अवतार के नाम पर कितने ही पुराणों की रचना भी की गई है, पर इस सम्बन्ध में सबसे अधिक सम्प्रीता एवं विवेचन 'श्री मद्भागवत' का है। जसमें अवतार का जो रहस्य और तत्त्व प्रकट किया गया है, सभी को निम्न रूप और शब्दों में धर्म भव शीघ्रों में भी कथन किया है। 'भागवत' के प्रथम स्कन्ध के तीसरे अध्याय में श्री कृष्ण की कहते हैं—

जगद्गुरुः शैल्य रूपे भगवान्महदादिभिः ।
 सम्भूतं गोडशकसामादौ लोकसिसृक्षुः ॥ १ ॥
 यस्तुशान्भसि शरणस्य योग निद्रा वितन्दतः ।
 नामिहदापुजादासीद्गृह्या विश्वसृजा पति ॥ २ ॥

“जिन्होंने म्लेच्छों का संहार करने के लिये हाथ में कर्वाण प्रह्वण की है और जो दुष्टों के लिये मूमकेतु की तरह भीषण दिखाई पड़ते हैं, उन भगवान् कर्मिक की जय हो—सदैव जय होगी रहे।”

मध्य-काल में ‘दशावतार’ की भावना ने ऐसा और एकटा पा कि शंकराचार्य जैसे ‘महामानव’ ने भी उनके सम्मुख में दस भक्ति पूर्ण श्लोक लिखे हैं। इसी प्रकार कावमीर के प्रसिद्ध कवि क्षेमेन्द्र का ‘दशावतार चरित्र’ ग्रन्थ भी बहुत विद्वतापूर्ण माना गया है। इतना ही नहीं प्राकृत-भाषा में, जो मुच्यन्तः जैन और बौद्धों के धर्म दलों में व्यवहार में आई गई है, दस अवतारों के सम्मुख में एक रचना हमारे देखने में आई है, जिसमें चार चरणों में ही दसों अवतारों की स्तुति का बी गई है—

जिष वैश्र धरिज्जे मरिञ्चल लिज्जे पिह्हि दन्तहि ठाई धरा ।
रिस वध्ठ विआरे छलतनु धारे वधिअ सत्तु पञ्चाल धरा ॥
कुळ सत्तिय कम्पे दसमुह कट्टे केसिअ क्स विनास करा ।
करुणा पअले म्लेच्छहि वज्जले सो देख नरायण हमहि दरा ॥

सोई कवि किसी खंगु दानी पुण्य को चाणीवाँद देठा हुआ कहता है कि “जिन भगवान् ने मनुष्य रूप में जैतों की रक्षा की, कश्यप और भारद्वाज अवतार लेकर अपनी पीठ तथा जैन पर पृथ्वी को रक्षा, जिन्होंने शत्रु (हिम्नाशुत) के यक्षयज्ञ को विदीर्ण कर दिया, जिन्होंने बलि को बहुराने के लिये बीता जगीर बना कर उसे पाताल में बाँध दिया, जिन्होंने क्षत्रिय नाति को नष्ट कर दासा, जिन्होंने गवरा को काट डाला, जिन्होंने केणी और कन्य को बिनष्ट किया, जिन्होंने बुद्ध रूप में कर्मण की धारा प्रवाहित की और जो कर्मिक रूप में म्लेच्छों का मूलोन्मोद करने में भगवान् नागयण आपको खँड पल प्रदान करें।”

इस प्रकार न जाने जिन्होंने कौनकी धीर कविता के तर्ज-तरङ्ग के मार्गों से दुष्ट अपनी धृताञ्जलियाँ दशावतार को चढ़ाई है

करने वाली नैतन्य सत्ता तीन दर्जों में बँटी हुई है। उसको पहला रूप निर्गुण निराकार और अध्यात्म है। उसकी व्याख्या करने की बँट्टा निरर्थक है। क्योंकि वह सत्ता की किमी भरी-बुरी बात से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखती, सब प्रकार से निर्मित है। इस तथ्य के कारण शान्ति ने उसका जिक्र माने पर 'नेति-नेति' कह कर ही सम्बन्ध को समाप्त कर दिया है।

पर जब सृष्टि रचना का भवतार आता है तो उसका एक अथ सक्रिय होकर सपूर्ण रूप में परिवर्तित हो जाता है जिसको ब्रह्मा विष्णु, महेश्म बुधां मूर्धे, इन्द्र भादि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। वे सब नाम देव, काल भवबा सम्प्रदाय प्रादि में सम्बन्ध रखते हैं, पर वास्तव में यह विश्वव्यापी नैतन्य शक्ति का दूसरा दर्जा या रूप है जिससे सृष्टि-रचना, लोक-निर्माण प्रादि का कार्य सम्पन्न होता है। पर यह देवी शक्ति, जिसे भवतार और प्रयोजन के अनुसार विभिन्न नामों से पुकारा जाता है सूक्ष्म होती है, और मानस में उसका कोई भाव नहीं होता। इसी कारण तीसरा दर्जा भवतार है जो स्पष्ट रूप में देखा जा सकता है और विश्व-संस्थापन की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष भाग लेता है। जो विद्वान्मन एव से सभी जीव, प्रत्येक मनुष्य ईश्वर का भवतार है, पर प्राणियों में विश्व-संस्थापन की प्रक्रिया को संभालने के लिये जन्ही शक्तियों अथवा विभूतियों को 'भवतार' नाम दिया गया किन्तु इन सबद्वारा कार्यसमर्थ की कितनी विशेष आवश्यकता की पूर्ति की है।

ऐसे दस भवतारों का वर्णन हम पीछे कर चुके हैं, पर 'भावतार' में उनकी सत्ता बढ़ाकर धार्मिक कर दी है। इनमें से जितने भवतार मानव देह-धारी हैं वे सब आत्मतन्त्र से ही सम्बन्धित हैं। पर सत्ता के धन्य देनों में श्री सम्मान-अवस्था के कार्य में सम्पन्न-अथ पर ऐसे ही विशेष भवतार प्राये हैं और वहाँ भी लोकोत्तर पुराणों ने प्रकट होकर उनका समाधान किया है। उनका उद्गम स्थल भी नहीं

श्री भक्तवाग्नि भाषा में उक्तरी महिमा और गुणा का गान किया है, जिसमें सर्व माधाराय से साक्षरता और भक्तवृत्ति की वृद्धि हो ।

मनुष्य-जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ और अवतार—

जिन विद्वानों ने अज्ञान की रक्षा का एक विचार की दृष्टि से किया किया है उनका यह विश्वास निम्नलिखित है कि इनका मान-विषय आत्म-मानव जीवन की समानता से है । यह तो सभी मानते हैं कि मनुष्य के अन्तर्भाव में एक 'जीव' की यानि बहु-विभाग एक ही नैमित्तिक थी । एक ही मनुष्य में एक ही भाव यह है कि मनुष्य के 'अज्ञान' यथा ही अज्ञानत्व का भाव नहीं होता । उनमें केवल अज्ञान-भाव होता है जिससे सामान्य भावना उन्हें ज्ञान में ही प्राप्त हो जाती है । साथ ही उनमें लघु मानसिक शरीर का भी विकास होता जाता है जिससे कुछ समय पश्चात् वह अज्ञान (अज्ञान-जीविका) को अज्ञान करके योग्य बन जाता है । इसी का अर्थ है कि ज्ञान में ही अज्ञान हो सकता है ।

'धर्म शक्ति' के अर्थ में यथानुसार मनुष्य का 'यह जीवन-काल प्रकृत' का भाव में होगा है—प्रकृतिकाल और निवृत्तिकाल । प्रकृतिकाल में मनुष्यों में प्रकृत करने की भावना ही प्रकृत पाई जाती है । इस निमित्त वह अज्ञान विषय अज्ञान-अज्ञान के रूप में अज्ञान कर लेता है । निवृत्तिकाल में मनुष्य जीव-जीव शक्ति का अज्ञान का अज्ञान होता है, अज्ञान प्रकृतिकाल में लेने के अर्थ में अज्ञान अज्ञान का अज्ञान अज्ञान है । इस प्रकार अज्ञान-अज्ञान का स्वाभाविक नियम प्रकृतिकाल में निवृत्ति अज्ञान का स्वाभाविक नियम अज्ञान करना है । इन दोनों के अर्थ में अज्ञान अज्ञान ही अज्ञान है, जिसमें मनुष्य सभी माय की ओर अज्ञान अज्ञान अज्ञान है और सभी अज्ञान की ओर । उस अज्ञान में अज्ञान अज्ञान अज्ञान अज्ञान का अज्ञान अज्ञान है । वह अज्ञान में मनुष्य का अज्ञान

नरदेवत्वमापत्तः सुरकार्यं चिकीर्षया ।
 समुद्रनिग्रहादीनि चक्रुः वीर्याभ्यतः परम् ॥ २२ ॥
 एकोनविंशो विशतमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ।
 रामकृष्णाविति भुञ्जे भगवान् हरद्रुमम् ॥ २३ ॥
 ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्भोज्याय सुरदिपाय् ।
 बुद्धो नाम्नाजिनमुक्तः क्रीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥
 अथासौ युग सञ्चयाया दस्युप्रायेषु राजसु ।
 जनिता विष्णुयज्ञो नाम्ना कल्किर्जगत्प्रपिता ॥ २५ ॥

'समह्वं भवतार मे तस्यकीर् के गर्भ से पाराशर द्वारा न्यस्त के रूप में षपतीर्षा रूपे घोर सर्पों की मेष-सक्ति को क्षीण होकर देखकर वेद कपी वृष को कई शास्त्रों बनाकर सुकल्पित कर दिया । पाञ्चरही वार देवताओं का कार्य सम्पन्न करने के उद्देश्य से रामचन्द्र के रूप में भवतार साया किया तथा समुद्र पर गंतु वीथना घोर रायण रूप भादि की कीरतापूर्वक लीला की । जन्तीसवें घोर घोर वीथने भवतारो में यदुवश मे कृष्ण घोर, इतराम के रूप में प्रकट हुये घोर गृष्णी के भार को हलका किया । दृक्कीसवी वार कलियुग या जाने पर वे मणय देत मे देवताओं के द्वेषी देखों को मोहप्रसन्न बनाने के लिये जिन-युज सुख भवतार के रूप में प्रकट हुये । इसके पश्चात् जब कलियुग समाप्त होने लगेया घोर आसक्त कई प्रजा को लूटने लगेया तो जगत को रक्षा के लिये भगवान् कियुयुग के पर मे कल्कि रूप में प्रकट हुंमि ।"

इस बरहस भक्तारो के कतिरिक्त दो भवतार 'हृषीकेश' और 'हस' के घोर हैं जिनका वर्णन द्वितीय स्कन्द के सातवें अध्याय मे ब्रह्माजी ने नायक को इस प्रकार सुनाया था—

सत्रं मयास भगवान् हृषीकेशपाथी
 साध्यात् स यज्ञपुरुषस्तपनीय वर्णः ।
 छन्दोमयी सत्तमधीर्जित्तल देवतान्म
 वाचो बभूवुश्शतीः श्वसतीरुच्यं नस्तः ॥

ले जाने वाली मक्ति नीचे से जाने वाली शक्ति को दबा देती है और
उस मनुष्य निश्चित पथ पर बाँट ड़ हो जाता है।"

इस वर्णन में यह कमी नहीं समझ लेना चाहिये कि तीनों
प्रकार की अवस्थाओं का परिवर्तन एक ही सामाजिक-जीवन में हो
जाता है। वास्तव में इनमें से एक-एक अवस्था को पार करके दूसरी
में पहुँचने एक सैकड़ों हजारों वर्ष लग जाते हैं। इसमें कोई बात अमभव
या अस्वाभाविक भी नहीं है। पात-प्रिकान के निये जीवात्मा का
प्रत्येक अवस्था में से गुजर कर उसका अनुभव प्राप्त करना पड़ता है,
तभी वह अग्रगण्य हो सकती है। ममार में स्पृह, मूरुव, स्थाणमय वासना-
मय अनेक दोष हैं, जिनमें मनुष्य को रहना पड़ता है। यदि वह इनकी
बस से जानकारी प्राप्त नहीं करेगा तो उसकी जीवात्मा को पीछ में ही
कही भी एक जाना पड़ेगा और उसका बहुत समय के निये पतन हो
जायगा।

प्रकृति और निवृत्ति के दो विभागों के नियम का ही यह परिणाम
होता है कि सभी ओ मनुष्य प्रकृति-मार्ग पर चल रहा है उस पर
निवृत्ति की बातें प्रायः ध्यान नहीं करती। पर इसका अर्थ यह भी नहीं
समझ लेना चाहिये कि विषयों में लिप्त रहना मनुष्य के निये कोई
अच्छ बात है। कुछ भी हो, है तो वह निम्न अवस्था ही। इन निये
हमको यही उचित है कि ईश्वरीय विधान को गिरोधास करने बूझे
प्रकृति-मार्ग का अनुभव प्राप्त करके क्या समय मौक़ा उनमें छुटकारे की
कोशिश करें। हाँ, तभी कल्पे भी काम की नहीं कि त्रिभुवन पुन वापस
लौं कर नीचे की गति में पड़ता हो। जैसे बहुत से व्यक्ति सामर्थ्य
और शायता न होने पर भी किसी के बहकारे से अथवा स्वय ही किर्मा
उनमें से आकर गृहस्थ को भोग बिना ही समावस्था में ग्राह्य-न्यासी
बन जाते हैं, पर कुछ समय बाद प्रकृति के सरकार और मानते हैं और
वे उन्ही जग में अस्व और कामिनी के क्षेत्र में पड़ कर गृहस्थों में भी
निम्न दशा में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार के क्षेत्र में उनका इनका सामर्थ्य-

आद्योपवहारः पुरुषः परस्य कालः ।
 स्वभावः सदसन्मनश्च ॥
 द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि
 विराट् स्वराट् स्थान्नु चरिष्णु भूमन् ॥
 ब्रह्मं भक्षो यज्ञं तमे प्रजेशा
 दक्षादयो मे भवदादयश्च ॥
 स्वर्लोकपालाः रङ्गलोकपालाः ॥
 नृलोकपालास्तथा लोकपालाः ॥
 यत्किञ्च लोके भगवन्महत्स्वदीजः
 सहस्रद्रु बलावत् क्षमावत् ॥
 श्रीही विभुल्यात्मवदद्भुतात्मा
 तत्त्वं परं रूपयत्स्वरूपम् ॥

“परमात्मा के सर्वं प्रथम अक्षर तो विराट् पुरुष ही है। उस विराट् काल, स्वभाव कार्य, कारण, मन, मनभूत, महद्धार, तीन गुण, इन्द्रियाँ, ब्रह्माण्ड-शरीर, उसका अभिमानो स्थावर भीरु भगवत् शीव, उसके सब उस पञ्चतन्त्र भावों के रूप है। मैं (ब्रह्मा) मन्दूर, निन्द्य, तब भादि सब प्रजापति, सुप्त भीरु तुम्हारे जैसे अथ्य नक्तान, स्वर्ग-लोक के पालक, पत्नियों के राजा, मनुष्य-लोक के पालक भीषे के मीनों के राजा भादि सत्कार मे जितनी वस्तुएँ ऐश्वर्य, तेज, इन्द्रिय-दत्त, मनोवन्, शरीर बल या क्षमा से युक्त है अथवा जो भी विशेष शौर्य, सज्जा, ब्रह्म तथा विद्वान् से युक्त है अथवा जितनी भी वस्तुएँ धर्मयुक्त वहाँ वाली रूप या प्रकृत हैं, वे सब परम तत्त्ववत् भगवत् स्वरूप ही हैं।”

पुत्राणकार के इतने शक्ति भावों में अक्षर की शास्त्रविक्रता भीरु अथवाकथा प्रकट कर देने पर भी जो मनुष्य वाग्द्वि भादि अक्षरों के दोष दर्शन से ही अपनी शक्ति सब करते रहते हैं, उनकी बुद्धि उन्हीं भावार्थ कीव-मनुष्यों की भाँति किन्तु अक्षरों की ही समझना चाहिये। वे अक्षर पञ्चु को खाल कर निस्तार पर ही दृष्टि डालते रहते हैं अथवा

पतन होता है कि उन्हें जो गति प्राप्त होती है, उसे नर्याग के प्रति-
रिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता ।

अवतारों का उदाहरण—

इस लिए जीवात्मा का सम-विकास होकर गुणित अवस्था तक पहुँचने
के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य प्रवृत्ति और निवृत्ति की सभी
प्रवृत्तियों को भोगता हुआ उनसे अनुभव और शिक्षा ग्रहण करे और
आगे बढ़कर ऊँचे दर्जे में प्रविष्ट हो । भगवान के जिन छ. अवतारों
का मानव रूप में होना वर्णन किया गया है उनका आशय उन छ. मुख्य
प्रवृत्तियों से है जिनमें होकर वर्तमान मनुष्यत्व की मानव जाति को
गुजरना पड़ा है । इनका विवेचन करते हुए हम विषय के ज्ञाताओं ने
जो मन प्रकट किया है उसका आशय नीचे दिया जाता है ।

मानव-प्रवृत्तियों की दृष्टि में पहला अवतार नरसिंह भगवान
का है । यह जीव की उस अवस्था का सूचक है जब यह पशु-विभाग
को पार करके मानव विभाग में प्रविष्ट ही हुआ था । पर मनुष्य होने
टूटे भी उसकी बहुत सी वृत्तियाँ और आचरणा पशुओं जैसे ही
थी । यह जगती प्रथवा आदिम मनुष्यों की अवस्था है । इस पारलौकिक
प्रवृत्ति में एक मनुष्य दूसरे को मार कर खा भी जाता था । पर धीरे-
धीरे इस प्रवृत्ति का निर्गम होने लगता है और वह अपनी जाति वालों
प्रति मनुष्यों की छोड़कर अन्य प्राणियों की ही भोजन लगता है
ऐसे जगती मनुष्यों की निन्दा करने या उनसे घृणा करने का कोई
कारण नहीं । प्रत्येक मनुष्य को आरम्भिक-काल में इसी अवस्था में
होकर गुजरना पड़ा था । इसको मानवता का शंशवकाल कह सकते
हैं । इसको जीव की 'मूलावस्था' भी कहा जा सकता है ।

दूसरा अवतार हुआ । यह उस अवस्था की सूचना देता
है जब जीव अपनी अवस्था में सुघर कर आगे बढ़ता है और उसमें
मानवता के कुछ लक्षण पाए जा सकते हैं— दिवसाई देते लगते हैं ।
इस अवस्था में मनुष्य समाज में रहने लगता है और सामाजिक नियमों

तदा मेरे सक्त बने रहते हैं और भक्त मे मेरे पास ही आ जाते हैं ।
जो मनुष्य मुझे जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार का कारण
समझकर कर मेरी शरण लेता है, उसको मैं भवदग्धन से युक्त
देता हूँ ।”

अहमादिहि देवानां सृष्ट ब्रह्मादयो मया ।
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य जगत् सर्वै मृजाम्यहम् ॥
तमोभूलोद्धमव्यक्तो रजोमध्ये प्रतिष्ठितः ।
ऊर्ध्वं सख विना लोभ ब्रह्मादिस्तान्म पर्यंतः ॥
पृथ्वीं सर्वतः सम्प्राण्यतिष्ठ दद्यामुत्सम् ।
सर्वभूतात्म भूतस्यः सर्वव्यापी ततोऽप्यहम् ॥

“मैं ही देवताओं का प्राणि हूँ । सृष्ट आदि देवताओं की मैंने
ही सृष्टि की है । मैं ही अपनी प्रकृति का प्राण्य लेकर जगत् की
सृष्टि करता हूँ । मैं प्रज्वलत परमेश्वर ही तमोभूल का आधार, रजो-
गुण के नीचे स्थिति और उत्कृष्ट सखगुण में भी व्याप्त हूँ । मुझे
कोई प्राणीता नहीं है पर मैं ब्रह्मा से लेकर छोटे से कीट में भी व्याप्त
हूँ । मैं पृथ्वी को तब और से शरण करके, तमिन से दश प्रभुस जगत्
जगत् के हृदय में विराजमान हूँ । सम्पूर्ण प्राणियों में प्राण्य रूप में स्थिति
है, इसलिए सर्वेश्वरी कहलाता हूँ ।”

कर्म का साधन समाप्त होने के पश्चात् एक दिन कृष्ण-वत्सराज
जब माकुरजी के पास गये तो उनकी महिमा को समझकर बड़ीबुद्ध
होते हुए भी उन्होंने उनकी पूजा की और स्तुति करते हुए उनकी देवी
सत्ता के विषय में कहा—

गुवा प्रधान पुरुषो जगद्धेतू जगन्मयो ।
भवद्भवा न विना किञ्चित् परमास्ति न चापरम् ॥
जात्म सृष्टिगिद विश्वमन्वाविरय स्वशक्तिभिः ।
ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुत प्रत्यस गोचरम् ॥
यथाहि भूतेषु वराचरेषु मह्यादयो योनिषु भाग्नि नाना ।

संसार के अस्तित्व-धामिबुद्धि के लिये हुआ है। इस सब धाफके प्रभाव से ही प्रभावान्वित होकर सारां सुक्तों का बालन करते हैं। प्राय एक और प्राद्वितीय भाद्विबुध है। मायाहृत जायत, स्वप्न और मुपुषि-इन तीन अवस्थाओं में धनुषत और उनसे शरीर वुरोप तत्त्व भी प्राय ही है। प्राय किरों द्वारा वस्तु से प्रकाशित नहीं होते, परन्तु स्वय प्रकाश है। प्राय सब के कारण है, परन्तु प्रायसा न तो कोई कारण है और न प्राय से कारणपना ही है। भगवान् ! ऐसा होने पर भी प्राय तीनों गुणों की विभिन्न विपयनाओं को प्रकाशित करने के लिये अपनी माया से देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य प्रादि जरीरों के अनुसार भिन्न भिन्न-रूपों से प्रतीत होते हैं।"

भगवान् कृष्ण जी ने शकुर जी के धनुरोप की रसा करके वाष्पामुर को प्राय प्रदान किया और कहा कि प्राय (शंकर जी) और मूमने कोई देव हो नहीं है। केवल धृष्टि समाधान के लिये दो निरत रूप प्राय पड़ते हैं।

‘पद्मपुराण’ में वेद व्यास और कृष्णजी का संवाद—

एक बार भगवान् वेद व्यास ने ईश्वर के परमत्व को जानने की इच्छा से कई हजार वर्ष तक कठिन तप किया। इस पर प्रसन्न होकर भगवान् ने जबसे वर मांगने को कहा तो उन्होंने पत्नी प्राथना की, कि हे भगवान् ! मैं प्रायके प्रदमृत तत्व रूप को ही बनना चाहता हूँ। इस पर भगवान् ने कहा—

मायै के प्रकृति प्राह-पुरुष च त्तयेस्वरम् ।
 धर्म मेके धर्म चंके मोक्ष मेके ऽ कुतोऽपयम् ॥
 शून्य मेके भावमेके शिवमेके सदाशिवम् ।
 अन्धे वेदधिरसि स्थितमेक सनातनम् ॥
 सद्भाव विक्रिपाहीन स्वन्विदानन्द विग्रहम् ।
 परराज पराविष्णुरानि तत्ररूप वेदिगोपितम् ॥

धीरता को जान लेता है और उस मार्ग पर रहना-पूर्वक चलने का प्रयत्न करने लगता है। इसमें स्वार्थ-भाव की कमी होने लगती है और मनुष्य दूसरों के साथ निस्वार्थ भाव से प्रेम करना सीखने लगता है। बुद्धावन के बाल कृष्ण की बाली की ध्वनि निम्न प्रकार रञ्जो-पुरण, एगु, पक्षी, वृक्ष-पतता, नदी, पर्वत आदि सबको मोह लेती थी, यह इस बाल का सूचक है कि निर्धृत मार्ग पर चलने वाला इसी प्रकार निस्व-व्यापी प्रेम का श्रोत करने लग जाता है। इसमें व्यक्तिगत स्वार्थ बहुत कुछ जाता रहता है और वह सब प्राणियों के हित के लिये देखने करने में मानन्द अनुभव करने लगता है। इसको जीव की 'बाह्य-प्रवस्था' का पूर्व भाग कहा जा सकता है।

बौद्धावन में जीव की जित प्रवस्था का दिग्दर्शन कराया गया है उसे 'बाह्य-प्रवस्था' का उत्तर भाग कह सकते हैं। पहले भाग में जीवात्मा की सामाजिक प्रेम, सेवा, निस्वार्थता आदि गुणों का अभ्यास हो जाता है। सब छोटी प्रवस्था करने पर आत्मा कुछ साम्यवादी शक्तियों को विकसित करने सामूहिक रूप में समस्त विश्व की बन्धन भावना को धरिपकर करने लगती है। इस जीवन में भी मनुष्य की अनेक विधियों का सामना करना पड़ता है, तरह-तरह के साकार्यता मनोमनो से करने को बचाना पड़ता है। जो जीव उसकी तरह ध्यान न देकर आत्मोन्नति का लक्ष्य ही सम्मुख रखता है वह सब बातों और विपरिधा को सह कर पूर्ण मनुष्यता प्राप्त करके महा-मानव की श्रेणी में परावर्ण करता है। निर्धृत की प्रवस्था का यह अन्तिम मध्य होता है।

इस विवेचन में यह परिणाम नहीं निदानना चाहिये कि परशु-राम, भयवान राम, कृष्ण आदि केवल भावनात्मक या नैतिक ही हैं, वास्तविक रूप में वे कभी नहीं हुए। परन्तु हम यह कह सकते हैं कि वे प्रवस्था अपने समय के सर्वश्रेष्ठ धर्म-परमात्मा के अन्त स्वरूप थे, इन सिद्ध विद्वानों ने उस युग का आदर्श (पुण-पुरण) धर्मवा प्रतिनिधि

की विशेष व्यक्ति को विशेष प्रेरणा देने की सम्भावना भी भारतीयों की प्रायः। संसार ही बंधन बुझे हैं। यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि पौराणिक-युग में भगवान राम और कृष्ण तथा ऐतिहासिक काल में भगवान बुद्ध और शक्यार्थों को कार्य करके दिया गये हैं उसको मात्र एक मानव की शक्ति से सम्भव नहीं माना जा सकता। भयः जब हम देखते हैं कि इन पाई हजार वर्षों के भीतर जन्म लेने वाले कई खरब मनुष्यों में से इस-तैव भी प्रयत्न करते हुये उनके लयान कार्य करते न दिया सके तो इस अन्तर का कोई विशेष कारण मानना ही पड़ेगा। और यह विशेष कारण नहीं हो सकता है कि या तो प्रत्येक जन्मों में उत्तरा इत्यादि विकल्प हो चुका था कि वे ईश्वरीय स्थिति तक पहुँच सके थे या संसार को सर्वोच्च धोवनमुक्त आत्मार्थों में से ही कोई विश्व-विधान के अनुसार संसार की उसमें हुई विकल्प समझा' को सुलभ करने के लिये पृथ्वी पर अवतरित हुई थी। इस प्रकार की विचारधारा वर्तमान समय के विद्वानों में ही नहीं पाई जाती, पुराने 'भारतवादी' लेखकों ने ईश्वरवाचकियों के चरित्र सम्बन्धी प्रदुष्ट और चमत्कारों में नहीं हुई 'कार्य' लिखते हुये धोव-धीव में इस तथ्य को भी प्रकट कर दिया है। 'साम्प्रतिक मानस' में, विशेष 'भारतवादी' की दृष्टि से सबसे प्रभावशाली और प्रधान शक्ति कहा जा सकता है, योत्वाभी सुलसीदास जी ने भगवान के निर्गुण और सुगुण दोनों रूपों को मानते हुये ही 'भारत' का प्रतिपादन किया है। उन्होंने कहा है कि भगवान के अवतार का वास्तविक रहस्य ज्ञान अज्ञान या जलवा सकता ही किसी भी चले से उन्हें विद्वान, श्रद्धि-महर्षि के लिये संभव नहीं, पर उदात्त प्रत्यक्ष कारण रही है जो गीता में बताया गया है—

यदा यदाहि धर्मस्य नानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमर्धमस्य तदात्मजन्म सूतामज्यम् ॥

इसी विद्वान्त की व्यापार करते हुये उन्होंने 'उमा-शंभु संवाद'

कहा कि "देश का राजा या सभसत-संचालन करने वाला राष्ट्रपति जैसा होगा वही देश ही युग प्रवृत्तमान हो जायगा ।" यदि राजा या शासन का संचालन करने वाले प्रधान अधिकारी मन्त्रों, मन्त्रपरामर्श और पूर्ण शक्ति निष्ठ है तो वहाँ की जनता को भी उसी प्रकार चलना पड़ेगा । ऐसे प्रादुर्भावमान में दुष्ट, कुराखारी, टग, बदमाशों को यहाँ अपने दुष्टुण्य त्याग कर सज्जनता का व्यवहार सीखना पड़ता है भयना वहाँ से निकल किसी दूरको स्थान को चला जाना पड़ता है । इस प्रकार महाभारत के कथनानुसार वहाँ जैसा राजा होता है वंश ही युग बर्तने भयता है—

राजा हृतयुगस्रष्टा ज्ञेताया द्वापःस्य च ।

युगस्य च चतुर्शस्य राज्या भवति कारणात् ॥

(शान्ति पर्व म० ६६-२५)

"राजा ही राज्य को सृष्टि करने वाला होता है और राजा ही जेना, क्षयर और भीमे युग (कलियुग) को भी सृष्टि का कारण होता है ।"

इन प्रकार हम इन निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वर्तमान समय में भारतीय जनता के एक बड़े भाग में जो 'कलियुग' के परिणाम होने की धारणा लगी हुई है, वह बड़ी लाजक है । हमने बहुसंख्यक व्यक्तिगो को किसी पुराई का शिक घाने पर प्राम्य यह कहते सुना है कि— "मनी, यह जो कलियुग है, इसमें तो ऐसे निषिद्ध या पाप कर्मों का होना मालूमि बात है ।" धान यह मनोवृत्ति करोशे लोगों ने देयी जा सकती है । अपनी सुरक्षि या दृष्टियों का जोप इस प्रकार 'युष्' अथवा 'ईश' पर डालकर उनके सुधार का कोई प्रयत्न न करता एक बहुत बड़ी गूँझटा का चिह्न है 'कलिक पुराण' के पाठशे से हम बाधह पूर्वक प्रार्थना करते कि ये अपने ऊपर 'कलियुग' का प्रमान स्वीकार न करें, बरन् "कलवान कलिक" के सहयोगी बन कर तपको नष्ट करने की ईधार ही जायें । जैसा 'कलिक पुराण' में कहा गया है 'कलियुग' का

साव्यक्त है कि इन बेचन उनको मूर्तियों के समान तैद पूजा का कर हो सृष्टि न हो शक्य यन्त्र उनका गुणो को भी माने भीतर न्यूनतमिक परिणाम से प्रकृत बनने की चेष्टा कर । भगवान् इन सब रूपों में, मनुष्यों को अपना सर्वोच्च-पावन करने हुए लौकिक और पारलौकिक क्षेत्र में प्रथम हाथों की गिटा देने के लिये ही प्रवर्तित हुए थे ।

भौतिकवादी दृष्टिकोण—

आज का धार्मिक प्रश्नो पर भौतिकवादी, सामाजिक या, सांकेतिक दृष्टिकोण से विचार करते हैं, उनका भी जीवन के लौकिक विभाग तथा धर्मशास्त्र विज्ञान में समसम दृष्टि की चेष्टा की है । उनका मत है कि प्रथम बात धर्मशास्त्र वैज्ञानिक विज्ञान-विभाग के गुणनमा समुदाय है । वैज्ञानिक यह स्वीकार करते हैं कि पहले ममल पृथ्वी उत्पन्न की थी, इसके सबसे पहले जनन जीव, जिनका सामान्य रूप में मछली ही कहा जा सकता है, उत्पन्न हुए । शास्त्रों में भी जीव का प्रथम प्रकार 'मत्स्य' ही बताया है । फिर कालक्रम में इस जल के भीतर में पृथ्वी के छोटे-छोटे टुकड़े निरन्तर धारण हो गये जो वातावरण में परिवर्तित होने के प्रभाव में 'कच्छप' (कछुआ) अंगी के जीवा का साविकार हुआ जो इच्छानुसार जल-स्थल दोनों में रह सकता है । शास्त्रकारों ने भी दूसरा प्रकार 'गुर्म' या इमूना का ही बताया है ।

इसके पश्चात् जब भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े बाहर निकल आये और वातावरण में परिवर्तित होने से उनमें कुछ साव्यतिक सामान्यी (पाप-पुस झाड़ी आदि) उत्पन्न हो गई तो ऐसे जीवा की उत्पत्ति हुई, जो इन पदार्थों पर निर्वाह कर सकते हैं, पर जब और जीवों में भी तैदो उत्पन्न थे । क्योंकि उस समय जल में तैदो हुई पृथ्वी का पुराण रूप में शुद्ध होना सम्भव न था, उसने बहुत-बहुत जल में भरे गहरे और दूर-दूर पर होना प्रविष्टाये था । ऐसे वातावरण

स चेमे मरुत लोके प्रसादमुष नेष्यति ।
 उरिःसो ब्राह्मणो दीप्तः क्षयान्मुकुटुदाग्धी ॥१६६॥
 मक्षेपको हि सर्वस्य मुगस्य परिवर्तकः ।
 स सर्वस्य गताम् क्षुद्राम् ब्राह्मणैः परिमारितः ।
 उत्सादयिष्यति तदा सर्वंभेच्छे गणम् द्विजः ॥१६७॥

धर्मात्—“पुणान्त के प्रवहार पर महाकाज की प्रेरणा से सम्भव
 निवासों एक ब्राह्मण के घर में एक प्रालक प्रवट होया जिसका नाम
 'विष्णुपुत्र-कल्की' होगा। वह महान बुद्धि एवं पराक्रम से सम्पन्न
 गहान्मा, सदाचारी और जलता का हर्षणी होगा। मन से चिन्तित
 करते ही उसके पास इच्छानुसार वांछित साम-गजन, बौद्ध, नवय भादि
 उपस्थित हो जायेगे। वह पराक्रियी चक्रवर्ती राजा होगा। वह उदार
 बुद्धि, तेजस्वी ब्राह्मण, युद्ध से व्याप्त इस जगत को भयान्द प्रदान
 करेगा। कलियुग का अन्त करने के लिए उषका प्रादुर्भाव होगा। वही
 कलियुग का संहार करके गुहन युग का प्रवर्तक होगा। वह सर्वत्र
 ब्राह्मणों में विरत हुआ विधरस्य करेगा और पूषद्वज से किये हुए नीच
 प्रजाव वाले सम्पूर्ण मन्त्रियों का संहार कर दालेगा।”

उपर्युक्त वर्णन में प्रवहार का नाम 'विष्णुपुत्रा कल्की' लिखा है,
 जब कि 'कल्किपुत्रस्य' तथा अन्य ग्रन्थों में भी विष्णुपुत्र ही कल्की
 का विता कहा गया है। ही शकता है कि जैसे जनेक प्रवेशों में पिवा
 और पुत्र का नाम मिलकर ही पूरा नाम बोल जाता है, उसी रीति का
 यहा अनुसरण किया गया हो। 'श्रीमद्भागवत्' के चारहवें स्कन्ध के
 दूसरे अध्याय में भी कलियुग का अन्त करने हुए कल्कि सप्ततार के
 प्राकट्य और कामों २६ महस्त्र बड़े शूद्राशुक्त रूप में बताया गया है—

शाम्भुसाममुखस्य ब्राह्मणस्य महात्मनः ।
 भूने विष्णुपुत्रसः कल्किः प्रादुर्भवायति ॥१८॥
 अस्त्रमायुधमारुह्य देवदत्तां जगत्पतिः ।
 क्षतिनासासाधुदमनमष्टेन्द्रैर्युष्णान्वित ॥१९॥

में जिस पशु का निर्वाह होना सम्भव था वही उस समय उत्पन्न हुआ । अतः तीसरा अवतार 'वाग्देह' कहलाया इसमें कोई पाश्चर्य नहीं । अन्य जीव जहाँ कीबड़ में फँस जाने से घबड़ाते हैं, अधिक गहरे चले जाने पर मर भी जाते हैं, वहाँ 'वाग्देह' अपने शक्तिशाली दाँत के पहार से कीबड़ को दूर-दूर तक फेर कर उसे मुखा ही डालता है ।

'नरसिंह' 'भगवान' का वर्तन स्पष्ट रूप से प्राणी विकास के उस युग का सूचक है जब पशु-जगत में हाथी, बंदे, सिंह, शार्डूल जैसे पशु उत्पन्न होकर पृथ्वी तल को हलनल पुर्य बना चुके थे, उनका नवु-मानसिक विकास भी एक विशेष सीमा तक ही हुआ था, तब परिवर्तन-चक्र के अनुसार ऐसे जीवों का प्राविर्भाव हुआ बिना प्राकृतिक वृत्तियाँ के साथ कुछ मानवीय गुणों का भी समावेश था । विज्ञान में ऐसे जीवों को 'वनमानुष' कहा गया है और भू-वर्ष में से उनकी ठठगिरी निकाल कर उनकी शारीरिक विशेषताओं का एक हृद तक पता लगा लिया गया है । 'नरसिंह' उसी युग के प्रतिनिधि है और एक दृष्टि में विचार किया जाय तो उनको पशु और मानव की मूलसंस्था का जोड़ने वाला कही कहा जा सकता है ।

'वामन-भगवान' से मानव-जाति का आरम्भ स्वीकार किया जा सकता है । उनका प्राविर्भाव उस समय हुआ जब वन-मानुष सैकड़ों पीढ़ियों तक प्रगति करता हुआ सह्याद्र पर्वत चढ़ना सीख गया । उस अनुभव हो गया कि अन्य-प्रदक्ष के अन्य विकास-कारण और शक्तिशाली जीवों के मुकाबले में वह तभी ठहर सकता है जब सपवड्ड होकर कार्य करने की विधि से काम लेने लगे । पर उनकी यह सहयोग-भावना आत्मरक्षा और आत्मरक्षण तक ही सीमित थी । जीवन-निर्वाह की सामग्रियों के लिये वे व्यापस में लड्डे-भगडने लग जाते थे । पीरे-पीरे लमसे परिवारों और बर्गों का संगठन होने लगा और वे समझीने से काम करने के लाभ समझने लगे । वामन-भगवान का कथानक उसी युग के मानवों से सम्बन्ध रखता है जब कि उनसे मानवता की धतक

'भाषवत' में 'राजा कनी दन्तुषो' के कर्त्तिक भाषवत् द्वारा लट्ट
 फिर जाने की बात मिली गई है। जिस समय इस वर्णन को लिखा
 गया था, उस समय पृथिवी पर अत्यन्त अधिकार सम्पन्न और कर्त्तिक-
 वाली की राजा माना जाता था, क्योंकि पृथु क्षत्रियों की प्रधानता का
 पुत्र था। पर अब वह समय बदल कर वैश्य-प्रधान युग आ गया है
 और संसार भर में साम्राज्य की बागडोर बहुत बड़े क्षत्रियों, उद्योग-
 पतियों, वैश्यों, पूँजीवादियों के हाथ में है। उन्होंने समस्त धन को धीरे-
 धीरे के द्वारा जनता के जोषन-निर्वाह के साधनों को धरने बंद में कर
 रखा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि एक तरफ तो जनता के
 करोड़ों व्यक्ति धन धीरे धीरे के समाप्त से पीड़ित रहते हैं और दूसरी
 तरफ लाखों मन साक्षर मानवी और करोड़ों मन अक्षर जन अपना
 पं धारों के पीछे बन्द पुनः-आधार लक्ष हो जाता है। 'कर्त्तिक' अपनी
 कर्त्तिक-प्रथा से इस भाषवत् पूर्ण स्थिति को बदल देगे, और पूँजीवादी
 प्रथा का अन्त ही लायगा।

'भविष्य-पुराण' के 'कनि' का उल्लेख युग परिवर्तन के सम्बन्ध
 में करके यह बताया गया है कि वे 'महायज्ञ' द्वारा देवताओं को समुद्र
 करके ब्रह्म को सुखी बनायेंगे—

तदास भाषवत् कर्त्तिकः पुराण पुरुषोद्भवः ।
 दिव्यं वाचिन्माबह्यं शङ्गी जर्मा च चर्मधक ॥
 म्लेच्छास्तान् देवभूताञ्च हृत्वा योगं पामिष्यति ॥
 पौवशास्त्रः सहस्राणि सद्ये चार्त्ति प्रतापिता ।
 मन्मथता कर्मभूमिनिर्वाया भाविता तदा ॥
 एते कर्त्तियुगे धीरे कर्म भूमि पुनर्हरि ।
 कुरुवाचयसमयो रज्या यज्ञं वैशान् यक्षिष्यति ॥
 यतमायमुषादाय देवास्ते वसःसंयुता ।
 वैश्वतत मनुं एतव कथयिष्यति कारणभू ॥

प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गई थी पर शीघ्र ही दृष्टि में प्रगो उत्तरा विराम
बहुत कम हुआ था और इन विषय पूर्ण बुद्धिमान मनुष्य के मुताबिक में
व सामान्य यहाँ 'दोना' ही बहू जा सकते थे ।

मनुष्य का शीघ्र ही सामाजिक विराम प्रारम्भ में पीछे-
पीछे ही होता रहा पर जब शीघ्र ही प्रगो में और दूरि
कार्य प्रारम्भ कर देने में उत्तरी शीघ्र-निर्वाह की सामग्री की सुविधा
ही गई तो प्राचीन काल की बुद्धि शीघ्रता प्रकट होने लगी और
उत्तर में निरन्तर ही अविश्वसनीय गति के मद में कम शक्ति
शान्ति के साथ अन्वेषणों व्यवहार करने लगे । वे स्वयं परिश्रम करके
उपार्जन करने में उत्तरी दूरियों की सामग्री की उत्तरी-भास्वर प्रारम्भ
कर देनेसे उत्तर में शीघ्र ही अनुभव करने लग जाय पर प्रवृत्ति बहुत अधिक
उत्तरी गई और हमारे उत्तर में समाज का विघटन होना लग गया पर बुद्धि
शक्ति और बुद्धि मनुष्य प्रकट न होनेसे उत्तर करने का निश्चय विद्या ।
इसमें ही प्रवृत्तियों की प्रवृत्तियों में शीघ्र उत्तरी शक्ति की बुद्धि
और सुदृढ़ समाज करने देने ही प्रवृत्ति पाते लगे । व सुतीक्ष्ण का
अभिव्यक्ति प्रारम्भ तथा और उत्तरी दृष्टि के रूप में उत्तरी शक्ति ही
है ये अन्वेषण और अन्वेषण करना भूत रहे । तब समाज में एक नये
धर्म का ही गठन हुआ ।

साम-व्यक्ति ही वर्तमान समय तब समाज के शीघ्र उत्तर प्रारम्भ
माना जाता है । यद्यपि उस समय अन्वेषणों अथवा शीघ्र ही दृष्टि
में समाज बहुत प्रारम्भिक दशा में था और वर्तमान प्रगो में सामान्य
का उत्तरी भी बहुत कम ही पाया था, पर अन्वेषण समाज ने उस समय
भी विषय सामाजिक-निर्वाह की व्यवस्था की बहू श्याव, सामान्य और
सर्वार्थ के नियमों पर आधारित थी । इस लिए शीघ्र-निर्वाह की सामग्री
बहुत सीमित और प्रगो में ही होने पर भी समाज का शीघ्र उत्तर
कर गया था । अन्वेषण समाज के समाज में ही सामान्यकारी प्रगो
का प्रमुख प्रमाणों का उत्तर उत्पन्न हुआ जिसे अन्वेषण शक्ति

राजा शशिध्वज की देवी-भावना-

कतिपय ही सेना पर विजय प्राप्त करने कतिपय भस्माट-नगर (याण्डे विरे नगर) में रहने । वहाँ का राजा शशिध्वज (धन्वरा की ध्वजा वाला भयान्क विर) भगवान् का राज्याभक्त था, पर जब कतिपय विजय की भावना से वहाँ पहुँचे ही वह क्षण-परम के अनुसार उनके बुद्ध के लिए संसार हुआ । उसकी राती सुखान्ता ने सब कुछ कि धार ही भगवान् के भक्त और सेवक ही उनके ऊपर सम्पन्न-प्रहार करके कारी, तो शशिध्वज ने प्रवृत्तार के रहस्य के सम्बन्ध में एक कभी महान्पूर्ण व्रत की—

ब्रह्मता ब्रह्मतेशस्य परोरित्ने शरीरित्तः ।
 सेवकस्याभेदहसस्त्वेव जन्मसयोदयाः ॥

'भयान्क' 'पूर्ण' ब्रह्मपावपुत्र संभार को दह्य कहते हैं । जब वह मोक्ष शरीर धारण करके मुनिमान हो जाना है तब वह शरीर-रित्त (प्रवृत्तार) कहा जाता है । जिन सेवक (भक्त) की भक्ति-भावना दूर हो गई है और जिसे प्रभेद-आम प्राप्त हो चुका है, उसका जन्म, जयन (शुद्धि) और लय (समाप्ति) भी भगवान् के लक्ष्य ही होता है, भयान्क वह भगवान् के तुल्य ही बन जाता है ; साथ ही तब ही भी कहा कि 'जब भयवान् ने पूर्ण धारण की, तब कामादि भाव के अज्ञान परोरों के सुयो की परम्परा सारापण के शरीर में भी परोरित्त हुई । कामादि के परोरित्त होने से उनके देह में कामादि विषय नहीं लही परोरित्त होते ?'

इस प्रकार 'ब्रह्मिष्ठ पुराण' में एक बहुत बड़ा निष्ठा-त पाठकों के समझ रहा है कि संसार में सबसे बड़ा धर्म कर्तव्य-मान्य ही है । इसका महत्त्व इसका भयिक है कि यदि इसके लिए बड़े से बड़े सुखान्ता का भी विशेष करना पड़े, उनके विरुद्ध सामान्यतः संघर्ष करना पड़े

से समाज का पतन होना जा रहा था और व्यक्तियों में दोष-दुःख बढ़ने जाते थे। बुद्ध ने स्वयं त्याग और तपस्या का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित करके लोगों को झूठे ग्रन्थविश्वामो को त्याग कर संन्यास, दया, क्षमा के मार्ग पर चलने की शिक्षा दी। इसका परिणाम यह हुआ कि धर्म में मेह लोग का बहुत कुछ निराकरण हो गया और नर तथा स्त्रियों की स्थिति में सुधार होकर वे समाज के उपयोगी बनना लिये गये। हमारे भारतीय समाज की शक्ति में बृद्धि हुई तो लगभग एक डेढ़ हजार वर्ष तक यही बाफी प्रगति-शील शासन-मस्या स्थित रह कर जनता में सुख-सुविधा का वानावरण बनाये रही। भगवान् बुद्धका समस्त समाजके लिये इतना प्रतिदान सामान्य बात नहीं थी उस देश की बाया पलट ही कर दी और आज २५०० वर्ष बीत जाने पर भी उनके कारण भारत का समस्त जगत् में सम्मान विद्या जाना है ऐसी ही धनीविक्रम आत्माओं को जीवनमुक्त प्रथवा भवतार बहा जात है। चाहे भौतिकतावादी धनीविक्रमता पर विश्वास न करें, पर महात्म बुद्ध की विशेषता और श्रेष्ठता के सम्मुख उनको भी नतमस्तक होना पड़ता है।

इस बात का कोई महत्त्व नहीं कि ऐसे महामानवों को किस नाम से पुकारा जाय। भवतार, जीवन-मुक्त, पैगम्बर, अज्ञान नाश उद्धारकर्ता, प्रतिमानव आदि शब्द एक ही भाव को प्रकटित करते हैं। जिस समय समस्त ससार प्रथवा कोई महा-जाति भीषण सकट में पस्त हो जाती है और उसे चाहे और नाश-सर्वनाश की विभीषिक के दर्शन होने लगते हैं, जब सकट से बचने के लिये किये गये उनके समस्त प्रयत्न निष्फल सिद्ध होते हैं और अनुभव होता है कि कोई व्यक्ति परिस्थिति का सुधार नहीं कर सकता, तब छोटे-बड़े सभी व्यक्तियों के हृदय में यह भावना उठने लगती है कि कोई ऐसी धनीविक्रम शक्ति प्रकट हो जो इस 'असम्भव' जान पड़ने वाले कार्य को सम्भव कर दे। हमारे देश में राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकर, चैतन्य और विदेशी

काशीपुरी पर प्रकाश करने विषयों के अर्थों को भावी सुनोचना का उद्धार किया। वह यज्ञ रूपि के साथ से विप-दृष्टि वाली बन गई थी और जो भी प्राणी उसके सम्मुख आता था वह मृत हो जाता था। कश्मिर के दर्शनों के परवात् समने कहा—'पर आपकी समुद्रमयी दृष्टि के पड़ने से बेरा वह हीर लाता रहा और मैं भी आपका दर्शन करके चम हो गई।'

जब 'कश्मिर' समस्त पृथिवी में चर्म की स्थापना करके और निरिद पापों का शक्तिप्रय करने लहूबोधिने को देकर पुनः 'सामर्थ' में आकर निजात करने लगे तो उनके माता-पिता, भ्राता, परने प्रादि सबको परदान-द हुआ। इनके परवात् वे अनेक वर्षों तक चर्म-राज्य करके प्रकटी परनी और पुरी के साथ सुनोपनीय करके रहे। जब यहाँ का कार्य पूरा हो चुका तो स्वर्ग के देवताओं ने उवरी सेवा में उप-नियत होकर विष्णु चरने की शर्षणा की। इन पर कश्मिरी राज-भार करने पुनी को देकर द्विमानुष को लगे गये और नहुआजी के उट पर चतुर्भुज रूप धारण करके विष्णु पर से प्रवेश कर गये।

'कश्मिर-कर्म' का यही अन्त होता है। इतना शारदा पत्नी है कि जब अर्थ की प्रबलता होकर चर्म का हान होया तो अर्थात् दुःख दमनयरी लव पारल करके स सार का उद्धार करने। विषने बुद्धा-बतार के समय चर्मवात् ने अंम और दवा का प्राथम्य लेकर मानव जाति को सुमार्ग पर सागने का प्रबल किया था। पर उनका प्रभाव कोड़े ही समय तक रहा और लोगों ने फिर हवायोरता का मार्ग अपना-कर समाज की कतिह भोट पतन के गड़े से उकेल दिया। इस समय बुधिया के 'कर्मधार' कहलाने वाले त्रिभ प्रकार मौलिक विज्ञान का प्रयोग काराचरक नाम के साधन प्रलूत करने से कर रहे हैं, उनसे मानव जाति का शक्ति प्रत्यय समुद्रमयी और अन्वकारपूर्ण दिखलाई पड़ रहा है।

को मधुरा के एक ब्राह्मण वंश में प्रवर्तित होगी ।" यद्यपि उन्होंने कल्कि के जन्म स्थान का श्रेय रामक के वंशज मधुरा को प्रदान किया है, पर उनके समस्त सहयोगी और सारे सम्बन्धी भणिकांश में बङ्गाल के ही बतलाये हैं ।

कृष्ण समय पूर्व हमने किसी सांख्यिक एग के एक सेत में षड् भी पढ़ा था कि 'रामक' वास्तव में ईरान के किसी प्रदेश में अवस्थित है, और 'कल्कि प्रवतार' वहीं से सम्बन्धित है । इस प्रकार विभिन्न सम्प्रदायों और विचारों के व्यक्ति 'रामक' के दिग्गज में विभिन्न मत प्रकट कर चुके हैं ।

यही कारण उनके धर्मग्रन्थ के सम्बन्ध में है । प्राचीन परिपाटी के श्रद्धालु तो उनके शक्तिमान का समय कल्पियुग के अन्त में मानते हैं जिन्हें अभी तकली श्रेय दीया है । पर वर्तमान समय के धर्मग्रन्थकारों, जो कल्पियुग को १२०० वर्ष से अधिक कर नहीं मानते, कल्कि प्रवतार का समय बिल्कुल निकट बतलाते हैं । ऐसा हमने ऊपर लिखा है ।

बङ्गाली स्वामी श्री ने उनकी जन्मतिथि सन् १६८५ में घोषित कर दी है । धर्मरीक्षा की अन्त महिला श्रीम हिन्दवन में बहज्जामा है कि १५ फरवरी १८६५ को एक ऐसी बालक का जन्म हो चुका है जो एंग्लार श्रम तथा कारागृह करेगा । सम्प्रदायों की सकीर्णता को बन्धु पिटा देगा और एक सार्वभौम विभूषण की स्थापना करेगा । सन् १६८० में होने वाले विश्व युद्ध के पश्चात् यह बालक दुनिया अस्ति-घानी हो जायगा कि संसार भर को सद्भावना जो प्राप्त होगी और सब लोग उसके निर्देशों का पालन करेंगे । सन् १९६६ में इस बालक की प्रतिभा पूर्ण रूप से निखरेगी और उसके हाथों नये युग की आभार-रिप्ता रक्षी जायगी ।"

अन्य धर्मग्रन्थवादी धर्म भी, जिनमें भारतवासी और विदेशी दोनों ही प्रकार के व्यक्ति हैं, 'प्रवतार' के प्रकट होने को निश्च

दिग् भी है ननु-मदन की मारी प्रविष्टा करल धारें मनी बड़े अ
 करने है । दिग् बाजूदि नरं की मनी बनावे नरं दिग् देवता और
 धनुषों मे मन्त्री कर्षण तह धनुष धन हिन्ना, दिग् ननुद मे धनुष
 मन्त्र मे विद्यान का दे मन्त्र दिग्, उन नमी का ननुदोय मन्त्रधर्म
 वा । धनुष पद मनी की मन्त्रिनिव विवाद थी । नान्विभ दृष्टि मे
 देवा शब्द भी इनका मन्त्र ननुदोय श्राग देविण उम नायनाभर
 प्रवाह को है जिन्मे अन-नायन मे एव विदित्य इन्वन और उमाह
 उन्मन् हिन्ना और एव विद्यान नायन मुटाने के नाम को मन्त्र बना
 दिग् । मा धी पटला का वाक्य काने धारें मन्त्र इनका मन्त्र बन्धन
 धरवार को देते है । इनमे नरं दृग् दोग भी मनी है । दूरी मे मनी
 एक मन्त्रधर्म नुविना वा धारिण उमो भी भी ही ।"

हा धरवार मे मनी मन्त्र की पुनगर्हित होगी रही है । मन्त्र
 धूम, धाराह नुविभ वाक्य धरगुणम, कृप्रा, युद्ध के धारिणो पर
 धारिण दृष्टि धारिण मे मनी मन्त्र इनमे धनुनिहित जान करना है ।
 धरवारी नु-धुम्प बरे-बरे मन्त्र नाम बन दिव्याने है । पर दो धारें
 हा 'धरवार' मे एक भी होगी है —एक यह कि उनका उद्देश्य धरवा-
 नान मन्त्रधर्मोय धरिणो के धरवना होता है और इनका यह कि इस
 प्रयोग मे अन-महाराज की धरवां मन्त्रा मन्त्रिनिव होगी है । इनका
 ही मनी 'धरवार' मनी होता है । यह धारा अन-नायन धुम्प और धनु-
 नोय धुम्प हो जाता है । इसी की धरवार के धरवानो के धरवां का
 धरिण और धरवन्त होकर देवताओ और धरवार की धरवां मे जाने
 के मन्त्र की धरिण धरिण किया गया है ।

"मन्त्र धरवां 'निधन' धरवार इन दिग् हो रहा है धरवां को
 कहना धरिणो कि हो युद्ध है । यह एक ऐसा धरवां-धरवाह है जिन्का
 उद्देश्य धरवां धरवां की धरवधरिणो की धरवां धरवां का धरवां
 उन धरवां धरवां है ।" धरवां निधनक धरवार के नाम पर धरवां उन
 धरिणो की धरवना का मेहरा धरवां धरवां पर धरवां धरवां, इनमे

मनु-मनों के सुर में छोड़ें सोचना नहीं। रही प्रार विवाह में
 रहेत स्वयं मायो रथ घंटी, हर्षी श्रीर युवती विधये के देने का जो
 मर्दान किया गया है, वह भी सर्वमान वक्रावस्था में विर्यक है। आर-
 कन राधाजी की भी वहीच में मोटरकार ही थी जाती है और हाथों
 को प्रयेला उसका रूप भी अधिक हीटा है। 'बीटो' से कुछ भी भी
 धम कोई सम्भारना नहीं रही। भारतवर्ष के कोकट (१९९) आदि
 किली प्रदेश में धम बीट नहीं पाये जाते। यदि चीन जाओ तो व धम
 होने की संकल्पा करें तो कम्युनिस्टों में बहुत भी बीट धम को मिटा
 दिया है और जो पोंडे बहुत बीट धम के मनुष्यकी वष भी रहे होने,
 तो उनका देश के शासन में कोई हाथ नहीं। सका, हर्षी, वक्रा,
 श्रीरिया आदि देशों में पोंडे बहुत बीट है, पर के भारतवर्ष से मिन
 कर ही रहते हैं। धम बन-सकना वाले होने के कारण भारत से उनके
 कुछ करने का कोई प्रयत्न ही नहीं उठता।

किसी को के घनेक विवाहों का होना, बज्जरी और पर्वको में
 वाकर बहुतराफ किशो के साथ बिह्वार करना, लोटे-बड़े मङ्गल्यारोह
 रवाना, किसी पदारी पापस वाकर पैर पुताएने श्री शिशा प्रस
 करवा आदि ऐसी शरों है जो धम-माय व्यवहार में ही धम. उठ गई
 है और किसी सम्माननीय व्यक्ति के सम्बन्ध में उनको सम्भारना भी
 लोकार नहीं की वा संकल्प। इन समय जो व्यक्ति व्यवहार का मार्ग
 धर्मक बनेगा और बड़े-बड़े राशों का प्रभावित करने लगे-युव की स्थापना
 में समर्थ होगा वह निरवय ही प्राधुनिक शास-विधान में पारवत होगा
 और उसका रहन-सहन प्राधुनिक सम्पन्न तथा किल्ला के किशकों के
 पूर्ण अनुकूल हो होगा। ऐसे व्यक्ति के लिये वह कल्पना करना कि
 वह हजार-शौर की धम पुताने बहुत के वल प्रतिवेग और उनी समय
 का-का रहन-सहन रहेगा, एक मनीरकक बनना ही ही संकल्पी है।

इस समय को भी 'अवसर' का सतार का 'कार्यकारी' मानेवा
 यह ऊपर के देशों और व्यवहार में वन प्राधुनिक युग के मजत को

आठवाँ अध्याय

कल्कि पुराण और भक्ति-मार्ग

‘भक्ति-पुराण’ में भास्कर-गर्गि का मुख्य उपाय ब्रह्मि ही है और वाका सूक्तिभक्त के उपासना द्वारा लोकों में प्रकाश विद्य है। यहाँ बताया गया है कि मनुष्य अपने ही मायाजल का शैलक समझ कर उदयुवार उदयहार करने से ही ब्रह्मि के सकल प्राप्त हो प्राप्त कर सकता है। जो ही शक्तों से प्राण को सर्व-योग कहा गया है और ‘लोका’ से भी “न हि शक्तिं ब्रह्म शक्तिं हि ब्रह्म” कथ्य कर जान को संभार की समीप परसे परान बन ही है। पर वह शक्त वह हीम है कि क्या साक्षात् स्मृति शक्तिकार को उदययोग पर सकते हैं? सभी विद्वानों से यह लोकार किया है कि ब्रह्म-ज्ञान धरणा साक्षात्कार का समग्र लक्ष्य संकित और साक्षात्कार के विधु की भक्ति कथित है। कला कर से ही रत्न बात ही लक्ष्य-रत्न रूप से यह दिना है—

आरभ्यन्ते रास्यति श्रद्धिपूर्वकमात्मवर्षयन्वदति सर्वं व धान्यः ।
 नाशयन्तं जन्मैः पापैः शुक्लैश्चि श्रुतवायेन वेद न शैवे

“कोई जो पापयों पूर्वक शक्तों और देसका है, कोई पापयों धन से प्रसन्न करने करता है, कोई महान साधकों की तरह रके मुक्त है। पर इन तरह देखकर, दर्शन करने और मुक्त भी कोई इसके बाद को नहीं समझ पाता।”
 उनकीयों से भी बात समझ में को बना है कि साक्षात् शक्ति के एक शक्तिकारों शक्ति से मुक्त—“साक्षात्कार। मुक्ति वक्ता ही आत्मनः

उत्पन्न होने आ रही है कि जिससे मनुष्य-जाति के बच्चों में वृद्धि हो और उनकी ऐसी प्रजादना हो जिसमें विवश होकर वह अपनी भूल को मनुभव करने और अपने विषय सावधान हो। मनीषि प्रज्ञान हाविकारण होती है, इसी ही गिधा यदि लोग अपना सने होने को मान प्रकृति को दूषित होकर रष्ट रूप नहीं धारण करना पड़ता और ममत्वा व्यक्तियों को निरर्थक वष्ट नहीं भोगना पड़ता।”

यह परिधिपति किसी दृष्टि से हितकारी नहीं-बही या राखी और भवभाव को तो इन तरह लोगों को दण्ड देना प्रसन्न हो ही नहीं सकता। पर उनकी यह सब शुद्ध बाध्य होकर करना पड़ता है। मान मालव-ममाज अहरवाद (पीछे) का रोगी बन गया है और अब तक उसका औपरेकन करने दूषित मवाद को बाहर न निकाल दिया जायगा तब तक वह स्वस्थ नहीं हो सकता। इसी भावभावता की पूर्ति के लिये भगवान का 'भवतार' शीघ्र होने की प्रार्था की आ रही है।

“भवतारो का सदा यही प्रयोजन रहा है कि किसी प्रकार भगान्ति का शक्त होकर शान्ति की स्थापना हो। महाकाल इस उद्देश्य से एक भावनात्मक प्रवाह उत्पन्न करते हैं। इस प्रवाह से जन-मानस उद्वेगित होता है और उसमें से ऐसे कितने ही 'योद्धा' निकल पड़ते हैं जो इस देवी पुण्य-प्रयोजन की पूर्ति के लिये समाधारण पुरुषार्थ कर दिखाते हैं। भले ही उन अभियान के नेताओं में से किसी एक को विशेष ग्याति मिल जाय, पर चम्पुतः होना वह भावनात्मक प्रवाह ही है, जो महज ही अनेक सापी-सहयोगी बनाकर साथे कर देता है। मात्वर्य-चरित्त लोग प्रभु प्रीति मूकम जगत की विधि व्यवस्था को तो देख नहीं पाते, बाहर से जो सबसे प्रमुख व्यक्ति दीवता है, उसी के सिर पर श्रेय का सेहरा बाँध देते हैं।”

“भवतार या विजेता कोई एक घोषित किया जाता है—यह मनुष्यों की भूल भरी परस है। अन्वदर्शी जानते हैं कि एक व्यक्ति कितना ही बड़ा या समर्थ क्यों न हो, वह अनेक मनुष्यों के सहयोग के

आपस के बिचे कोई इन्डिय गोबर सिपर लयतु न हो, तब तक यह
 उन बार-बार भूम द्वारा करता है कि उसका लक्षण क्या है? जिस
 प्रकार 'देवानलित' को खिखा देते समय यह जानते हुए भी कि रेखा
 को कोई खाँदाई नहीं होसी, वह वास्तव में धर्मपरा या धर्मक हो
 है, तबका एक छोटा-सा मनुका स्नेह या कानि तले पर उतार करके
 शिखा हो पड़ता है। इसी प्रकार ऐसे परमेश्वर पर प्रेम करने के
 लिये भी सर्वकर्मों, एवं क्षणिकमान होते हुए भी निराकार और प्रत्यक्ष
 है, मय के मापने किसी प्रथम (नाम रूपरहित) वस्तु के रहे बिना
 साधारण मनुष्यों का नाम चल नहीं सकता।

अब चाहे हमें कोई मनुष्य के मन का लक्षण कर्हें या लोच,
 अब तक देहवारी मनुष्य अपने मन के लक्षण को समझ नहीं कर
 सकता, अब तक उपामना के लिए उसे मनुष्य के मनुष्य स्वल्प को
 परलया ही पड़ेगा। यही मन्त्रि-मार्ग है।

कौी सिद्धान्त का सापेक्ष करनेक उपनिषदों में और नीचा में
 भी यह कर्ह कर दिया गया है —

नलोनाऽपि फतरस्तेपा शब्दवतामावत चेतसात्।

अव्यवता हि मन्त्रिर्गुण देहवर्गिरवाप्यते ॥१२-५॥

अर्थात् — 'को मापन निराकार तबसे किछ सौगातर उपा-
 ना करते हैं उनको मनुष्य इनका अपवा परिधम उठाना पड़ता है,
 क्योंकि देवानिपानी (मनुष्य वारी कर्मों) मनुष्यों द्वारा प्रत्यक्ष विपन्न
 मानना बड़ी खाँदाई से प्राप्त की जाती है।'

इससे स्पष्ट हो जाता है कि नाम-मार्ग और मन्त्रि-मार्ग में
 किसी प्रकार की प्रविष्टिभिता भी कल्पना करना ह्यारा पतान हो है।
 वे दोनों मार्ग समान हैं। इनको लक्षण-प्रणाली भिन्न अवयव है, पर
 दोनों के द्वारा मनुष्य एक ही मध्य मन्त्रि परमात्मा का सादृश्य प्राप्त

है, पर शक्ति मार्ग में स्वयं-सेवक रूप में इत-भाव का उदय हो ही जाता है। भक्त को अवगत है कि यह सर्वत्र एकमात्र आशापत्र को ही देखे। यद्यत् विमलु मगवान को स्मरण करता है, उनके नाम का उच्चारण करता है, एक उनके ही निमित्त समस्त कर्म किया करता है। यह सब वह इच्छित करता है कि इससे ध्यान की प्राप्ति होती है। जो नित्या प्रकृति है, जो ब्रह्म सम्पत्ति है वही भक्ति की रूप में प्रकटित हुई है। यह भक्ति ही विष्णु, ब्रह्मा और शिव स्वरूपा है।"

'कालिक पुराणकार' ने भक्ति को जो व्याख्या की है उसमें एक सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने भक्ति का रूप केवल पूजा ही नहीं बतलाया है, बल्कि इस भावना पर जोर दिया है कि 'सत्त धरने को भगवान का सेवक माने और सब प्राणियों को भगवान को भक्ति समझे।' वास्तव में सर्वत्र धर्म में भक्तिमार्ग से जो स्वस्व ब्रह्मण कर लिया है, उसमें एक स्वतन्त्र विचारक को शिवाय 'भाषणे-धने और पूजा की प्रवृत्ति दिखाने' से इतिरिक्त कोई सांकोपयोगी व्यवधा पत्तयाण्यदो भावना दृष्टि गोचर नहीं होती।

इससे कारण हम सम्भव में प्रायः यह आशय किया जाता है कि भक्तिमार्ग में जो भी भक्ति की मालती और विशेष स्वार्थी बना दिया है। वे लोग सांसारिक कथं और उद्योग से प्रायः मुक्त कर किनारा कभी कर जाते हैं कि "नभवान को जैसी इच्छा होगी वही होगा।" यद्यपि हमने ही भगवान की सरल प्रार्थना करती है, वे हूँ हमारा वेदा पार लयावधि।" निस्तन्देह इम प्रभार के उद्धार अकर्मन्धता की कृति करने वाले होते हैं। गार्तव्य में ध्यात वालों वायु, वैरागी और पत्नी पुत्रादी प्राप्ति इन्हीं 'सिद्धांत' की प्राप्ति में निकम्मा जीवन बिता रहे हैं। पर धार के उद्धार से पुराणकार कहते हैं कि भक्त के लिए केवल पापाण, धानु या काष्ठ की भूति की पूजा-भार्वा कर लेना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसे सम्भना चाहिये कि भगवान ही घट-पट में समाने

दूसरा अध्याय

अवतार—भावनात्मक और मानव रूप में

बौद्ध-धर्म के अनुयाइयाँ म विमोक्षण' लिखित के बौद्ध सनाथा धर्म साधारण जनता में भी बड़े निम्बड़ो प्रभावित है कि 'यद्यपि यौनम बुद्ध' ने मानव कभीर की त्याग दिया और उनकी धर्मियों धर्मो एक स्मारक-स्वरूप रखी हैं, तो भी उन्होंने वास्तव में हम पृथ्वी का त्याग कभी नहीं किया। इनमें हम यह तात्पर्य समझ सकते हैं कि यद्यपि बुद्ध भगवान का पारमि-भागीर नष्ट हो गया पर उनका भावनात्मक देह तिरन्तर पृथ्वी-मरन में विद्यमान रह कर सब भी परमिण मनुष्यों की प्रभावित कर रहा है।

अवतार के सम्बन्ध में ये दोना दृष्टिकोण प्राचीन काल में प्रचलित है। पार्थुनिक युग के विज्ञान अधिकांश में भावनात्मक अवतार के सम्बन्ध है, क्योंकि किसी स्थूल-देहपात्री व्यक्ति को ईश्वर मानकर उसकी शक्तता का उसके प्रति देव-भाव से खड़ा प्रकट करना उनकी शक्ति के अशुभ नहीं है। दूसरा कारण यह हो सकता है कि वर्तमान समय में हमारे देश में बहुसंख्यक व्यक्तियों ने स्वयम् अवतार होने की पावस्त करना धारण कर दिया है। अन्य देशों में भी इस प्रकार के बुद्ध ताप पाये जाते हैं, जो देवी-प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं। इन लोगों की स्थिति और कार्यों को देखकर सम्बन्ध व्यक्तियों की अवतार-सम्बन्धी पावस्त और भी सराब हो जाती है, और वे अवतार सिद्धान्त का ही विरोध करने लग जाते हैं। पहले हम पाठकों के सम्बन्ध भावनात्मक अवतार में विद्यमान रहने वाले मन्त्रों का दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं, जिससे विदित हो सकेगा कि वर्तमान समय के अधि-कार्य किसिप व्यक्ति अवतार को किस रूप में मान रहे हैं।

करके उनको पगालकित्त मिटाने में सहायका बनता है ।' केवल जित्ना से भवमान के नाथ की रट भगाये रहना अपनवा घण्टा-घण्टियाल बजा कर दिन में दो-चार बार भारती कर देना तब तक कार्यक नहीं माना सकता जब तक वास्तविक दीन-दुःखी लोगों को तथा सुधारने के लिए भी कुछ प्रयत्न न किया जाय ।

हिन्दुओं में ही नहीं मुसलमान धर्म के शतांशों का भी ऐसा ही मत है । इसका प्रतिपादन करने के लिए एक कथा प्रसिद्ध है कि "अबूकित्त अदहम नाम के सन्त दीन-दुःखियों की सेवा में सर्वत्र छत्रान रहते थे, चाहे ईर-प्रायोजन का समय भी निकल जाय । एक दिन प्राची रात के समय धींदनी ने कुछ बिगला हुआ एक 'फरिस्ता' उनको दिखाई पड़ा । सन्त ने उससे कि तुम क्या लिख रहे हो ? उत्तर मिला कि एक पुस्तक में ईश्वर मन्तों की सूची लिखी जा रही है । सन्त पूछा कि क्या महदयाली करके यह देख लीजिये कि मेरा नाम भी उसमें है या नहीं ? फरिस्ता ने अपना किताब देना कर कहा—प्रायक नाम तो इसमें नहीं है । सन्त कुछ हों गये और फरिस्ता भी बना गया । दूसरे दिन वह फिर उसी स्थान पर दिखाई पड़ा और उसके हाथ में दूसरी छोटी किताब थी । पूछने पर मालूम हुआ कि इसमें उन व्यक्तिओं की नामावली है जिनको स्वयं ईश्वर प्यार करते हैं । यह कह कर उसने किताब को लौटा ली परन्तु प्रथम अबूकित्त पदहम का ही नाम लिखा था ।"

यह कथा ईश्वर-भक्ति के सच्चे स्वरूप को बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रकट करती है । जो लोग ईश्वर से प्रेम रखते हैं, उनकी प्रजा, उपासना आर्पण में समग्र व्यस्त होते हैं और इस तरह उनके कुरे कार्यों से बचे रहते हैं, वे अक्षय्य अदाकारीय हैं । पर जिन भक्तों की ईश्वर जो प्यार करता है, जिनका महत्त्व वह जो स्वीकार करता है वही जाने वा सकते हैं जो पीठिद मानवता की सेवा के लिए हृदय से निःस्वार्थ कार्य

महतां बहुमानेन दीनानमनुकम्पया ।
 भैत्र्या चैवारभद्रुत्सेषु यमेन नियमेन च ॥
 आभ्यान्निशानुश्रवणोत्तरामसंस्मृतेनाञ्च मे ।
 आजंवेनायं संज्ञते निरहंक्रियया तथा ॥
 मन्मथस्यो गुरो रेतैः परितंसुद्ध आशयः ।
 गुरुस्याहंताभ्येति धू सभाश्रमुष्ट हि मम ॥

“मनमान कृपित ने वैकृति से रहा—है साता । निष्काय
 भाव से अपने निश्च-नैमित्तिक कर्तव्यों का पालन कर विद्य
 प्रतिष्ठित रहित, उत्तम क्रिया योग का अनुष्ठान करने, मेरी प्रतिमा
 का दर्शन, स्पर्श, पूजा, स्तुति और वन्दना करने, सब प्राणियों में मेरी
 (मनमान श्री) भावना करने, धर्म और वैशाख के धनसम्बन्ध, महा-
 पुरुषों का सम्मान, सीने पर दया और समान रिपति शक्तों के प्रति
 निन्दा का धनहृत् करणे, सम विषयों का पालन, धर्मशास्त्रियों का
 सम्मान, अंगदान के मागों का कीर्तन करने से, तथा सब भी तरलता
 शत्रुओं के शत्रु और महंकार के हान से मन्मथों का विद्य युद्ध
 हीन है और यह मन्मथ को तरक प्राकृतित होकर अपने धर्म का
 परिपालन करना है ।”

ऊपर के बर्णन पर धरती तरह ध्यान देने से मालूम होता है
 कि वर्तमान समय में अकिञ्च-सायं एकाङ्गी रहा गया है । ‘मन्मथ की
 प्रतिमा का दर्शन स्पर्श, पूजा, स्तुति, वन्दना और नाम कीर्तन’ आदि
 जो किये जाते हैं, पर उनके सहकारी अथवा आधारभूत कर्म जैसे सब
 प्राणियों को मनमान का श्रेष्ठ जान कर प्रशंसक सम्मानना, महापुरुषों
 का सम्मान करने पर रहा, बराबरी शक्तों से सम्बन्धी निन्दा आदि की
 का तरक ध्यान नहीं दिया जाता । इसके बजाय परिपालन व्यक्ति
 को तरक ध्यान नहीं दिया जाता । इसके बजाय परिपालन व्यक्ति
 दुमरों का तरक मन्मथ करणे, उनके साथ छल-काण्ड का व्यवहार
 करने, का शत्रुपूर्ण कथनों द्वारा दुमरों को कष्ट पहुंचाने में जो किसी प्रकार

हमारे 'विड वे-ड' तप-शाम करने में भी मारो न करेने । 'रत्नि-
घण्टार का यह प्रयोग प्रयोग-पत्रों हम घण्टा घण्टे घोर प्रकाशित
गने हुए इस समय भी आधुनिक के इन ही मनुष्य का समय है ।

यं हम गणनात्मिक काम (युग-गणना) में कुछ ऐसे व्यक्ति भी
मिलने लगे हैं जो इन महान् पुनर्जागरण का उद्धार न करके उद्धार
रान का दावा करने लगते हैं और मंगल को भीष्मक परिष्कारिता का
मूल्य दिखाने का दावा करते हैं । इसमें मंगल माद-भाषे प्रविष्ट मार्ग
जब ही जाते हैं घण्टा घण्टार का प्रकाशित कार्य में मंगल्य देव के
द्वारा उन्नी-मोही काल मंगल लगे हैं किन्तु इस महान्-उद्देश्य को
हमि पहुँचती हैं । किन्तु नवजागरण कायार हम पुन-वेड करने का
अवित्यो की मंगल है जो कहीं कहीं जागृता की स्थिति रखते हैं कहीं
केता ही का अन्तर्गत उपस्थित हो जाते हैं । किन्तु अन्तर्गत मंगल
के जागृतापनार का अन्तर्गत मंगल्य अन्तर्गत अन्तर्गत मंगल्य की
प्राथम्य स्थिति का 'मंगल्य जो वे मंगल्य' देव के घोर मंगल्य के मंगल्य
का पनने मंगले का मंगल्य ही प्रकाशित न 'मंगल्य' जागृता भी
किन्तु मंगल्य के मंगल्य में मंगल्यता मंगल्य का मंगल्य मंगल्य-
मंगल्य की मंगल्यता से मंगल्य ही मंगल्य है ।

“इस समय इतिहास की पुनर्जागरण ही रही है । अन्तर्गत
मंगल्य घोर मंगल्य का मंगल्य मंगल्य, मंगल्यता मंगल्य एव मंगल्य-
मंगल्यो का मंगल्यमन करने के मंगल्य मंगल्य 'मंगल्य मंगल्य' किन्तु
ही मंगल्य है । मंगल्य मंगल्य मंगल्य मंगल्य मंगल्य ही मंगल्य मंगल्य मंगल्य
मंगल्य-मंगल्यता का मंगल्य देव मंगल्य मंगल्य के मंगल्य मंगल्य
मंगल्य है ।”

यही मंगल्य मंगल्य के मंगल्य घोर मंगल्य के मंगल्य मंगल्य-
मंगल्यतापन की मंगल्यता का मंगल्य मंगल्य मंगल्य । मंगल्य मंगल्य की मंगल्य
मंगल्य मंगल्य न किन्तु मंगल्य मंगल्य को वे भी मंगल्य मंगल्य है मंगल्य
मंगल्य मंगल्य-मंगल्यता का मंगल्य मंगल्य मंगल्य मंगल्य मंगल्य मंगल्य

जोयन की वास्तविकता का पता नया मनुष्य है और यह दुसरी के साथ स्वयं में सर्वोच्च गति को प्राप्त कर सकता है। हमें स्मरण रखना चाहिये कि इस सच्चे धर्म का पानन ही इस लोक की स्वर्ग लोक में परिणित कर सकता है, और तभी हम भगवान के ऐश्वर्य के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।

भक्ति और फलव्यनिष्ठा —

इतना ही नहीं कि भक्ति का रूप धन, दवा, परोपकारमय है, नरद यह फलव्यनिष्ठा पर भी बहुत अधिक जोर देती है। फलव्यनिष्ठों का स्थान है कि भक्ति-मार्ग पर चलने वाले मनुष्य स्वभाव के होते, कठिनाइयों से परामुक्त और संपन्नम जीवन के उपयोग होते हैं। ध्याने इष्ट देव की कृपा पर ही पूर्णतया आश्रित रहने के कारण वे उद्योग, श्रम, साहस आदि गुणों की दृष्टि से विद्यमान होते हैं और प्रयत्न भाग्यवादी बन कर जीवन सपना में अडकन ही गिरते होते हैं। इतिहास के वाक्य बताते हैं कि विदेशी मुसलमानों के आक्रमणकालों के समय सोमनाथ और मयुरा जैसे शीघ्र स्थानों में उन देवताओं के भक्तों और पुजारियों ने भागनलकारियों के प्रतिरोध का सामान्य प्रयत्न भी नहीं किया और अन्तिम समय तक वहीं रहते रहे कि "भगवान स्वयं इन दुष्टों का नाश कर देवे।" उनकी प्रकृत्यता और सर्वव्य निमुक्तता का विश्वास यह हुआ कि भद्रभूत पत्रनवी धर्मक बार सोमन प और मयुरा के विधात मन्दिरों की तोड़ और छूट कर जायेगी का धन से तथा और सस्ते धार्मिक जनों की पीर दुर्घटा कर डाली।

पर सच पुष्प वाच तो नष्ट भक्ति का विकृत रूप है। 'कलिक-पुराण' में इस सम्बन्ध में जो अतिमहत् प्रकट किया गया है, वह इससे सर्वथा भिन्न प्रकार का है। उसमें कहीं यह नहीं कहा गया है कि मात्र की संतोटी पहिच कर या सानीर मर में शिवक-स्थापना लगा कर

है कि इस कार्य के लिये मायावत् भगवान् को मनुष्य जगत् धारण करने की आवश्यकता नहीं, वे किसी भी एक या अनेक व्यक्तियों को प्रेरणा, साहस, मक्ति प्रदान करके हम उन्हें को पूरा करा सकते हैं। यदि साहसों का समीर भाव से मनन किया जाय तो यह विचार-धारा भी उनमें पाई जाती है। इन 'माधुनिक' ही समझा जाय यह कोई जरूरी बात नहीं। प्राचीन आदि-मुनियों में तो भी कितना बड़ा 'अवतार' की इसी रूप में ध्याना की है। उनका अभिमत है कि असार की बातों को सुचारु और परिवर्तन करने के लिए भगवान् किसी उपयुक्त मानव के अन्तर्गत् अथवा विशेष व्यक्ति का प्रयोग करा देंगे और जब वह प्रयोजन पूरा हो जाता है तो वह व्यक्ति भी निकल कर जहाँ भी तहाँ पहुँच जाती है। विशेष उद्देश्य को पूर्ण भगवान् की विशेष शक्ति से ही होती है पर असार के देखने लिये एक या कुछ अतिरिक्त व्यक्ति उसके निमित्त बन जाते हैं।

प्रत्यक्ष अवतार के समर्थक—

दूसरा पक्ष उक्त भक्ति-भाव प्रधान शिष्टान्तों का है जो भगवान् के साकार रूप में विशेष ध्याना करने हैं और कहते हैं कि मानव-समाज को शिक्षा और प्रेरणा देने के लिए भगवान् को मानव-देह धारण करके अपनी सीमा करनी चाहिये। ऐसा होने पर ही सामान्य मानव उसे हृदयगत कर सकता है और उसके अनुकरण करके सफल होने का विश्वास कर सकता है। यदि भगवान् अपनी शक्ति का अतीन्द्रिय रूप से प्रयोग करके किसी महान् प्रयोजन को पूरा कर दें, अथवा अत-भय बना दें, अथवा अनुभव को समझ बना दें, तो इससे साधारण मनुष्य का मानसिक बन नहीं कर सकता। वह यही कहता रहेगा कि "यह तो भगवान् की महिमा है, हम सांसारिक प्राणी उसकी समता किन प्रकार कर सकते हैं।" मानव-जीवन में इस प्रकार के प्रत्यक्ष ईश्वरीय सहयोग की कितनी अधिक आवश्यकता है इस सम्बन्ध में 'कमिङ्ग बार्ड बर्ड सेविअर' (अपत-बार्ड की धारणा) पुस्तक में कहा गया है—

पर 'कर्मिक' ने कर्मों का नाम ही सच ही रक्षित करने के प्रतिकूल समझा है क्योंकि वे देख रहे थे कि इस समय समस्त जगत में पाप और पापमूलक व्यवहार है, इसलिए वे भगवान के मुख से कर्मों का कर्मण्य ही कि उनके सुधार का प्रयत्न करें तब ही प्रत्येक जीवों के लिये भी कर्मों की शक्ति का धारण प्रचलित हो। यदि केवल दल-धर्म के अर्थ में पुण्यमय जीवन बिना कर मुक्ति के अधिकारों को इन लोकोपकार के लक्ष्य में प्रयुक्त करने का प्रयत्न करने में निरत रहें तो इसका क्या महत्त्व हो सकता है ? इसलिए उन्होंने इन दोनों के कर्ण—

पुत्रो परम धर्मज्ञो राजानो विदित्वा तुभौ ।
 महादेशं करो मूर्खा निजं राज्यं भविष्यथः ॥
 हत्यां कृतं युगं कृत्वा पालयिष्याम्यं ह्यजानः ।
 तपोपैश्वर्यं त्यक्त्वा समावह्य रघोरस्यम् ॥
 युवां पालयिष्ये मुञ्चन्तीं सेनापतयं परिकल्पये ।
 मूर्खा महारथौ लोके मया सटं चरितव्यम् ॥

"युव दोनों धर्मज्ञ के बड़े ज्ञाता राजवशेष प्रयुक्त हों। इस समय मेरे महादेश को स्वीकार करके राज्य कार्य करो। मैं पथिकों का सहाय करके उत्पन्न हो ल्यापन। तथा महापालन की सुधभया करूँगा। इस अवसर पर युव भी तपस्वी रूप की त्याग कर उत्तम रूप पर सहाय हो जायें। तुम लोग दल-धर्म के समाप्त में कुशल हो और बड़े योद्धा हो इसलिए दल धर्मण्य की त्यागता के अविद्या से हमारे सहयोगी बन कर रहना।"

कर्मिक-विरुद्ध का यह प्रकरण 'महाभारत गीता' में उल्लिखित भगवान् कृष्ण और धर्म के सम्बन्ध से लिखित-सुनता है। वहाँ भी धर्म के आध्यात्मिक कर्मों की परीक्षा बन में रह कर व्यवस्था करने की हो महत्त्व दे रहा था। उन्होंने वहाँ यह कह दिया था—

विश्व-शांति की स्थापना करके मानव-मात्र में सहयोगात्मक, रचना-त्मक और व्यापानुभूत प्रवृत्तियों का प्रचार करने की ।

ये सब अज्ञान परिन्दन प्रतिपाद्य रूप में अन्तरात्मा, हृदय और अस्तिष्ठक से ही प्रकट होंगे । तर्क-गणने विचारों वाले मनुष्यों में नये ज्ञान का निर्माण नहीं हो सकता । केवल प्राप्यात्मिक दृष्टि में पुनर्जन्म प्रकृत की हुई शक्ति ही शक्ति, समृद्धि, अज्ञानन्द से युक्त सहाय की रचना में समर्थ हो सकती है । इसका तात्पर्य है एक नवीन जगत और नये धर्म की रचना करना । निम्नलिखित ही इसके नियम आवश्यकता होंगी सर्वोप प्राप्यात्मिक प्रतिनिधि और प्रतिक्रिया की । इससे कार्य प्राथमिक प्रयत्नों द्वारा ही प्रगट किए जायेंगे । पर इन समय मनुष्य तो अनेक दावों के शिकार बने हुये, इन कार्य के अशोभ्य दिग्दर्शक पड गत है । मनुष्य की सामर्थ्य इस कार्य के लिये अक्षम प्रतीत है, क्योंकि इसके लिये मुख्यतया प्राप्यात्मिक प्रवृत्तियों और प्राप्यात्मिक शक्ति की ही आवश्यकता होती है, जिनकी इस समय मनुष्यों में बड़ी कमी अभाव में ही पायी है । इस समय अज्ञान मानव-जाति में रचा होना है ता उसका लिय सर्वोप नैतिकता वाले व्यक्तियों के सामर्थ्य प्राने और निश्चय शक्ति से कार्य करने की जरूरत है । मानव श्रेणी के अन्तर्गत के लिये यह कार्य कलना से आरम्भ है । इसके लिये इस दृष्टि में पूर्णतः उपयुक्त नेतृत्व की आवश्यकता पड़ेगी ।

इसके लिये आवश्यकता है मनुष्यों के एक 'नये नेता' की— एक सर्वोप प्राथमिक की । उसने ऐसी शक्ति होगी चाहिये कि वह मानवता को इच्छित लक्ष्य तक पहुँचा सके और मनुष्य मात्र के हृदय, मस्तिष्क, अन्तरात्मा पर नियंत्रण रख सके । इस महान कार्य के लिये जिसकी आवश्यकता है, वह शिवाय महात्मा के और कोई नहीं हो सकता । इसके लिये किसी भी वैसी प्रतिनिधि या हूत (पंजाब) से काम नहीं चलेगा । शिवाय भगवद्-शक्ति के और कोई इस परस्पर पर सहाय की समस्या का नहीं सुलझ सकता ।

हो—सिक्खर और नेपोनियन की तरह सर्वत्र विषय प्राप्त करने यथा
 कर्मों न हो, कोई हस्तो नहीं है। ईश्वरीय शक्ति देखते-देखते बड़े-बड़े
 राजाओं और चक्रवर्तियों को मत्त कर रख देती है। इसलिए यह
 अपने को उसी विश्व विद्यन्ता के प्राथित समझ कर और उसी के
 विधान की सुबोधि मान कर विभक्त हो जाता है। वह फिर सांसारिक
 दृष्टि के कर्मों भी स्थिति में रहे, चाहे प्रयोग मन समझा का स्वामी
 धन बाध और चाहे अपनी इच्छा से वेदों में से दाना नीच कर उदर
 पीपण करे, उसे प्रशान्ति, बलेश, मय नहीं हो सकता।

ऐसे व्यक्ति को प्रारम्भ। सर्व विज्ञान, मिट्टी और उच्च व्यवस्था
 में रहती है। पर ऐसी शक्ति का सर्व को लोभ निष्क्रियता, मोहता-
 हीरता मगते हैं, वे प्रथम ही मरी गतनी करते हैं। ईश्वर कर्मों
 अपने मर्मों को दुर्दश, हीनवस्था में नहीं रखना चाहते। वे इस
 प्रकार कर्मों के उद्वेग में उनको पूर्ण उद्योग, प्रयत्न करने का साधन देते
 हैं और साथ ही विश्व-संज्ञानक शक्ति का ध्यान (उपासना) करने को
 प्रेरणा करते हैं। जो कोई व्यक्ति इनसे से केवल एक ही मार्ग का
 अनुसरण करना चाहता है, उसका ध्यानरतु ईश्वरीय-विधान के प्रति-
 पूर्य भाव जायश और प्रत्य में उसे हानि उठानी पड़ेगी। 'गीता' का
 यही सिद्धांत है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युज्य च ।
 मय्यर्पित मनो बुद्धिमतिकीप्यस्यसदायम् ॥

"इतिविधे हे शत्रुं न । तू मदीन मेरा स्मरण कर और युद्ध में
 कर । इस प्रकार जब तू अपने मन और बुद्धि को भगवत्पार्श्व कर
 देगा तो निरवय ही पश्य यद की प्राप्त कर सेवा ।"

मनवान् अपने मन से कर्मों यह नहीं चाहते कि वह पौकिक
 कर्मों को त्याग कर - धर-गुह्यमी को स्मरण से सागरवाह होकर केवल
 साक्षा ही केगा रहे। प्रथम साधु-लेख धारण करके भजन-भूता के

साधारण नौसों को भले ही दित्यमन्त्रे ही, पर उत्पत्तियों की हीट उन्नत कुछ भी मुक्त नहीं। वे जानते हैं कि इतने बड़े प्रयोद्धा भी युद्ध कोई एक व्यक्ति नहीं कर सकता। मन्त्रालय अपने विशेष प्रति-विधि सत्ता में भेजते रहते हैं। पर वे प्रक-सत्ता ही होते हैं। 'सत्ता' की सेवा में अनेक प्रबुद्ध अर्थशास्त्रियों एक साथ सन्तुष्ट होनी है और वे सित-मुक्त ही देवी प्रयोद्धा की पूर्ण सत्ता करनी है।

एक तथ्य को सज्जते माने दिवांगत ऐसी अन्-विद्यमान की अज्ञानों के व्यक्तियों को कम शक्ति देते हैं, वे भावना-शोर पर ही संचिताने का प्रयत्न करते हैं। इस समय इस प्रकार का जो प्रकाश समस्त विश्व को उल्लसित कर रहा है, उसके पीछे एक ही शक्ति है—मानवता के अतीत मानसिक अज्ञान पर शक्ति की पुनः प्रतिस्थापना। लक्ष्मी अर्थात् एक दिव्यी शक्ति के बीच बने रहने और छावना-सत्ता में बंधने रहने की शक्ति का कलक हमारे अन्दर पर एक शक्ति की तरह बना हुआ है। हम अज्ञानपूर्ण व्यक्ति को इसमें सहज करते रहे कि (अर्थ में पहले से हमें एक अज्ञान परंपरा, मान करके देखें) : यह एक एक साहसी, सुधीर और साहस को अज्ञान मानते हैं। के सिद्ध नि-अज्ञान रहते हुए ही है। पर अज्ञान-सत्ता के वही मानना-प्रकाश अज्ञान हीका अज्ञान बना रहा है कि स्वाभाविकी, सत्ता-सिद्ध, विवेकपूर्ण शक्तियों की तरह विवेक और हमारे बीचों पर शक्ति सत्ताशक्तियों के ही अज्ञान बना है, उन्हें शक्ति-सत्ताशक्ति ही मानते हैं। एक मानना-अज्ञान की 'निष्कलक शक्ति' ही कहा जायगा।

अज्ञान अज्ञान ही बना है—यह एक-एक और परिष्कृत ही रहा है। परिष्कृत-अज्ञान के अज्ञान नाम है 'निष्कलक' अर्थात् यह अज्ञानों विद्यमान अज्ञान दुष्कृतियों, अज्ञानों को धीमे का रहा है। उनके द्वारा एक मानव-अज्ञान-अज्ञान अज्ञान का रहा है, जिसके लोग अपनी व्यक्तिगत मानव-अज्ञानों तथा अज्ञानों में ही अज्ञान रहने की शक्ति सुधी के अज्ञान-अज्ञान अज्ञानों के अज्ञान अज्ञान हैं।

सचिन्वित निर्दोष भाव से कुछ लोक में गया और वहाँ इतनी
भीरता से गया कि देवी-भक्तों में युवा कृत्तिक जी को वाणु रपा करके
समा-सूय बना दिया और उनको पकड़ कर अपने स्वान में ले गया । जब
इस प्रकार वह 'सुनु पदा' पर विजय प्राप्त करके अपना वर्तव्य धामन
कर चुका तब उसने एक सम्पातनीय प्रतिवि के रूप में कृत्तिक जी को
सूय सेना-सुसूया करके उनको स्वल्प किया और उनके साथ अपनी
पुत्री का विवाह करके अश्व के लिए स्वामी अम्यन्त स्थापित कर लिया ।
'कृत्तिक पुराण' में कथा के रूप में बर्णित भक्ति का यह रूप निम्नलिखित
बहुत अंश और अनुकरणीय है ।

'कृत्तिक' में स्वयं भी हूर जगह इसी विद्यालय का प्रतिपादन
किया है कि जब तक तस्मात् में पाप कर्मों और पापी मनुष्यों को
संशुद्धता है, तब तक निरन्तर उनसे सम्पर्क करते रहो । उन्होंने स्वयं
की प्रपत्ता समस्त जीवन दुष्टों के दमन तथा उज्वलों की रक्षा में
लगाया । उन्होंने अपने समस्त भक्तों को सर्वधर्म-पालन की शिक्षा
दी और दुनी को ईश्वर की सबसे बड़ी पूज्य और भज्य पतताया ।
हृदय में ईश्वर का ज्ञान और विश्वास रखना तो सध्यावश्यक है, क्योंकि
बड़ी प्रशंसा छोटी सभी कठिनाई में यंत्रों और साहस का साधारण विद्य
होता है । साथ ही ब्रह्म व्यक्तहार में देश-काल की परिस्थिति और
साधारणता को दृष्टि गोचर रख कर समस्त कर्तव्यों का प्रवर्तन पूर्वक
पालन करना भी हमारा कर्तव्य है । वमें और भक्ति का सच्चा लक्षण
यहो है ।

का माहम भी नहीं कर सकते कि इतनेबंद समय में भगवान् मनुष्य रूप में अवतार लेंगे । वे जानते हैं कि प्राचीन समय में भगवान् ने कितनी ही बार अवतार लिया है पर इन समय रक्त-मांस में इतने देह में शरीर लेकर वेमे काम कर सकते हैं, यह बात उनके मन में नहीं बैठती । इन मांस-मांस मन्त्रों के धारिणों को एक ही देह में रहना है ।”

भगवान् कृष्ण ने धाम से ५००० वर्ष पहले स्पष्ट रूप में कहा था—‘जब कभी धर्म-न्याय का पतन होता है और धर्म प्रपातना प्राप्त कर लेता है तो मैं जन्म लेता हूँ ।’ अगर उनके ये शब्द सत्य हैं, तो वे इस समय भी का सकते हैं । इस बात को धर्म धार संतुष्ट भी हैं, पर इस पर हमारा ठोठ विश्वास नहीं होता । इसमें जोशों का उपास दोष भी नहीं है । भगवान् की भाषा बड़ी प्रखर है और जो ने इस समय मनुष्य की बुद्धि पर पर्दा डाल रखा है ।

इस गैर सज्जता से रहना चाहने है कि क्या धर्म शक्ति की विनाश में भगवान् विभावित हो गया है ? क्या भगवान् ने मनुष्यों में प्रेम करना छोड़ दिया है ? क्या देवी भक्तियों का युग समाप्त हो गया है ? क्या महार मत्त विज्ञान और ‘बुद्धिमानों’ की बुद्धि हो जाने में भगवान् का धना रूक गया है ? क्या भगवान् ‘एडम’ और ‘हावदान’ कथों का प्राविचार हो जाने में भयभीत हो गया है ? नहीं, इनमें से कोई बात ठीक नहीं है । तब उसके अवतार को गाने वाली कौन-सी बात है ? इसका एक वाक उत्तर यही दिया जा सकता है कि कुछ भी नहीं ।

सब से ज़्यादा बात याद रखना की यह है कि जगत-भारता का काम केवल कुछ महगुणों की शिक्षा बना नहीं होगा, वह केवल कुछ दार्शनिक तत्व या भाषिक निदान सिखाने की नहीं पायेगा । जगत-उद्धार के लिये मानव जाति को कथान के लिये, दुष्टता को मिटाने के लिये मनुष्यों के हृदय को सतत के लिए, उनमें एक नवीन भावना

“मगदाल की भाँसा से इस प्रकार व्याकुल और भ्रमित होकर मैंने स्त्री, पुत्र, धन-धान्य, सबका त्याग कर मन में जाकर विविध-विधान सहित धन करना धारम्भ किया परन्तु किसी प्रकार से भी इन्द्रिय और मन को बशोभूत न कर सका। मैं बस में बैठ कर बर-बर पराधना का ध्यान करता, उन समय भी स्त्री, धन तथा अन्योन्य तांसारिक बातों मुझे स्मरण हुआ करता थी। मेरे प्रवृत्तियों में स्त्री, पुत्र, ऐश्वर्य आदि का स्मरण होने से दुःख, शोक, मय आदि उत्पन्न होकर मेरा धन-धरमा प्रति व्याकुल हो जाता और हसने, ध्यान, वारणा के विभिन्न उपन्यास होने लगता। पुत्र होने इन्द्रियों को नाश करने का मद्बुद्ध्य किया। मैंने विचार कि इन्द्रियों को नष्ट करने ही सब बन्ध में हो जायगा।

“जब इस प्रकार मद्बुद्धयुक्त मैं इन्द्रियों का दमन करने लगा तो उन इन्द्रियों के अधिपति देवताओं मेरी ओर देखने लगे और कहा—हम इस इन्द्रियों के दण्ड देवता हैं। हमको शिष्ट सिद्ध तथा वष्ट करना तुम्हें उचित नहीं है तथा इस प्रकार से मन को बशोभूत करने तुम अपना कल्याण कर सोगी ? कदापि नहीं। इन्द्रियों के शिष्ट-विषय कहने से तुम्हारे कर्म में व्यथा होने पर तुम मृत्यु को प्राप्त हो जाओगे। तथा तुम नहीं देखते कि जो कर्म, बहरे और सुते-नकटे व्यक्ति पुरातन में बड़े रहते हैं तन्मय मन भी विपज-जोगों के लिए छोड़ता है ? जीव तो मरने-पवने 'जर्मों' के भाषीव रहता है। मुक्ति और संसार-बन्धन का कारण मन है। बन्धोकार को शरमा के मनुष्यार मन ही छोड़कर जीव को संसार-बन्धन में सुभाता रहता है। इसलिए है धनन्त मुक्ति ! तुम मन को बशोभूत करने के लिए विपणु बन्धन की मक्ति करो। भक्ति ही निरन्तर साधन कर्म का नाश करते हुए और मोक्ष प्रदान करती है। इन्द्रिय-मक्ति से ईश-धर्मों का ज्ञान हो जाता है। इन्द्रिय-मक्ति परकण्ड-सन्दोह देने वाली है। है मदा-

का प्रथा मान निकल गया। धरमचाराव वह अपने पुत्र तथा कन्याओं का विवाह करने, गृह, कौश, खेदक, पानो आदि के देह-रेख में व्यस्त रहने लगा। उसने स्वर्गीय भोगों की कामना से बनेक यज्ञो की दोषा भी की। इस प्रकार करते-करते बुढावाया भा पहुँची।

“अब चण्डवैव नामक गणधर् राज ने, जिसके धनीत तीन ही छठ महायज्ञवात गणधर् रहते थे, राजा पुरजत की पुरी को लूटना आरम्भ किया। उस पौर फत के छर् ने, जो उस पुरी का प्रमाण रदाक था, उसको ऐसा करने से रोकता, और वह बकेला ही गणधर् से वहाँ टक बुढ करता रहा। इन्ही दिनों एक काम-कन्या दर की शोक से लितोही से बढसती रही, फिर भी कितो ने उसे स्वीकार नहीं किया। वह काम-कन्या = 'अरा' बनो दुर्भाग्यपूर्ण मानी जायी की और कोई उसे स्वीकार करता नहीं शकता था। मन्त्र ने वह यजनराज 'अरा' के पास गई और उससे अपनी प्यारा और कामना कह बुनाई। यजनराज अय ने उससे कहा—'मेने योगदृष्टि से देख कर तेरे तिरु एक उपाय सोचा है। तू सबका धनिव करने वाली है इसलिए कितो को धक्यो नहीं सगती। तू मेरी सेना सेकर जा, इसकी सहायता से सबको अपने धनीत करके इच्छानुसार भोग कर सकेगी, और कोई तेरा धामना न कर शकेंगा।

“अब कामकन्या ने पुरजत की पुरी पर आक्रमण किया और वह बलात्कार से उस पुरी की प्रजा को भोगने लगी। इसके फल-स्वरूप राजा पुरजत की मारी भी नष्ट हो गई। अपने देहा कि गणधर् और यजनो ने उषका समस्त ऐश्वर्य लूट लिया है, छारा नगर नष्ट-भट हो गया है, पुत्र, पौत्र, पुत्र्य और कामकन्या, वगैरे प्रतिकूल होकर प्रतापर करने लगे हैं, जो स्नेह-पुत्र्य हो गई और मेरी देह को काम-कन्या 'अरा' ने सब में कर रखा है।

“ईश्वर के बिना मानव-जीवन एक दुबंदू भार और न मुदक सवने वाली समस्या है। भगवान से पृथक होते ही हमारा जीवन अपने मूल स्रोत, मानन्द, प्रसन्नता से पृथक हो जाता है। अपने पारम्भिक स्रोत से कटी हुई नदी की तरह वह धीरे धीरे समय में सूख जाता है। इसके बिना किसी अंश और महान लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। बिना भगवान के जीवन का यथासं रूप में जी सकना असम्भव है। आज मनुष्य भगवान को भूल गया है। वह सोचता है कि मैं स्वयं ही अपना स्वामी हूँ और सामाजिक विषमों की जिस प्रवृत्ति चाहूँ व्यवस्था कर सकता हूँ। इसमें ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं। उमरी इसी मिथ्या महम्मन्वना का परिणाम है कि आज मनुष्य अपने ही पापिण्यारों के परिणाम स्वरूप मृत्यु के सामने खड़ा है और भयंकर दुर्घटना होकर उसके सर्वनाश की संभावना पैदा हो गई है।

“आज गगार की सबसे बड़ी आवश्यकता 'भगवान' ही है। समस्त मानव-जाति को भगवान के समझने और मानने की आवश्यकता है। मनुष्य को ईश्वर के सम्बन्ध में विचार करना चाहिये, ईश्वर के सम्बन्ध में धार्मिकता करना चाहिये, ईश्वर को जीवन का मूल-आधार स्वीकार करना चाहिये और स्वैच्छापूर्वक जीवन के समस्त आधारों में भगवान को विश्वास और सब मनुष्यों को छाना मानकर आश्रय करना चाहिये। वर्तमान समय का समाज भगवान बिना किसी निश्चिन्त योजना के अस्तव्यस्त हो गया है, उसमें अनेक प्रकार के अन्याय और अमानता का समावेश हो गया है। उसमें भगवान के विवृत्त और मनुष्यों के धातुत्व का खण्डन कर दिया गया है और यही कारण है कि आज मानव जाति शतमहत्या करके अस्तमूढ से नष्ट हो जाने की स्थिति में पहुँचती जाती है।”

भगवान ही संसार का संचालक है—

बिना भगवान के मनुष्य सर्वथा अशक्य है। पर यदि मनुष्य अज्ञान है तो भगवान अज्ञानातिन्धु है। आज मनुष्य को बहुत अधिक

मुझे साहकर यहाँ पृथिवी पर चले आये । यहाँ प्रसूते-प्रसूते तुमने एक स्त्री का रस हुआ स्वप्न देखा । जाई ! तब शर में तमसी स्वामिनी के कन्दे में एक कर, उसके साथ विहार करते-करते तुम भी अपने स्वरूप को भूल गये और इसी से तुम्हारी यह दुर्गति हो गई ।

“दो, तुम न तो विद्वान् राज की पुत्री हो और न यह मन्म-सेतु तुम्हारा पति है । निजाने तुम्हें तो इतरी के नगर में बन्द किया था उस पुराणो के पत्रि भी तुम नहीं हो । पहले जन्म में तुम अपने को पुरुष मानते थे और अब सभी छो भगते हो—मह सब मेरी कर्माई हुई माया है । हय दोनों तो 'हूँ' है तुम्हारा जो वास्तविक स्वप्न है, उसका अनुभव करते । पित ? जो मैं (शरीर) हूँ वही तुम (जीव) हो । तुम मुझे निरा नहीं हो और तुम विद्यापूर्वक देखो तो मैं भी वही हूँ जो तुम हो ।”

इस प्रकार 'भागवत' में पुराण के उपाख्यान के रूप में श्रीवा-
ला के सार को माया में कैवले का वर्णन किया गया है । यह 'कर्म-पुराण' के 'मन्त्र उपाख्यान' के पितृ-जन्म हो है । 'भगवद्-
वाङ्मय' और 'पुराण राजा'—दोनों ही विषयगत होकर स्त्री, परि-
वार और ऐश्वर्य की समता के दुखी और दुःखिया की प्राप्त हुए थे
और अन्त में सत्त्वा जालोकेय मिलने पर अपने छुटकारा पा लके ।
इस दोनों उपाख्यानो का आशय गहरे है कि मनुष्य को अन्त में प्राकृत
अन्त सब कार्य कर्मण्य पावन की बुद्धि से और अनागत भावना रख
कर अन्त भाहिते । उसे अन्त यह अन्त खाने चाहिए कि यह सब माया
याद वास्तविक अन्त अन्त है निजनी भी अन्त यह अन्त अन्त है
या अन्त ही अन्त है । इसी पुरुष अन्त की अन्त जा अन्त है जो
इसके बीच में रहकर भी अन्तवाह का अन्त रहे ।

जो राजा भारत परमा बिद्यान राज्य, पुत्र, भक्त, सब कुछ छोड़ चुके थे वे एक दिन के मोह में पड़ गये और इसमें भारत-व्याप में विघ्न होने लगा। समय माने पर जब राजा भारत में प्रार्थना किया तो मृत-बासक चुनके समीर खड़ा दुःखित भाव से उनको देखता रहा और वे भी उसकी चिन्ता करते रहे। इनके प्रसन्नरूप के दासगामी जन्म में मृग होकर ही जन्मे। पर उनके सपत्न्या के मन से पूर्व जन्म की याद नहीं रही। उन्होंने उस योनि को भी सदा सुखी पास और परी साकर सपत्नी के समान ही बिनाप्य और सोझ ही प्राण त्याग कर प्रह्लाद के घर में उत्पन्न हुए।

“अपनी पुत्राकी भूल को वाद करके इस जन्म में यह पूर्णव. परमात्म और विरक्त जीवन व्यतीत करते। उनको पूर्व जन्म का ही एक कुछ ज्ञान था, इसलिए उन्होंने गुरु के पदां भेजे जाने पर भी जस वेद तथा अन्य शास्त्र नहीं पढ़े। जब उनसे कोई प्रश्न किया जाता, तो वह सदा मन्त्राह्वीत, स्वरहीन अथवा प्रामोक्ष वाच्य मिले बाकूट बचन कहते थे। इससे उनका नाम 'मन्त्र-मन्त्र' पड़ गया और श्रेष्ठ प्राणः उनका अधिमान किया करते थे। वह भक्ति साधनाय मत कण्ठो की ओर कर माहार करते हुए समय व्यतीत करते।

“एक दिन मन्त्र-मन्त्र के प्रश्न के समीप हीकर सोधीर नरेंद्र बही जा रहा था। उसके मेचको को राजा की पालनी होने वाले शिकों की भावदयता। हुई तो उन्होंने अन्ध कुछ लोगों के साथ मन्त्र मन्त्र की भी बेगार के निव पकठ निवा। उन्हें भरत में इसका कुछ श्रविकार नहीं किया, बल्कि वह राजा की धमने किसी पापमय भारव्य की रूप करने का मन्त्रन मन्त्रकर राजको उठाकर चलने लगे। पर जहाँ प्राण बेगारी मन्त्रन शोभतापूर्वक चल रहे थे, मन्त्र भरत पृथ्वी की देखते हुए धीरे-धीरे पल उठा रहे थे। इससे राजकी की गति में अचानक घाती की और राजा की प्रगुलिया जान पड़ती थी। इसके

धेन) के द्वारा प्रेरित होंगे, जिससे महसूस होने के कारण कोई उनका विरोध न कर सकेगा और धीरे-धीरे उनके सम्मुख श्वाभ समर्पण कर देगा । भाव कल विज्ञान में भी बड़े पेचीदा पत्रों को दूर से ही नियंत्रण में रखा जाता है । मापी प्रकृत भी अपनी सर्वोपरि आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा सब चीजों की अन्तःआत्मा को उसी प्रकार पक में कर लेगी ।”

यदि विज्ञान की प्राचुरिकतम चीजों और प्रत्यक्ष त्रिव्यक्तियों पर ध्यान दिया जाय तब तो दूर से महसूस शक्ति द्वारा अनेक प्रकार के विलक्षण कार्यों के होने में कोई संदेह ही नहीं रह जाता । पृथ्वी से अन्तःमा पर भेजे गये ध्वज द्वारा छोटे लेकर पृथ्वी तक भेजना वही मिट्टी को छोड़कर उसके तत्वों की जानकारी अमरीका और रूस की प्रयोग-शाखाओं में बैठे हुए वैज्ञानिकों को दे देना, अन्तरिक्ष में हजारों मील ऊपर उड़ते हुए बीमार व्यक्ति की बाइपरी परीक्षा पृथ्वी के अस्पताल से ही कर सकना और उसके लिए औषधि निर्देश करके सूचित कर देना, ऐसी बातें हैं कि यदि इनका भेद किसी को न बतलाया गया होता तो दुनियां उन्हें निश्चय ही 'जादू' या 'दैवी कृपा' मान लेती । इस लिये यह मनोवृत्ति कि जिस बात को हम अभी नहीं समझ पाते उसे अज्ञान्य प्रथवा असमझ घोषित कर दिया जाय, कोई बड़ी बुद्धिमानी प्रथवा 'ज्ञान' का संक्षण नहीं मानी जा सकती । विश्व-अज्ञान के निर्माण और उसके संचालन के नियमों के विषय में हम अभी बहुत कम जानते हैं । इस लिये सत्कार का नियंत्रण करने वाली अज्ञान्य शक्ति किस-किस रूप में काम करती है इस सम्बन्ध में हठधर्मों से काम न लेकर अधिकाधिक अध्ययन, मनन और विचार का आश्रय लेकर उसका निरूपण करना ही उचित है ।

'तू तो मोटा-ताजा है।' यह पालकी यदि मेरे लिए ब्रेक-रुन हो सकती है तो यह तुम्हारे लिए भी उतनी प्रकार हो सकती है। बिच पन्ध-भूट द्वारा यह पालकी बली है, जमी से तुम्हारा, मेरा और अन्य सभी का धरोर भी बना है, जिसमें मजदा का धारीय भाग है।'

यह भरत के ये कथ्यात-विद्वान्त-व्याजक श्रवण सुनकर सीबीर नेरा तत्काल पासकी स्थाप कर भूमि पर उतर भाये। उन्होंने क्राश्याण के परण पकट लिए और कहा—'हे मगवन् ! क्या इस छप वेष्ट में बोन है ? यहाँ किस कारण भाये है ? मुझे भापके विषय में जानने की बड़ी इच्छा हो रही है। बहुररा में कहा—'हे राबन् ! मैं बोन हूँ, यह कउ नहीं सारदा। इसके परिचित तुमने मेरे यहाँ जाने का कारण पूछा तो प्राणभयनादि क्रियायें कर्म-संग भोगने के लिए ही होती हैं। पर्व-प्रपर्व से उदयस सुख दुःख का भोग करने के लिए ही यह धरोर बनता है। हे राबन् ! ये पर्व-प्रपर्व ही सब जीवों की सभ्यत बहनधायो के कारण होते हैं, फिर मेरे ही जाने का कारण पूछने को क्या विशेषता है ?'

इस प्रकार 'उद्द मरुठ उभासयान' में भाया का जीव ही बंधन-प्राण करने वाशा प्रभाव दिखताया है और कथ्यात-विद्वान्त की दृष्टि से उसके स्वकथ का विवेचन भी शक्यो तरह किया है। राजा भरत के परिच ये यह उपवेश विनता है कि मनुष्य कन्हें कितना ही जँबा क्यों न पहुँच जाय ता सारिक भाया-दीह यह प्रज्ये सादियों को बोझो-बोझुन हो जाने पर धरने पंजे में कैना लेना है। यद्यपि राजपि भरत का मृग पावक को रथा का कार्य धारणन दया भाव से करित था और उनको सहृदयता की सब कोई प्रयत्न ही करेंगे। पर धरने मोटो-धी हार्दिक बमजोरी के कारण वे उस मृग-बापक की सुरता में प्राथमिक रहने सब पये और इसी उहाये पत्रया ने उठ को कति लिया। इसकी परोपकार और परस में प्राप्य कनना काहीये, पर उसकी उचित नीमा

'Navy' (सकाम्ये द नौध) ने, जो स्वयं एक प्रख्यात वैज्ञानिक है, कई वर्ष पहले लिखा था—

“मानव जाति ने सभी धरती क्षितिज के सम्बन्धकारण युद्धों में से एक को पार किया है। वह सबसे अधिक दुःखान्वित भी हो सकता है, क्योंकि सपर्य सभार के कोने-कोने प्रवेश पा चुका है। मनुष्य को अपनी जिस सम्पत्ता पर इतना अधिक गर्व था उतनी देना और स्विट्ज़रलैंड को प्रभुत्वपूर्वक हिला ने नष्ट कर दिया है। वर्तमान वैज्ञानिक आविष्कारों का एक हानिकारक पहलु बड़े और खतरनाक युद्ध भी है। अब यह आवश्यक नहीं कि युद्धमय पटोल में हों, वह दुनिया के किसी भी कोने में हो सकता है। अब वायुमान और राकेटों द्वारा किसी भी स्थान पर कुछ ही घंटों में मार की जा सकती है। इन युद्धों के कारण मनुष्यों को बड़े दुरंगों में रहना पड़ता है। राष्ट्र का परिचायक इन युद्धों के निर्मोह में खर्च हो जाता है और बहुसंख्य लोगों को युद्ध जीवन भी नहीं मिला पाता। यह सब एक होता रहेगा, अब एक मनुष्य तथा मनुष्य की व्यापक भाषा में नहीं सोवेगा, अब एक सबके समान मार्गों में होंगे। सभी इस अवस्था तक पहुँचने में समय लगेगा, पर निराशा का कोई कारण नहीं है। यदि हम समय के लक्षणों को तीक्ष्ण-रीति समझ सकें तब हम यह कह सकते हैं कि मानव-जाति की मुक्ति 'धर्म' में ही मिलेगी।”

अमेरिका की 'New History Society' (नवीन इति-
हास समिति) के प्रमुख नेता डा० एच० सी० ऐन्ड्रियुस युद्धों के नये
निरोधी हैं और उन्होंने 'Merchants of death' (मृत्यु के
ब्रोकर) नाम की पुस्तक में हथियार बनाने वाले यूरोपीयों की चालों
का पूरी तरह मर्यादाहीन किया है। उनका कहना है कि ये सोना-बाहर
बनाने वाले 'राजा लोग' अनेक देशों की सरकारों को अपने विषयगत
में ही नहीं रखते, बल्कि उनकी नीति और कार्य प्रणाली को भी स्वयं

यस्यावयवसंस्थाने कल्पिता लोकवितरः
 तद् भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वभूजितम् ॥
 पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ।
 सहस्रमूर्धश्रवणाहिनासिक सहस्रमौल्यम्बर कुण्डलोत्तलसत्
 एतान्नानावताराणा निधानं वीजमव्ययम् ।
 यस्याशाशेन संजयन्ते देव तिर्यङ्तरादयः ॥

अर्थ—“शृष्टि के प्रादि में भगवान् ने लोकोपे निर्माण की इच्छा की। इच्छा होते ही उन्होंने महत्त्व प्रादि से निष्पन्न पुरुष रूप ग्रहण किया। उसमें दस इन्द्रियां, एक मन और पाँच भूत—ये मोनह बताये थी। उन्होंने ‘वाण-वत्’ में शयन करके हुए जब योग निद्रा का विस्तार किया, तब उनके नाभि सरोवर में से एक कमल प्रकट हुआ और उस कमल से प्रजापतियों के अधिपति ब्रह्माजी उत्पन्न हुये। भगवान् के उस विराट् रूप के प्रथम प्रत्यय में सप्त सौको की कल्पना की गई है और वही भगवान् का विशुद्ध, सत्त्वमय श्रेष्ठ रूप हजारों पैर, बाँहें, मुद्राये और मुखों के कारण अत्यन्त विलक्षण है। उसमें हजारों तिर, हजारों कान, हजारों शक्ति और हजारों नासिकामे है। इन्द्रकुट, मस्त, कुण्डल प्रादि चाभूषणों से वह अलंकृत रहता है। भगवान् का वही सगुण रूप अनेक अवतारों का बीज है जो प्रकट रहता है। इसी रूप के छोटे से प्रथम से देवता, पशु-पक्षी और मनुष्यादि समस्त प्राणियों की सृष्टि होती है।”

भगवान् के इस विराट् स्वरूप की कल्पना और उसी में समस्त अवतारों के प्रकट होने का वर्णन ही एक मात्र ऐसा सिद्धान्त जो इन समस्या का ठीक समाधान कर सकता है। इसके पश्चात् जितने भी और जर्कवादी विद्वानों ने इस विषय का विवेचन किया है वह धुमांकर कर ‘भागवत’ की इसी व्याख्या के अन्तर्गत भा जाता है। यद्यपि पौराणिक शैली के अनुसार उसमें रूपक और प्रकार भरे पड़े हैं, पर उसका आशय अर्थों में यही है कि भगवत् का संचालन

गढ़ एक बिस् है प्राधुनिक सम्प्रदाय और विज्ञान का बहुरार करने वाले राष्ट्रों का । इस प्रकार बिखरगामी नर-संसार में सभी राष्ट्रों के मगार शक्ति तकनीक पढती है और मनेली को तो कमर की दूट जाती है । तब उनके राष्ट्रों का शोषण करते अन्य तृपस राष्ट्रों का उपान होता है । धान सर्वाधिक बुद्धिमान और ज्ञान-विज्ञान में पढाओ शोष ही जब इस प्रकार का बिपरीत धावरण कर रहे है तो इसे देवी-भयान के प्रभाव के प्रति-वत क्या कहा जाय ? एक तरफ तो मनुष्य काइलोक तथा अन्य लोकों तक पहुँचने के सम्प्रदाय माने जाने वाले कार्य में सफलता प्राप्त कर रहा है और दूसरी तरफ अपनी सामा-विज्ञ-पराधी में श्रेष्ठ सुधार भी नहीं कर सकता जिसे बीबन निर्वीह की सामग्री का उचित बँटवारा ही सके और किसी 'मालम-भ्राता' को प्रकारण पूजा और नज्ञान न रहना पड़े । इसी परिस्थिति के कारण विभिन्न देशों की जनता में सम्प्रदाय और विदेश की उत्पत्ति होती है और पढयन्त्र, कानि तथा सामन-सत्ता के जगटने के इस प्रतिदिन रिताई पढ रहे हैं । इन बुद्धिमान और विज्ञान व्यक्तियों द्वारा धन ही धर्म में धाम कुल्लामी मारने वाले कार्य को यदि इन 'ईश्वरीय लोक' कहें तो इलमे क्या मन्वी है ?

सत्य तो यह है कि यत्त पंच सौ वर्षों के मोरार के छोरे सोर' समरोका के मूल निवासी 'रेड इण्डियन्स' (पाम रंग वालों) समाका के हबिपयो काले रङ्ग वालों) और ऐरिपवाई देशों के भरवित सोरों की हवा और शोषण कर रहे है । इन देशों के विवायो प्राकृतिक जीवन शित्तये वाले और सीधे-भायि से, शिमकी दानम ह्यनाय के मोरों ने सङ्कू, लोप और धातक बरुत-बरुतों के बना पर मनपाना तुट्य सताया और मनेली का नाम निज्ञान ही मिटा दिया । वे तो सपमने से कि हम इन सबकी मिटाकार धववा युवास बनाकर हबय' हो हबगीव भोग शोमेमे, पर ईश्वर के दरबार में ऐसी शक्ति पढेव नहीं बल सकती । शित देवी-

दसवाँ अध्याय

अवतार का प्रचार और उसकी प्रतिक्रिया

संसार की सर्वप्रथम अनुसूची हनुमान् चारों तरफ फैली हुई थी। भारत, छन्दोग-याज्ञा तथा ऋग्वेदों के दिन बरत' जैसी ईश्वरीय शक्ति को बुझाने देने वाले प्राविण्यकारों ने 'संसार-वर्ष के धार्मिक लोग' के दिमाग में एक उपलब्ध-सुगन्ध पैदा कर दी है। हमारे भारतीय धर्म को सदा से 'गणेश' की नीला' के भाषे नमस्कार होते ही भाषे ही धीरे-धीरे उनके प्राण-प्रभणों को ही उल्टी उल्टी रीति रीत का एकमात्र भाग स्वीकार किया है। साहेब इन विचारों की 'साधुनिष्ठा' के रङ्ग में रने हुए भी 'दक्षिणा' ही क्यों न कहें, पर भारतीय-संस्कृति में फलतः हमारा धर्म ऐसे सद्गुरु की घटी है 'गणेश' से बचकर प्रथम और द्वितीय को नहीं मान सकता। उसका पक्षी धार्मिक विद्याम होता है कि साहेब शक्तिता के प्रथिमाती किन्तों ही उल्लेख नुन शब्दों में नया लें, पर नब देवी-पदा चलेगा तो साह्य-वर्ष में बराबारी होते ही दिखाई देते।

भारतीय-धर्म के अनुसूचियों की बात छोड़ की दें तो पात्र पौराणिक, धर्मशास्त्र के प्रचिन्तनों को से से भी करोड़ों नर-नारी प्रति-दिन होते वाली अनसूचीपूर्ण घटनाओं तथा हनुमान् से प्रभावित होकर किन्तों बहुत बड़े परिवर्तनों को प्रगटा करते हैं। ईश्वरों को 'बाधित' के एक स्वतन्त्र पर कदा गया है—

'जब धर्म समय (सुग-परिधर्षन का अवसर) प्रायेण तब धर्म शक्ति नष्टा होती है। तब ही धीरे-धीरे लोकात् ही बचते हैं। सुनाई देते

एक 'भगवान्' वा देवी शक्ति है, क्योंकि प्रत्येक देव वा मनहूब के लिये एक-एक प्रकार की शक्ति वा भगवान् की मानना तो युक्त वा सक्षम होगा। इसका अर्थ तो यह होगा कि जब काल-प्रभाव से किसी मनहूब का अन्त हो जाय तो उसका 'भगवान्' भी समाप्त हो गया और जब किसी नये मनहूब का आरम्भ हो तो उसका नया 'भगवान्' उत्पन्न हो गया। वे सब धान बुद्धि वाले जीवों की बातें हैं, जिनको कोई विद्वान् का बुद्धिमान् मद्दख नहीं दे सकता।

इस प्रकार हम 'अवतारों' की सख्या जिनका पता पुराणों और इतिहासों से लगाया जा सकता है, चौबीस ही नहीं कई सौ तो मान ही सकते हैं। इतने दस-बीस पर उन्मेष स्थान-स्थान पर किया भी गया है, पर यहाँ हमारा उद्देश्य उन्हीं अवतारों का वर्णन करना है। जिसका भारतीय शास्त्रों से उल्लेख है और जिनमें से अनेकों का नाम हम प्रायः सुनने की रखते हैं। 'भारतवर्ष' में २४ अवतारों का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

स एव प्रथमं देव कीमारं सर्गं मास्थितम् ।
 चत्वारं दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मघ्नं मत्स्यखिलम् ॥ ६ ॥
 द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतं महीम् ।
 छन्दरिष्यन्नुपादृत गङ्गेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥
 तृतीयमुपिसर्गं च देवफित्त्वमुपेत्य सः ।
 तन्त्र सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मणां यतः ॥ ८ ॥
 दुर्यं घर्मकलासर्गे नर नारायणद्वयोः ।
 मूर्त्वाऽऽत्मोयक्ष्मोपेतमफरोद्दुश्चर तपः ॥ ९ ॥
 पंचमो कपिलो नाम सिद्धेशकलाविप्लुतम् ।
 प्रोवाचा सुभे साल्ये तत्त्वग्राम विनिर्गयम् ॥ १० ॥

“भगवान् ने आरम्भ में सनक, सनन्द, सनातन और सन-
 लुमार—चार ब्रह्मकुमारों के रूप में अवतार लेकर धर्मपत्र ब्रह्मघ्न
 का पालन किया। दूसरी बार उन्होंने पत वायु का रूप धारण

किर से स्वायत्ता होने की प्रार्थना कर रहे हैं। हम प्रकृती तर्क समझ रहे हैं कि भावस्थकता एक ऐसे 'मन्त्रालय' की है जिसमें ईश्वर का पूरा प्रकाश मौजूद हो। वही उन हृदयों की प्रकाशित कर सकता है जो ईश्वर के लिए व्याकुल होकर पुकार रहे हैं और जो पृथ्वी पर अनुग्रह प्राप्त वे साधुमान की स्वायत्ता के भविष्यवाणी हैं। आज मन्त्रालय के सभी देशों में ऐसे मनेक व्यक्ति 'ईश्वरी प्रवर्तण' की राह देख रहे हैं। एक ग्रन्थ लेख में पारसी मेन्सार् ने भवजात के विषय में प्रकटीत दृष्टि व्यक्त की है—

'एक महान प्रकाश के लिए हमको तैयार हो जाना चाहिये। हम मन्त्रालय के घाते में अब अधिक देर नहीं है। हमारा दिन पर दिन क्षीयमानक होती जाती है, आत्ममान में जाने वापनों के दण्ड इकट्ठे हो रहे हैं और इन बादलों के कारण प्रकाश की किरणों निरन्तर क्षीय पड़ती जाती है।

'पर ऐसे समय में दुनिया वाले क्या कर रहे हैं? हम में से अधिकतर ऐसे हैं जो मन्त्रालय की अज्ञानता में रहने के बजाय मन्त्रालय को प्रकटीत प्रकाश के अनुग्रह समझना चाहते हैं। बहुतों को तो यह भी पता नहीं कि हमारे लिए मन्त्रालय के लिए भगवान के पास कोई विशेष मौजबा है। अनेक यह भी स्वीकार नहीं करते कि यह मन्त्रालय ईश्वर का बनाया है और इसका ध्येय तथा प्रेमयुक्त धारण नहीं परम विना कर सकता है। इस समय हमारी एक-मात्र प्रार्थना मन्त्रालय यही है कि परमेश्वर की शक्ति किर से प्रकटीत होकर संसार का कल्याण करने लगे।'

यह सत्यन यह भी निश्चय करते हैं कि प्रकटीत मन्त्रालय होगा वह सभी जातियों और देशों का होगा। यह ईश्वरों में ही होगा और ईश्वरों का ही मान-सम्मान

करके पृथ्वी को जन के भीतर से निकाला । तीसरी बार 'ऋषियों' की मूर्ष्टि में वे देवर्षि नारद के रूप में प्रकट हुये और निष्काम क्रम द्वाय मुक्ति का मार्ग दिखनाया । धर्म की पत्नी मूर्ति के गर्भ में उन्होंने तर-नारायण के रूप में अवतार लिया और वही कठिन तपस्या की । पाँचवें अवतार के समय वे सिद्धों के स्वामी कपिल देव के रूप में प्रकट हुये और भामुरि ऋषि को तत्त्वों के निर्णय करने वाले 'सांख्य-शास्त्र' का उपदेश दिया ।

पठे अत्रैरपत्यत्वं वृतः प्राप्नोऽनुसूयया ।
 आन्वीधिकीमलकाय प्रङ्गादादिभ्य उचिवात् ॥ ११ ॥
 ततः सप्तम आकूर्त्वा रुचैर्यज्ञेऽनुचजायत ।
 स यामाद्यै सुरगणै पपत्स्त्वायम्भुवान्तरम् ॥ १२ ॥
 अष्टमे मरुदेभ्यां तु नामैर्जात उहक्रमः ।
 दर्शयन् कर्म धीराणा सर्वाश्रम नमाङ्कृतम् ॥ १३ ॥
 ऋषिमिर्याचितो भेजे नवम पार्थिव ययुः ।
 दुग्धे मामोपधीर्विप्रास्ते नार्य स सप्ततमः ॥ १४ ॥
 रूप स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसम्प्लव ।
 ना व्यारोप्य महोमप्यामयद्रवैवस्वतं मनुम् ॥ १५ ॥

'मनुसूया के बार मानने पर वे सठे अवतार में ऋषि ऋषि के पुत्र रूप में—वतात्रेय हुए और अमर्क, प्रह्लाद आदि को मामोपदेश दिया । सातवीं बार उन्होंने क्षत्र प्रजापति की पत्नी माकूर्ति के 'यज्ञ' के रूप में अवतार लिया और अपने पुत्र 'याम' आदि के साथ स्वायम्भुव मनवन्तर की रक्षा की । आठवीं बार राजा नामि की पत्नी मेघदेवी के गर्भ में ऋषभदेव के रूप में प्रकट हुये, और परम हस्तों का यह माय प्रपन्नित किया जो सड़के सिधे कष्टनीम है । नवीं बार ऋषियों की प्रार्थना पर वे राजा वृषु के रूप में अवतीर्ण हुए और मनुष्यों के निर्वाह के लिये पृथ्वी से समस्त वनस्पतियों का रोहन किया । दसवीं बार चासुप मन्वन्तर के अन्त में जय समस्त पृथ्वी-मनुज बन

पाण्डुनिपा की रचना काशी एक आध्यात्मिक-भाव सम्पन्न महिमा
 विंग एडिनबोरो से धर्ममान सचटपुस्तक लिपिनि से बचने के लिए एक खुले
 वरु के रूप में इसके अनुयायियों तथा एतनी धर्म प्रेमी सज्जनों से कदा
 था कि यह पूर्ण रूप से विलुप्त सहयोगपूर्वक काम करने का समय
 था यथा है। यह ऐसा अपाया था बहुत है कि प्रायकी आपस के सब
 भेद-भाव और द्वेषोपी विचार त्यागकर एकता पर ही जोर देना
 चाहिये। इस 'नये पुन' में ऐसे लोगों का प्रतिार कायम रह सकना
 अतिन हीन विरमे आत्मिक शक्ति की कमी या अभाव पाया जायगा
 यद्यपि वे दिके घूने को कोशिश करेंगे पर उनको शक्ति समय तक
 ठहर लाने में सफलता प्राप्त न होगी। आकाश से आने वाली 'विश्व-
 किरणों' उनके दिलों 'तीव्र मोचन' काम करेगी। स्थिति की भयङ्करता
 को देखते हुए ह्मारा एकमात्र कर्तव्यो यही है कि आकाश पर पूर्ण
 विश्वास करके प्रकने को उसके भरोसे उन्ही प्रकार शक्ति दें जैसे आत्मक
 भावा के विश्वास पर उरेंया निरिचल हो जाता है। मन्वान ऐंति ही
 बचने की ही दृष्ट धरना रखने माने लोगों को ही सर्वोत्तम मानना और
 नई दुनिया में स्थान देने।

नई दुनिया की रचना अचरयन्मायी है—

एक प्रकार सभी देशों के विचारकों में यह भाव फैल रहा है
 कि वर्तमान समय में पाप-सम्पन्न अन्तर हीने-हीने ऐसे स्थान पर
 भा पहुँची है वही उसकी गति रुक हो गई है और इसलिये उसमें तरु-
 ताप के बीज जाग्रत होकर संसार को सङ्कटमय परिस्थिति में डाल
 रहे हैं। किश प्रकार बहुत हीमा पानी किसी बड़े गड्ढे में एक पाया
 है तो कुछ ही समय में उसमें काई और लच्छ-लच्छ के हानिकारक
 कीटालु उरुन हो जाते हैं, वही प्रकार वर्तमान समय में कुछ मोट्टे
 के लोगों के हाथ में संसार की सम्पत्त शक्ति और साधन आ जाते हैं

म हूय गमा वां जह्नुंने मत्स्यावतार के रूप में वैश्रवत मनु की रक्षा की ।”

सुरासुराणामुदधिं मध्वन्ती मन्दराचलम् ।

दधे कमठरूपेण पृष्ठे एकादशे विभुः ॥ १६ ॥

धान्वन्तरं द्वादशम त्रयोदशममेव च ।

अपायत्सुरान्यान्मोहिन्या मोहयन् सिन्धुदा ॥ १७ ॥

चतुर्दशं नारसिंहं मिथ्रद्रदैत्यैन्द्रं मूर्जितम् ।

ददार करजैर्बध्नत्येरका कटकृन्धया ॥ १८ ॥

पञ्चदशं वामनकं कृशवागादध्वं वलीः ।

पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टयम् ॥ १९ ॥

अवतारे षोडशमे पश्यन् वसुद्रुहो नपान् ।

त्रिसप्तं कृत्व कुपितो निःशत्रामकरोन्महीम् ॥ २० ॥

“जिस समय देवता और दैत्य मिलकर समुद्र मन्थन करने लगे तो भगवान् ने कम्बुज रूप धारण करके व्याहृषी अवतार लिया और मन्दराचल का घपनी पीठ पर धारण किया । बारहवां अवतार धान्वन्तरि के रूप में समुद्र लेकर हुआ वैश्रवती मोहिनी रूप में प्रकट हुआ जिसने दैत्यो को मोहित करके देवताधो को समुद्र प्रदान किया । चौदहवां अवतार नृसिंह भगवान् के रूप में हुआ और उन्होंने महाबलशाली दैत्यराज हिरण्यकशिपु की छाती को इस प्रकार विदीर्य कर दिया, जैसे चटार्द बनाने वाला सीका का पीर देता है । पन्द्रहवां अवतार वामन का हुआ, जिसने उन्होंने भक्ति के मग्न में आकर तीन पौर पृथ्वी मांगी और तीनों लोक नाप लिये । सोनहवां अवतार परशुराम का हुआ जिन्होंने राजाधो को प्राणलो का द्रोही देखकर क्रोध पूर्वक दशमीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर दिया ।”

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात् ।

चक्र वेदतरो ज्ञासा दृष्ट्वा पुत्तोऽल्पनेपसः ॥ २१ ॥”

“घोर कलिंग का एक मुख्य कारण सभार की जन-संख्या का बहुत अधिक बढ़ जाना भी है। सभार में शांति स्थापना करने के लिए सबसे पहली बात यह है कि यह घटी हुई जनसंख्या कम हो। इसके लिये मनुष्य यदि विवेक से काम लेवे तो स्वयं भी संतुष्ट हो सकता है। और यदि उन्होंने विवेक और संयम से काम न लिया तो भयवान् अपनी प्रकृति द्वारा स्वयं अपने दुःख की स्थापना करेगा।

“यैसा परिवर्तन होने से रोटी का अभाव कम हो जायगा और एक कुतरे देगों को विहाय करने की आवश्यकता ही पैदा नहीं रहेगी। सबको स्वस्थता प्राप्त हो जायगा, सबदृष्टों के भ्रांति खरम ही जायेंगे, ऊँच-नीच का प्रश्न ही जायगा। इसलिये सामाजिक वैभवंस भी न रहेगा। सबको मनुष्य समझ जायगा। सामुदाय की स्थापना हो जायगी। और राजनैतिक तथा धार्मिक भ्रष्टियाँ ऐसी हूँ ही जायेंगी कि वे तो कोई मुझा रहेगा न किनी पर अभ्यास ही सकेगा। फिर एक बार धर्म-राज्य स्थापित हो जायगा।”

श्री विद्वरज्ज्वल ब्रह्मचारी ने ‘जीवन-मर्म’ नामक संग्रहालय में लिखा है—

“अनर्थात् की जिस प्रकार की प्रेरणा मिली है उसके साथ हमको हताश होने का कोई हेतु नहीं। इस घोर निष्प्राण्य (कलिंग युद्ध) में ही संस्य-युग का प्रकाश बिहर जायगा। सब सुतः इस देश में क्षमि-युग पायेगा। फिर वज्रधूम से भारत गगन पवित्र होगा। दुर्न-रानी, उपस्थीयो दाहणों के प्रकाशनाद से, धर्मोप-माधोनाद से लोगों के प्राण संजीवित हो उठेंगे। फिर यह भारत ही समस्त मनुष्य को ज्ञान-प्रकाश द्वारा ‘समृद्ध’ का पद-पदसंभ कर लेगा—तब बस्तु का का मनुमानता भला देगा। यह दिन पायेगा, सबदय ही पायेगा।”

द्विपालय के विद्व महारथ स्वामी रामानन्दजी ने यह प्राण-जक उन्देश दिया है कि ‘साधना में सतत इति श्री ब्रह्म ज्ञान

समय परवान की अनुपम सत्ता प्रसारित होती जान पड़ती है और वह दिन अभीय ही है जबकि समस्त संसार त्रेम, सगता और आतृमान के संवेष्ट से पुँज उठेगा । यह हैवी-संगीत इस भारत-भूमि से ही भारत-ज होना ।

हैबर एक ही रहेगा-

सर्वे भर्ग सम्मेलन के सञ्चारित सर फासिस्त संघर्ष-संकेत से एक घोषणापत्र द्वारा अनुपम भाषण के संवेष्ट दिया है और इसके सिधे भाषिक सभेदों को खोलने की सम्मति से है -

'संसार का पुनर्संरचना सूक्ष्म-व्यवह में भारत-ज हो गया है । इसके पहले एक संघ संसार की रचना के सिधे इतना धार्मिक उरसाह और उरसाह कभी दिखसाई नहीं पड़ी थी । संसार में पचीन युग की रसायन के सिधे सबसे सादरक बात बन घनों के अनुपस्थितों की साम्प्रतिक प्रेरणा ही है । जिस प्रकार यह 'जबपुष' किरी एक देश के निवासियों को कोषित से नहीं प्रायोग करत उसके सिधे सर्वो देश घासों की पैदा करती पड़ेगी, इसी प्रकार यदि संसार के सब घनों के अनुपस्थित विरह-प्रत्यास के सिधे साम्प्रतिक सञ्चित कदम करना चाहते हैं तो उनको भी मिलकर एक होना पड़ेगा । इस सम्मेलन में भारत के महान दार्शनिक 'हेनरी-बर्गोस' का यह कथन बहुत ही महत्व का है कि 'समाप्त अनुपस्थितों का हैबर एक ही है । इसको एक ही कथक द्वारा, भी सबको प्राप्त हो सकनी सम्भव है - पारम्परिक कथक और मुद का प्राप्त हो जायगा ।'

सम्मेलन के कथन से एक बहुत महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी निकलता है कि नये 'संसार' को संसार में नया मुग स्थापित करने के सिधे किसी प्रकार की द्विजा और सार-काद का साधन नहीं लेना

“तत्परचात् ऊही यत् पुर्य ने पात् मे स्वर्ण की वान्ति नामे
‘हृयघोष’ के रूप मे भवतार ग्रहण किया पा । भगवान् का बहु विग्रह
वेदमय, यज्ञमय और सर्व वेदमय हैं । ऊही की वान्तिका से स्वाग के
रूप मे वेदयात्री प्रकट हुई ।”

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान् विषुद्ध-
भवेन साधुपरिवृष्ट उवाच योगम् ।
ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्वदीप
यद्भवामुदेवशरणा विदुरञ्जसैव ॥

“हे नारद ! तुम्हारे प्रेम-भाव से प्रत्यन्त प्रसन्न होकर हम के
रूप मे भगवान् ने तुम्हे योग, ज्ञान और आत्म तत्त्व को प्रकाशित करने
वाने वैष्णव धर्म का उपदेश दिया । वह श्रेष्ठ ज्ञान भगवान् के शरणा-
गत भक्तों को ही युगमता से प्राप्त हो सकता है ”

भगवान् के अवतार असंख्य है—

इन बीबीस अवतारों का वर्णन करने भागवतकार ने भक्त ने
स्वयं ही यह कह दिया है कि भगवान् के अवतारों को तो कोई गणना
ही नहीं है, क्योंकि सत्तार मे जो कुछ विभूति-युक्त पदावें हैं वे सब
भगवान् के विशेष धर्म रूप हैं और इसलिये उनके अवतार ही हैं—

अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेदिजा ।

यथाविदात्तिनः कुल्याः सरसं स्युः सहस्रशः ॥

ऋषयो भनवो देवा मनुपुत्रा महीजसः ।

कलः सर्वे हरैरेव स पजायतस्तथा ॥

“जैसे अणु सरोंवर से हजारों छोटे-छोटे नाले निकलते हैं
वैसे ही सत्त्वनिधि भगवान् श्रीहरि के अमर्यों अवतार हुआ करते हैं ।
ऋषि-मुनि देवता प्रजापति, मनु पुत्र और जितने भी महान् शक्तिशाली
हैं, वे सब भगवान् के ही अवतार हैं ।”

‘भागवत’ के ही अध्याय २-६ के इस बात को और भी स्पष्ट
रूप मे विस्तार के साथ कहा गया है—

खजू (उजवा) का होना छाकों में लिखा गया है, वह सोई से बनी साधारण तलवार नहीं है बरन् 'माल रूपी खजू' है, जिससे संभार भर के लोहों के शक्तिशाली एक ही साथ बदला जा सकता है। इसको भ्रमंकार को भाषा में 'मस्तक काटना' भी मिल सकते हैं। इसलिए हथको बर्षों के इस कथन में बहुत कुछ धार दिखाई पड़ता है कि निरुक्त शक्ति में कोई ऐसा महामानव प्रकट होना सर्वथा सम्भव है, जिसकी एक ही साथ छोटों की पारस्परिक कलह भोर युद्धों का मन्त्र कर देगी।

श्रवतादवाद की प्रतिक्रिया—

'श्रवताद' के प्रकट होने की इस नवीन भावना ने हमारे देश में गहरा प्रभाव डालने के लीटर शिरोप जोर पकड़ा है और इसी बीच में अनेक विचारकों, साधकों और शक्तिशाली लोगों का ध्यान इस दिशा-दिश हुआ है। हिन्दी भाषी सामान्य पाठकों में इसका प्रचार 'श्रवता-द' नामक छोटी सी पुस्तिका से हुआ, जो सन् १९२० के मास-पत्र प्रकाशित हुई थी। इसमें महाभारत के एक दशोक के आधार पर यह निष्कर्ष करने का प्रयत्न किया गया कि वर्तमान कल्पियुग १ अप्रैल १९२३ को समाप्त होकर उस 'सतयुग' पारम्भ हो जायगा। लोगों को यह बात कुछ अनोखी-सी आज लगी। क्योंकि सामग्री से वे यही सुनते पाते थे कि कल्पियुग चार सत्र ३२ वर्ष का होता है और उनमें से प्रथम पाँच हजार वर्ष के समय ही व्यतीत हुये हैं। इसलिए वही सर्व-साधारण इस पुस्तिका को कौतूहलपूर्वक पढ़ने लगे वहाँ पुठने लगे कि शक्तिशाली उल्ला 'विरोध' भी करने लग गये और 'सतयुग और कल्पियुग' को बात का प्रचार करने वाली तथा उस पर विश्वास करने वाली को 'दूध' की पदवी देने लगे। इन बात-विवाद में उत्तम पुस्तिका का प्रचार काफी हो गया और जगह-जगह उसकी धर्ना सुनाई देने लगी।

'साम्राज्य वैकुण्ठनाथ मण्डलानां (बागम प्रदेस) के मंदिर में एक सदा सर्वदा रहने वाला है। उस समय जगन्नाथ की पूजा करने वाले यहाँ पर थे। वे उस सर्वदा को देखकर भय से भगवद् गौ किराण की प्राण में गिर गये। तब सर्वदा ने एक बृद्ध पुरुष का रूप धारण करके, उन पिपिले बालि मन्त्री को सामने बुलाकर कहा, मेरे प्यारे भक्तों! तुम मेरे से क्या करो, मैं कुछ ही दिनों के भीतर कनिष्ठा में अवतार धारण करूँगा और कुछ पाप कर्म करने वालों को मुक्त कर ध्याय का साधन करूँगा। और जो कई बालि मन्त्री हैं। और मन्त्र में यह भी कहा गया है कि जो 'इसकी २ हजार या कम से कम २५ प्रतिष्ठा' करेगा तो २५ दिन में उसकी मनोकामना पूर्ण होगी।'

धार्मिक बलों के प्रचार करने का यह एक पुराना तरीका है। इन बातों को सत्य प्रपञ्च नुक्त होने के सम्बन्ध में विश्वास उठाना तो निरर्थक है पर इसके इतना प्रकट हो जाता है कि भारतीय जनता की मनोकामना पर 'अवतार' का प्रभाव बहुत समय से चला आया है।

दिल्ली का 'निष्कलङ्को-दस-

इसका एक प्रथम उदाहरण दिल्ली और बागम-नाथ के स्वामी से प्राप्त होने वाला 'निष्कलङ्को-दस' है। इसकी स्थापना की तो धर्म धरती वर्ष प्रथम हो गये होंगे परन्तु १६३६-३८ के लगभग जब शत्रुणा-पान्दीनल बड़ा तो इसकी भी अनेक घातकों शुरु हुई। और अगले-अगले युगपाव से कठिन-न-न-मासोहूँ होने लग गये। इस प्रकार का एक कीर्तन, जो रात भर होता रहा, मैंने भी दिल्ली में देखा था। कथो ४०-५० वर्ष पुराने, मरीह और बृद्ध बने जोध और भक्ति-नाथ से 'कलिक मण्डलानां' के एक बड़े विश्व के सम्मुख घंटों तक बस-न-रह के सजब गाले रहे। उनके लयाह, पत्नीगला और धान-रिक्ता को देखकर वहाँ प्रतीत होता था कि इनको 'कलिक' के प्रारम्भ का दूरा किष्ठा है और वे उनके नाम पर कुछ रचाव, प्रमाण' करने

अपने मन्त्रिक वो 'सत्य' से अवरुद्ध रखकर निर्धन दलीलोमे ही आनन्द का अनुभव किया करते हैं। उनको उन कथाओं में वर्णित मद्भुत शक्तियों की विनाशना, आहार, भोग और अन्य धमत्कार आदि बातें तो पसंद रहती हैं, पर उनमें निहित सृष्टि और प्र-निष्पन्न का उद्भव और मानव की बुद्धि, शक्ति, सम्पत्ता का अयत्न, विकास समझ में नहीं आता। ऐसे लोग पौराणिक-गीतों की विशेषताओं और उद्देश्य पर कुछ ध्यान न देकर केवल उनके कहानी वाले अंगों की आलोचना, खण्डन-मडन करने में ही अपनी योग्यता समझा करते हैं। पर ऐसा करने से वे उन कथाओं में दिये ज्ञानवर्द्धक तथ्यों से अविद्य रह जाते हैं, उसका उन्हें कुछ स्थान नहीं होता।

'भागवत' और अन्य अनेक पुराणों में अवनार सिद्धान्त पर जो कुछ कहा गया है उससे प्रत्येक विचारक यह समझ सकता है कि वे अमार के प्रत्येक पदार्थ प्राणी और स्वयं को भगवान के रूप और मीला की दृष्टि से देखते हैं जब कि एक वैज्ञानिक इनका असार के 'मूलत्व' और 'अम विकास' के रूप में अरांन करता है। पुराणकार का उद्देश्य करोड़ों अल्पविज्ञित और अार्मीवाद और अतिशय अं-नियों को कथा-कहानी के रूप में ईश्वर और विश्व-अहमाष्ट की अनीमता और अन्नता का अरिचय कराने अमें, नीति, अरिच तथा अर्थ अालन की अिधा देना होता है, जब कि वैज्ञानिक उसका अरांन अूठ और अम्भीर अैसी से करता है, अिसे विद्वान ही समझ पाते हैं। पुराणों की कथाओं को सुनकर आहे सब अीय अार्मिक और अरिच न बन जाते हो वो भी बहुसंख्यक लोगों के हृदय में अक्ति और अूठ-अान-रण की भावना अिअमित होती है और अाव तक उनके अभाव से करोड़ों अ्यक्ति कुमार्ग में अटककर अुमार्गगामी बन चुके हो और अात्मो-अार कर चुके हैं तो कोई अापत्त्य की बात नहीं। पर वैज्ञानिकों का अरिच किसी को अार्मिक, अरिच, अरोपकारी बनाता हो यह अभी तक देखने में नहीं आया। इस दृष्टि से अिचार करने पर सर्व-

मानव-जाति के नष्ट होने की संभावना—

कब तक बी बीसा एशु-१५० की सीमित धा, उभे लाने, पीने, सोने, प्रजनन प्रादि की प्रेरणा स्वयं प्रकृति से ही प्राप्त होती थी। उसके विनयीत वह म तो कुछ भोज सकता था और न कर सकता था। उसका काम क्षेत्र और प्रभावहीन अल्पत सीमित था। पर जब से मानव का आविर्भाव होकर उसने विचार शक्ति प्राप्त की है तब से वह प्रकृति से प्रेरणा नहीं लेता बरन् विचार उस पर प्रतिकार प्रभाकर प्रतिकूल और नाभूदिक हित के लिये उसका प्रयोग करने की चेष्टा कर रहा है। इसके क्रम से मनेक सम्प्रदायों और जनजातों पैदा होठो हैं जिनके कारण मनुष्यों में भ्रमभेद, कण्ड और मयवं की वृद्धि होने लगती है। यह स्थिति बढ़ते-बढ़ते अब नहीं रुक पाए म सुकी है, इस सम्बन्ध भारत के महान् विचारक श्री सर्वपल्ली राधा-कृष्णन ने लिखा है—

“इस मानव जाति के इतिहास में एक सबसे अधिक निर्वापक समय में रहे रहे हैं। मानव इतिहास के अन्य किसी भी समय में इतने सोचो के तिर पर इतना अधिक जोसा नहीं था और न के इतने लघिक भाषाचारों और मनीवेदनाओं से काइ था रहे थे। इस इस समय ऐसे सकार में ली रहे हैं जिनमें विवाद सर्वव्यापी हैं परम्पराओं, सप्रम और कानून सर्वथा शिथिल हो गये हैं। सकार गनतकड़ियों, कट्टरताओं, और संघर्षों से विद्योर्ण हो गया है। सारा बाजारमन धरैह, अतिरिच-सता और मविष्य के मय में म्भरा है। जटला की कारण सारे सकार में एक ऐसी भावना जाग रही है जो वास्तव में क्रांतिकारी है। ‘प्रगति’ शब्द का सर्वथा मीड़ की हिसा और भासक अर्थ की हथा ही नहीं समझा जाना चाहिए। सम्प-वीरम के मूल भाषारों में तीव और प्रचन परिवर्तन की उग्र भावना भी क्रांति का ही रूप है।

किसी भी समय को परिवर्तन के कारण ‘कालिगारी’ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि परिवर्तन तो इतिहास में सदा होता ही रहा है।

साधारण की दृष्टि में पुराणों की कथाओं का यदि समयानुकूल रूप में प्रचार किया जाय तो इससे जन-साधारण का हित साधन ही हो सकता है। अधिक विशालकाय पुराणों का पढ़ना-सुनना वर्तमान परिस्थितियों में अवश्य ही कठिन जान पड़ेगा। इसके लिए उनके सरल और सक्षिप्त संस्करण प्रस्तुत किये जा सकते हैं और वही कार्य आज कल हमारी संस्था द्वारा किया जा रहा है।

महाभारत में अवतार-महिमा कथन—

भारतीय धर्म-साहित्य के यदि प्रमुख ग्रन्थों की-भी गणना की जाय तो उनकी सराया सैकड़ों तक पहुँचती है। पर उन सबसे 'महा-भारत' की महिमा की कोई नहीं पहुँचता। जैसे किसी एक विशेष दृष्टि से किन्हीं एक दो-दो ग्रन्थों को श्रेष्ठ माना जा सकता है पर सर्वाङ्ग रूपसे विचार करने पर महाभारत ही भारतीय सस्कृति का 'महासागर' प्रतीत होता है। महाभारत के आधार ग्रन्थ कितने ग्रन्थों की रचना की गई है, इसकी गिनती नहीं। फिर आपेक्षिक दृष्टि से विचार किया जाय तो महाभारत की वर्णन शैली अधिक प्रामाणिक भी जान पड़ती है। अवतार के सम्बन्ध में भी 'महाभारत' का विवेचन विशेष रूप में स्वाभाविक और सम्भोर है। उसमें बहुत स्पष्ट रूप से यह प्रतिपादन किया गया है कि समस्त जगत भगवत् स्वरूप ही है। प्रत्येक प्राणी, प्रत्येक पदार्थ और प्रत्येक लोक उनका एक अंग ही है। इस दृष्टि से 'अवतार' भी उनके अतिरिक्त अन्य किसी स्रोत से प्रकट नहीं हो सकते 'समापर्व' के ३८ वें अध्याय में बुधिशिर के प्रश्न करने पर भगवान् कृष्ण के विश्व-स्वरूप का वर्णन करते हुए महाज्ञानी भीष्म पितामह ने कहा—

सहस्रशौर्यः पुरुषो ब्रुवोऽव्यक्तः सनातनः ।

सहस्राक्षः सहस्रास्यः सहस्रचरणो विभुः ॥

सहस्रबाहुः साहस्रो देवो नामसहस्रवान् ।

अप्सुजत् सत्तिलं पूर्वं स न नारायणः प्रभुः ।

तो निश्चय ही जाग के सहारे गढ़ों में एक ऐसी छाया लगा लेषा जिससे
समस्त सब एक ही सपना उपलब्धियों और उन्नति भए हो जायगी
और वह तैर हो सपनों के सिधे धनंरा के युग में पहुँच जायेगा ।

समै नेतृत्व की आवश्यकता—इस शोचनीय अवस्था का मुख्य
कारण यहो है कि मानव-जाति का भाग्य दर्शान करने वाला कोई
सधा नेता इस समय नहीं है । आजकल जिन लोगों के हाथ में राष्ट्रीय
की दायिबो है वे प्रायः अपने सत्तीर्ण स्वार्थों में डूबे रहने के कारण
साक्षरिता की तरफ से बाले फेरें हुए हैं । वे मानते हैं कि इस समय
सभार में दानी संगानिक और आर्थिक उन्नति करनी है कि अगर सब
देशों के संसंधार विम-दुलकर भले और समझदारी से काम लेकर
सोना और अर्थ-शक्तियों में किये जाने वाले सभार धन को समस्त करके
तो दुनिया का प्रथम अनुप्य सुखी और समृद्ध जीवन बिता सकता है ।
पर अतीत महकार अपना दूसरो का लोपन करने की पुरानी मनोवृत्ति
उनका पीछा नहीं छोड़ती और वे जान बूझ कर नाथ के मार्ग पर ही
अग्रसर हो रहे हैं ।

यह सपकार दुःख देखकर मानवता के अनेक सुपरिन्तक इसके
सुधार की तरह-तरह की सोचनाएँ बना रहे हैं, जिनका अनुसरण करने
से उनके साथ न्याय ही सके और दुनिया के लोग सह-बिहकर रह ही
जाने के बजाय अपने परिषम और सहयोग के द्वारा दण पृथ्वी को
स्वर्ग बना सकें । परन्तु ऐसे शुभ विचार जानों के ह्रास राज्य की शक्ति
न होने से अभी वे अपन विचारों की व्यवहारिक एव नती वे सफल,
तो ही उनके विचारों का प्रचार किया जाय सम्भव है । ऐसा करने
से इन समुदाय अपने मार्ग की समझने सोगर और समय जाने पर
उनको अगल में लाने की ही चेष्टा करेगा । इन सम्बन्ध में अन्तरीका
की 'नयो-क्रिश्चियन' नामक सत्वा ने यह प्रश्न किया था कि 'दुप
कोवसा बनाप है ओ इस समय बिनासोत्पृष्ट मानव-समाज को जाया
का समर्थन दे सके ?' फिर स्वयं ही इसका उत्तर देते हुए सन्ने अपना मत
एव प्रकार प्रकट किया—

ततस्तु भगवांस्तोये ब्रह्माणममृजन् स्वयम् ।
 ब्रह्मा चतुर्मुखो लोकान् सर्वास्तानमृजन् स्वयम् ॥
 आदिकाले पुरा ह्येव सर्वलोकस्य चोद्भवः ।
 पुराथ प्रलये प्राप्ते नष्टे स्थावर जगमे ।
 ब्रह्मादिषु प्रलीनेषु नष्टे लोके चराचरे ॥

“ये ही ध्रुव भ्रमक एव सनातन परम पुण्य हैं । इनके सहस्रों मस्तरु, सहस्रों नेत्र, सहस्रों मुख, सहस्रों चरण, सहस्रों मुखापे हैं । ये सहस्रों रूपों और सहस्रों नामों से युक्त हैं । इन्हीं सामर्थ्यवान भगवान नारायण ने सबसे पहले जल (मूकतत्व) की सृष्टि की और फिर उस जल में ध्यान करके स्वयं ही ब्रह्माजी को उत्पन्न किया । ब्रह्माजी ने, जिनके चार मुख हैं, सम्पूर्ण लोको की रचना की है । आदि काल में इसी रीति से समस्त जगत और उनके पदार्थों की उत्पत्ति हुई थी । फिर प्रलय काल आने पर जैसा कि सदा का नियम है, समस्त स्थावर जगम सृष्टि का नाश हो जाता है एव चराचर जगत का नाश होने के पश्चात् ब्रह्मा आदि देवता भी अपने कारण तत्व में लीन हो जाते हैं ।”

इस प्रकार महाभारतकार ने बहुत स्पष्ट रूप से यह बतलाया है कि यह समस्त जगत एक ही तत्व (जिसको परमा मा' कहना उचित ही है) से उत्पन्न, विकसित हुआ है और अस्थो-अस्थो बर्ष बीत जाने पर घन में उन्ही में लीन हो जाता है । विश्व की उत्पत्ति और घन होने की ठीक यही व्याख्या प्रायः विज्ञान भी कर रहा है । यही बात वेदों के 'एकोऽहम् बहुस्यामि' वाले सिद्धान्त से प्रकट होती है । भगवान के इस 'विराट् रूप' का वर्णन करते हुए भीष्म पितामह कहते हैं—

नारायणस्य चाङ्गानि सर्वं दैवानि भारत ।
 शिरस्तस्य दिवं राजन् नामि स चरणौ महो ॥
 अश्विनी घ्राणयोर्देवी चक्षुषी शशिभारकरी ।

ही हर वाली कमनीय नारी का रूप उन्हें प्राप्त हो गया । २५। इस प्रकार
 नाथे सुलभ हास, विज्ञान, धरुण, पातुर्ष, सुन्दर मुख और कपल जैसे
 शेषी को प्राप्त हुए वे राजागण अपने को स्त्री हुए देख कर पद्मा के पीछे
 पीछे लगती लहेली बनकर चलने लगे । २६। उस समय पद्मा के
 विवाह का बहू सखीव देखने के निमित्त भी प्राप्त ही के एक पक्ष
 पर बैठ गया था । जब वे राजागण स्त्री रूप ही लगे, सब ही पद्मा
 आवन्त धोरित ही लगी । मैं उसके विवाह को सुनता रहा ।
 हे चोक शक्ति ! उस महासमय महात्म के इन प्रकार, समाप्त
 हो जाने पर पद्मा ने भगवाद् एकर नर ध्यान कर जो विवाह
 किया था, उस काल विवाह को धाय प्रकण सींचिये । पद्मा ने
 देखा कि सभी राजागण मुझे देखते ही अपना हाथी, घोड़ा, रथ
 आदि से विनय होकर स्त्री रूप में मेरी लहेली होकर साथ-साथ
 चल रहे हैं, तो वह भवन्त सौमनाथपुत्र बनने मायुष्यो को
 त्याग कर धरती को कुरंदके लक्षी । फिर वह भिद्यनी के दर-
 शान को महानता के हेतु भगवाद् विष्णु का प्रति श्राव से भाव
 करने लगी । २७-२८।



इन्द्र वैश्वानरो देवो मुखे तस्य महात्मनः ।
 अन्यानि सर्वं देवानि तस्याज्ञानि महात्मनः ॥
 सर्वं व्याप्य हरिस्तस्थी सूत्रं मणिगणानिवः ।
 सोऽध्यक्षः सर्वभूतानां प्रभूतः प्रभवोऽव्युतः
 सनत्कुमारं रुद्रे च मनु चेव तपाधनान्
 सर्वमेवासुजत ब्रह्मा ततो लोकान् प्रजास्तथा

‘हे युधिष्ठिर ! भगवान् नाथपण के सब अथ सर्व देवमय है ।
 दुलोक उनका मस्तक, पत्थरिख उनके नाभि और पृथ्वी धरण है ।
 दोनों अश्विनीकुमार उनके नासिका के स्थान में हैं, चन्द्रमा और सूर्य नेत्र
 हैं, एव इन्द्र और अग्निदेव उन परमात्मा के मुख स्वरूप हैं । इसी
 प्रकार अन्य सब देवता (देव-शक्तियाँ) भी उन महात्मा के विभिन्न
 अवयव हैं । जैसे गुपी हुई माला की सभी मणियों ने एक ही सूत्र व्याप्त
 रहता है, उसी प्रकार भगवान् श्रीहरि समस्त जगत को व्याप्त करके
 स्थित हैं । इस प्रकार अपनी महिमा से कभी व्युत न होने वाले, सब
 की उत्पत्ति के कारणमूल और सम्पूर्ण भूतो के अध्यक्ष श्रीहरि ने ब्रह्म
 रूप से प्रकट होकर सनत्कुमार रुद्र मनु तथा तपस्वी ऋषि-मुनिगणों को
 उत्पन्न किया । सबकी सृष्टि उन्होंने की है । उन्हीं से सम्पूर्ण लोकों
 और प्रजाओं की उत्पत्ति हुई ।’

यद्यपि इनमें से प्रत्येक देवता के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार
 की अनेक प्रदत्त कथायें लिखी गई हैं, पर वे सब ऐसे पाठकों या
 श्रोताओं के कौतूहल को शान्त करने के लिए रची गई हैं, जो ‘परमा-
 र्त्मा’ जैसे अज्ञेय तत्त्व की कल्पना नहीं कर सकते और न किसी निरा-
 कार वस्तु से लाखों प्रकार की साकार वस्तुओं का उत्पन्न होना जिनकी
 समझ में आ सकता है । बुद्धिमान व्यक्ति पहले भी सृष्टि, देवी-देवता
 और अक्षर आदि की वास्तविकता को जानते थे और आज भी जानते
 हैं । पर अल्प विकसित बुद्धि के व्यक्तियों को सदैव इसी प्रकार अपमा,
 रूपक, श्रद्धान्त, उदाहरण द्वारा समझाया जाता रहा है । इस प्रकार

क्व धाहं मानुषो बोना क्वाते देवो जनादेनः ।
 निगृहीता विधात्राहं शिवेन परिवञ्जिता ।६।
 विष्णो क्व परित्यक्त्वा मदन्या माय जीवति ।७।
 इति नामा धिलविस्था बलतं लोचनाश्रयम् ।
 पद्यायाश्चरुजेष्टाया। श्रुत्वान्भ्यातस्तवान्तिके ।८।
 शुकस्य वचनं श्रुत्वा कालिकः परमचिन्तितः ।
 स जगद् पुनर्याहि पथा बोधयितुं श्रियाम् ।९।
 मरुन्देवहृदो भूत्वा यद्गुरुगुणोक्तं तन्म् ।
 श्रावयित्वा पुनः कीर । समायास्यासि वीधव ।१०।

वही तो मैं ही मानुषों और कहीं थे जनार्दन प्रभु-दत्त दोनों
 में विवाह की कल्पना करने थे ही मैं तो यह समझती हूँ कि विधाना
 मुझ से निगूत है, तभी तो शिवजी ने मुझे यथा वर देकर छप लिया है-
 ६। मगधाल श्री शिव के द्वारा परित्यक्त होकर मेरे प्रतिरिक्त और
 कीन लोभित रह सकता है ।७। सुन्दर पतिव्रता लक्ष्मी पद्मावती इस प्रकार
 के विचार करती थी । उनके शोकाश्रुत वचनों की सुनकर ही मैं भावके
 निरुद्ध तर्जिन दुःखा हूँ ।८। शुक के यह वचन सुनकर मरुन्द
 को प्राप्त हुए कालिक जी ने शुक से प्रति कथा—हे शुक मेरी प्रिया पथा
 को मायाश्रय देने के निमित्त तुम पुनः लिहम देव को प्रस्थान करो ।९।
 हे शुक ! तुम हमारे सदैव पादक होकर वरदा को हमारे लय तुल्य का
 श्रुतव्य सुनाना और फिर हे खल ! तुम जीम्र ही पहाँ लोट भाता ।१०।

सा मे पठिरह तस्या देवचिन्तितम् ।
 मध्यस्थेन त्वया योगमावयोश्च भविष्यति ।११।
 सर्वेऽस्मिन् विप्रिजोऽसि कालजोऽसि कृपापुत्रे ।
 तामाश्रयस्य ममाश्रयानुश्रयान्तत्त्वा समाहरः ।१२।
 इति कल्केर्बचः श्रुत्वा मुकः पटमहृषितः ।
 प्रणामं तं प्रोठमनाः पथवो सिहतां स्वरम् ।१३।

तप्य को समझकर धन्यदा न समझने का बहाना करके जो लोग पुराणों में वर्णित अवतारों के चरित्रों का 'अप्यन' करते तप जाते हैं उनकी वृद्धिमत्ता को हम मदिग्य ही कह सकते हैं। धन्यदा एक बार नहीं शनेक बार विभिन्न शब्दों में इस बात को कहा गया है जिनमें पाठक के हृदय में भजा न रहे—

अव्यक्तो व्यक्त लिङ्गस्थो य एष भगवान् प्रभुः ।

नारायणो जगद्युक्तो प्रमथवाप्यय सहितः ॥

“जो अनरत होने हुए भी मक्त शरीरों में स्थित है, मृष्टि और प्रमथकाल में भी स्थिर रहने है, उन्हीं सर्व प्रतिमान भगवान् नारायण ने इस अगत की रचना की है।”

आगे चल कर वही विभिन्न अवतारों की सर्वा की गई है वही वाराहवतार के शरीर का जो वर्णन किया गया है उसमें पूर्ण रूप से सम्पूर्ण विश्व स्त्री यज्ञ और उसके प्रमुख पदार्थों को ही चिन्तित कर दिया गया है—

वाराहस्तु प्रतिमुखः प्रादुभावो महात्मनः ।

यत्र विष्णु सुरश्रेष्ठो वाराह रूपभण्डित ॥

उज्जहार महीं तोयात् सशैल वन काननाम् ।

वेदपादो द्युपदद्ग्रातुदन्ताश्चितीमुख ॥

अग्नि जिह्वो दभरोमा ब्रह्मशोषी महातप ।

अहोरात्रोक्षणो दिव्यो वेदाङ्ग प्रतिमूपगः ।

आज्य नास स्रुधतुग्ध सामघोषयनो महान् ॥

धर्म सत्यमश्रु प्रीमान् कर्मविक्रमसत्कृत् ।

प्रायश्चित्तमखी धीर पशुजानुसंहायुष ॥

“भगवान् श्रीहृरि का जो 'वाराह' नामक अवतार है, उसमें भी प्रभावित; वैदिक धृतिही प्रमाण है। भगवान् ने वाराह रूप धारण करके पर्वतों और वनों सहित सारी पृथ्वी को जल से बाहर निकाला था। उस समय चारों वेद ही अवतार के चार पैर थे, मूप ही उनकी दाढ़ थे। षणु (यज्ञ) ही दाँव और 'चिति' (इष्टकायव) ही मुख

गुरु ने कहा—हे बरारोहे ! हे रूप जीवन सम्यग्ने तुम कुतः
 रूचते हो ? तुम अपने जगत कैश्री में सुशोभित द्वितीय लक्ष्मी ही
 तीत होती है । १६। तुम कामम जैसे मुल वाली, बमसपथा, कससात
 या कथन के समान हरी शरी हो । अपने हाथ में तुमने कामस
 मारण किया हुआ है, वह खसस्य तुम्हारा लक्ष्मी होन ! सूचिन करता है-
 । १७। हे बरारोहे ! विवादा ने मया सम्पूरा विश्व का रूप सावस्य
 तुम्ही में मर कर तुम्हें ही सय जीवों को मोहित करते वरती जना दिवों
 है । १८। तुम के यह अवसुत अपन युवक व परमानपारिणी पथा ने हंस-
 कर कहा १९। तुम कौन हो ? कहाँ से आपमन हुआ है ? तुम इन राक
 वेत में देवता ही अपथा जलन ? तुम कहीं काकर किमलिष ऐसी अपा
 प्रवसित कर रहे हो । २०।

नवंजोऽह काममामो सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ।
 देवगन्धर्वभूपानां समासु परिपूजित । २१।
 अरामि स्वेच्छ्याया से स्वामीसाश्वार्थमिहागतः ।
 स्वामह हृदि सतमा त्यक्तभोग मनस्विनीम् । २२।
 हास्यात्तप-सखी-सङ्ग देहामरण-वर्जिताम् ।
 विनोभवाह दोलचेता वृच्छामि श्रोतुमोरितम् !
 कोकिलावाप-सन्ताप-जनक संयुत मृदु । २३।
 तव दन्तीष्टलिङ्गासलुलिताक्षरमलय-
 यत्कस्यकुहरे मन्नास्तोपा कि जग्येते तत । २४।
 सोऽनुमार्थ शिरोपसव बव कान्तिर्वा निशाकरे ।
 पाशूप बव वद-रमेवानन्द यहासि ते बुवाः । २५।

गुरु ने कहा—हेपी ! मैं सब कुल जानने वाला अपा सय वाली
 ना करवानी हूँ । मैं स्वेच्छ्यापूर्वक सचेत अपन करने में समर्थ हूँ । देवता,
 गण्ड वपला राबावों की समा में देव । पूर्ण सम्मान होता है । २१। मैं
 गगत मरन में अपनी इच्छा के अनुसर विचरण करता हूँ । तुम तुम्य

है। यानि उनकी जिह्वा, धर्म रोम है, ब्रह्म मन्त्र है, दिन और रात्रि ही भावें हैं और वेदाङ्ग कानों के आभूषण है। धी उनकी नासिका, युवा उनकी पुष्टुन और सामवेद का स्वर ही उनकी शीषण गर्जना थी। धर्म और मृत्यु उनका स्वस्व था, वे भ्रूलौकिक तेज में सम्पन्न थे। वे विभिन्न कर्मरूपी विक्रम से मुहोमित हो रहे थे। प्रायश्चित्त उनके नम थे, वे धीर स्वभाव में युवा थे, पशु उनके छुटनों के स्थान में थे और महान रूपम (१ में) उनका थी विक्रम था।”

इसी प्रकार वामन-भगवान के स्वरूप का वर्णन करते हुये कहा है—

तस्य गात्रे जगत् सर्वमानीतामिव दृश्यते ।
न किंचिदस्ति लोकेषु यद् व्याप्तं महात्मन ॥
तद्धि रूपं महेशस्य देव दानव मानवा ।
दृष्ट्वा तं मुमुहुः सर्वे विष्णु तेजोभि पोडिता ॥

‘भगवान् वामन के शरीर में सारा जगत् इस प्रकार दिखाई देना था, मानो उसमें लाकर रख दिया गया हो। इसार में कोई एनी वस्तु नहीं है, जो उन परमात्मा में व्याप्त न हो। परमेश्वर भगवान् विष्णु के इस रूप को देखकर उनके तेज से दब कर देवता, दानव और मानव सब हतप्रभ हो गये।’

भगवान् राम के सम्बन्ध में लिखा है—

लोके गम इति ख्यातस्तेजसा शास्त्ररोपमः ।
प्रसादनार्थं लोकस्य विष्णुस्तस्य सनातनः ॥
धर्मार्थमेव वीरतेय जज्ञे तत्र महायज्ञः ।
तमप्याहर्मनुष्येन्द्र सर्वभूतेस्तनुम् ॥

‘वे भगवान् मूर्ध के गमान तेजस्वी राजपुष्पार जपद में ‘वीरगम’ के नाम में विख्यात हुये। हे युधिष्ठिर ! जगत् को प्रसन्न करने तथा धर्म की स्थापना के लिये ही महायज्ञम्बी सनातन भगवान् विष्णु यहाँ

सप्तम अध्याय

विष्णुस्वन शिवेनोक्त श्रोतुमिच्छाम्यहं सुभे ।
 पन्थामि कृतपृथ्वामि शिवशिव्यास्वभागता ॥१॥
 अहं भागवतज्ञादय समागम्य तवन्तिकम् ।
 शृणोमि परमाश्रयं कोणकारनिवारणम् ॥२॥
 भगवद्भक्तयोगश्च जपध्यानविधि मुदा ।
 परमानन्द-मन्दाह-दान दक्ष श्रुतिप्रियम् ॥३॥
 श्रोविष्णोरचनं पुण्यशिवेन पवित्रापितम् ।
 मच्छ्रद्धयानुष्ठितस्य श्रुतस्य गदितस्य च ॥४॥
 यद्य पापहरं तु सा मुक्तयोश्चहापातिनाम् ।
 समाहितेन मनसा शृणु कीरं यथोदितम् ॥५॥

शुक जीवा—हे सुभे ! शिवजी ने भगवान् विष्णु की की पूजा-
 विधि तुम्हें बतलाई थी, उसे मैं सुनना चाहता हूँ । तुम धन्य हो, तुम
 अपने मूल्य रूपे द्वारा भगवान् शिव की शिष्या हो गई हो । १॥ मैं भागव-
 तज्ञात ही यहाँ आ पहुँचा हूँ । अब मैं अपने सुक-शरीर का निवारण
 करने का-ही आश्रयमयी पूजन विधि का श्रवण करूँगा । २॥ भगवान् विष्णु
 का अर-प्यन एक पूजन की यह विधि भगवद्भक्ति के देन वाली, श्रवण
 से सुखद एक परमानन्ददायिनी है । ३॥ यथा मे कह्य—शिव-शिवित विष्णु
 ने पूजन की विधि आरम्भ पुरुषमयी है । इसके अज्ञाप्युक्त सुनते, श्रवण
 करने या कहने से मोक्षला, पुरुषहत्या और ब्रह्महत्या के पाप भी नष्ट हो
 जाते हैं । हे कीर ! इसका वर्णन शिवजी ने जिस प्रकार किया था,
 उसे गवर्हित नित्त से सुना । ४-५॥

प्रकट रूप में। मनुष्यों के स्वामी श्रीराम को साक्षात् सर्वभूतपति श्रीहरि का ही स्वरूप बनलाया जाता है।”

उपरोक्त अवतार—वर्णन के अन्त में भगवान् 'कल्कि' का भी परिचय दिया गया है—

कल्की विष्णुयुगा नाम भूदश्चोत्पत्स्यते हरि ।

कलेर्बुगान्ने मन्त्राम् धर्मं सिधिलता गते ॥

पाशण्डिना मराना हि वधार्थं भरतर्षभ ।

धर्मन्य च विवृद्धचर्म विप्रारण्य हितकाभ्यया ॥

“कलियुग के अन्त में जब धर्म में अधिक सिधिलता आने लगेगी तो उस समय भगवान् श्रीहरि पाशण्डियों के निर्मूलन करने, धर्म की वृद्धि और कच्चे शाहूणों की हित-कायना से पुनः अवतार लेंगे। उनके उस अवतार को कल्कि विष्णु युगा' कहा जायगा।”

इस प्रकार अवतारों के वर्णन को समाप्त करके महाभारतकार ने फिर इस बात को स्मरण करा दिया है कि वेदसं जिन षोडश से अवतारों का यहाँ वर्णन किया गया है, वे ही सब नहीं हैं। सत्कार की रक्षा के लिये प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अवसर पर भगवान् किसी न किसी रूप में उपस्थित रहते ही हैं—

एते चान्ये च बहवो दिव्या देवगणैर्षुता ।

प्रादुर्भावा पुरारोपु गीयन्ते ब्रह्मवादिभि ॥

“भगवान् के ये तथा और भी बहुत से दिव्य अवतार देवताओं के साथ होते हैं, जिनका ब्रह्मचर्यापण महापुरुष पुराणों में वर्णन करते हैं।”

महाभारत में अवतार-निदान और उनके स्वरूप के सम्बन्ध में जो विवेचन किया गया है, उसके इस विषय की सभी शक्यों तथा प्रश्नों का समाधान हो जाता है। चाहे इसकी सृष्टि का नियम कहा जाय और चाहे भगवान् की सीमा माना जाय, देवी-शक्ति सत्य

उन्होंने मुजाम्मों का मन में स्मरण करता है। ११८। हाथों की तूँट जैसी
 जिन मुजाम्मों में मणिमय धामूपण और लाल पद्म भाँडि विभूषित हैं, जिन
 मुजाम्मों की भाँड लाल शशी व पुष्पिणी जलु स्पर्श कर रही है, वन
 कमलासला पद्म की प्रशंसा करने वाली मुजाम्मों का मैं स्मरण करता
 हूँ। ११९। मृगाल के समान जिस कंठ में मुजार्किन्द की तीन रत्नायें और
 धमनाभा सुशोभित है तथा जो कंठ मोक्ष-मन्त्र के धुपफल का सुच्छा-
 रणकर है, उस की हृत्-कंठ पर मैं स्मरण करता हूँ। १२०।

रत्नाम्बुज दशनहासदिकाश्रम्य रक्ताधरीक्षपर
 कोमलवाक्सुधाह्वयम् । मनमानस्रीदमवचलेक्षणपत्रविश्व

लोकाभिरामवपलञ्च हरेः स्मरामि । १२१।

मुरारमजावसधगव्यविदमुनाया भ्रूपल्लव स्थितिल-
 यादवकर्मवजम् । कामोत्सवञ्च कमलाहृदयप्रका-

दा सञ्चिन्तयामि हरिवक्त्रविकासदक्षम् । १२२।

कण्ठी सप्तमकरकुण्डलमण्डली लो नानादिशान्ध

नभस्रव विकासगेही । लोलात्तकप्रचयचुम्बलकु-

ञ्चित्तापी लम्बी हरेर्मीणिकिरीटं स्मरामि । १२३।

भान विविधतिलक प्रियवङ्गद्वयमोरोचनारचनया

तलनासिसहस्रम् । शर्मकव्यामभिरुक्तान्तकिरीट

जुष्ट म्पायेन्मनोनयनहारकामोदरस्य । १२४।

शाम कमल के समान नाम बधरी के मध्य मुकुटवर्ती हुए दाँत,
 सोमास्य कीर्तन वचन, मण की प्रशंसा प्रदान करते वाले चंचल मेक,
 जिन मुकुटवर्त में सुशोभित हैं, प्रभु के लक्ष सुताखिन्द का मैं स्मरण
 करता हूँ। १२१। जिन मुकुटि पत्रों की कृपा से मय तदन की मय ली नहीं
 जाती जिनके समीप ही नागिरा सुशोभित रहती है, जिनके संवेद्यमे सृष्टि,
 शक्ति एवं प्रलय निहित है, जो मदनीलज को प्रकट करने वाले एवं

समय पर विभिन्न रूपों में प्रकट होकर ससार को रक्षा और मार्ग-दर्शन के कार्य में सहयोग देती रहती है, इनमें कोई सन्देह नहीं। ऐसी घटना मृतकाल में घनेक बार हो चुकी है और भविष्य में भी होगी। 'कालिक प्रवतार' जिनका स्पष्ट और प्रत्यक्ष युक्त वर्णन इम पुराण में किया गया है, इसी शखना के एक अंग माने जाते हैं।

श्रवतार

मिछने कुछ ही वर्षों में जिन रचना ने चरनारवाद का सबसे अधिक प्रचार किया है और इसकी महिषा का विस्तार किया है, वह 'रामायण' ही है। पहले तो बान्सीकि-रामायण ने ही राम-चरित्र को बहुत ऊँचा उठाकर उन्हें श्रद्धा, भक्ति और प्रेम का पात्र बनाया, फिर मोस्वामी तुलसीदासजी ने उसी के आधार पर अपना अन्य अनेक पुराणों की कथाओं का भी मार लेकर जिस रामचरित्र मानस की रचना की उसने तीनों भाषतर्षण की, विशेषतया उत्तर भारत की सम्मान्य जनता में 'राम-भक्ति' को इतना लोकप्रिय बना दिया जिसका अनुमान कर सकना भी कठिन है। यदि यह कहा जाय कि आज तुलसीदासजी की यह अमर-रचना मोपड़ों से लेकर राज-महलों तक में व्याप्त है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। संस्कृत और हिन्दी के अतिरिक्त बंगाली, गुजराती, तामिल, तेलुगू आदि भाषाओं में भी वहाँ के महाकविधों ने 'कृतिदास रामायण' 'गिरधरकृत गुजराती रामायण' 'कम्ब रामायण' 'रङ्गनाथ रामायण' के नाम से रामचरित्र सम्बन्धी विनाय ग्रन्थों की रचना की है, और उन प्रदेशों में उनका पर्याप्त प्रचार है। फिर 'रामायण' से प्रेरणा लेकर संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में 'रघुवध' 'उत्तर रामचरित्र' 'हनुमन्नाटक' 'प्रसन्नराधव' 'प्रथमराम रामायण' 'आनन्द रामायण' 'चम्पू रामायण' 'सिधुदन्वन्त', 'रामचन्द्रिका' 'रामरामायन' आदि जो रामचरित्र पर अन्य अनेक उच्च-शैली के ग्रन्थ रचे गये हैं उनका प्रभाव भी विद्वानों तथा सामान्य

चंद्रम चरित कमल-पत्र क हिमानी हुई हवा घर रही थी । १५।
 रैवावारिषरिस्तात पराशाम्य सुभागतम् ।
 घृतनीर रमगत निन्दन्ती वचन प्रियम् । १६।
 शुक्र सकण्ठः साधु-वचनेस्ताम्रतोपपत् ।
 सा, स्वमेहो हि, ते स्वस्ति स्वागत? स्वस्ति मे शुभे । १७।
 गते त्वम्पत्न्यग्राह शान्तिस्तेऽस्तु रसायनात् ।
 रसायन दुर्लभ मे, सुलभ ते सिवाश्रमे । १८।
 नत्र मे भावपविहीनाया इहैव वरवर्णिनि ।
 ऐदि! तं सरस्वतीरे प्रतिष्ठाप्यागता वदम् । १९।

पराशम्य ब्रह्मण्य से मरस हुआ प्रिय वचन बत समय पदना
 के द्वारा विधा को प्राप्त हो रहा था । १६। तभी शुक ने कण्ठाम्य मुहर
 वचन कह कर पदमा को आशवाहन दिया । जिसे सुन कर पदमा
 बोली—तुम्हारा स्वागत है । यहाँ भायो, तुम्हारा प्रयत्न ही । शुक
 बोला—हे शुभे ! मेरा मधु प्रकार से भगत ही है । १७। क्या बोली—
 हे शुक ! तुम्हारे जाने से मैं अत्यन्त खप रही हूँ । शुक ने कहा—
 तुम्हारे सब दुःख दान रसायन के द्वारा शान्त हो जायेंगे ।
 पदमा ने कहा—मेरे लिए तो रसायन भी दुर्लभ है । शुक ने कहा— हे
 विधवा की विधवे ! रसायन तुम्हारे लिए सुलभ ही है । १८। पदमा
 बोली—मूढ साधुहीना की कामना किस प्रकार पोर कहीं पूर्ये होगी ?
 शुक बोला—हे वरवर्णिनि ! तुम्हारी प्रतिभामा यहीं पूर्ण होगी । मैं जन्ते
 सरोवर के तट पर विधात्रयान कर के तुम्हारे पास उपस्थित हुआ हूँ । १९।

एवमथो-न्यसम्वाद-मुदितः।त्मनो-रथे ।

मुखं मुद्येन नयने साहसा ददौ । १०।

विमलामासिनो लोला कमला कामकन्दला ।

विमलसिनो चाहमती कुबुदेत्यष्ट मासिका । ११।

सस्य एता मलास्तार्जिजल कीडायंमृद्यता ।

पदमा प्र.ह. सरस्वतीभायान्तु सा मया स्त्रियः । १२।

जगता पर कम नहीं पडा है । तुलसीदात रामायण का तो बहुत वर्षों पहले रूसी और अंगरेजी भाषाओं में अविश्वस्य अनुवाद हो चुका है, जिससे उसकी अपूर्व लोचप्रियता पर प्रकाश पडता है ।

‘रामायण’ में भगवान् राम का ईश्वरीय अवतार होना इनके साङ्गोपाङ्ग रूप में वर्णन किया गया है, कि उससे पाठक के नेत्रों के सम्मुख समस्त घटना एक चित्र की तरह उपस्थित हो जाती है । ‘रामायण’ के लेखक भगवान् के साकार रूप के अनुयायी हैं, इसलिये उन्होंने भगवान् के धीरामचन्द्र के रूप में अवतार लेने का ऐसा विषाद वर्णन किया है जैसे वह हमारे घर-लोक की ही किसी सभा-समिति में हो रहा हो । जब राक्षसराज रावण के पातक से पीडित होकर समस्त देवता गृष्ठी के साथ ब्रह्मलोक में पहुँचे और ब्रह्माजी ने इस विषय में अपने लो अंसमर्ष पाया, तो उन सयने सहायता के लिये जगतपिता परमात्मा की प्रार्थना की । उत्तार की बड्डिन समस्या और मानव-जानि की दुरवस्था से त्रयित होकर दृढ महानविन साकार रूप में उनके सम्मुख उपस्थित हो गई—

एतस्मिन्न-तरे विष्णुरुपयातो महाद्युति ।

बाह्वचक्रगदापाणि पीतयासा जगत्पति ॥

वैततेय समाबह्य भास्करस्तोयद् यथा ।

तप्तहाटककेयूरो वाद्यमान. सुरोत्तम ॥

ब्रह्मणा च समागत्य तत्र तस्थौ समाहित ।

तम युवन सुरा तर्षे समभिपृद्य सतता ॥

(बाल० ११।१२।१८)

“उनी समय भगवान् विष्णु शत्रु, चक्र, गदा की हाथों में लिये, पीताम्बर धारण किये, गरण पर भास्वर होकर वहाँ इस प्रकार आ गये जैसे किसी मेघ के ऊपर सूर्य का दर्शन होता है । उनकी भुजाओं में तप्त सुवर्ण के केयूर शोभित थे । सम्पूर्ण देवताओं ने उनकी वन्दना

सोलासि । तत्रापि-रसापूर्वं से कामहिदष्टस्य विवाहुरस्य ।
 तनोतु धान्तिमुकतेन कृत्वा सुदुर्लभा जीवनमाश्रितस्य २७॥
 बाहूत्रवंतो कुम्भवा मनोशी हृदि स्थित काममुदन्ववासम् ।
 धार्वायतो चरणरवाकुशेन द्विप यथा सादिविदोर्णहृन्मम् २८॥
 पाराभ्युजं तेषु न्निबन्धितं वर भराल कदापुनुरा-
 चृतम् । कायाहिदष्टस्य समास्तु शान्तये हृदि स्थितो प-
 द्मपणेमुशोभने ॥२९॥

श्रुत्वात्तद्वचनामृतं कपिकुलध्वंसस्य कलकेर्षत्
 दृष्ट्वा सत्युत्पत्तमस्य मुदिता पद्मा सखीयिवृत्ता ।
 कान्तं वसान्तमना कृताञ्जलिमुद्रा शोकावतारतदरं
 धीर धीरपुरम्भ्या विभर्षति नरवा भमरकुम्भरा ॥३०॥

हे कान्ति ! तुम धीरे पाप भागी, तुम्हारे मित्रने से मेरा संघन
 हुआ है । तुम्हारे अन्धमुक्त की देखकर मेरा सहाय मिट गया ॥२९॥ हे
 चवमासि ! मुझ लसार के रचने वाले की इस समय घासना करी कर्ष
 न दक्षित किया है । तुम्हारे साधन-रत्न कपी अमृत के पान से उनकी
 प्राणि धमन है । यह धामि सुकामो से भी दुर्लभ और जीवन के लिए
 पापम स्वरूप होमी ॥२७॥ जैसे महावत भवने पर कुछ से यन्त्राज वा
 कुम्भ भेदन करता है सोक जैसे ही तुम्हारी यह भुम्भ भुनाने नल रूप
 पर कुछ के द्वारा मेरे हृदयस्य कर्मका हावी के कुम्भ का भेदन करे ॥२८॥
 मेरे हृदयोदरि के स्वन्द नीर में स्थित स पुमि कपी कर्मक-पत्र द्वारा
 विविध हृदय अन्ध करने वाले एवं नुरी से सुगोमित संकु जीप
 करने वाले पादाभ्युद के द्वारा काम-लविष विष वा घास हो ॥२९॥
 कतिपय विषयक कालिको के चक्रवर्ती भुनकर धीर उन्हें पापुत्पत्त
 से मुक्त मान कर पद्मा अत्र-त्र हविष हर्ष । फिर वह कलाज मव हर्ष
 पद्मा सखियों महिष मन्त्रा कुम्भार करने पति कतिपय भगवात् से मंद
 स्वर से कहने लगी ॥३०॥

की ओर जब वे अपने स्थान पर विराजमान हो गये तो देवगण ने यिनीत भाव से प्रार्थना की—

त्वा नयोदयामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया ।

राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेविभो ॥

धर्मज्ञस्य वदानस्य महर्विसमतेजसः ।

अस्य भार्यासु तिष्ठतु ह्यीश्रीकोत्सुपमासु च ॥

विष्णो पुत्र त्वमागच्छ कृत्याऽऽत्मन चतुर्विधम् ।

तत्रत्व मानुषोभूत्वा प्रवृद्ध लोक कटकम् ॥

अवध्य देवर्तविष्णां समरे जहि रावणम् ॥

‘हे भगवन् ! हम तीनों लोकों के हित की दृष्टि से आपके द्वार एक महान् कार्य का भार ढाग रहे हैं । प्रभो ! ययोध्या के राजा दशरथ धर्मज्ञ, उदार और महान् तेजस्वी हैं । उनकी तीन रानियाँ ह्यो, श्री और कीर्ति—इन तीन देवियों के सहस्य हैं । हे भगवन् ! आप अपने चार स्वरूप बनाकर उन रानियों के धर्म से दशरथ के पुत्ररूप में प्रवृत्त ग्रहण कीजिये । इस प्रकार मनुष्य रूप में प्रकट होकर आप समस्त जगत के लिये कष्टकारक रावण का, जो, देवताओं के लिये भवध्य है, संहार कर डालिये ।”

एव स्तुतस्तु देवेशो विष्णुस्त्रिदश पुंगवः ।

पितामहपुरोगास्तान् सर्वं लोकनमस्कृतः ।

अश्रवीत त्रिदशान् गर्वान् ममेतान् धर्मसहिदान् ॥

भयत्यजग भद्रं वो हितार्थं गुधि रावणम् ।

सपुत्रपौत्र समात्यं समन्त्रिज्ञातिवान्धवम् ॥

सत्याकूरंदुराधर्ष देवर्षीणां भयावहम् ।

“देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति क्रिये जाने पर सर्वलोक चरित देवधिदेय भगवान् विष्णु ने वहाँ पर समवेग श्लाघा आदि समस्त देवद्वार्यों से कहा—‘देवगण ! अब तुम भय त्याग दो । मैं

मर्यसोका या कालास सोक मे बहो श्री, किमी के द्वाग भी परने वासा
 नही यह । इन सब बातों पर विचार करते थापने कृत्तिकपक्षकार धारण
 किया और सब प्राणके उन रूप ही देख क्रोधित हुआ देख थापसे युद्ध
 करने लगा, इन थापने अपने नखाग्रों से उचका देह बिदीए कर डाला
 । २४। कि प्रेमीपक्ष निरक्षयी राधा कलि ५ यज्ञ मे थापने इन्द्र के सपु
 भाता बन कर धामनाद्वार धारण कर शतवराह के सधोहनार्थ लीन
 पर पृथिवी मीन ली । बरहर्ष के निचे क्रम छोडते ही थापने क्षत्रपूर्वक
 लगाए विरुध धारण किया । फिर थाप प्रेमीपक्षदान से ब्रह्मन्मनय
 धारा बलि के द्वारायाम बन गये । २५। फिर जब महाबल-प्राणम काले
 देहम धारि राधायो मे धर्म की लक्ष्मी को लीया, तब थापने उनके
 विनाशार्थ सूरवस में धामुराम का प्रवहार किया और अपने विला की
 शीघ्रधनु से हर निचे जाने पर थापने दशकीर बार इन पृथिवी को लक्ष्मी
 से बहिर्ग कर दिया । २६।

पुनरिह पुनस्त्यवसायत सस्य विप्रवसः पुत्रस्य निशाचरस्य
 राधराम लोकाप्रथमनस्य निधनमुररोकृत्य रविकुलजात-
 दारयातपजो युवस्यमिषादन्नाभ्युत्तम्य वते भीताहरणधरा
 सप्रवृत्तमन्वुना मन्वुषि तानरनिबध्य समग्य दसकन्धर हृतवा-
 नसि रामायणार । २७।

पुनरिह यदुशुभ जलघिकस्तानिधि सकलसुरमण्योबितपाटार-
 विन्वदन्त, विविधदानमदैत्यदलनसोबन्धदुरिततापनो असुदे-
 वारमजो रामावतारो दालभद्रसत्वमसि । २८।

पुनरिह विविकूल-वेदधर्मानुष्ठान-विहित-नानादर्शनमधृण-
 ससत्कर्मन्त्यागविधिना ब्रह्माभासविलासवानुरो प्रकृतिवि-
 मानानामसम्पादयन् वृद्धावहारस्त्वमसि । २९।

फिर पुनरावसायतम विप्रवसुध धारण के प्रवने इन से शीनों
 को को अप-सतत कर दिया, तब थापने नखा कर बिलाव करने के निचे
 वे ही राधा काल्य के यहाँ प्रवहार किया और विद्वत्विध से धर्म-

तुम्हारे हिनायें रावण ने तपाम करके पुत्र, पौत्र, पत्नी, मर्षी, भोर जानि बन्धुओं सहित नष्ट कर देगा ।”

इस विषय में यह विवाद उठाता कि क्या वास्तव में ऐसी कोई 'काफरेस' ब्रह्मलोक में हुई थी या नहीं, और देवताओं ने भगवान विष्णु के दरबार में रावण के विरुद्ध तत्काल ही शिवायत की थी या नहीं, हमारी समीति में बेकार है, और हम इस प्रकार के तर्क-वितर्क करने वाली स्पष्ट रूप से अपेक्षा करते हैं। हम तो एवदार यह बताने कि तथा-उपारयानों में, यह भी कविता में लिखे गये ग्रन्थों में गणित के समान पमाण इंदना, शपनी हृद्यर्मा भयवा छल्पजना को प्रमाणित करना है प्रत्येक कवि ग्युनाधिक मात्रा में कल्पना से काम लेता है और काव्य के विभिन्न रसों का उद्दीपन करने के लिये साधारण बातों को बढ़ा-बढ़ाकर लिखता है। जैसे मुद्र का वर्णन करते हुए प्रायः लिख दिया जाता है कि 'रफा की नदी यह चलो जिसमें मरे हुये मैनिक और छोटे जलजन्तुओं के समान बहने दिखाई पड़ते थे।' जहाँ तक हम जानते हैं आज तक सत्तार की किसी लड़ाई में इस प्रकार खन की नदी नहीं बही, जिसमें लगे तैर सकें, पर कविगण मुद्र के बानादरस को वीभक्त रूपा देने के लिये ऐसे रूपक बाँधा ही करते हैं। अब यदि कोई आलोचक तत्काल इस वर्णन को भ्रंशरणा गत्य सिद्ध करने की माँग करे तो यह कैसे सम्भव होगा ? पुराणोंमें देवामुर सवाम और दुर्गा के मुद्रों का वर्णन इसी प्रकार बहुत अधिक बढ़ा-बढ़ाकर लिखा गया है। उस सबसे समझदार पाठक कवि की कल्पना का ध्यान रखकर ही पढ़ना और समझना है। जहाँ बात अलग पौराणिक तथाओं में भी ध्यान में रखनी चाहिए।

अनेक लोग कहा करते हैं कि बाल्मीकि रामायण में श्रीराम चन्द्रजी का एक आदर्श नरेश मानकर ही उनका गुणानुवाद किया गया है, उनको भगवान का अवतार नहीं कहा है। उपरोक्त वर्णन

चतुर्थ अध्याय

श्रुत्या नृपाणां मत्तानां वचनं पुत्रयोत्तमः ।
 याद्व्युत्पद्यते ब्रह्म-वर्णात्ता घर्ममाह यत् ॥१॥
 पवृत्तानां निवृत्तानां कर्म यत्परिकीर्तितम् ।
 सव श्चावयामास वेदानामनुशासनम् ॥२॥
 इति कल्केर्वचः श्रुत्वा राजानो विस्तदाश्रयाः ।
 प्रशिष्यस्य पुनः प्राहुः पूर्वन्तु महिमात्मनः ॥३॥
 स्त्रीत्वं धाम्पयवा पंस्य कस्य वा केन वा कृतम् ।
 जरा-योवन-वाल्मीदि सुखदुःखादिकं च यत् ॥४॥
 कस्मात्कृतो वा कस्मिन् वा किमेतदिति वा विभो ।
 अनिर्णीताभ्यविदितान्यपि कर्माणि वक्ष्ये ॥५॥

सुतजी होने—राजाओं के यह वचन सुन कर गुण्य धर्म का कल्कि-
 जी ने उनके प्रति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और वृद्ध गणों के घर्म का
 बर्णन किया । १। संसार में प्राप्त हुए संसार से विरक्त लोगों के ही
 जो कर्म हैं, उनका बर्णन उन्होंने किया । २। कल्किजी का उपदेश सुनकर
 राजाओं के हृदय पवित्र हो गये । फिर उन्होंने प्रश्नपत्र करते कल्किजी से
 घर्मों पर्यायका के विषय में पूछा । ३। हे प्रभो ! स्त्रीत्व और पुराण
 भेद से समुच्चों की निवृत्ति किस प्रकार होती है ? जरा, योवन और
 बाल्यादि या एवं सुख, दुःखादि के कारण क्या हैं ? इनके प्रतिशक्त भी
 किन विषयों से हुए भवनिमित्त हैं, उनका भी बर्णन कीजिये । ४-५।

(तदा तदाश्रयं कालकरजन्त मुनिमस्मरत्) ।

से उनकी शंका का निवारण हो सकता है। यही तो कथा के रूप में देवताओं के कथन द्वारा उनको ईश्वरावतार बतलाया गया है, पर कुछ भागे चलकर वात्मीकिनी ने स्वयं भी इस दृष्य को स्वीकार किया है—

सर्वं एव तु तस्येष्टाश्चत्वारः पुरुषपंथाः ।
 स्वशरीराद् विनिवृत्ताश्चत्वार इव बाहवः ॥
 तेषामपि महातेजा रामो रतिकरः पितुः ।
 स्वयम्भूरिव भूतानां यभूव गुणवत्तरः ॥
 स हि देवैरुदोरुंस्य रावणस्य वधार्थिभिः ।
 अस्थितोमानुषे लोके जज्ञे विष्णु सनातनः ॥

“महाराज दशरथ को चारों पुत्रों अपनी भुजाओं के समान ही अत्यन्त प्रिय थे । परन्तु उनमें भी महातेजस्वी श्रीराम सबसे अधिक प्रिय जान पड़ते थे । इसका एक कारण यह भी था कि वे साक्षात् सनातन विष्णु हैं और परम प्रचण्ड रावण ने वध के उद्देश्य से देवताओं की प्रार्थना पर मनुष्य-लोक में अवतीर्ण हुये हैं ।”

तुलसीकृत रामायण में तो यह बात और भी प्रभावशाली रूप में कही गई है । धनवान होने पर चित्रवूट की ओर जाते हुये जब भगवान राम वात्मीकिनी के आश्रम में पहुँचे तो महर्षि ने उनसे कहा—

जग पेक्षन तुम देखनि हारे ।
 विधि हरि सभु नचावन हारे ॥
 तेउ न जानहि मरमु तिहारा ।
 औरु तुम्हहि को जाननिहारा ॥

राम सरूप तुम्हारे वचन अगोचर बुद्धि पर ।
 अविगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह ॥

पुरिकामां पुरि पुरा पिता मे वेदपारगः ।
 विद्रुमो नाम घर्मन्तः ख्यातः पत्रहिते रतः । ११४ ।
 सोमां मम विमो । मरता पतिघर्मन्परावराणां ।
 तयोर्वयः परिश्रुतो काले पशडाकृतिस्त्वहम् । ११५ ।

राजाओं ने कहा—हे प्रमो ! मुनि ने धापने क्या कहा और धापने क्या उत्तर दिया ? धापका कथोपकथन किम विषय मे हुआ था ? यह सुनने की हृषे इच्छा है । ११४ । राजाओं की जिज्ञासा सुनकर महाबल कल्कि ने कहा—इसारे कथोपकथन के विषय मे इन शान्त हृदय माने मुनि से ही प्रश्न करो । ११५ । कल्किजी के बचन सुनकर वे सब श्रेष्ठ राजागण प्रश्न का भेद ध्यानमे के लिए मुनि को प्रणाम करके पुछने लगे । ११६ । राजाओं ने कहा—हे मुने ! महाबल कल्कि से धापका कथोपकथन कृतक्य से क्यों हुआ ? हे प्रमो ! इसका रहस्य हमें बताइये । ११७ । मुनि बोले—पूर्वकाल की बात है—पुरिका नाम पुरी मे वेदो मे पारगव विद्रुम नामक एक घर्मन्त मुनि रहते थे, वही मेरे पिता थे । ११४ । हे विमो ! मेरी माता का नाम शोमा था, वही पतीराजा से मेरा जन्म हुआ, परन्तु मैं दुःसस्वहोम था । ११५ ।

सजात शोकदः पित्रोत्तोकान्नि निन्दितकृतिः ।
 मामालोभ्य पिता क्लीबदुःखशोक भयाकलः । ११६ ।
 त्यक्त्वा गृहं शिववनं क्त्वा तुष्टाद् शङ्करम् ।
 सपूज्येक्षं विद्यानेन धूपदोषानुत्तेपनैः । ११७ ।
 शिवं कान्तं सर्वलोकैकनाथं भूषा-वासं वासुकीकण्ठमूपम् ।
 जटाजूटावद्गङ्गाङ्गां चर्गवन्द्ये सान्द्रानन्दमन्दोहवसात् । ११८ ।
 इत्यादि बहुभिः स्तेयैः स्तुतः स शिवदः शिवः ।
 वृषारूढं प्रहसन्त्या पितरं प्राह मे वृष्णु । ११९ ।
 विद्रुमो मे पिताः प्राह मत्सु स्त्व तापतापितः ।
 ह्यम्भिष्ठरो ददौ पृथ्व्य पावंश्या पृतिमोदितः । १२० ।

“हे भगवाद् ! तुम्हों इस समस्त जगत् को जानने और प्रेरित करने वाले हों और ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन देवताओं को भी इच्छा-नुसार चलाते हो । पर ये भी तुम्हारे रहस्य को पूर्ण तरह नहीं जानते, तब अन्य कोई तुमको कैसे जान सकता है ? हे राम ! तुम्हारा सहाय बाणों और बुद्धि से वर्णन नहीं किया जा सकता । इह ऐसा अव्यक्त भाषनीय और अपार है कि वेदों ने भी उसका अपन 'नेति-नेति' कहकर ही रिया है ।”

वाल्मीकिजी के प्रतिरिक्त अन्य सब महाजानों ऋषियों ने भी भगवान राम को ईश्वरावनार बनलाया है । इनमें से कोई साधारवादी है और कोई निम्नकारवादी भी, पर अवतार के सिद्धान्त की सच्चाई और उसकी महिमा रचने अनुमय की थी । भगवान राम का अवतार हमें थोड़ा ही समय दोता था कि महामुनि विश्वामिश्र को उनकी भादरपकता पड गई और उन्होंने विचार किया—

गाधितनय मन चिन्ता स्थापी ।
हरि धिनु मर्दाह न निसिचर पापी ॥
तव मृनिवर मन कीन्ह विचारा ।
प्रभु अवतरेड हग्न महि भारा ॥
एहो मिस देखौ पद जाई ।
वरि विन्ती आनौ दोऊ भाई ॥
म्यान विराग सकल गुन अपना ।
सो प्रभु मै देखव भरि नयना ॥

“गाधि नरेश के पुत्र (विश्वामिश्रजी) के मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि हमारे धर्मकार्य में विघ्न डालने वाले पापी राक्षसों को श्री हरि के प्रतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता । फिर उनकी यह विचार था कि दृष्टी पर भार मिटाने के लिये भगवान का अवतार तो हो चुका है, अब क्यों न उनके पास जाकर दमन करूँ और विनय

ब्रह्मण्यपि द्विषःश्रुते पुरुष प्रकृती स्वया ।

भासा राजनश्यामास महान्त कालयौघतः ॥१४॥

बालस्वभावकर्मरिमा सोऽहङ्कारस्वतोऽभवत् ।

त्रिवृद्धिष्णु-क्षिप-ब्रह्म मयः स्रसारकारणम् ॥१५॥

विश्वामन्वित हृदय मे मिथुक परपक्ष मे मुखे दतना ही १४ ।

फिर लहोने मानसदेव से कहा - हे मांकरदेव ! हे महानाथ ! मैं भव
सुद्धे ब्रह्मण्य को बात सुनाता हूँ ॥१०॥ प्रलयकाल में तब परम पुरुष ने
उपर से विगत जन मे, पथ मे बैठने वाली परिष्कार के उपान्त, सब से
मोह उपान्त करने वाली भाषा निवास करती है ॥११॥ त्रयोगुण हृदय हृद
यही भाषा चलाने सन्तान उपान्त करने वाली और हम मिथ्या जगत से
सब को लक्षित करने वाली है । यही माया तीनों लोकों से व्याप्त होकर
सर्वे स्थित करती है । इस प्रायश्चित्त जगत समग्र कही है ॥१२॥
प्रलयकाल में तीनों लोकों के बीच से जाने पर सर्वथ प्रयत्न छा जाता
है, तब दिवा देव और मान प्रादि का भी छोड़ें चित्त नहीं रहता ।
तब परम ब्रह्म ही सृष्टि करने की इच्छा से, अपनी ही महिमा द्वारा
प्रकृति और पुरुष इन दो कर्मों में विभक्त हो करते हैं । तब प्राण के सह-
योग से प्रकृति और पुरुष, सा सम्बन्ध होने पर महत्त्व उपान्त होता है
॥१३-१४॥ प्रकृति से प्राण और स्वभाव उपान्त हृदय ३ महत्त्व से मह-
त्त्व प्राण हुआ । यही पहला र तीनों गुणों में विभक्त होकर ब्रह्मा, विष्णु
और शिव का उपान्त करने वाला हुआ । यही ब्रह्मा, विष्णु और शिव
सम्पूर्ण विदर के कारण है ॥१५॥

सामाश्रित्य तस्य पञ्च जज्ञिरे मुखमन्त्रिणः ।

महाभूतान्यपि तस्य प्रकृती ब्रह्मसत्त्वमात् ॥१६॥

वासा देशासृजनरा ये चापि जीवजातयः ।

ब्रह्माण्डाण्डप्रसार-उपानताशक्तिमादिमकाः ॥१७॥

सः यथा मायया जीव-पुरुषः परमात्मनः ।

ससारखरखण्डयो न वेदात्मवति क्वचित् ॥१८॥

यही यक्षवती माया ब्रह्माद्या यदृष्टी स्थितः ।

करके उनके यज्ञ-रक्षार्थ साथ में ले आऊँ । अब मैं अवश्य वहाँ चल कर ज्ञान और विराग के भंडार उन प्रभु को मन भर के दे दूँगा ।”

परशुराम जी ने भी धनुष यज्ञ के अवसर पर बड़ा रोष प्रकट किया, पर जब रामचन्द्र जी से बातलाप हुआ और उनकी शक्ति का अनुमान किया तो उन्होंने यही कहा—

न चेये तव काकुत्स्थ श्रीडा भवितुमर्हति ।

त्वया त्रैलोक्य नाथेन यदह विमुञ्जीकृत ॥

(वा० २।० शाल० ७६।१०)

“हे काकुत्स्थकुल भूपण श्रीराम ! आपके सामने मेरी जो प्रथमर्षता प्रकट हुई, वह मेरे लिये लज्जाजनक नहीं हो सकती, क्योंकि प्राप्त त्रिलोकीनाथ श्रीहरि ने मुझे पराजित किया है ।”

यमिष्ठ जी ने भी भगवान् राम के सिंहासनारोही हो जाने पर एक बार कहा था कि मैं दश पुरोहित कर्म को निन्दिता समझता हूँ, पर मैंने इसको ब्रह्माजी के यह कहने पर स्वीकार कर लिया कि इस व्रत में आगे चलकर साक्षात् परमात्मा का अवतार होगा जिसकी कृपा से समस्त भोग, यज्ञ, जप, दान आदि धर्मों का पत्र सनापान ही प्राप्त हो जाएगा —

परमात्मा ब्रह्म तत्र रूपा । होर्हि रङ्गकुल भूपन भूषा ॥

तत्र मैं हृदय विचार किय, योग यज्ञ जप दान ।

जेहि हित करिय सो पाइये, धर्म न द्तर आन ।

इसी प्रकार वात्मीकि, तुलसीदास तथा अन्यत्र महाराम कवियों की रचनाओं में श्रीरामचन्द्र के प्रवचन होने के अन्वय भरे पद हैं । यह सत्य है कि इनमें जो शब्द प्रयुक्त किये गये हैं वे कवियों के ही हैं, पर तो भी इससे इतना अवश्य प्रकट होता है कि उन्होंने जो बुद्ध लिया उसके मूल विचार और उक्त प्रकार की भावनाएँ तब समय अनुसन्धक लोगों में पाये जाने थे । जैसा कि कक्षा गया है कवि धरने

परं प्राप्स्यसि निर्वाणं कल्केरासोकनांस्त्वया ।

इत्यहं घोषितस्तेन भवत्वा सपुण्यं कोदाचम् ॥३८॥

कल्किं विदुशुरायातः कृष्ण कलिमुलान्द्रकम् ॥३९॥

दृष्ट कल्पमरुपस्य स्पृष्टस्तत्पदपल्लवः ।

अपदस्य धूलं वाशपमवाच्यस्य परात्मनः ॥४०॥

इति एव यदि मन वा निवृत्त करना है तो भगवान् विष्णु को धत्ति करो । क्योंकि वही सब कर्मोंकी दाहिना और भोज-गुण के देने वाली है ॥३८॥ हरि-वक्ति ही द्वैत-बद्धत का ज्ञान एव आनन्द और अमोह के देने वाली है, वही के द्वारा जीवकोय का समन समुद्र है ॥३९॥ कल्कि भगवान् के दर्शन करने से ही गुण योद्ध हो प्राप्त हो जायेंगे । परमहंस वा यह सर्वदेस गुरुवर मैं भक्ति संहित भगवान् के शरण करके कलिमुसलाहक कलिभक्त्य धीकृष्ण के दर्शनार्थे यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ॥३९-३९॥ वही आकर निराकार ईश्वर के रूप का मुझे दर्शन हुआ है । परब्रह्म-रहित परमात्मा के परब्रह्म स्वर्ग का घोषणा प्राप्त हुआ और मयापद प्रभु को कालो गुनाई दी ॥४०॥

इत्यन्त्र प्रमुदितः पद्मानाथ मिलेश्वरम् ।

कलित कमलपत्राक्ष नमस्कृत्य ययो मुनिः ॥४१॥

राजानी मुनिप्राशयेन निर्वाण-पदयो यता ।

कलिकामपदकर्म पद्माब्ज्य नमस्कृत्य मुनिप्रताः ॥४२॥

अनन्तर कथामोतामशात्कवन्त-नगिनीम

मायानिबन्धो प्रपञ्चध्वज-पाद्विमुच्यते ॥४३॥

ससाशयिच-निवृत्तासनात्समतिः श्रोत्रिण्युत्थेवादर्शो

भक्तवशदानमिदं स्वमेव-रहितं निर्मायि यमार्थिना ।

ज्ञानोस्तास-निश्चात-संज्ञमुदितः सद्मन्ति-शुभ्रियः

पद्मवर्षेजयदादयोपजयतामस्तपस्विस्त वेद्युतः ॥४४॥

सह सह कर प्रसन्न हृदित हुए मुनिवर भगवन् पद्मपत्राक्ष एवं

पद्मा के धर्म भगवान् कल्कि को भगवान् करके यहाँ से चले गये ॥४१॥

जमाने के लोकमन का दर्पण होता है, वाल्मीकि, तुलसी तथा अन्य विद्वानों की रचनाओं से यह सिद्ध होता है कि मध्य-काल में भी राम-कृष्ण के सम्बन्ध में लोगों की भवतार-भावना काफी बड़ी-चढ़ी थी और विश्व के रसक तथा दुष्ट-तत्वों के सहारक के रूप में उनका सम्मान किया जाता था ।

रामायण में और भी अनेक भवतारों सभी देवताओं और ऋषि-मुनियों के कथनों द्वारा श्रीराम के ईश्वरावतार होने का समर्थन किया गया है और भवतार के स्वरूप तथा महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है । सर्व प्रथम तो इसके समर्थक शिवजी हैं जो सदा भगवान राम का ध्यान करते रहते हैं ।

जासु कृपा सब भ्रम मिट जाई ।
गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई ।
आदिअत कोउ-जासु न पावा ।
मति अनुमान निगम जस गावा ।
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना ।
कर बिनु करभ करे विधि नाता ।
असि सब भाँति बाँकीक करी ।
महिमा जासु जाईह बरनी ॥

जब भगवान राम वन में चलते हुये महर्षि ऋगस्त के आश्रम में पहुँचे तो उनसे भी यही कहा-

ऊमरि तरु विशाल तब माया ।
फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया ।
जद्यपि ब्रह्म असइ अनन्ता ।
अनुभव गम्य भजहि जेहि सता ।
अस नव रूप बलानउ जानउ ।
फिर फिर सगुन ब्रह्म रति मानउ ।

द्वितीयं—

षष्ठम अध्याय

पते नृपगणो कृत्स्नः पदमया सह सिद्धतात् ।
धम्मलक्षणमभयने मतिं चक्र स्वसेनया ॥१॥
ततः कल्हेरिमिषाय विदित्वा वासवस्तवरम् ।
विश्वकाम्याशामाहूय वचनञ्छेदमप्रवीत् ॥२॥
विश्वकामञ्छम्भलेत्वं मृहोद्यातादृ-मद्रिन्म ।
रतस्फटिक-वेदूष्यं तानापरिण-विनिमित्तं ।
सर्वेषु शिल्पनैपुण्यं तव यक्यासितं तत्कुट ॥३॥
शूत्रा हृदेर्वीर्यं विश्वकर्मा यामं निज स्मरन् ।
सम्भले मभलेऽस्य स्वस्त्यादि-प्रमुखाद्गृह्णात् ॥४॥

सूक्तो बोले— फिर जब से वासवण चले गए तब मगध
कृत्स्न ने पद्मः और सेना के सहित सिद्धलौव से व्यवहार करने का
व्यवहार किया ॥१॥ जब दण्ड ने जनका यह परिशय जाना, तब उसने
सी सपथ विश्वकर्मा को मारने का हुक्म दे दिया ॥२॥ दण्ड बोला— हे
श्वकर्मा! तुम सम्भल नाम के जाकर स्वर्ण से मृदातिथियों से युक्त
१२ अक्षर और जघन आदि का निर्माण करो और उन्हें रत, स्फटिक
तथा वेदुर्षादि विविध प्रकार की पत्थरों से भर कर अपना शिल्प-नैपुण्य
दिखाओ ॥३॥ दण्ड के वचन सुन कर विश्वकर्मा अपना कर्वाण जानता
हुआ सम्भल नाम वहुंवा और वहाँ कतने पद्मार्थ के निमित्त स्वर्ण
आदि मूल्य वस्तुओं से युक्त शूत्रर मगधादि का निर्माण किया ॥४॥
हससिद्धसुपरशुदिमुखादिवक्त्रे न विश्वकर्मा ।

सीता की खोज करने समय जब समुद्र को बाँधे जाने का अवसर प्राया ग्रीर वन्दरो को इससे पवडाते देखा तो जामवन्त ने उनको समझाया—

तात राम कहै नर जनि मानहु । निर्गुण ब्रह्म अशित भज, जानहु ॥
हम सब सेवक अति बडभागी । सतत सगुन ब्रह्म अनु रागी ॥

जब भगवान राम सतक तैयारी करके सका पर घात्रमण करने को समुद्र के किनारे आ पहुँचे तब विभीषण ने बुद्ध द्वारा राक्षस कुल के नाश की सभावना देखकर रावण को श्रीराम की अनौकिकता को समझ कर समझौता करने की सलाह दी और कहा—

तात राम नहि नर भूपाला । भुवनेश्वर कालहु कर काला ॥
ब्रह्म अनामय अज भगवता । व्यापक अजित अनादि अनन्त ॥

जब भगवान लका के निकट पहुँच गये और युद्धारम्भ होने का अवसर आ पहुँचा तो मन्दोदरी ने रावण को उनसे सुझ करने को समझाया और कहा कि श्रीराम ही जगन का सचानन करने वाली सर्वव्यापी शक्ति के प्रथमर है, उनसे कोई किसी प्रकार नहीं जीत सकता । उसने भगवान राम के विरट रूप को बतलाते हुये कहा—

विश्व रूप रघुवस मनि, करहु वचन विस्वासु ।

सोक कल्पना वेद कर, अंग-अंग प्रति जासु ॥

पद गताल सीस अज धामा । अपर लोग अंग-अंग विथामा ॥
भृकुटि विलास भयंकर काला । नयन दिवाकर कच घनमाना ॥
जासु धान अद्विती कुमारा । निमि और दिवस निनेप अपारा ॥
शदन दिसा दस वेद वखाना । मारुत स्वास निगम निख वानी ॥
अपर लोभ जम दमन कराला । माया हास दाहु दिग्पाला ॥
जानन अनन्त अंबुपति जीहा । उत्पति पालन प्रलय समीहा ॥
राम राजि अष्टादस भारा । अस्थि बल सूरिता नम जारा ॥
सदर उदधि अधगो जातना । जगमय प्रभु की बहूत कल्पना ॥

स तु वातात्मये वर्षा वर्षा निम्नोर्ध्वद्विमम् ।२०।

तू मेरे बाणों से घाहत होकर कभी परलोक को प्राप्त होता ।
उस तैरा साध कोई भी नहीं देता । इसलिए शत्रु तू अपने बहु-बाणों
का सुन्दर मुख देख ले । १६। कलिकजी के बचन सुन कर, वह जलो त्रिन
होया हुआ बोला—धदुष्ट कभी प्रपन्न नहीं हो सकता । हम बीह गण
प्रपन्नों के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं मानते । हमारा शास्त्र कहता है कि
हम बद्ध को मर देते । १७। यदि तू मरने का ही हम तुम्हारे
साथ ले रहे हैं । यदि तू हमसे साथ के माहृत करोगे तो क्या भीड़ गण
तुम्हें छोड़ देंगे । १८। जो तू हमसे अति तिरस्कार के बचन बोलते हो,
वे बचन तुम पर ही छोड़ जाएँगे, अब तू पावसाज होजाओ । यह कह
कर त्रिन ने अपने वीर्यवाणों से कलिकजी को समावृत्त कर दिया
। १९। जंगे मूर्ख के टिकारी देने पर द्विपक्षत नामा को प्राप्त होता है, वैसे
ही त्रिन द्वारा जो वर्षे वाता-वर्षा कलिकजी के स्वर्ग से दीए जाने
लगी । २०।

प्राह्यं वावव्यमानेय पाजंन्य चान्यदायुशम् ।

कल्वेदंनयान्नेषु निष्पत्तान्यमन्त्राक्षरात् । २१।

यद्योपरे बीजमुत्पन्नं दानमर्थोत्रिये तथा ।

यथा त्रिदण्डी मत्तः द्रवाद्भवति येन कृताभवत् । २२।

कलिकस्तु तं नृपाकृष्टमवप्लुत्य कचेऽग्रहीत् ।

उत्सर्ग्यं पैनृन्ममीं तान्प्रवृद्धाविव कृष्णः । २३।

पतिरवा स कलिककच जाग्रह कर्कर करे । २४।

ततः समुत्पिपती व्यग्री तथा चाशुरकेयवी ।

दृष्टहस्तो घृत्कवी अशाविव महान्तो ।

मुद्रुपती महावीरो जिम्बकली मिरामुधो । २५।

त्रिन द्वारा मीरत ब्रह्माण्य, वायव्या, पाणेषाण्य, मेघाण्य और
पाण्य सभी प्रसन्न कलिकजी के दर्शन मान कर-हीन हो गये । २१। जंगे

अहंकार सिव बुद्धि अज, मन समि नित्त महान ।
मनुज वास सचराचर, रूप राम भगवान् ॥

मर्त्यान् "इस बात को खूब अच्छी तरह समझ लो कि श्रीराम उम परब्रह्म के धवनार हैं, जिनके समस्त अंगों में वेदों ने विभिन्न लोकों की कल्पना की है। उनके पैर ही पानास है और सिर वैकुण्ठ लोक है। इसी प्रकार अन्य लोकों का समावेश अन्य-अन्य अंगों में है। उनकी मूकटि का चलना ही भयंकर शाल स्वरूप है, नेत्र सूर्य रूप हैं और केश बादलों के रूप में हैं। उनकी छाया मांशवती कुमार है और पलकों का चलना दिन रात का होना है। दशों दिशाओं उनके कानों के रूप में हैं, उनकी स्वाम ही वायु है और धारणी ही वेद रूप है। उनके घण्टे सबको प्रहृण करने वाले और दौल ही यम है, हेमना माया रूप और नुजायें दिकपाल है। मुख अग्नि स्वरूप है, जीभ, वरुण है, और सस्यार की उत्सक्ति, म्भिति तथा प्रलय ही उनकी चेष्टा क्रिया है। भठान्ह प्रकार की अमर्ष्यो वतस्पतियाँ रोमागलि है, पर्वत उनके अस्थि-रूप और नदियाँ नम-नादियों के तुल्य हैं। उनका उदर ही रामुद्र रूप और अघोभाग नवं म्बरूप है। इस प्रकार प्रभु के विश्व रूप को बहुत तरह से वर्णन किया गया है। उनका अहंकार का भाव ही शिव है बुद्धि श्रद्धा है और मन चन्द्रमा रूप है। इस प्रकार भगवान राम मनुष्य के रूप में समस्त चराचर जगत के आश्रयस्थल परमात्मा हैं।"

इस प्रकार रामायण में सभी पात्रों के मुख से यही कहलाया गया है कि श्री रामचन्द्र पृथ्वी का भार हरण करने के लिये ही पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं और उनके 'धवतारी स्वरूप' को समस्त धर मनुष्य सद्गति का अधिकारी बन सकता है। और शो क्या स्वयंश शयण भी, जिसके सहार करने की श्री रामचन्द्रजी का भाविभाव हुआ था, इस सत्य को अनुभव करता था। सीमा हरण का शिवाच करते हुए उसने कहा था—

खरदूपाणु मो सम बलवता । तिन्हहि को मारइ विनु भगवता ॥

कलिकर्मी के घसकवारी बोरधर प्रतिया के समान वेष्टाहीन तथा कमहीन होण १४१। फिर कलिकर्मी ने जब घरने कपू, जाति-कापय और सुहरो को गावाकपिलो बघनी पानी के द्वारा खीरीं होत देना तो वे उसक समय पूर्वमे १४२। जैसे ही बहोने श्रीशक्यता बघनी तय प्रिया की ओर देला, बैग ही वह भाग्येशु उनके देह मे प्रविष्ट ही गई १४३। तब धपकी उष माया माया दधी को न हय कर सखी प्रपुत बौद्ध धम बोधय से रहित हुकर वदन करने मगे १४४।

विस्मयाविष्टमसु. कद मनोपकथाप्रवन् ।

कलिक. समानोक्तेन समुत्थाप्य निजाच्छनान् १४५।

निजातमनिमादाय म्नेच्छाहून्तु मगो दधे ।

सन्नुध नुरवस्तु हृदहस्तपूतवत् १४६।

धनुनिप्रह्वपनिदा वाणजालप्रकाशितम् ।

ध्वहस्ततनुमाणोवाङ्गुलि वराचितम् १४७।

मेघोपयुष्पताराम दशवस्त्रांनिन्दुक्म् ।

किरोटकाटिनिन्वस्त-मणिराशिविराचितम् १४८।

कामिनोतयनान्दसन्दोहृदस्यन्दिरम् ।

वपदापदाविलो रचितकफटवशकम् १४९।

निजमस्तजमोत्तमास-सदासचरणाम्बुजम् ।

निरीक्ष्य कलिक ते बौद्धमन्त्रमुर्धमैतिन्दकम् १५०।

पाण को न देख के घामचर्मे चर्चित होकर पर-पर कहने मगे कि माया देवी कहाँ चली गई ? फिर कलिकर्मी ने बघनी देवा पर दृष्टि दानी को यह स्वभय बोर सचेत हो गई तथा म्नेच्छाओं का सहार करके ही इच्छा के कलिकर्मी तोहला छग लेकर बोटे वन सगर हुए १४५-१४६। तब समय बाराणसी चर्चितपूर्वा उदकता श्रेष्ठ प्रपुत, कच एव प्र शुभिगाण से सुगोमि। कलिकर्मी बधुत प्रदना बलि दिवादि देने लगे १४७। कलय के जासो भाव से बडा हुआ स्वर्ण-विन्दु, पयमास में तारे के समान दमकता

सुर रंजन भजन महि भारा । जो भगवत लीन्हू भवतारा ॥
तो मैं जाड बैर हूठ करिऊँ । प्रभु सर प्राण तजैं भव तरऊँ ॥

अर्थात्—“खर और दूषण तो मेरे समान ही बलवान थे, उनके विषय भगवान के घोर कोन मार सकता है? इसलिए देवताओं की प्रसन्नतापं पृथ्वी का भार हरण करने के निमित्त यदि भगवान ने अवतार लिया है तो मैं जान बूझ-कर उनसे डर करूँगा, जिसमें उनके द्वारा मारा जाकर मेरी मुक्ति हो सके।”

इस प्रकार जिसकी जैसी भावना घोर परिस्थिति थी उसने उसी दृष्टि से श्री रामचन्द्र के अवतारत्व को समझा और स्वीकार किया। उन सबके विचारों का आधार यही है कि समार पर जब कोई बहुत बड़ी आपत्ति आती है और मानवता कष्टों में पीड़ित होकर कराहने लगती है तो उसके उद्धार के लिए किसी रूप में ईश्वरीय शक्ति का विशेष रूप से प्राकट्य होता है। श्री रामचन्द्रजी में उनके सम्पर्क में आने वाले सब व्यक्तियों को वैसे ही लक्षण दिखाई पड़ते थे, इनलिए सब ने अपनी-अपनी भावना के अनुसार उनके देवी रूप को अनुभव किया।

‘धर्म-पुराण’ के ‘पातालचण्ड’ में भी रामचन्द्रिण विस्तार पूर्वक दिया गया है। उनमें राज्याभिषेक के समय पर देवताओं द्वारा श्री रामचन्द्रजी को स्तुति करते हुए कहा गया है—

तत्र यद्दनुर्वेन्द्रनाशन कवयो वर्णमितुं समुत्सुका ।

प्रलये जगतां ततो. पुनर्ग्रससे त्व भुवनेश लीलया ॥

जय जन्म जरादि दुःसकैः परिमुक्ता प्रबलोद्धरोद्धर ।

जय धर्मकरान्वयाम्बुघो कृतजन्म जरामराच्युत ॥

यदा यदा नो दनुजा हि दुःखदास्तदा तदा त्व भुवि

जजोऽन्ययोऽशीश चरोऽपि सन्निभो स्वभावमाणास्थाय

निर्ज निजाचितः ॥

प्रथम अध्याय

ततः कलिकल्पेच्छगशांकरवालेन कालिताम् ।
 वाणीः सन्ताडितामनयामनयमसादनम् ।१।
 विशालयुषोर्जा तथा कविप्राज्ञानुगतका ।
 गार्ग्यशापोविद्यासाया म्लेच्छानिन्धुपुत्रसपम् ।२।
 कपोतरोमा काकाक्ष काककुण्डलादयोऽपरे ।
 बौद्धा. योद्धोदना पाता मुमुषु कलिकल्पिनिकं ।३।
 तेषां युद्धमभूद्गौर भयद सवदेहिताम् ।
 भूतेभ्योऽनन्दजनका हृषिकेशसकृद्दम् ।४।
 यज्ज्वरयसपाभो पतता हृषिकेशवः ।
 सन्तो केपरीवाला नासिप्रहा सुपाहिको ।५।

मूलको प्राले—किर कलिकल्पे ने कुछ म्लेच्छों को बराली द्वारा
 बीप विगा घोर युद्ध को दनवार के मार कर घम मोक दे भोज दिया
 १। दिगम्बरयुधनेन, कवि, प्राज्ञ, अनुगत, गार्ग्य, भार्ये घोर विद्यावादि
 न भी इन म्लेच्छों को यमपुरी पताया २। किा कपोतरोमा, काकाक्ष,
 काककुण्डला घोर युद्धोदय भादि योद्ध योद्धाणु कलिकल्पेना से युद्ध में
 सत्तर हुए ३। तत्र घोर सङ्ग्राम को देख कर ममी प्रशुती मपनीत हुए ।
 रक्त मुक्त साय कीनद से रणभूमि तक बर, यद् देव कर भूतकाय
 हणित हो गते ४। युद्धभयक में विरे हुए हृषिकेश, भरती और शविनी के

“आपके द्वारा जो दनुजेन्द्र (राघव) का विनाश हुआ है, उस अद्भुत कथा का समस्त नवविण सदैव उत्कण्ठा पूर्वक वर्णन करते रहेंगे । हे भुवनेश्वर ! प्रलय काल में आप ही सम्पूर्ण लोको को लीलापूर्वक प्रस सेते हैं । प्रभो ! आप जन्म घोर बरा घादिसे सदा मुरा है । आप सर्वोपरि शक्ति सम्पन्न हैं । हे परमात्मन् ! आपनी जब हो, आप हमारा उद्धार करे । हे नाथ ! जब-जब दानवी (दुष्टतापूर्ण) मन्त्रियाँ हमें दुःख देने लगे तब तब आप इस पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करे । हे प्रभो ! यद्यपि आप सब से ध्येष्ठ, अपने भक्तों द्वारा पूजित अन्नमा तथा सबके स्वामी हैं, तो भी अपनी माया का आशय लेकर भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते रहते हैं ।”

“अध्यात्म रामायण” में श्री भगवान राम का अनादित्य और सच्चिदानन्द स्वल्प अनेक स्थानों पर वर्णन किया गया है—

राम परात्मा प्रकृतेरनादिरा नन्द एक पुरुषोत्तमो हि ।

राम विद्धि पर ब्रह्म सच्चिदानन्द मह्यम् ।

सर्वोपाधि विनिर्मुक्त सत्तामान मगो ऽरम् ॥

“श्रीराम प्रवृत्ति से परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दधन, अद्वितीय एवं पुरुषोत्तम है । वे ही सच्चिदानन्द सभस्त उपाधियों से रहित, सत्तामान, वाणी और मनसे अगोचर परमब्रह्म हैं ।”

‘अनन्द रामायण’ में कहा गया है कि श्री रामचन्द्र के देवी परिशो का देखकर महाराज दशरथ ने उनसे एकान्त में कहा—‘तुम राधात् नारायण ही । तुमने भूमि का भार मिटाने के लिए मेरे यहाँ अवतार लिया है, ऐसा सब लोग कहते हैं । मैं भी तुम्हारी माया से मोहित हो रहा हूँ, अतः मुझे ज्ञानोपदेश देकर मेरे अज्ञान को दूर करो।’ तब अक्षयान राम ने उनको समार ही मृग मरीचिका का रहस्य समझाते हुए अन्त में कहा—

पूर्वत्वया तपस्तपं पुत्रस्व याचत मम ।

तस्माज्जातोऽरिम त्वत्तोऽह्म कौस्तयाया तृपोत्तम ॥

* आपने पूर्वकाल में तप करने मुझे पुत्र रूप में माँगा था ।

तेषां स्त्रियो रथाहता गजाहता विहङ्गमा ।
 समाहता ह्याहता करोष्टृपनाहना ।१।
 दोदधुं समापमुत्पक्वा पर्यापत्वमुखाथयान् ।
 रूपदत्तोर्जितवलयस्य पञ्चितताः ।१२।
 नानाम रणभुशाहवाः सन्नघा विशदप्रभा ।
 सङ्गभक्तिधनुर्वाणवलयात्ककराम्बुजा ।१३।
 स्वैरिण्योऽप्यतिकामिनीं पृथक्त्वयस्य पतिप्रभा ।
 ययुर्वोदधुं क्वत्ति संन्यै पत्तीनां निघनातुषा ।१४।
 मृदमाभवाङ्गनिश्रान्ता प्रभृताग्नायशासनात् ।
 सखात्पत्नीनां निघन किं मुदयोऽपि सेहिरे ।१५।

वन म्नेच्छो की म्पवती वलरतो, पतिघना मुवतो स्त्रियो यो
 मन्नाम-मुष को भीर उनके घायल को रामना छोड़ का कोई रथ व
 बड़ कर, कोई हाथो पर बड़ कर, कोई निहण पर बड़ कर, कोई पोंगे,
 लधि, जेट वर, कोई धैल पर बड़ कर मुद करमे के लिए घपने-प्रपने
 पति के पास पहुँचो ।११-१२। इहानि पनेक प्रकार के सज्जक प्रापुयल
 एव सन्नाहप्र पारण का म्ने मे । इनके हाथो के कठो के भाव ही पद्व
 भीर वाग भी मुनीमिद द ।१३। मुग्गा तावतवपयो बड़ स्त्रियो कई
 स्वैरिणी, कोई वार-विभाविनी प्रपवा कोई पतिघना थी । बड़ पति-
 विघात मे था, कुल हुई जे-पदां कस्कि मेना से मुद बनने ही घयपर हुई
 ।१४। कयोकि मनुष्य मिट्टी, काठ एव राख भी बगु कर भी शण देन
 म जपरा होजाते हैं इनो प्रकार म्ने प्रका के ममान पति का मरण
 सहन करना मुवतियो के लिए भी सपक नहो होना ।१५।

ता। स्त्रियः रथपतो गवाणुमिन्नात्प्राकुलितेऽपि प्रभा ।
 कुरवा पञ्चाद्य युधिरे क्वत्ति संन्येपृहातुषा ।१६।
 ताः स्त्रीरदोक्ष्ये ही सर्वे विस्मयस्मितमानसा ।
 क्वत्ति कयागत्व ते योया कयपरामासुरादरात् ।१७।

इसी कारण मैं आपके यहाँ कौशल्या माता के गर्भ से पुत्र रूप से प्रगट हुआ हूँ ।”

इस प्रकार भगवान राम ने तथा अन्य ऋषि-मुनियों ने समय समय पर 'रामावतार' के स्वरूप और उद्देश्य को प्रकट किया है ।

कृष्णावतार की महानता—

शास्त्रों में जितने अवतारों का वर्णन किया गया है उनमें प्रथम स्थान भगवान कृष्ण को मिला है और इस लिये 'कलामो' का हिसाब बतलाया गया है । भगवान की समस्त कलामो की संख्या १६ मानी गई है । अवतारों में से कोई ८ कला का कोई १० का, १२ का कहा गया है; पर भगवान कृष्ण 'पोदशकलावतार' के नाम से प्रसिद्ध हैं । भगवान राम का भी महत्त्व बहुत अधिक है और समस्त जगत उनका सम्मान करता है; पर भगवान कृष्ण ने जितनी अधिक पेचीदा समस्याओं को सुलभाया उसमें उनका महत्त्व बहुत बढ जाता है । श्री रामचन्द्रजी को मुसलत रावण का ही सामना करना पडा और उनका भातक समाप्त कर देने पर वे जीवन के अन्त तक शांतिपूर्वक राज्य-संचालन करके प्रजा को धर्ममार्ग पर चलाते रहे । पर भगवान कृष्ण माजीवन अन्धाय और दुष्टता का दमन करते रहे । एक के बाद एक धार्मिक शक्ति पर विश्वास रखने वालों का सामना करके लोककल्याण साधन करने में उनको अपनी समस्त शक्ति और समय लगाना पडा, उसका पूरा वर्णन कर सकना भी कठिन है । जन्म लेते ही कस की कूरता के लक्ष्य बने और बाल्यावस्था से ही उसके भयकर-कर्मा दूतों से संघर्ष करना पडा । किशोरावस्था में वे सब तरह से इतने शक्ति शाली बन गये कि षोडश से अशुपाइयों के महयोग से कंस का अन्त कर दिया । फिर वे उसके समुद्र जरासंध से भिडे जो समस्त देश का सम्राट बनने की योजना कर रहा था । शिशुपाल जैसे उच्छूल राजा को उन्हीने बरी समा में समलोक पहुँचा दिया और बालासुर की महम्मन्यता को नीचा दिला दिया । जब देखाकि इस प्रकार एक-एक की

कस्माद्भूयै समाप्राप्ताः केन वा भीविता वतः ।
 तमहं निहनिष्यामि यदि वा स्थातुरन्दरः । १५।
 इत्यधुनैव कल्किवाक्यं तेनोत्तरास्मिन्नमानसाः ।
 जयतुः पुण्डरीकाक्ष निकुम्भदुहितुः कथा । १६।
 शूलविष्णुप्रशःपुत्रः कुम्भकर्णस्मिन्नात्मवा ।
 कुम्भादरीति विद्याया गयनाद्धं समुत्थिता । १७।
 काल उज्ज्वलस्य भ्रष्टिपी विकञ्जजननी च सा ।
 द्विपालये शिरः कृत्वा पादौ च निषेवाचसे ।
 द्यौं स्वन पाथयन्तो विकञ्ज प्रस्तुतयास्तनी । १८।
 तस्या निष्वासवातेन विद्याया चवमागताः ।
 देवेर्नैव समानीताः सप्राप्तास्तथापदास्पदम् ।
 मुनयो रक्षसोघास्ते रक्ष तु च विपस्तु न ॥१९॥

प्रायः कहाँ से आ रहे हैं ? किससे इरे हुए हैं ? यह सब कृत्वात्
 मुझे बतानो, फिर कवि भाषणा का प्रकार करने वाला इन्द्र भी होगा, तो
 भी मैं उसे तब कर दूँगा । १६। पुण्डरीकाक्ष कल्किजी के नाम पर मुनिकार
 का प्रवृत्त हुए मुनियों के हृदय प्रफुल्लित हो गये और तब उन्होंने
 दैवगण निकुम्भ की पुत्री की कथा सुनाई । १७। मुनियों ने कहा—
 हे विश्वेश्वर के पुत्र ! हे प्रभो ! मुनिव, कुम्भकर्णों का एक पुत्र निकुम्भ
 था, उसको एक बन्धा कुम्भारो नाम की है । उसका वाक्य गयनात्मक
 से भी ऊँचा है । १८। वह काननाम नामक देव को पत्नी है, उसका पुत्र
 विक्रम है । वह रत्नगो भ्रष्टा प्रस्तुत द्विपालय पर और पाथ निषेव
 पक्ष पर रत्नकर विक्रम की स्वन पित्रा रहो है । १९। हे देव ! हम उसकी
 उपासनायु से उत्प्रेरित होकर लोक-वेद्या तथा यहाँ उपस्थित हुए हैं ।
 पर हम आपके अरुणाथय को प्रार्थ्य हो चुके हैं अतः अपने हमारी पीछ
 रना कीजिये । १९०

इति तीष्ठा अधः श्रुत्वा कल्किः परशुरथजयः ।

राम करते तो सारी भाषा खोत जायगी तब भी वाम पूरा न होगा, जो 'महानारत' रचा दिया और जिन के मतवाले राजाओं को पण्डित में ही तप्ट कराके शत्रु को उनके अन्तर्गत भाग से मुक्त किया ।

भगवान् कृष्ण की इस सोच-बत्वारा वृत्ति का समस्त जनता पर अपूर्व प्रभाव पड़ा और उनके अन्त करण से स्वतः यह भावना भर गई कि वे वास्तवमें तो ब्रह्म के और उन्होंने इसी हेतु जन्म ग्रहण किया था । किसी को यह शिवाय नहीं होता था कि कोई एक व्यक्ति ऐसे अनेक अमन्यम रामों को निन्द करके दिया करता है, इसलिए सबको ही निश्चय हो गया कि वे वास्तव अष्टपति भगवान् ही थे, जो सभार की रक्षार्थ प्रकट हुये थे और इस उद्देश्य की पूर्ति करके अस्तगत हो गये ।

महाराज दुषिष्ठिर के ईस्वर भक्ति और अवतार आदि के सम्यग्-मे अत्यन्त विनम्रपूर्वक पूजने पर एक क्षण भगवान् कृष्ण ने अपने प्राकट्य का प्रहस्य इस प्रकार बतलाया था—

इद मे मानुषं जन्म कृतमात्मनि भाषया ।

धर्मं सस्थापनार्थाय दुष्टानां नाशनाय च ॥

मानुष्य भावमापन्न मे मामुग्रहणत्पवत्रय ।

समारातहि ते मूढास्तिर्यग्योनिष्वनेकरा ॥

ये च मा सर्वभूतस्थ पश्यन्ति ज्ञानवक्षुषा ।

मद्भक्तास्तान् नदा युक्तान् मत्समीपं नयाम्यहम् ॥

स्थितयुत्सत्य व्ययकर ये मा ज्ञात्वा प्रपद्यते ।

अनुग्रहस्यान्यद्दृ त तं ससाराग्मोचयामि च ॥

“इस समय धर्म की स्थापना और दुष्टों का विनाश करने के लिये ही मैंने अपनी भाषा से मानव रूप में अवतार लिया है । जो लोग मुझे बेषत अनुग्रह ही समझकर अज्ञान का भाव रखेंगे, वे मूर्ख हैं और ससार के भीतर ब्रह्मकार तिगक योनियों में मटकते फिरते । उनके विपरीत जो ज्ञानदृष्टि से मुझे सब भूतों में विपत देखते हैं, वे

एक स्तन पायमति विकृञ्ज पुत्रमादरात् ।

न ज्ञानेऽप्यः शरीरेऽथ प्रपारु कठि वा भवेत् ॥१२१॥

वत चास्या निदानाचर्या इत्थुर्धुर्विस्मयान्विताः ।

कालिक परात्मा सम्नात् सेनासिं सहा यवो ॥१२०॥

हे प्रयो ! हे बन्धे ! इस परमेश्वरी नदी की उत्पत्ति, के विषय में कहते हैं, यमे मुनिने । एक कृपांशी नाम की राक्षसी के स्तनो व निरुना दुग्ध दूध हिमालय पर्वत के गिरजा द्वारा नदी रूप में गह रहा है ॥ १६ ॥ हे महामते ! यह घटी के पश्चात् इसी प्रकार को एक प्रथम पश्चिमकी नदी प्रवाहित होती । इसके पश्चात् यह नदी सुय कर लडाकार में परिवर्तित हो जायगी ॥ १७ ॥ मंगल सहित गुणोष्ण कालिकी मुनिगो के चलत युनकर बोलि — पहले, कैसे विस्मय का विषय है कि राक्षसी के स्तनो से निर्गम हुए दुग्ध से इसकी वधो नदी उत्पन्न होकर गह रही है ॥ १८ ॥ वह अपना एक स्तन पवन पुत्र विकृञ्ज को पिला रही है तो इनके देह का परिपालन क्या होता ? यह किस प्रकार जाना जा सकता है ? ॥ १९ ॥ उच सभी प्रायण्यो से भर कर शेष उठे— यही । इस राक्षसी में कितना कम है ? तदन्तर सेना से सुनिश्चित हुए कालिकी को उप राक्षसी को मोर बत चहे ॥२०॥

मुनिदक्षितमार्गो यथास्ते सा निदानचरो ।

पुत्र स्तन पायमनी मिरिगुद्धिर्न घनापमा ॥२१॥

दवास्तवात्तातिवातेन दूरक्षितव नद्विषाः ।

यस्या कुरुक्षितनाशान प्रमुखाः सिद्धसकुला ॥२२॥

पुत्रपोगपरिकृता मिरिगुद्धि रवि भ्रमाः ।

केनमूलमुपालम्ब्य हरिणा सैरते धिरम् ॥ २३ ॥

यूका इव न च प्यथा लुप्यन्तात्तदुपा भृशम् ।

सामालोक्य निरेमूँघिन मिरिलक्षरमाद्भृताम् ॥२४॥

कालिकः कमलपयाशः सर्वोस्ताऽनाह संनिकाद् ।

मयोद्विगान्मुदिशीनामत्तोद्यमत्तमपरिचक्षान् ॥२५॥

कीय पूर्वक प्रस्तुत गद किया ॥ २८ ॥ उक्त धीर निवार को मुक्त कर सभी प्रयत्नों से गये तथा सब हेतुगति सूँझना एवं पराधारी हो गये ॥२९॥ तब यह राक्षसी कुषोदरि मरने भयकर मुख को खोल कर अपने प्रस्थान के द्वारा ही रथ, भद्र, गवादि को खींच-खींच कर हटव जाने लगी ॥ ३० ॥

सनागस्यास्तदुदर प्रविष्टाः कर्षिकृता गृह ॥

यद्यस्तंमुखवातेन प्रविलसित पिपीलिकाः ॥३१॥

तदृष्ट्वा देवगन्धर्वा ह्राह्मणाहं प्रकर्षिणे ॥

तप्रस्था मुनयः येषुजेषुश्चाम्ये महर्षय ॥ ३२ ॥

निषेतुरन्ये दुःखार्ता ब्राह्मणश्च ब्रह्मवादिनः ॥

कन्दु शिष्टयोधा ये जहृपुस्तन्निशाचरा ॥ ३३ ॥

जगता कन्दन दृष्ट्वा मध्यानाश्रयानमभयना ॥

कल्किः कमलपत्राक्षः सुरारतिनिपूतन ॥ ३४ ॥

वारुणान् चैलजर्माभ्याः कर्मनैदीनदाक्षिभिः ॥

प्रजवाल्यादरमधेन करवाल्सं समाददे ॥ ३५ ॥

जैम रीत के प्रदशम खीचन से खीटियाँ धारणित होकर उसके मुख से बह्य जाती हैं, वैसे ही राक्षसी सेना के सहित मगधन कल्कि उस राक्षसी के मुख से प्रविष्ट हो गये ॥३१॥ यह देखा कर मर रक्षता-गन्धर्व दृष्टकार का उठे, मुनिगण से ७१ राक्षसी नी गाय विर भीर महर्षिगण कल्कि को को कुशल के विरहित मन्त्र-वच से सम्बन्ध दृष्ट ॥३२॥ वेदना प्रादुर्गुण दुःख तो प्रकृत हो गये, अमु-भक्त भीर रीत मने भीर राजस गला धारः से निपटान हो गये ॥ ३३ ॥ देव शत्रुयो के नाशक जगधान कल्कि ने अथ तपगुण विवर को इस प्रकार दुःखी देया तो वे स्वयं धरना हो समस्त करके गये ॥३४॥ घिर कल्कि ने वे राक्षसी के सब धन्यकार मय जगद से अपने धरना द्वारा धर्मि जगन को धीर धर्म तथा रथ के धार्यादि के द्वारा सब धर्मि को प्रवर्धित कर रूप में समन्वय बहुरा को ॥३५॥

एव भवान् केवल आत्मयोनिर्वात्मऽऽत्मतन्त्रो बहुधा
विभाति ॥

सृजस्वधो लुम्पसि पासि विश्व, रजस्तम सत्वगुणं
स्वशक्तिभिः ।

न बध्यसे तद्गुणबन्धभिर्वाजानात्मनस्ते नवच बन्धहेतु ॥
देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद् भधो न साक्षात् भिदाऽऽत्मनः
स्यात्

अतो न बन्धस्तव नैव मोक्ष स्याता निकामस्त्वपि
नोऽविवेकः ॥

आप जगत के कारण जगत-रूप और धारि पुरुष है । आपके प्रतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है न कारण है और न कार्य । हे परमात्मन् ! आपने ही अपनी शक्तियों से इसकी रचना की है । आप अपनी काल, माया आदि शक्तियों से इसमें प्रविष्ट होकर, जितनी वस्तुएँ देखी और सुनी जाती हैं, उनके रूप में प्रतीत हो रहे हैं । जैसे पृथ्वी आदि की रचना उनके कारण तत्वों से ही होती है, पर कार्य रूप में अनेक प्रकार के प्रतीत होते हैं, इसी प्रकार आप हैं तो केवल आत्मा तत्व में ही, पर कार्यरूप जगत में स्वेच्छा से अनेक रूपों में प्रतीत होते हैं । प्रभो ! आप रजोगुण, सत्वगुण और तमोगुण रूप अपनी शक्तियों से जगत्, जगत की रचना, पालन और सहार करते हैं, किन्तु उन गुणों अथवा उनके द्वारा होने वाले बन्धन में नहीं परते क्योंकि आप शुद्ध ज्ञान स्वरूप हैं । ऐसी स्थिति में आपके लिये बन्धन का कारण ही क्या हो सकता है ? आत्मा में किसी प्रकार की स्तूल अथवा सूक्ष्मदेह की उपाधि नहीं होती इसलिये उसमें न तो जन्म मृत्यु होती है, न कोई भेदभाव होता है । यही कारण है कि आप बन्धन और मोक्ष दोनों से परे हैं । हम अपने अज्ञान के कारण ही अपनी गति के अनुसार आप के बन्धनग्रस्त या मुक्त होने की कल्पना किया करते हैं ।'

अनुयायकवर्षीय राजस अम्रमाददे ।

तेनास्त्रं वा विरस्तस्य विद्वत् भूमावपातयत् ॥४४॥

अधिरावत घातुं चन्द्रं विरिःशृङ्गमिषदभुतम् ।

सपुत्रा राजसी हृत्वा पुनीनां वचनाद्विभुः ॥४५॥

अब विद्वत् ने अपनी माता की मृत्यु देखा देखी तो वह क्रोध से झटकर होकर निरस्त ही होना में युक्त गया ॥ ४४ ॥ उसके हृदय में हृदयियों की माला, सब धर्मों में धीरों के घातुपत्र, पातक पर महा-कर्ण का मुकुट और अशुभियों से विहो की मुद्रिकाएँ थीं ॥ ४५ ॥ यह अपनी माता के लोके से व्याकुल होकर कलिकवी को देना का उत्प्रेषण करने लगा । तब कलिकवीने उस पीछे वर्षों के राजस-नाशक को मारने के लिए ब्रह्मस्त्र प्रदत्त किया और उसमें ब्रह्मा बरतक काट कर टूटी कर पिसा दिया ॥ ४६-४८ ॥ इन प्रकार मुनिर्षे द्वारा निवेदन करने पर कलिकवी ने कुछ मरिच से चिन्तित किये के हवान उक्त राजस परंत पर युक्त बहिरा राज ही को मर कर दिया ॥४९॥

गङ्गातीरे हरिद्वारे निषास समकल्पयत् ।

देवानां कृपुणासारेषुं निस्तोषं सुवृद्धितः ॥४६॥

निनाम तां निनाम तप कल्कि परिभवावृतः ।

प्रातर्ददर्श गङ्गापास्तोरे मुनिगणान्महून् ।

तस्याः स्वान्प्रान्तविष्णुं राजमना दशोऽभुजान् ॥४७॥

हरिद्वारे गङ्गातटनिष्ठपिण्डारकवने ।

असन्त श्रीमन्त निवृत्तकृत स मुनिगणाः ।

एते स्तुत्वा स्तुत्वा विधिवदुदितं जन्मूतनमा ।

अपश्यत् कल्कि मुनिजलगणा द्रष्टुमयम् ॥४८॥

महाशर ऊक्षीते देवताओं का। पुन-शृष्ट और मुनिों के स्तोत्रों से मने प्रभार प्रभित होये हुए नहीं चले कर हरिद्वार से गङ्गा की के

इसी प्रकार जब भगवान् कृष्ण काशयवन को पोंछा देकर मुचुकुन्द के पास ले गये और उसे भस्म करा दिया तो मुचुकुन्द द्वारा नाम, वन, निवास स्थान आदि पूछने पर अपना परिचय देते हुए उसमें अपने ईश्वरत्व को पूर्ण रूप में प्रकट किया है-

जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग महसदा ।
 न क्षयन्तेऽनुसम्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥
 क्वचिद् रजसि विममे पाशिवान्युरुजन्मभिः ।
 गुणकर्माभिधानानि न मे ष्मन्तानि क्वचित् ॥
 काशययोपपन्नानि जन्म कर्माणि मे नृप ।
 अनुक्रमन्तो नैवान्त गच्छन्ति परमपंथः ॥
 तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व सदतो मम ।
 विज्ञापितो विरिञ्च न पुराह धर्मं गुह्ये ॥
 भूमेर्मारियमास्यानाम सुराणां क्षमाय च ।
 अवतीर्णो यदुकुले गृह्णान्तक दुन्दभे ॥
 वदन्ति वामुदेवोऽत वसुदेवसुत हि माम् ।

“हे मुचुकुन्द ! मेरे हथारो वन, कर्म और नाम हैं । वे अनन्त हैं इसलिये मैं भी उनकी चिन्ता करके नहीं बससा सकता । यह सम्भव है कि कोई पुरुष अपने जन्मों में पृथ्वी के गुणकणों की गिनती कर सके, परन्तु नरे जन्म, गुण कर्म और नामों का कोई कनो किसी प्रकार नहीं गिन सकता । सनक-सनन्दन आदि परमपिताएँ मेरे निकलप्रसिद्ध वन और जन्मों का वर्णन करते रहते हैं, परन्तु अभी उनका पार नहीं पाते । ऐसा होने पर भी मैं तुमको बतसाता हूँ कि पहले ब्रह्माजी ने मुझसे धर्म की रक्षा और पृथ्वी का भार बने हुए असुरों का संहार करने के लिये प्रार्थना की थी । उन्हीं की प्रार्थना से मैं ने यदुर्वस मे वसुदेवजी के यहाँ भवचार ग्रहण किया है । अब मैं वसुदेव जी का पुत्र हूँ, इसलिये मुझे वामुदेव कहते हैं ।”

तृतीय अध्याय

सुस्वागतान्मुनीन् दृष्ट्वा कल्कि परम पर्यविभम् ।
 पूजयित्वा च विविधमुत्तमोत्तमानुवाच तान् ॥१॥
 कस्य सूर्यसङ्घाता मम मायादुर्गतिता ।
 तीर्थाटनोत्सुका लोकाश्रयाशामुपकारका ॥२॥
 यत्र लोके पुण्यवन्तो मायवन्तो यशस्विनः ।
 यत्र कृपाकटाक्षेण युष्माभिरवलोकिता ॥३॥
 ततस्ते यामदेवर्जनके सद्यो यातवो भृगु ।
 पराशरो नारदोऽम्बरधामा रामः कृष्णश्चित्त ॥४॥
 दुर्वासा देवतः कण्वो वेदप्रामिथिरङ्गिराः ।
 एते चान्ये च बहवो मुनयः तीर्णतमना ॥५॥
 कृत्वापि मरुदेवापो च द्रसूयकुलोद्भवा ।
 राजानो हो महावीरो लपस्याभिरतो पिरम् ॥६॥
 कञ्चु प्रहृष्टमनस कल्कि कल्कयिनाशनम् ।
 महोदधेऽप्युत्तरगत विष्णुं सुरमण्यु यया ॥७॥

परम पर्यविभ कल्किजी ने उन मुनिगण को कुछपूर्वक यहाँ
 धामे हुए देखकर स्तब्धत, आश्चर्य और विचित्रत्वं पूजन करके उनसे
 बोले ॥१॥ सूर्य के समान प्रायण्ड वेभरयो, तीर्थाटन में उत्सुक एवं
 दोनों मोर्छों के कारणों रूप उपधार की कामना वाले प्राय कोन है ?
 जो मेरे तीर्थायतन यहाँ कथारें है ॥२॥ प्रायके द्वारा कृपा-कटाक्ष
 पूर्वक रहें जिन के मैं आज दृष्ट लोक में अपने को पुण्यवान्, मायवान्

जब वाणामुर ने श्री कृष्ण के शीघ्र प्रतिरुद्ध को पचवद्ध कर लिया तो उन्होने वाणामुर की राजधानी सोरिगतपुर पर आक्रमण किया और बड़े-बड़े प्रतिरुद्ध दैत्यो तथा उनके सहायक भगवान शंकर के गणों को हरा कर भगा दिया । जब वे वाणामुर की भुजाओ को काटने लगे तो भगवान शंकर ने स्वयं वहाँ आकर उनसे वाणामुर की रक्षा की प्रार्थना की । उस अवसर पर शंकरजी ने श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुं कहा था ।

त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाचमये ।

य पश्यन्त्यमलात्मान् आकाशमिव केवलम् ॥

नाग्निर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौ रीर्यमाशा धृतिरङ्गा
त्रिर्धर्वा ।

चन्द्रो मनोयस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठर भुजेन्द्र ॥

तवावतारोऽयमकुष्ठधामन् धर्मस्य गुण्यै जगतो भवाय ।

वद ध सर्वे भवतानुभाविता विधावयामो भुवनानि सप्त ॥

त्वमेक आद्य पुद्गलोऽद्वितीयस्तुर्यै स्वदृगघेतुरहेतुरीश ।

प्रतीगसेऽपि यथाविकार स्वमायया सबगुण प्रतिरुद्धयै ॥

यद्येवसूर्यं विहितरश्मिभ्या स्वया छायां च रूपानि च

सच्चकारित ।

एव गुरोनापि, हतो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणानश्च भूमन् ॥

(स्कन्द १० अ० ६३)

“प्रभो ! आप वेदमन्त्रो मे तात्पर्य रूप से छिपे हुये परम ज्योति स्वरूप परब्रह्म है । गूढ हृदय महात्मापण आपके आकाश के समान सर्वव्यापक और निर्विकार स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं । आकाश आपकी नाभि है, अग्नि मूत्र है, जल शीर्ष है, स्वर्ग तिर, विद्याएँ वान और पृथ्वी अरण्य हैं । अन्द्रमा धर्म, सूर्य नेत्र, और मैं (शिव) आपका पहलवार हूँ । समुद्र आपका पैर है और इन्द्र भुजा स्वरूप है । हे प्रसन्न ज्योतिस्वरूप परमात्मन् ! आपका यह अवतार धर्म की रक्षा और

नोद कर दिनम पूर्वक धने वस का धन-वर्णन करने लगे ॥ १२ ॥

सर्वैस्त्रिंशत्पराभ्यामि धन्तुर्वाग्मिहूदि स्थिति ।

तद्याजया सर्वमेतत्कथयामि श्रुतु प्रभो ॥१३॥

सर्व नामैरभूद्वद्भ्या भयो विस्तस्तुतोऽभवत् ।

ततो मनु-वस्तुतोऽभूदिववाहुः सत्यविक्रम ॥१४॥

गुदनाथ इति स्वातो भाग्धातश्च तस्त्वतोऽभवत् ।

पुशुस्तस्त्वस्तुतोऽभूदवरण्यो मह्यमति ॥१५॥

थसदसु पिता तस्माद्धनंस्वस्वस्वस्वस्त ।

निष्कृस्वस्तुतो घीमान्हरिश्चन्द्र प्रतापवान् ॥१६॥

हरि तस्त्वस्तुतस्त्वस्माद्भूकस्तस्त्वुतो वृकः ।

स्तस्त्वुत सगरस्त्वस्त्वस्मात्समुद्रास्तोऽभुवाम् ॥१७॥

मद बोले— हे प्रभो ! मैं आप ली धन्तर्वाग्मी एव धर-धर ।

निर्वाण करने वाले हैं आपके हर कुछ बात है । मैं आपके भाता के

धनुनाम सब कथा हैं, उसे सुनिये ॥१३॥ आपके नादि कथन से ही

ब्रह्मा को उत्पन्न हुए हैं । ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, परीषि के मनु धीर

मनु के साथ विक्रम इत्यादि हुए । १४। इत्यादि का पुत्र मुदनाथ,

गुदनाथ का भाग्यवत, मान्यता का पुत्र पुशुस्त और पुशुस्त का पुत्र

थसदस्य हुआ ॥१५॥ थसदस्य का थसदस्य, थसदस्य का स्वर्ध्व,

हर्षध्व का महता, महता का निष्कृ हुआ तथा निष्कृ के पुत्र मह्य-

प्रतापी तथा हरिश्चन्द्र हुए ॥ १६॥ राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र हरिश्च,

हरिश्च का मरु, मरु का वृक, वृक का सगर, सगर का प्रसर्पका और

प्रसमना का पुत्र व सुपथ हुआ ॥१७॥

ततो विलोपस्तस्त्वो भगोरथ इति स्मृतः ।

येनातीतः सन्द्हीयं स्वाता भगोरपी भुवि ।

स्तुता नुता पुजितेष तव पादमुत्तमैः ॥१८॥

भयीरथास्तुतस्तस्या भामस्तस्माद्भूद्वली ।

सिन्धुदलीपसुतस्तस्मादापुताः पुस्ततोऽभवत् ॥१९॥

मृगक संस्कार किया ॥३७॥ भीताओं के विमोचन के ध्याकुल हुए धनुषीयों
 से घोंट खीशाए लहराए के महित तब-पश्चिम प्राप्त मानर सेना से
 मिले और समझी सूर्य पुत्र क्षत्रि के छोटे भाई मुनीश द्वारा भेजे हुए
 लक्ष्मण से भेंट हुई ॥३८॥

ततस्तदुदित मत्त पञ्चनपुत्रसुप्रोचयो-

रतुश्लाघिपतिभेदन निजतृपासलस्यापितम् ।

निविच्य ध्वजसायकं निजसदाप्रिय वातिलम्

निहृत्य हरिभूपतिं निजसत्त्वं त रामोऽकरोत् ॥३९॥

अयोत्तरनिर्मा हरिजनकजा समन्वैपयन्

अटायुसहनोर्ध्वतैर्जलनिधि तरन्वायुज- ।

दशाननपुरं विजयलक्ष्मणं समानन्दय

अशोकवनिशरश्रेमे रघुपति पुन- प्राययी ॥४०॥

ततो हनुमता बलादापितरक्षायां नाथात्

उवनज्ज्वलनसकुलज्जलितदग्धलक्ष्मणपुरम् ।

निविच्य रघुनायको बलनिधि दया दोषयन्

सबन्ध हरिभूपतं परिवृत्तो नरोत्तमवर- ॥

अमञ्जल पुरपत्तन विविधक्षत्वां दुर्गजभम्

निदाचरपतो- ऋषा रघुपतिः कृतो महामतिः ॥४१॥

किर सुधीय और हनुमान की वार्त्ता पर उन्होंने लाल के सान
 लूयो की कूट विराथा और बालि का वध करके सुधीय को जानरों का
 राजा बना कर उसके मन्त्रालय स्थापित की ॥३९॥ फिर पञ्चनपुत्र
 हनुमान सीता की खोज में गये और अयोध्या की प्रेरणा पर लक्ष्मण से
 स्थित अयोध्या बाटिका पहुँच कर उन्होंने सीताजी को राम-सद्वेष के
 धामनिदा किया और रामचन्द्रजी के पास मौट प्राये ॥ ४० ॥ फिर
 श्रीरामचन्द्र ने हनुमानजी के द्वारा अपने ही राजगीर का पारा माना और
 लहर का जलाया जाना मुका तो के शिकायों द्वारा अमृत पर सेतु बंध

“हे व्यासजी ! मेरे विषय में लोगो की अनेक प्रकार की धारणा है। कोई मुझे ‘ब्रह्मि’ कहते हैं, कोई ‘गुरु’ कोई ईश्वर’ कोई ‘धर्म’ या ‘धर्म’। किन्तु के मन में मैं भय रहित मोक्षस्वरूप हूँ, कोई भाव (सत्त्वस्वरूप) मानते हैं और कोई कल्पारामय मदात्मि बनता है। इसी प्रकार दूसरे लोग मुझे वेदान्त प्रतिपादित ‘मद्वितीय सनातन ब्रह्म’ मानते हैं। किन्तु श्री वास्तव में सत्तास्वरूप और निर्विकार है, जो दिव्य सच्चिदानन्द विग्रह रूप है, तथा जिसका रहस्य वेदों से भी छिपा हुआ है, अपने उस पारमार्थिक स्वरूप को ध्याव तुम्हारे सामने प्रकट करता है।”

यह कह कर भगवान ने व्यासजी को अपना बालवृष्ण स्वरूप दिखलाया, जिसने वे एक दिव्य वातक के रूप में गौर वातक और कन्याधोले पिरे हुए एक बदन्य वृक्ष की जड़ पर बैठे हुए थे। भगवान ने कहा—

यदिह मे त्वया दृष्ट रूप दिव्य सनातनम् ।

निष्कल निष्क्रिय शान्त सच्चिदानन्द विग्रहम् ॥

पूर्णं पद्मपनामाक्ष नात् परतरं मम ।

इदमेव वदन्त्येते वेदा कारणकारणम् ॥

मत्स्य नित्य परमानन्द चिदधन शाश्वत निवम् ।

“हे मुनिवर ! तुमने जो इस दिव्य सनातन रूप का दर्शन किया है, यही मेरा निष्कल, निष्क्रिय, शान्त और पूर्ण सच्चिदानन्दविग्रह है। इस कमल मोषण स्वरूप से बड़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट तत्व नहीं है। वेद इसी स्वरूप का दर्शन करते हैं और यही कारणों का भी कारण है। यही सत्य, नित्य, परमानन्द स्वरूप; चिदानन्द, सनातन निवतत्व है।”

आदि पुराण में भगवान का भक्ति-तत्त्व
कथन—

‘आदि पुराण’ में भक्तिमार्ग और भक्तों की महिमा का कथन

ततो दक्षभुरो रणे मन्वराण्यपतीश्वरे-
 रत्नह्वयुक्तकोटिभिः पतितृणो युषोपावृष्टः ।
 कपोलवत्क्षमूपतेः पतिमन्त्रदिव्यायुध
 रघूदहननिन्दित सपदि सङ्गतो दुर्जय ॥४५॥
 दशाननमर्षिः ततो विधिश्चरस्मयावद्विभम्
 महाकलपरायण गिरिमिवाचल समुद्ये ।
 जघान रघुनायको तिस्रिन्नायकैःपदतम्
 निष्ठाधरक्षमूपति प्रवत्तनुम्भकर्णं ततः ॥४६॥
 तयोः स्वर्तरे शरैर्गमनमच्छयाच्छादितं
 बभौ धनुःशतम् मुखरमत्तद्विद्वन्निभम् ।
 धनुर्गुणामहाशानिध्वनिभिराकृत मूलम्
 भयङ्कुरनिर्गतं गधुपतेःश्च रक्ष पते ॥४७॥

फिर रावण अपने करोड़ों सैन, स्व, मन्त्र पृथक् तथा पदाति
 सैनिकों के सहित रणभूमि में उपस्थित हुआ और अपने कपोलवत्
 युधोत्तम से भी श्यामी दिव्यायुध धारी श्रीराम से योग यशाम किया
 ॥४५॥ अब रघुनायक श्रीराम ने दक्षायी से वार से प्रथम हुए महा
 पराक्रमी और कुछ शत्रु से अपने के समान प्रतिष्ठित रहने वाले राक्षसपति
 रावण और समस्त माई कुम्भकर्ण को अपने शक्ति से दह कर दिया
 ॥४६॥ फिर राम-रावण से बह युद्ध में तीव्रता वाली में गगन महल
 उभी प्रकार प्राणदायित हो गया, जिहा प्रकार मैदानों को घटा में हो
 बात है । शत्रु के परस्पर टकराने से जो शब्द युक्त शक्ति की
 विकारायी निकलनी थी, वह एसी प्रदीप्त श्रेणी थी, जैसे गर्जना करती
 हुई बिजली वमक उठती है । विद्युत्-गर्जन के समान धनुष की टकार से
 अत्यन्त हुई बलाभूमि अत्यन्त भयानक लगने लगी ॥४७॥

ततो धरशुक्लास्या विविश्ररामवायुो जना
 पपात भूवि राणुस्त्रिदशामाधविद्रावरपुः ।
 ततोऽर्जुनुकुर्वी हरिर्ज्वलनमरक्षिता जानकी

काले हुए भगवान् कृष्ण ने कहा—

नाह वसामि वैकुण्ठे योगिना हृदये न च ।

मद्भवता यत्र भावन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

‘हूँ नारदजी ! मैं न तो वैकुण्ठ में वास करता हूँ और न योगिना के हृदय में ही रहता हूँ । मेरे भक्त अहाँ मेरा गुण-कीर्तन या स्मरण करते हैं मैं वहीं रहता हूँ ।’

इस एक ही श्लोक में भगवान् ने उस तत्त्व को प्रकट कर दिया है जिसको कोई तीन काल में नहीं कर सकता । वैकुण्ठ के योग्य धर्म-वाचन भरा रो-भाषन न्यूनतमिक साधारणता से सम्बन्धित है और इनमें मनुष्य भी कुछ कम करता है वह कम प्राप्ति की इच्छा में होता है । पर भगवान् की निष्काम भक्ति एक ऐसी बीज है जिसमें भला-दुरा कोई उद्देश्य नहीं होता बरन्-भक्ति-भक्ति के निये ही होती है, और उस मार्ग पर चलने वाला निश्चित रूप से जीवन को मफल कर लेता है । भक्त के लिए भगवान् हर जगह और हर रूपमें उपस्थित रहते हैं । उनको वैकुण्ठ में, या मन्दिरों में या किसी विशेष विधि के द्वारा ही प्राप्त करने की चेष्टा आवश्यक नहीं है । वे भक्त मात्र हैं और इस लिए सर्वत्र और सभी स्थो में उनको पाया जा सकता है ।

मविष्य पुराण में अवतार कथन—

महामारत युद्ध के पश्चात् जब महाराज युधिष्ठिर-राज्यसंचालन कर रहे थे, एक समय व्यास, भारद्वाज आदिव्य आदि प्रनेक मुनि उनके पास आये । उस समय पर उन्होंने धर्म सिद्धान्त की जानकारी की जिज्ञासा की तो श्री भ्यासजी ने उन्हें बतलाया—

पार्श्वोऽस्यसे हृषीकेशे केशवे कैशिसूदने ।

कन्यचित्कथने विद्वा तत्र सर्परिवर्तते ॥

कर्ता पालयिता हर्ता अपता यो जगन्मय ।

अत्यक्षादर्शी सर्वस्य घमोन्वदपदयसो तत्र ॥

भगवान् कैशिसूदन श्रीकृष्ण यहाँ हमारे सामने तब के

सहासुतसमाः प्रियेनिजस्यैः प्रजा रञ्जयन्

निजा रघुपतिः प्रिया निजमत्तोभवेर्मोहयन् ।

मृगोन्मत्तममृगोऽप्यजटाश्रितेनान्तरं-

पानेविपुलदशिशोरसूलवाजिमोक्षेत्समि ॥१४॥

किर अपने जनो में पावुस होकर हुए वे कामर हुए मरमनो को तात्पर्य ही और माताको की काजा से अपने पिता के राज्य निरुत्तर पर अनिपिक्त हुए । जब समय आगच्छ आदि महविषो न उनका कामयेक दिया और तब वे लोकी के रसमी थीराम इन्द्र के पर्याप्त दोषा पते लगे ॥१४॥ किर प्रजाकन धन से सम्पन्न हो गए, द्विजवर तत्रत्या में प्राप्त रहने लगे । सभी वरक्षर प्रेम-भाव पूर्वक भव-रहित चित्त से रहते हुए धन-धनने धर्म में तावर हो गए । मेरी द्वारा समय पर कृष्टि होने से पृथिवी क्षुद्रित हो गई । इस प्रकार प्रत्येक पराक्रमी थीराम के राज्य को प्राप्त होने से सम्पूर्ण विश्व सम्पन्न हो अनुसानी हो गए । ५२॥ मन्वन्त धर्मराम अपने मुक्तो से प्रजा को प्रकल सधर और अपनी प्राण्ड्रिया नीताओ के मन की भी धाननिदर करने लगे । उन्होंने महविषो के मदयोग से बहुत प्रकार की दक्षिणा और शान-वसादि के द्वारा देवताओ को प्रकल करते हुए तीन धनवनें प्रकल निविन्द लय से पूर्ण किये । इस प्रकार उन्होंने दन हजार वर्ष तक राज्य किया ॥१५॥

सह किमपि क्षारण मनसि भावयन्भूपति-

जंही जनकजा बने रघुवरस्तदा निष्कृणाः ।

ततो निजमत समत्सभान्यत्नचेत, सुतो

निडाभ्रमभ्रुदारधीरभुपतेः प्रिया 'दुःखिताम् ॥१५॥

ततः कुसलतो सुतो प्रमुपुये धरित्रीसुता

महाबलपराक्रमी रघुपतेर्मोहापायनी ।

स तामपि सुतान्विता मृनिवरस्तु रामप्रतिके

समर्पयदनिदिता सुरमरे, सदा धनिदताम् ॥१५॥

उपस्थित हैं। इन के रहते हुए धर्म के सम्बन्ध में कोई धन्य क्या कह सकता है? वे तो सकार के कर्ता-हर्ता, पासन कर्ता और स्वयं ही जगतस्व है। ये धर्म के प्रत्यक्ष दृष्टा हैं। इस धर्म के सम्बन्ध में ये ही मुझ को सब कुछ बता सकते हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण—

ब्रह्मवैवर्त पुराण में राधा कृष्ण के युगल स्वरूप की उपासना को सर्वोच्च मान कर उसका दिग्ग रूप में बड़े विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। पर उसमें भी भगवान को सबका कर्ता और सर्वशरणी मान हर प्रद्वतार के स्वरूप का वर्णन पाया जाता है। जब नन्द बाबा भगवान कृष्ण के यशुरा में ही ठहर जाने के कारण उनके विषय में अत्यन्त कातर हो रहे थे, तब भगवान से स्वयं उनको बतलाया था—

निबोध नन्द सानन्द त्यज शोकं मुद लभ ।
 ज्ञान गृहाण महत्तं ब्रह्मणो पुरा ॥
 यद्यदत्त च क्षेपाय गणेशायेश्वराय च ।
 दिनेशाय मुनीशाय योगीशाय च पुष्करे ॥
 यमैव मायया सर्वे सानन्दा विषयेषु च ।
 देहत्यागे विषण्णाश्च विच्छेदे बान्धवस्य च ॥
 मद्भवतो भक्तिभुक्तश्च मद्याजी विवितेन्द्रियः ।
 मन्मन्धोपासनश्चैव मत्मेवानिरत शुचिः ॥
 मद्मयादाति वातोऽप्य रविभाति च नित्यशः ।
 भाति कादो महेन्द्रश्च कालभेदे च वर्षति ॥
 वह्निर्दहति मृत्युश्च चरः सैव हि जन्तुषु ।
 विभति वृक्षः कालेन पुष्पाणि च फलानि च ॥

हे नन्द बाबा ! मेरे बच्चों को भानद पूर्वक सुनो, शोक को त्यागकर वरों को हृदय में स्थान दो। मैं जो विश्व ब्रह्माण्ड सम्बन्धी रहस्य बतलाता हूँ उसे सुनो और समझो। पूर्वकाल में यही ज्ञान मैंने

है । यह सब नामक सुपंग ही नरेण ही । तुम्हें यह विदित ही है कि मैंने
 यज्ञाधी द्वारा प्राणित होकर ही यह देह धारण किया है । १२४। कीटक
 में बोझो का दहन किया और जो तुम्हारे प्रति शपथक उपदेव करने
 में तत्पर रहते हैं तथा जो वेणुज नहीं है, उन्हें मरु करने के लिए मैं
 मेरा सक्ति विचार कर रहा हूँ । अब तुम भी मर-रहित होकर धूम्रों
 पर गनिरीत रहो । १२५।

का भीतिस्ते यथ मीहोऽस्ति यज्ञदानतपोव्रतैः ।
 सहितैः सचर विभी । मयि सख्ये वयुपस्थिते । १२६ ।
 मह यासि त्वयामच्छ स्वपुनर्वीर्यैः सह ।
 विद्या जगदर्थं त्व धनुनिप्रहार्यं जगत्प्रिय । १२७ ।
 इति कर्त्तव्यं त्वा श्रुत्वा धर्मं परमहर्षितः ।
 गन्तुं कृतमनित्तैत स्यात्प्रियतममुं स्मरन् । १२८ ।
 सिद्धयने निजतानवस्थात्प्र दिनपरम तः । १२९ ।
 सप्रदः साधुसखात्वेदमहामहारथः ।
 नानाशास्त्रान्देवगोषु स कल्पतरुकार्मुक । १३० ।
 सप्तस्वरावबो भुदेवसारथिर्विन्ध्याश्रयः
 क्रिय भेदवतोपेत प्रवर्षोपमर्मानायकः । १३१ ।

हे धर्म ! मैं स्वयं उपस्थित हूँ, सधुप भी या ही पुत्र है, सब
 तुम मयमोठ क्यों हो ? तुम क्यों मोहित क्यों हो रहे हो ? अब तुम
 यत्न, दात और सत के सहित धूम्रों पर स्वच्छ विचारण करो । १२६।
 हे बलीप्रिय ! तुम अपने पुत्र एव शंभवी सहित धनुषों के विग्रह और
 शक्तिजय के इन्द्रेण से प्रत्यान करो । मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा । १२७।
 शक्तिजय के यह वचन सुन कर धर्म प्रशस्त मानवित हुआ और
 अपने प्राणिकय पर स्मरण करता हुआ, शक्तिजय के साथ प्रस्थान से
 तत्पर हुआ । १२८। उस समय वधुने शपथी स्त्री को सिद्धायन में स्थित
 किया । १२९। धर्म का वधु-वेग साधु-नरकार था । देव और वधु महारथ
 के हर के शकार हुए तथा विविध धारणों के प्रत्येक ने धनुष का रूप
 धारण किया । १३०। वेद के सान्त स्वर उसके रथ के प्रथम हुए । शायद

ब्रह्मा, भेष, शार्ङ्ग, सहेष, विनेश, नुनीशा और योगीशों को भी प्रदान किया था। यह मेरी मामा ही है जिसके प्रभाव से सब प्राणी सत्कार के गुणों को प्राप्त करके प्रपन्न होते रहते हैं और देह त्याग तथा कुटुम्ब-परिवार से छूटने का समय आता है तो विषाद करने लगते हैं। पर जो मेरा भक्त परमात्मा-तत्व को समझना होगा, मेरे भजन में लगा रहता होगा, इन्द्रियों को दम में रख कर मेरी उपासना करना होगा, निरन्तर मेरी सेवा में लगन होगा, वह सदैव परम पवित्र माना जाएगा और कभी किसी कारण से दुःखी नहीं हो सकेगा। प्राण धरती तरह विश्वास करने की विद्या का निगन्ता मैं ही हूँ। मेरे भय से ही वायु चलती है, सूर्य और चन्द्रमा प्रतिदिन प्रकाशित होते हैं, इन्द्र समय पर वर्षा करते हैं, प्राण चलती है, मृत्यु सब जीवों को हटानी चाहती है और वृद्ध मरणानुसार पुण्य फल प्राप्ति धारण करते हैं।"

ग्रहमात्मा च सर्वेषां सर्वज्ञानात्मकः स्मृतः ।

मनो ब्रह्मा च प्रकृतिर्बुद्धिर्यथा मनात्मनी ॥

प्राणा विष्णुश्चेतना सा पद्मा तु चाधिदेवताः ।

मधिस्थिते स्थितः सर्वे गतास्तेऽपि गते मयि ॥

अस्माभिर्यच्च विना देहं सद्यः पतितं निश्चितम् ।

पाङ्गामूनो विनीर्यच्च पचभूनेषु तत्क्षणम् ॥

उर्वं देहे प्रक्षिप्तोह न लिप्त उर्वं कर्मसु ।

श्रीवन्मुक्तरथं मद्भ्रवतो जन्ममृत्युजटाहर ॥

“मैं सर्वेश्वर पूर्ण ज्ञान तत्त्वका आत्मा हूँ। ब्रह्मा मन है, मनात्मनी प्रकृति बुद्धि है, प्राण विष्णु है, तथा चेतना उसकी अधिष्ठात्री देवी सदसी है। शरीर में जब तक मैं चेतन आत्मा रूप से स्थित रहता हूँ, सभी सब वह भी स्थिर रहता है। मेरे चले जले पर वे भी सब हट जाते हैं, क्योंकि सब मेरे ही का है। इन सबके चले जले पर देह तत्त्व विस्मर हो जाता है। शिन पच भूतो से वह बना होता है वे भी समानानुसार अपने मूल तत्वों में विखीन हो जाते हैं। इस प्रकार मैं

समयादमप श्लेषो भयं तृकमुपाययी ।
 निरणो मुदमाताय युषुधे विविधापुधे । ३८०
 प्राविशेगिन च ध्याधिः छेमेण च जलोयसा ।
 प्रथयेण तथा ग्नातिजरा स्मृतिमुपाह्वयद् । ३८१
 एव वृत्तो महापोरो मुदः परमदाहसुः ।
 त इष्टमागता देसा यद्वासा. से निभूतिभि. । ४०१
 मह धर्मास्य काम्बोबेपुंशुधे भोमविक्रमेः ।
 देवाधिः भमरे नीर्नैवंदरेस्तदगशोरवि । ४११
 विदाह्युभूपास पुलिन्दै श्वपचं सह ।
 युषुधे शिविधे जाशेरक्षं शिर्वैमेहाप्रभः । ४२१
 कस्तिक कोरदिकोकाम्यं चाहिनीशिवंरापुधे ।
 तौ तु कोकविकोको च ब्रह्मणो वरदस्ती । ४३१

श्लेष के साथ अमप और भय के साथ तृक का युग होने लगा ।
 निरण ने श्रीवि के साथ दाहर तम पर शरबातां से प्रहार किये । ३८०
 प्र वि से योग का, ध्याधि से योग का, ग्नाति से प्रथम का और जरा से
 स्मृति का ब्रह्म होने लगा । ३८१ इस प्रकार धारणत धार एवं दाहस्य
 तथम जगत्स्थित हो गया । प्रथमदि देवाण्य अपनो-अपनी विभूतिभो के
 सहित नभमहदन में स्थित होकर मुद देखने लगे । ४०१ भीषण पराक्रमी
 अथ और काम्बोबो से मय का युद्ध हुआ । देवाधि ने नील और बर्वा
 की सेवा से मद्राम किया । ४११ विदाह्युभू वरेण पुलिन्द और
 श्वपचदि से महा पराक्रमी शिविध अथने दिव्यारत्नों के सहित विदे हुए
 से । ४२१ कोक-विकोको के साथ मय मगवान् कस्तिक खेपठ आशान्त
 भेकर देना सहित युद्ध में तत्पर हुए । यह कोक-विकोको ब्रह्म जो से
 पर प्राप्त करने के कारण धारणत प्रहकारो हो गए थे । ४३१

प्रावरी दानवथेष्टो मत्तो युद्धविचारदो ।
 एकह्यो महासद्वो देवाना भयवदन्तो । ४४१
 पदातिकी गवाहस्तो कजाह्यो जतिनी दिगाम् ।

आत्मा रूप से समस्त शरीर में व्याप्त रहता है, पर ऊपर से डाटा किये जाने वाले कर्मों से निर्निष्ठ रहता है। मुझे इस रूप में जानने वाला मेरा भक्त जोधन्मुक्त होता है और उस पर जन्म-मरण, मृत्यु का कोई दुःखभाव नहीं पड़ता।”

विष्णु पुराण में ऋकूरजी का भगवद्दर्शन-

ऋकूरजी जब वन की घाटी से कृष्ण और बलराम को वृन्दावन से सिवाकर मयूरा धा रह थे तो मार्ग में सन्ध्या-वन्दन के निर्मित्त वे यमुना में स्नान करने को उतरे। वहाँ उनको शेष शंखा पर भगवान् कृष्ण के दर्शन हुये तो वे प्राणवर्षं चकित हो गये क्योंकि वे उसी समय उनको रूप पर बैठे हुआ द्रोह पाये थे। फिर जब वे वन से बाहर आये तो उन्होंने दोनों भाइयों को उसी प्रकार बैठे पाया। जब दूसरी बार भी ऐसा ही दृश्य दिखलाई पड़ा तो वे भगवान् कृष्ण के वास्तविक परात्पर रूप को पहिचान गये और स्तुति करते हुए उन्होंने कहा—

नमो विज्ञान पारायण पद्म प्रकृते प्रभो।

भूतात्मा नेन्द्रियात्मा च प्रधानात्मा तथा भवान् ॥

आत्मा च परमात्मा च त्वमेक एवधा स्थितः ।

प्रसीद सर्वे सर्वात्मन् क्षराक्षरमयेश्वर ।

धर्माविष्णुशिवास्याभि कल्पना भिरुदीरितः ॥

अनाद्येष्वस्वरूपात्मन्ननाद्येषु प्रयत्नजम् ।

अनाश्लेषाभिधानं त्वा नतोऽस्मि परमेश्वर ॥

न यत्र नाथ विद्यन्ते नामजात्यादिकल्पनाः ।

तद् ब्रह्म परमं नित्यमविकारि भवानज ॥

न कल्पनामृतेऽर्थस्य सर्वस्याधिगमो यतः ।

तत्तु कृच्छ्राच्युतानन्तविष्णु सज्ञा भिरीह्मते ॥

‘हे प्रभो ! प्रायः विज्ञान और प्रकृति से परे को तनस्कार है।

प्रायः एक ही भूतात्मा, इन्द्रियात्मा, प्रधानात्मा, जीवात्मा और पर-

सप्तम अध्याय

एवं प्रवृत्ते सन्नामे धर्म परमकोपन ।
 कृतेन सहितो धोर युयुधे कलिना सह ।१।
 कलिर्दमित्रद्यामीर्षमस्वावि वृत्तस्थ च ।
 पराभूतः पुरी प्रायात्यकरवागर्दभयाहनम् ।२।
 विचित्रमपेचकरय सजदत्तः सुमन्थय ।
 छद्मसूच्यः कारासास्य स्त्रोस्वामिकमयाद्गृहम् ।३।
 दम्भ दम्भोमरहितोदधुतवाणुगणावृत्त ।
 व्याकुल स्वकुलीषारो नि मार प्राविशद्गृहम् ।४।
 लोभः प्रसादाभिहतो गत्यत्र भिक्षमन्तवः ।
 सान्मैयरय छिद्रं त्यक्तवान्नाट्टुमिर वमन् ।५।
 अभयेन जिन कोपः कथाप्योक्तलोचनः ।
 गन्वास्तुवाहू विचिह्नत त्वन्तरो विद्यायत गतः ।६।

सूत जी ने कहा— इस प्रकार प्रसन्न हुए होना देय कर
 कायुष सहित धर्म न प्राप्त हो पायुष कलि से युद्ध प्रारम्भ किया ।१।
 तब धर्म और कायुष की प्रीति का कारण धर्म को न सहे कर टगा हुआ
 कलि प्रसन्न होकर धर्म को नहीं छोड़ कर भागा हुआ प्रसन्न पुरी से
 पुन गया ।२। उन्नु की वजह वानर उन्ना रथ चकनाचुर हो गया ।
 उनसे बड़े से रक्त बहने लगा, जिससे छात्र दार की गन्ध निरुद्ध रहने लगे ।
 सुत पर भयानकता का वर्णन की । इन प्रसन्न को शक्त हुआ कलि
 प्रसन्नो स्वामिनी मारी के मध्य से प्रविष्ट हुआ ।३। इस प्रकार वाणु
 कपो से वाहू एव म्याकुल हुआ कलि दम्भ कायोपादि से रहित होकर

मात्मा—इन पाँच रूपों में स्थित है। सर्वात्मन । हे क्षर-अक्षरमय परमेश्वर । माप एक ही ब्रह्मा, विष्णु, गह्रादेव के रूपों में कल्पित किये जाते हैं। हे भगवान् । मापके नाम, रूप वपोवन—सभी एकवचनीय हैं। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ माप न हों। माप ज्ञाति भादि कल्पनाओं से परे नित्य, निर्विकार एव अजन्मा परब्रह्म है। पर बिना किसी विधि के मापका वर्णन संभव न होने से ही लोग कल्प पच्युत, मतलब और विष्णु भादि नामों से मापकी प्राराधना करते हैं।

सर्वाथस्त्वमज विकल्पनाभिरेतं -
 वेदाशैभं वति हि शैरनन्त विश्वम् ॥
 विश्वात्मा त्वामिति विकारहीन मेत ।
 त्सर्वमिन्न हि भवतोऽमि किञ्चिदल्पत् ॥
 त्व ब्रह्मा पशुपतिर्यमा विष्वाता ।
 घाता त्व त्रिदशपतिस्समीरशोऽग्नि ॥
 होमेशो घनपतिरन्तकस्त्वमेको ।
 भिन्नार्थैर्जगदभिपामि शक्ति भेदं ॥
 विश्व भवान्सृजति सूर्यगमस्तिरूपो ।
 विश्वेश ते गुणमयोऽयमत पपच ॥
 रूप पर सर्दिति वाचकमक्षर य—
 ज्ञानात्मने सदनते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥

“हे अजन्मा । जित देवादि कल्पना नामे पदार्थों से यह सनात उपलब्ध हुआ है, वह माप ही है। माप ही विकारहीन आत्मादम्बु होने से विश्वात्मा है। इन सब में मापसे भिन्न कोई भी पदार्थ नहीं है। माप ही ब्रह्मा, पशुपति; धर्ममा, विष्वाता, घाता, इन्द्र, समीर, घनि, पशु, कुबेर और शम के रूप में विभिन्न कार्यभेद के द्वारा सम्पूर्ण विश्व का सञ्चालन करते हैं। हे विश्वेश्वर । माप ही सूर्य रश्मियों के रूप में होकर जगत् की सृष्टि करते हैं। इस प्रकार यह गुणमय सम्पूर्ण रूपसे मापका ही स्वल्प है। जिसका वाचक मन्त्र है, वह प्रणव मापका

से अन्य वर्ग में आयेन नर तथा १२०१ धरने विवाहको के उल्लेख में
 राजा मरने के भी एक और बन्धोको कर्षण कर दिवत तथा राजा
 देवादि ने बीज और अर्घ्यो को मृत्यु के घाट उपजा दिया । ११११ महा-
 यनी विद्यासूत्र के अनुसार जमाने विध्य शास्त्राशो के द्वारा पुनित्य और
 युक्तियों को रच दिया । १२०१

अध्यायविमलप्रकाशः सङ्घपातेन भूरिग्या ।
 नानास्वरास्वरोपेते योधा नैन्दुरकथा । १२०१
 कलिक. कोकविकोलाग्ना गदापासिधुंघा पति ।
 युयुधे विन्यायविज्ञो लोकाना अनन्त भणम् । १२०१
 कृष्णानुरस्य युजो ली नगरी ककु नेहंरः ।
 सयो. करिक. स युयुधे भस्कुर्कटमयार्धया । १२०१
 लयोमंदा प्रहारेण युष्मिन्तरवत्त तदारो ।
 करान्धुतापतदुपुमी हाद्वोचुरिश्यहो जना । ११६१
 तद. पुन. कथा विष्णुजन्मविष्णुजन्मसुभुज ।
 भक्तकेम शिरस्वस्व विकोकाकाचिद्धनत्रम् । १२०१
 मृतो विकोरः कोकस्य दशैवाटुस्मितो जलो ।
 तद्दृष्ट्वा विस्मितो देवा. कतिश्च परवोरहा । १२०१

उन घंटेक दुष्टि जगते विष्णुसङ्घ-वदेश के निरन्तर धरने सङ्घ
 एक पनेबाकेक शास्त्राशो के द्वारा मृत्युको को विनष्ट किया । उन प्रकृत
 पर-पदा के बहुत माने और मृत्युको प्राप्त हुए । १२०१ मना-कुशल कलिक
 की गया तिमि हुए ही कोक विकोक से संजान कर रहे हैं, विषय पर
 लोक प्रपञ्चोत हो रहे थे । १२०१

वे दोनों सही सङ्घ के लोक और कृष्णके के युध थे । युष्ण-
 बात में जैसे विष्णु का मनुर्कटक स मुट हुआ था, जैसे ही इन दोनों
 के साथ कलिक को और संजान कर रहे थे । १२०१ उसी कोक-विकोक
 के पदागत हो कलिकको का देह पूर्ण जेवा ही गया । जलक हाव
 के पदा घूट गई । वह दृश्य सभी उन्मिषत अन्ति शास्त्रों पूर्वक देव

ही रूप है। आपने उक्त ज्ञानात्मक सत्त्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।”

‘विष्णुपुराण’ के प्रारम्भ में ही मंत्रोप के विज्ञप्ता करने पर महर्षि पाराशर ने कहा था—

विष्णो सकाशाद्भूतम् जगत्तत्रैव च
स्थितम् स्थिति समयकर्ता सौ जयमगतोऽस्य जगच्च स ॥
अविकाराय शुद्धाय, नित्याय परमात्मने ।
सदैक स्वरूपाय विष्णवे सर्वजिष्णवे ॥
नमो हिरण्यगर्भाय हरये शंकराय च ।
वासुदेवाय ताराय सर्वस्थित्यन्त कारिणे ॥
एकानेक रूपाय स्थूल सूक्ष्मात्मने नमः ।
अव्यक्तव्यक्तरूपाय विष्णवे-मुक्ति हेतवे ॥

“यह सबस्त जगत भगवान विष्णु से ही उत्पन्न हुआ है और उसी में स्थित है। इसकी स्थिति और संचालन के कर्ता यही हैं और वस्तुतः वे ही जगत रूप हैं। ऐसे विकाररहित, शुद्ध, तीनो काल में प्रवितासी, परमात्मा, सबंदा एक रूप, सर्वं विजयी विष्णु ही हरि, हिरण्यगर्भ और शंकर के नाम से प्रसिद्ध है। उन गृष्टि स्थिति और विनाश के कारण भगवान विष्णु को नमस्कार है। अनेकानेक स्वरूप, स्थूल, सूक्ष्ममय, कर्मकारणभूत, मुक्तिप्रदाता, समस्त जगत की उत्पत्ति, स्थिति और सब के मूलमूल जगत्तम परमात्मा विष्णु को नमस्कार है।” भगवान कृष्ण को यही विष्णु का और कही विष्णु-ब्रह्मा-शिव आदि त्रिमूर्ति के भी उत्पत्तिकर्ता परब्रह्म का अवतार कहा गया है। वास्तव में विश्व की सर्वोच्च शक्ता चैतन्य-सत्त्व है। जो उसके मूल स्वरूप को समझ लेता है और उसी में स्थित हो जाता है उसे विष्णु, महाविष्णु परमात्मा सब पुत्र कहा जा सकता है।

हरिवंश पुराण—

‘हरिवंश पुराण’ में भी कई स्थानों पर श्री कृष्ण जी के

जगत् पर प्रहार करने लगे । १२१। मुझ में दुर्बल कोट-विशोक
 पतिक जी के प्रदो के द्वारा विधि गये आधात से प्रत्यन्त समूह होकर
 कोषित हो लठे और रक्त वर्ण नल करके कतिक जी पर भीषण वारण-
 कर्षों से तत्पर हुए । १२२। तब कतिक जी के अक्षय से अत्यन्त शीघ्र पूर्वक
 कोट-विशोक से मुक्त हुए दिन कर दिये, उनको मुजामी की हृदयों का
 पूर्ण हो गया । पशुप की बाहुओं के सहित बट कर गिर गये । तब मैं
 कोई शिशु नहीं की पूछ परह तेरा है, वेसे ही ऊड़ने घण की पूछ को
 रकट किया । १२४।

धृतपुच्छो तु तो शास्त्रा सति परमकोपन ।
 पनवात्प्रदग्धा हृद ज्ञाने तपोर्वसति वगुवत् । १२५।
 एतत्पुच्छो मूर्च्छितो तो तत्परणात्पुनरुत्पद्यते ।
 पुरतः कतिकमानोव्य वयापाते त्पुच्छाक्षरी । १२६।
 ततो हत्वा तन्मयेत्य कुताऽञ्जितपुट शन ।
 प्रयास कतिक वैवाणु शास्त्रार्थवैषम्यहंत । १२७।
 करामातन्देककाले उग्रयोनिगितो व्यपः ।
 समबोदरो नादेव मोसयोर्मरणं पश्चिन् ।
 विदित्वेति कुर्यात्तन्मुमुक्षुनातपोर्वसत् । १२८।
 इति गृह्यथ च श्रुत्वा एतत्तत्तस्यास्तत्रवाहस ।
 तयो प्रहरतो ह्यै र कतिक दानवयो कृपा ।
 मुष्टिभ्या चक्रुस्तस्या वामञ्च विरसो तपो । १२९।
 तौ तप भाममस्तिथको मज्जत्पुच्छाग्रावित्र ।
 पेतुर्दिवि देवाना भयदो मुवि बाधको । १३०।
 जैसे ही ऊड़ने घण की पूछ परहो वैंग ही प्रपन्न से अत्यन्त
 कोपित होकर करने विद्वाने वैरी के द्वारा कोट-विशोक के अक्षयपण से
 पक्ष के अमान प्रहार किये । १२५। विधि के दोनों राक्षस तत्प को पूछ
 को शीघ्र कर शूचिनी पर गिरते हुए मुञ्चित हो गए । परन्तु, कहे
 पुच्छ को पेट हो गया और वे कतिक जी को आशने देख कर मुझ के

धरतारव का विक्षेप रूप से प्रतिपादन किया है और समस्त देवी और पारिव शक्तियों का केन्द्र उन्हीं को बतलाया गया है। जब उन्होंने वायामुर को मारने के लिये उन पर चढ़ाई की तब भगवान शंकर वायामुर की तरफ से शत्रु को भाये। दोनों में ऐसा भीषण युद्ध हुआ कि पृथ्वी मर से साँपने लगी और ब्रह्माची की गरल में बहूँची। उसकी रक्षा के लिये ब्रह्माची ने विश्वी के पास आकर कहा—

“हे भगवाद् ! आपन स्वय ही इत महादेव के निपण का बचाव किया था, फिर आप इसकी रक्षा को क्यों न्यपर है ? श्रीकृष्ण तो आपकी ही धात्मा है, इसलिये उनके साथ युद्ध करना आपको मोभा नहीं देना।” यह सुनकर भगवान शंकर ने श्रीकृष्ण की देह में घुसकर तीनों लोकों के वर्तन किये। उस समय उन्होंने योगत्व होकर अपने वृम्भाम को निष्क्रिय देखा, फिर द्वारका में वायामुर की गुरु विपणक अपने दर का भी स्मरण किया। तब ब्रह्माची की बात गान कर के कहने लगे—जब ही श्रीकृष्ण से नहीं लहूँगा, मरता हो कि पृथ्वी का भार हलका हो जाय। अन्त में जब श्रीकृष्ण ने वायामुर का पराजित करके माग्ना वाहा था शंकर जी ने उसकी प्राण रक्षा का आग्रह करते हुये कहा—

कृष्ण कृष्ण महाबाहो जाने त्वा पुष्पोत्तमम् ।

मधु कंदम हृन्नार देवदेव सनातनम् ॥

लोक्षानो त्व गतिदेव त्वत्प्रसूतमिद जयत् ।

वज्रेपस्त्रं त्रिमिलोक्तं ससुरामुर पन्नर्ग ॥

तस्मात्सहूर दिव्य त्वमिद चक्र समुद्यतम् ।

वाणात्वास्मान्मय दत्त मया केशिनिपूदनम् ।

तन्मे न स्वाददृषा वाक्यमस्तन्मन्वां क्षामयाम्यहम् ॥

“हे महाबाहा ! हे पुष्पोत्तम ! हे देवाधिदेव कृष्ण ! आप ही मधुकंदम की मारने वाले सनातन पुरुष हैं। आपही समारी बीवों की एकमात्र शक्ति हैं, और वह सम्पूर्ण विश्व आप से ही उत्पन्न हुआ है।

गृह-माम में तत्पर हुए तथा देवता, मुनिपण्ड, विद्वान्गण और चारणादि
 प्रथम दूर से पुष्प बरसाने लगे । ३१। कोक-विहीन का सहाय हुआ
 देस कर कवि न जगसाह पूर्वक मानने देता । अनु-यस के दस हजार सहा-
 रियों को मष्ट कर दिया । ३२। प्राज्ञ के द्वारा एक लाख और सैनिकों
 और मुत्सद्दक के द्वारा पकड़ोय रयी मृत्यु को प्राप्त हुए । ३३। इसी
 प्रकार पश्य, अण्य और विद्यानादि ने भी विषाद, म्लेच्छ और बर्बशों का
 जोय पूर्वक सहाय कर दिया । ३४। इस प्रकार विषय की प्राज्ञ हुए
 कर्तिकरी सपत्नी विद्याय सेना के सहित युद्ध के निमित्त आगे बढ़े । उस
 समय सनेक प्रकार के बाजे बजने लगे । अंगु धारणास्य छापी और उनके
 साथ-साथ बस रहे थे । प्रनेक प्रकार के बाहुन लय सेना में आ गये थे ।
 सब ओर से कर्तिकरी पर समर होरे वा रहे थे । ३५-३६।

इसलिये कोई देवता, इंद्र, मनुष्य षण्वा अन्य प्राणी भापको परास्त नहीं कर सकता । मतः भाप कृपा करके अपने प्रमोद चक्र को रोक से । हे केजय ! मैंने वाणासुर को अभय प्रदान किया हुआ है, इसलिये भाप ऐसा करें जिससे मेरे बचनो शी रखा हो सके ।”

इसी प्रकार वाणासुर गर विजय प्राप्त करके वहाँ से लौटते समय उनका सपर्यं बरण से हो गया । उस समय श्रीकृष्ण की शक्ति से अपनी सेना को नष्ट होते देग कर बताने कहा—

अजेय शाश्वतो देह स्वयम्भूभूतभावनः ।
 अक्षरच शरधैव भावाभावौ महाद्युते ॥
 रक्षा मा रक्षणीयोऽह् त्वयाऽनघ नमोस्तुते ।
 आदिर्कर्त्ताऽसि लोकाना त्वयेतद् बहुलीकृतम् ॥
 विक्रीडन्ति महादेव बाल क्रीडनकंरिव ।
 न ह्यय प्रकृतद्वेषी नाह प्रकृति दूषक ॥
 प्रकृतियों विकारेषु वर्त्तते पुरुषप्रभ ।
 तस्या विकार क्षमने वर्त्तते त्व महाद्युते ॥
 विकारो वा विकाराणा विकाराय न तेऽनघा ।
 तान धर्मविदो मन्दान्भवान्धि कुरुते सदा ॥
 परावरज सर्वज्ञ ऐश्वर्यंविधिमास्थिति ।
 किं मोहयसि न सर्वाङ्गजापतिरिष स्वयम् ॥

“हे भगवन् ! भाप अजेय, शाश्वत, स्वयम्भू, भूतनायक, परा-
 दार, भाव-प्रभाव हैं और भापही सर्वत्र व्याप्त हैं । हे एक से अनेक होने की सामर्थ्य रखने वाले परमात्मन् । मैं तो भापसे रक्षा किये जाने का पात्र हूँ । हे लोको के कर्ता अमदीश्वर । भापको नमस्कार है । जैसे बालक खिलौनों के साथ खेलते हैं वैसे ही भाप इस विश्वरूपी खिलौने से खेलते रहते हैं, पर उसका तात्पर्य किसी की सम्भ मे नहीं आता । जब प्रकृति मे कोई महाविकार उत्पन्न हो जाता है, तो उसको दूर करने के निमित्त ही भापका अवतार होता है । उस समय

घोर तर्कान्तावासी है। भाप उन पर प्रहार कैसे कर सकते ? १३।
 वासिष्ठक बोले— हे मुनिगोत्री ! प्रजापति ब्रह्मासी ने जो धर्म विद्विषत
 किया है, उनके अनुसार पुत्रेणुक्त हुए, सिद्ध पथवा नारायण ही
 बने न हो, उन सब पर प्रहार करना चाहिए १६।

जीवतो राजभोग रथान्मृत स्वर्गो प्रमोदते ।

मृदो जयो वा मृत्युर्वा क्षयिष्यात्ता मुखापहः १७।

देवद भूपतिव्य वा विषयाविष्टकामिनाम् ।

ऊमदाया भवेदेव न हरे पाशसेविनाम् १८।

स्य केवक स चापीक्षस्व निष्काम स चापुम् १९।

मुच्यते मुँडनिष्ठन कथ मोहाय दिव्यति २०।

ब्रह्मा तीते यदि ब्रह्ममोक्षरे मेवक तथा ।

देहावैशालीक्षयेत् स तेवा स्यात्तथा मम २१।

देहावैशादीश्वरस्य कमाटा ब्रह्मका गुण ।

मायाङ्ग यदि ज्ञानेते विषयावष न कि तथा २२।

ब्रह्मती चक्षुषेणय क्षरीरिन्दे क्षरीरिता ।

मेवकस्याभिदृष्टान्तेव जन्मलघोदयाः २३।

यदि मुँड भूमि में सकुण्डल सौंठ फाँसे तो वह पतलुट राज्य का
 भोजने वाला होता है और यदि मृग्य ही ज्ञाप तो स्वर्ग की प्राप्ति होती
 है। इस प्रकार दार्द्रियो के लिये जिनय और मरख दोनों में ही मुल
 की उपलब्धि है १७। मुनिगोत्री ने कहा— हे नाथ ! बाली ब्रह्मवा विषया-
 सक्त मुच्यो के लिए ही मुँड में विषय ब्रह्मण्ड राज्य के देने बाली
 और मृत्यु देवत्व प्रदान करते बाली होती है। पान्थु हरि-वचनों के
 मंत्रको तो तबसे क्या प्रयोजन है ? १८। भाप हरि-मेवक है। यह
 हृदय भाप निष्काम को फल प्रदान नहीं करे। तब ज्ञाप दोनों में
 मोह पूर्णक मुँड किते समय है ? १९। अर्थात्तय बोले— परम गुण
 परमत्मा ही मुल दुःख बने तब दूसरे से परे है। पान्थु उनके देह
 धारण कर देने पर उन ईश्वर और मेवक में मुँड होने नये तो उसे

मान की श्रद्धा करते हैं, उसकी उत्पत्ति केवल दुष्टों और अपराधियों का मच्छी तरह मर्दन करने के लिये ही होती है। हे मर्त्य ! यावत् अपने महान् देवी ऐश्वर्य में स्थित होकर मन्त्रापति के समान ज्ञान सबको मोहित करा करते हैं ?”

परम ने अपने वक्ताव्य ने वी कुछ कहा वह शास्त्रों के इसी सिद्धान्त के आधार पर कहा गया है कि जब पृथ्वी पर दुष्ट लोगों का उत्पान होता है और वे धर्म तथा नीति का उन्नयन करने लगते हैं, सभी भगवान् अवतार लेकर उस स्थिति का सुधार करते हैं। यद्यपि ज्ञान मन्द के भी सामान्य मनुष्यों की तरह ही दुष्ट और मयि करते हैं, पर वास्तुतः उनका यह कार्य केवल एक क्षण के समान ही होता है।



प्रतिरिक्त यन्त्र कोई गति नहीं । ११५। सुमान्ता के यह विनम्र वचन
 सुन कर राधा के चेहरे में तृषोष्ण छा गये और वे ध्रुवने की परम
 वेदलक्ष मानते हुए भवनात् विष्णु का स्मरण करने लगे । ११६। तन्होंने
 प्रहरी प्रिय धरती को हृदय से नया सिगा और शिखर धरने कीर देव्याय
 सेविका के सङ्घित विष्णु नाम का स्मरण करते हुए रश्मि भूमि के निधे
 लय दिये । ११७। तन्होंने कलिका-देना में प्रविष्ट होकर अपनी विशाल-
 सेवा की इतिवत् कर दिया । तम सभय महादलो दाम्या कर्णवेषु प्रापुणे
 से सुमन्जित रूप करने युद्ध से शरय हुए । ११८।

सशिध्वजमुत श्रीमान्मयंकेतुमंहायल ।

महामुदेन युध्धे तैप्यसकी यन्त्रिना वर. ११९।

तस्यानुजो कृहलोक्तुः कान्त. कोकिलनिवन् ।

देवागिना स युध्धे गदायुद्ध विहारद. १२०।

शिशास्यपस्तुधुवस्तु सशिध्वजमुदेया न ।

रश्मिराधयो वनुषारी लघुहस्त प्रतापवान् ।

रत्नमनेन युध्धे प्रथं कान्तेन यन्त्रिना । १२१।

मूर्त्तं प्रासंबंदायासैर्वाशुशक्तपटितोमरे ।

मत्सं सङ्घर्षमुंशुर्वाभिः कुन्तं समभवद्दश. १२२।

पताकाभिर्ध्वजैर्विहर्षस्तोमरेरद्वयभामरे

प्रौढपुत्रमुत्तिपटलैःस्यकारो महानभूत । १२३।

पह रकी, धनुषारी एवं वरन देव्याव राज-धनु मूर्त्त केतु राधा

मर से युद्ध करने लया । ११९। मूर्त्तकेतु का छोटा मार्द कृहलोक्तु कोकिल

के समान मगुरदाणी नामा और मत्स्यव कर्णवेष होते हुए भी गदा

युद्ध में वारंलत था, वह राजा देवार्थि के साथ सभाम से शरय हुआ ।

१२०। शिशुओं से सम्बन्ध और शिशु प्रकार के शत्रुओं से सुमन्जित

विशासपुत्र-जरेव राजा शशिध्वज से युद्ध करने लगे । १२१। नाम मरक

पर पारोदुल मिये हुए हाव भावत सम्बन्ध धनुषारी एवं प्रशाको धर्म

धुषिन्वो धुषिन्वो वर धनुषारी शान्त से युद्ध से जिज गण । १२२। दल

चौथा अध्याय

अवतार के विषय में मतभेद

इस बात को तो सभी शास्त्र तथा विद्वान् स्वीकार करते हैं कि इस समस्त दृश्य जगत की सचातिका और प्रेरिका कोई पटुम्य और अव्यक्त शक्ति है, और ससार में जब कोई बहुत बड़ा परिवर्तन होता है, या मानवता की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है, तब उसी शक्ति के हस्तक्षेप से मन्त में उसका निवारण होता है। इस निवारण करने की क्रिया को कुछ लोग भद्रदृश्य देवी शक्तियों अथवा ससारव्यापी नवीन भावनाओं के रूप में अनुभव करते हैं और कुछ किसी 'महामानव' की ओकोत्तर नर-स्त्रीलाओं में उसका दर्शन करते हैं। फिर अवतारों की नरस्त्रीलाओं के मानने वाले उनका दर्शन अपनी मान्यताओं के अनुसार विभिन्न रीति से करते हैं। इससे सर्व साधारण को शका उत्पन्न होती है कि ऐसी घटनाओं को निराकार परमात्मा को देवी शक्तियों का परिणाम माना जाय या मनुष्य शरीर धारण करके सासारिक रूप में जगत की व्यवस्था और अशोधन करने वाले 'अवतार' की सीमाएँ कहा जाय ?

इसी मतभेद और तरह-तरह के पृथक वर्णनों के कारण अलोचकों को इनका खण्डन करने का अवसर मिलता है और वे समस्त अवतार सिद्धान्त को ही काल्पनिक या असाध्य कह कर उसकी तरफ ध्यान न देने की प्रेरणा करने लगते हैं। हम भी अवतार सम्बन्धी विस्तृत वर्णनों को धार्मिक उपास्या ही मानते हैं, और उनमें वर्णित प्रत्येक घटना को अक्षरशः सत्य सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं समझते। पर इसका यह अर्थ नहीं कि ससार-संकट के अवसर पर पराशक्ति

अनुज वीर्य देवापिभूषि सूर्येध्वजोष्णवोत् ।

मु छ्ना वज्रवातेन मोजातन्मूर्च्छितो मुवि ।

मूर्च्छितस्य सिधु क्रोधासेनागणमताउपत ॥४१॥

शनिध्वज सत्यंजयप्रियास कल्कि पुरस्तादभिसूर्गवर्चवाम

श्याम पिण्डान्धरमम्बुनेक्षण ।

वृहदभुज शम्भुकिरीटभूषणम् ॥४२॥

नानामण्डितातचित्ताङ्गसोभया निरस्तभोकेशराहृतमीमवपु

विशाखरूप पादिभिराश्रुत प्रभु हृदयं धर्मैरु कृतेन पूजितम् ॥४६॥

फिर जब धीर बुध से बृहत्सेतु ने देवापि के छोटा धीर शारणि
 को पार बना । तब देवापि ने भी धनुष छोड़ कर तनु पर हथेली का
 प्रहार किया ॥४२॥ फिर जमे दोनों मुखाधी में दया कर मर्दन करने
 लगे । जब समय शतार्धस वर्षीय मह रात्रपुत्र बृहत्सेतु पीड़ित होना
 हुआ मूर्च्छित हो गया ॥४३॥ अपने छोटे माई की देही दया देखकर
 सूर्यसेतु ने देवापि के पातक पर दया के समान मुद्रिका-प्रहार किया,
 इससे देवापि मूर्च्छित हुआकर गिर पड़ा । तब तनु को मूर्च्छित जान कर
 सूर्यसेतु तपको देना वर प्रहार करने लगा ॥४४॥ इस वर शना अधिपत्य
 ने तब उपभोग में सूर्यके समान तेजोमय, विश्वाचार, कमलाक्ष, पीताम्बर
 धारी, विद्याल सुशाली धीर सुरम्भ किरीट से सुशोभित रुद्रिजरी को
 अपने सामने देवा ॥४५॥ अपने क मणियों ने सूर्यजिन मद्ग धारि, शालिषों
 के नेत्रों धीर हृदयों के बाधहार को तट करके धारि कल्किनी के तब
 धीर विनाशरूप नरेश जैसे अपने क दायागण मत्त-भारुह छोटे है तथा
 तब धीर धर्म उपाका पुत्रन कर रहे हैं ॥४६॥

उन्हे अपने घर के भी और गोपने सगे कि भरे दोनो धूमों की भी पूछ
वे काई राजा जोत नहीं सकता है । ११७।

कनिक मुराविपति पधने विजित्य धर्म कुरुक्ष्य ।

निजकक्षयुमे निघाम । हृषीकेशपद्मवय तपुलक ।

पमापी यत्वा गृह हरिगृमे दहये सुशान्ताम् ॥११८॥

हृष्टाव तस्या मुनिमित्तमृत वेध्यावीनाक्ष्य मधवे

साधन्त्रीना हरिगुणायारतामय प्राद् राजा ।

वेधाला विमद्यवत्सा धर्मते जन्मनावा ।

विद्यस्ताम परिणामविधि न्नेच्छपापवचनायम् ॥११९॥

कनिक, एवम हृदि समायनिहातोऽऽ मुञ्छिच्छ-

लेन तव सेवनीकक्षायाम् । प्रथमं कुरुक्ष्य मम यजान-

युमे सुधाते । कान्ते धिलोक्य ममर्चय मविबेहि ॥१२०॥

हति नृपवन्साविनीत्पूर्यां हृगिवृत्त धम्म वत् प्रसूय्य नाथ

महू निजसखिमिनवक्तं राधा हरिगुणकोलंनरवर्तना विलज्ज

ए प्रवार देवराज इन् के भी राजा कनिकी की हृथ कर

घोर धर्म उभा सङ्ग को कथि दवा कर राजा घनिच्छल श्रद्धान् हृद्य

ने सेनासो का मदेव करतः हृषा धरने पर को गया और वहाँ अपने

रानी भार्गो तुषास्ता को विष्णु मन्दिर में लिय पाया । ११८। उनके

चारो घोर वेपथवी तरिकों बँड कर विष्णु गुण-गान में हन्मय हो ।

राज ने सुशान्ता का सुन्दर मुख देखते हुए कहा—हे सुशान्ते ! देवताओं

की प्रार्थना पर जो धम्मल धाम में घबलीसुं हुए हैं और जिहोने विलय

प्राप्त कर स्नेच्छों और पारदिको की नष्ट कर दिया है, वही हृदयों में

विह्वल करते वाते कनिक प्रगनात अपनी पाया द्वारा भूषणों क्यो उप से

आवृत्त होकर तुम्हारी सखि की पगीछा सेने के निमित्त यहाँ पधारे है ।

मेरी कसों के यह धर्म की गहवण सोने दवे हुए हैं गुप हतक वृक्ष

की ॥११८-१२०। राधा के यह विनोदपूर्ण वचन सुन कर राजा वही

प्रमत्त हुई और धर्म तथा मन्त्र के मन्दिन कनिकी की लभने प्रणाम

रिया । फिर कनिका की शीघ्र का सखियों के सहित हरि नाथ मंत्रीदीन

और गुप काने के द्वारा हुई । १२१।

में श्री विप्र जी के मुग से बहनापा है—

हरि अवतार हेतु जेहि होई । इदमिस्थ कहि जाट न सोई ।
राम अतपथं बुद्धि मन बानी । मत्त हमार बस मुनिहि समानी ।
करहि अतीति जाइ नहि धरनी । सोइहि विप्र धंरुसुर धरनी ।
तव तव प्रभु धरि विविध गरीरा । हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ।
अमुर मारि धारहि गुरुह रागहि निज श्रुति सेतु ।
जग विम्वरहि विरुद जह राम-जन्म कर हेतु ॥

सर्वात् "भगवान का अवतार क्यों होता है इसको त्रिष्यपूर्वक
बाँई नहीं बहू करना । परमात्मा और उसकी प्रियाएँ मनुष्य की
बुद्धि, मन और बानी से पर की बात है, उसमें तब से काम नहीं
चम सकता । ता भी शास्त्रों में मतानुसार यही कहा जा सकता है
जि कर-जग धम पर आपात होता है, मत्तार में सहकारी, दुष्ट लोगों
की मत्तवा बहुत अधिक हो जाती है और ये प्रतीतिपूर्वक सज्जन
पुरुषों, रामों, श्यामाया तथा गृष्ठी को कष्ट देने लगते हैं, तभी-
तभी भगवान विभिन्न रूप धारण करके सज्जनों की विपत्ति को दूर
करते हैं । उस अवसर पर भगवान दुष्टों का नाश कर फिर से श्व-
गुणों की स्थापना करते हैं और इस तरह में धर्म-नीति की मर््यादा
को गुरुक बनाते हैं । यही भगवान के अवतार का मुख्य हेतु है ।

इस अवसर में 'शिवजी' ने अवतार का मूल स्वरूप बना दिया
है कि जग बभो मत्तार में प्रतीति और धर्म की प्रथमिक प्रथमता
हो जाती है और पाशाविर शक्ति से मदात्म्य दुष्ट प्रकृति में व्यक्ति
साध्यिक वृत्ति के मज्जनों को आतन्त्रित करते लगते हैं तभी परमात्म-
शक्ति अपने गुणों की कोई योजना करती है । उस योजना का वर्ति
'अवतार' कहलाने मग जाता है । आगे चल कर उन्होंने इष्टान्त रूप
में इसके कुछ उदाहरण भी दिए हैं—

राम जन्म के हेतु अनेक । परम विचित्र एक से एका ।
जन्म एक दुष्ट बहूँ बसानी । सावधान गुनु मुमति भवानी ॥

एकादश अध्याय

तत्राहस्ते सभामध्ये वैश्वदेवं तं शशिध्वजम् ।
 मुनिमि कथिताशेष-भक्तिव्यासक्तदिप्रहम् ॥१॥
 सुशान्ताश्च कृतेनापि धर्मस्य विधिद्युताम् । २॥
 युवा नारायणास्यास्य कल्केः स्वसुरता गतो ।
 वयं नृपा इमे नोवा श्रुपयो श्राहाणाश्च ये ॥३॥
 प्रेक्ष्य भक्तिवितानं धीं हरौ विस्मितमानसाः ।
 पृच्छामस्त्वामिदं भक्तिं क्व लब्धा परमात्मनः ॥४॥
 कस्य वा शिक्षिता राजन् ! किदा नैसामिहो तव ।
 श्रोतुमिच्छामहे राजन् ! त्रिजगज्जनपावनीम् ।
 कथा भागवती त्वत्तः ससाराश्रमनाशिनीम् ॥५॥

सूतजी ने कहा—मुनियों के द्वारा भयेए कहे गए भक्तिमय
 देह जाते, विष्णु भक्त, धर्म और धरपुत्र के माप स्थित एवं राजनी सुशान्ता
 के सहित शोभापमान् राजा शशिध्वज की ओर देखते हुए आगत
 राजा आदि व्यक्तियों ने कहा । १-२। राजागण बोले—एक माप
 साक्षात् नारायण के जनताए भगवाद् कैलिक के स्वसुर-पद को प्राप्त
 हुए हैं । परन्तु हम सब राजागण, श्रुतिगण और विप्रगण तथा श्रव्यान्व
 मन्त्री उपस्थितजन आपकी भक्ति को ऐसे विवृत रूप में देख कर आश्चर्य
 पाएचर्ष को प्राप्त हुए हैं । हम आपसे यह पूछते हैं कि परमात्मा की

द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ । जय अरु विजय जान सब कोऊ ॥
 विप्र श्राप ने दूनउ भाई । तामस असुर देह तिन पाई ॥
 कनकसिपु और हाटक लोचन । जगत विदित सुरपति मदमोचन ।
 बिजई समर वीर विरथाता । घरि बराह वपु एक निपाता ॥
 होइ नरहरि दूसर पुन मारा । जन प्रह्लाद मुजस विस्तारा ॥
 भये निसाचर जाइ तेइ महावीर बलवान ।

कुंभ करन रावन मुभट सुर बिजई जगजान ॥

एकवार तिःहके हित लागी । धरेउ शरीर भगत अनुरागी ॥
 कस्यप अदिति तहाँ पितुमाता । दशरथ कौशल्या विस्थाता ॥
 एक कल्प मुर देखि दुखारे । समर जलधर सन सब हारे ॥
 तहाँ जतंधर रावन भयऊ । रन हति राम परम पद दयऊ ॥
 प्रांत भवतार कथा प्रभु केरी । सुन मुनि वरनी कावन घनेरी ॥

'इसके सिवाय भगवान के भवतार के और भी अनेक कारण हैं, जो एक से एक बढ़कर अत्यन्त विचित्र होते हैं । मैं उनमें से दो-एक का वर्णन यहाँ करता हूँ । जय और विजय नाम के भगवान के दो द्वारपाल थे । श्राप ने उनको तामसी योनि में जाने का शाप दे दिया । इसमें वे हिरण्याक्ष और हिरणाकुश के नाम वाले दो महावीर दैत्य बन गये, जिनके मय से इन्द्र भी अपना राज्य छोड़कर भाग गया । वे सप्तार-विजयी वीर थे । उनमें से हिरण्याक्ष को भगवान ने 'धाराह' भवतार धारण करके मारा । दूसरे हिरणाकुश को नष्ट करने के लिये उन्हें 'नरसिंह' रूप धारण करना पड़ा । ये दोनों दैत्य यहाँ मारे जाकर फिर से रावण और कुम्भकरण के रूप में राक्षस बने । उनसे भक्तों की रक्षा करने के लिये भगवान को फिर भवतार लेना पड़ा । इसबार उनके माता-पिता कस्यप और अदिति थे, जिन्होंने पृथ्वी पर दशरथ और कौशल्याके रूपमें जन्म लिया था । एक अन्य कल्पमें सप्तसुत देवगण जलधर नामक दैत्य से हार कर बहुत दुःखी हो गये । तब भगवान ने वहे कौशल से जलधर को मारा । वही जलधर दूसरे जन्म

अक्षानि देवास्त्वेषान्नु नामानि विदितान्मुत ।

विष्णोः कर्त्तेरगतस्य ताम्बेवान् वयं विदमते ।३५।

सेव्य, कृष्ण सेवकोऽहमन्ये तस्मात्सममूर्तय ।

अविशोभाथयो ज्ञानद्वन्द्वनि प्रभावदयः ।३६।

मक्तःयापि ह्रीं दवंत सेव्यसेवकनत्तदा ।

नाभ्याद्दिवना तमिन्देव धवच किञ्चन विदमते ।३६।

भक्त, स्मरति तं विष्णुं तन्नामानि च स्मरति ।

उत्कर्मसि कर्मोत्तमं तदानन्दमुत्तरोदय ।३७।

इस प्रकार ध्यान करने के प्रकारों का जो नाम, कृष्टि और इन्द्रियों के सहित स्वयं को श्रीहरि में समर्पित कर ८-३६। म एवम् कश्चि परमदेव एव समस्त एवम् अगतान् विष्णु ने भक्त है । जो सब नाम धारकों विदित है, वह भक्तान् श्रीहरि के प्रतिविम्ब और कृष्टि को नहीं है ।३७। म एवम् श्री कृष्ण सेव्य और में उनका भेदक है तथा नकार मर के सभी प्राणों काही के मूर्त रूप है । शक्तियों का कर्त्तव्य है कि शक्तिधारकों सर्वादि वे यथा के यत् कर हो यह सब उत्पन्न होते है । देवा भक्तों के विहित सेव्य-सेवक भाव रूप दूँत या भावि-यति होता है । इस प्रकार श्रीहरि के प्रतिविम्ब भाव कृष्टि भी नहीं है ।३८। कर्त्तव्य भक्तान् विष्णु का कर्त्तव्य तथा स्मरण करना, नाम-गुण शोचन काय तथा सभी कर्म करने ही निमित्त किया करना है । इसी कारण उनके लिए ध्यान और कृष्टि ही चर्चित होती है ।३९।

सूयतपुद्गतवद्रोति हसति प्रेति तन्मना ।

विलु ट्प्यात्मविस्मृत्या न वेति कियदन्तरम् ।४०।

एषविद्या भगवतो भक्तिरव्यभिचारिणी ।

पुनरति सहसा लोकांसदेवागुरमानुषान् ।४१।

भक्तिः सा प्रकृतिरित्या न्यह्यसम्पत्प्रकाशिता ।

शिवविष्णुब्रह्मरुद्रा देवाद्याना वररपि वा ।४२।

भक्ताः सत्त्वगुरुऽध्यासाद्बलसेन्द्रियकालसाः ।

में रावण बना। उसको भगवान ने राम का अवतार ग्रहण करके युद्ध में मारा था। इस प्रकार भगवान के प्रत्येक अवतार की प्रलय-प्रलय कथा है, जिनका ऋषि मुनियों ने वर्णन किया है और उन्हें सुनकर पत्नियों ने उसका विस्तार करके दूधे-दूधे प्रथम रच डाले हैं।”

पुराणों में एक ही अवतार की कथा जो विभिन्न रूपों में वर्णित है उसका कारण बतलाते हुये गोस्वामी जी ने एक नही मनेक स्थलों पर कहा है कि इस अन्तर का कारण प्रलय-प्रलय कथों से उनका सम्बन्ध होना है। सत्तार से बीन-बीन में स्वार्थ प्रधान मानों के अनुयायी दुष्टों का जोर बढ़ना और धर्म तथा नीति के नियमों का ह्रास हो जाना तो एक प्राकृतिक नियम-सा ही है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ तथा सामाजिक प्रणाली काल-प्रभाव से एकाध हजार वर्ष में विकृत तथा अनुपयोगी हो जाती है। पर जिनका लाभ उसी से होता है वह उसके सुधार प्रयत्न परिवर्तन का विरोध करते हैं और हमने सत्तार में अन्धाय तथा लडाई-झगडे का बाजार गर्म हो जाता है। तब तब दुष्टिन परिस्थिति का सुधार करने को भगवान का ‘अवतार’ होता है। यह सम्भव है कि भिन्न-भिन्न कल्पों में उन दुष्ट प्रवृत्ति के व्यक्तियों (दैत्यों) तथा ‘अवतारों’ के नाम भी कुछ और रहे हों, पर अब हम दश-बीस हजार वर्ष पुराने राशामो और महाभारत पुराणों के नाम तथा परिचय प्रादि नहीं जानते और वैयक्त अनुमान से ही थोड़ा बहुत पाम चलाते हैं तो बहुत वर्ष पहले के ‘कल्प’ की घटनाओं का पश्चात्तप्य वर्णन अथवा नामों प्रादि का उल्लेख कैसे सम्भव हो सकता है? इसलिये कवि एक प्रवृत्ति के लोगो का वर्णन एक ही नाम से करते सजना है, और सम्भ्रता है कि हमसे कोई हानि नहीं हो सकती। लोग तो अन्धाय के समन और सज्जनता की रक्षा की तथा सुनकर शिक्षा ग्रहण करते हैं, नाम कुछ भी हो, उरखा कोई पारा प्रभाव नहीं पड़ सकता।

रजोबुध- कर्मनराः हरिपूषापरः सदा ।

तन्नामानि प्रगापन्ति तद्गुणपरमरथोत्सुकाः ॥२१॥

राजा बीजे—हे भूमे ! गुरु वसिष्ठ के व्यापण राजा निमि ने देइ छोटा या । वरन्तु पापके इस भोगव्यय वेद में संताप को उपपत्ति किस प्रकार हुई ? यह अध्यात्म में देवताओं ने उनको रखा करते हुए सब देह में प्रवेश करने की आज्ञा की, इह भी ने करने छोड़े हुए देह में प्रविष्ट होने से सहमत न हुई, इसका क्या कारण था ? ॥१५॥ सुना जाना है कि शिष्य के ध्यान से गुरु वसिष्ठ ने देइ स्वायं कर पून. देह को प्राप्त कर निवार । परन्तु, मरु तो मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, वह वह उप विमुक्तता को छोड़ कर अन्य किस प्रकार धारण करे ? ॥१६॥ इस प्रकार भगवद् शिष्य के ध्यान में शरीरजन भी अपने को प्रसमर्प पाते है । क्योंकि वह भावा इन्द्रजाल के समान समस्त लोक में विस्तीर्ण होती हुई जोरी का । प्रवृत्ति करती रहती है । पूजा तथा श्रेष्ठ राजा वसिष्ठव्य उनके वचन सुन कर अनिपूर्वक प्रणाम करते हुए बोले ॥१७॥ उन्होंने कहा—शैव, शैवादि के योग को प्राप्त हुआ प्राणी अन्य अध्यात्मों से भगवत्कृपा से भावु सग को पाता है और उसी साधु सग के प्रभाव से उसे ईश्वर के दर्शन ही प्राप्त है ॥१८॥ फिर वह तालीश्वर पर को प्राप्त होकर ह्रींमल हृदय से हरि-मन्त्र में तरंग होता है । इस प्रकार भोग यन्त्रों का उपयोग करता हुआ वह यन्त्र सोक में मरु ही जाता है ॥२०॥ रजोगुणों पुरुष अपने कर्म द्वारा तथा हरिपूषा-व्यापण रहते तथा उनके नाम और स्थादि का स्मरण करने से सदा उत्सुक रहते हैं ॥२१॥

श्रवतारानुत्तरापर्वत्रतमहोरस्रवाः ।

भगवद्भक्तिपूजादयाः परमानन्दसम्प्लुताः ॥२२॥

श्रुती मोक्ष न वांचन्मिच्छति दृष्टपूक्तिकलोदया ।

मुक्त्वाप्तमन्ते जन्मानि हरिभावनामाहा ॥२३॥

निर्गुण और सगुण का विवाद निरर्थक है—

इसी प्रसंग में पार्वती जी के यह प्रश्न करने पर कि निर्गुण, निराकार परमात्मा मनुष्य शरीरधारी भवतार कैसे बन सकता है, शिवजी ने उसका समाधान इस प्रकार किया है—

सगुणहि अगुणहि नहि कछु भेदा ।

गावहि मुनि पुराण वुध वेदा ॥

अगुण अरूप अलस अज जोई ।

भगत प्रेम बस सगुण सो होई ॥

जो गुण रहित सगुण सोई कैसे ।

जल हिम उपल विसग नहि जैसे ॥

इस प्रकार भवतार सम्बन्धी अधिकान्त तर्कों तथा त्रुटियों का निराकरण प्राचीन 'भवतारवादी' विद्वानों ने स्वयं ही कर दिया है और इस गूढ़ विषय को जहाँ तक बन सका है स्पष्ट और बोधगम्य भी बना दिया है। पर कठिनाई यही है कि लोग उनकी रचनाओं को भी निष्पक्ष भाव से, मूल तथ्य को समझने की चेष्टा करते हुये नहीं पढ़ते। अन्य श्रद्धा वाले तो बिना सोचे-समझे प्रत्येक सम्भव-संभव, रूपक-प्रलकारयुक्त वाक्य को भी ज्यों का त्यों प्रसारण मानने में ही 'धर्म' मानते हैं, और विरोधी या सखण्डनात्मक मनोवृत्ति वाले उसके वास्तविक आशय और उद्देश्य को ठुकरा कर इधर-उधर के दो-चार वाक्य ऐसे ढँढ़ते हैं, जिनका 'अन्वय' करके वे उस पर दोषारोपण कर सकें। पाठक देखेंगे कि हमने भागवत, रामायण, महाभारत और विविध पुराण ग्रंथों से ही ऐसे कथन प्रस्तुत किये हैं, जिनसे भवतार की युक्तियुक्त स्थिति सबकी समझ में आ सकती है। भक्त शिरोमणि गो० तुलसीदास जी भी यह कहते हैं कि मनुष्य की क्या सलाई देवगण भी भगवान के 'भवतार' का निश्चित कारण और रहस्य नहीं समझ सकते। पर मुनि और ऋषियों ने इस सम्बन्ध में अपनी विशद बुद्धि से अनुमान करके जो कुछ बतलाया है उसी के आधार पर विद्वान् कवियों और लेखकों ने कवि-कल्पना और लेखन

चतुर्दश अध्याय

ततः कल्किर्महातेजा इवञ्चुर त शशिध्वजम् ।
 समामन्त्र्य वचश्चिदं सह भूर्पर्वणो हरिः ।१।
 शशिध्वजो वर लक्ष्म्या यथाकाम महैश्वर्यम् ।
 स्तुता माया त्यक्तमाय सश्रिय प्रयया वनम् ।२।
 कल्किः सेनागणैः साङ्गं प्रयया काञ्चनो पुरीम् ।
 गिरिदुर्गावृता गुल्फा मोहिमन्विपवविमि ।३।
 विदार्य दुर्गं सगण कल्कि परपुञ्जय ।
 द्ष्ट्वा विषायुमान्वाशेरता पुरी दृश्योऽभ्युतः ।४।
 मणिकान्चनचिदाहृषा नागकन्यागणैःकृतम् ।
 हरिश्चन्दनवृक्षाकृत्या मन्वृजं परिवर्जितम् ।५।

मूत्रजो होने—किर अत्यन्त तेज वाले कल्किजी ने अपने अदभुत
 बलसे के द्वारा अपने स्वयं राजा शशिध्वज को मन्वृज किया और
 राजाओं के हरित बैठ कर चले गये ।१। राजा शशिध्वज भी इन्द्रा-
 नुसार वर प्राप्त करके, महैश्वरी मन्वा का स्तव करते हुए अपनी पत्नी
 सहित विषय-वर्षण से मुक्त होकर वन को गये ।२। इधर कल्किजी ने
 पर्वत ऊपर दुर्ग से घाटत काञ्चनोपुरी को प्रस्थान किया इस पुरी को
 राजा विषय-वर्षण अपने करते हैं ।३। शत्रुओं के पुर के विजैता कल्किजी
 अपनी सेना सहित आगे बढ़े और बध कछि दुर्ग को तोड़ कर तथा
 विषय-वर्षण सबों को मार कर पुरो से प्रविष्ट हुए ।४। वहाँ उन्होंने देखा
 कि वह नगरी सर्वत्र शत्रुओं की रमणों से मुक्त है तथा सब आँर नाम

कला के अनुसार उनके अनेकानेक चरित्रों की लोक-गत्याहार्य रचना की है—तो इससे बढकर स्पष्ट वक्तव्य और क्या हो सकता है ?

हम यह जानते हैं कि सभी पुराणों में और रामायण में भी धवतारों के सम्बन्ध में ऐसे अनेक कथा-प्रमाण मिले गये हैं, जिनका 'धमत्कार' के सिवाय और कोई उद्देश्य नहीं और उनके प्रत्येक वाक्य और शक्ति का वर्णन भी प्रायः बहुत बड़ा-बड़ाकर किया गया है। इनमें अनेक स्थानों में एव समझदार पाठक को 'निराधार कर्षे' तिरग मारने का अनुभव होता है और ऐसी रचनाओं के प्रति उसके मन में 'दुर्भाव' उत्पन्न हो जाता है। यह स्थिति ऐदवनक अवश्य है, पर इसका उत्तरदायित्व अधिकार में मूल लेखकों पर न होकर उन कथा-वाचकों तथा प्रचारकों पर है जिन्होंने अपने किसी साध की दृष्टि से कथका निम्न धरणी के श्रोताओं का मनोरञ्जन करने के उद्देश्य से उनमें प्रक्षिप्त भ्रम सम्मिलित कर दिये हैं। यह हानिकारक प्रवृत्ति केवल पुराणों तक ही सीमित नहीं है, बरन् हिंदू धर्म के अन्य अनेक शास्त्रों में भी परिलक्षित होती है। अन्य धर्मों के प्रधान ग्रन्थ भी इससे मछूने नहीं कहे जा सकते। पर उनकी सस्या अत्यल्प होने से उनमें इतनी अधिक 'मिलावट' नहीं की जा सकी है।

कबीरदास जी का अवतार-सिद्धांत—

महात्मा कबीरदास का भारतवर्ष के मध्यकालीन तथा प्राधुनिक धार्मिक-इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। उनके धर्म-सिद्धान्तों में निर्गुण परमात्मा की उपासना का उपदेश दिया गया है और अन्ध-विश्वास पर आधारित अनेक प्राचीन धार्मिक रूढ़ियों का भी उन्होंने उखटन किया है। 'सन्त-मत' के आदि प्रवर्तक वे ही हैं और नामक, दादू, रैदास, प्राणनाथ आदि सन्तों से लेकर वर्तमान राधास्वामी संप्रदाय तक का मूल स्रोत किसी न किसी रूप में कबीरसाहब की शिक्षाएँ ही हैं। वे एक कट्टर निर्गुणोपासक की दृष्टि से सगुण धवतारों की उपासना का समर्थन नहीं कर सकते थे, पर ईश्वरीय-शक्ति और

ससानेऽस्मिन्म नमनोर्ध्वस्यशीलादेहा
 लोका मूपाः कति कति गता मृत्युमनुप्रबोधा ।
 साह दोनासुरमुरज प्रेक्षण प्रेमहीना
 ते नेशादजद्वयमसुधाधनावितः द्वा नमामि ॥११॥
 कथाह विप्रेक्षणादीना कदाभूतेक्षणमज्जम ।
 भवेत्सिन्धुमाभ्यहोनाया केनाहो तपसा कृता ॥१२॥
 कासि कन्यासि मुश्रीणि कस्मादेया गतिस्त्वव ।
 मूहि मा कर्माणा केन विपनेन तवाभधत् ॥१३॥
 चिन्मयोभवत्त भाव्याहं गन्धर्वंथ महाभते ।
 सुनेनेनेति विद्याता पत्न्यस्तपन्तकामदा ॥१४॥
 एकदाह विमानेन पत्ता पीठेन सङ्गता ।
 गन्धसादनकुण्डेषु रेमे कामुकालाकृता ॥१५॥

विषयव्या ने कहा—इत संसार में धारणत पराकमी धनेक
 राजागण तथा प्रजापत्य मनुष्य धृष्टु को प्राप्त हो चुके हैं । इस विधा
 में धारणत धुञ्जित हैं । देवता, देशक धीर मनुष्य किसी के गान जो
 केरा परिहाय समल नहीं है । मैं धारके धृष्ट के समान दृष्टि प्रवाह मे
 बहती हुई धारको नशावार कर गयी है ॥११॥ मैं अन्य प्रथम धारि धीर
 धिप-दृष्टि तो मुक्त है और धारको दृष्टि धृष्टतभी है । मैं किस तपसा
 के प्रसाद मे प्राप्त कर दर्शन प्राप्त कर सकी है ॥१२॥ कतिकजी ने कहा—
 मैं मुश्रीणि ! तुम कौन एक विकर्ष कन्या हो ? तुम इस प्रकथा को
 क्या प्रकार प्राप्त हुई हो ? किस कर्म-द्वेष से तुम्हें यह विष दृष्टि
 निषी है ॥१३॥ विषयव्या ने कहा—हे महाभते ! विन्मयीक नामक जो
 गन्धर्व है मैं उसको जानो सुलोचना है । मेरे द्वारा मेरे धनि का मन
 धारणत धनान्वित उड्डता था ॥१४॥ एक धनय भी बात है—वय मैं
 धनेन शक्ति के साथ विमानाकङ्कुंकर गन्धसादन धर्षत के एक कुञ्ज में
 गिता पर बैठ कर विहार-रत हो गई ॥१५॥

तय यशमुनि दृष्ट्वा विह्वलाकारमानुरम् ॥१६॥
 रूपसौवर्ण्यं कटाक्षेणाहलं भद्रम् ॥१७॥

जीवात्मा के विकास श्रम को ध्यान में रखने हुये सिद्धान्त रूप से 'भवतार' को उन्होंने भी माना है। उन्होंने कहा है—

एक राम है सब से न्यारा। एक राम ने जगत पसारा ॥

एक राम घट-घट में बोले। एक राम अवतारी डोले ॥

जासु कृपा भव दुख मिट जाही। सद्गुरु एक राम खुराई ॥

कबीरदास जी ने परमात्मा की चैतन्य-मत्ता के विकास की विस्तार के पाँच दर्जे बतलाये हैं। प्रारम्भ में उसका स्वरूप सर्वथा अव्यक्त और प्रज्ञेय होता है। उसके लिये कोई ठीक नाम या रूप बतला सकना समभव नहीं होता। उसी को शास्त्रों में निराकार, निर्गुण 'परब्रह्म' बतलाया गया। फिर जब उस अव्यक्त शक्ति में सृष्टि रचना की प्रवृत्ति प्रारम्भ होती है तो वह ऐसे रूप में आ जाती है जिसके कार्य और रूप का अनुमान मानव-बुद्धि कर सकती है। शास्त्रकारों ने उसे 'ईश्वर' कहा है, जो सृष्टि का कर्ता माना जाता है। हमसे आगे चलकर बड़ 'एकोऽहम् बहुस्यामि' के सिद्धान्त के अनुसार असंख्य जीवात्माओं के रूप में प्रकट होना है और उससे प्राणी-जपन ही रचना प्रारम्भ हो जाती है। हम विकास-श्रम में जो जीवात्मा अपने कर्मों द्वारा विशेषरूप से उन्नति कर लेता है और विकास से सर्वोच्च स्थिति पर जा पहुँचता है वह जीवनमुक्त होकर अन्य जीवात्माओं के लिये मार्ग-दर्शक बन जाता है और 'भवतार' की स्थिति को प्राप्त कर लेता है। उसके अनिरीक्य अथवा जीवनमुक्त आत्माओं से, जो अपनी शक्तियों को धीरे धीरे कल्याण के लिये प्रयत्न कर देती हैं, सद्गुरु या महान सन्तों के रूप में माननीय होती हैं। यद्यपि चैतन्य-मत्ता के इन पाँचों विभागों में शक्ति और कर्मों की निगाह से बड़ा भेद है, पर ये सब एक ही श्रेणी में मिले जा सकते हैं और अन्त में सभी व सभी एक ही स्थान पर मिल जाते हैं।

सायं स्वयं को हुनी । वे। सुतदेव लो बोले — पिण्डु मक महाराज धर्म-
 पत्र मे अब थपने प्रत्याखेनर को छोड़ कर बस्यार के विमुक्त होने के
 उद्देश से सायं-रत्न किया । ११। पवित्रत्व ही है—हे, ह्रींकार मयी,
 कथकार रुविणी, विमुदा सायंदेवी । आप प्रजादि देवतायो की
 बननी हैं । वेद ओ प्राची महिमा को बखान करते हैं । नमस्त नूनपण
 श्री कन्यागण सायं की शीश मे स्थित रहती हैं । धान देव, मधुर्ब धीर
 सिद्धगणों से बहिष्कृत, सुष्ठम स्वरूप तथा रसाहो हरिणी हैं, मैं सायंको
 कन्दला करता हूँ । १२।

लोकातीता ह्येवभूता समीडे भूतं संस्था व्यापसा मागिकाथं .
 विद्वद्गोता काल कस्लोत्तलोना लीलाया धिस्तसंमारदुर्गाम् । ३।
 पूर्ण सायं वृत्तलम्या मरयमानाद्ये शोवे मद्यतो या विभक्ति
 नानाकर्मदेवतिर्य्यं ह्यनुत्तमाभाधारा ब्रह्मरूप नमामि । ३।
 वरदा मया प्रियमदमति भूतं न भारयेन तदभावे विधातु ।
 कालोदेवकर्म बोषाद्यो ये कन्दो नाया ली विशिष्टां नमामि
 मूर्धो मन्दो रसताम्बु प्रतिष्ठा रूप तेजस्वैव सायो स्पृशत्वम् ।
 ये शब्दो वा यच्चिदाभास्ति नाना
 गताभ्येतादिवत्सनां नमामि । ४।

साधित्री त्व ब्रह्मरूपा मवाने भूतेष्वय प्रोपतेः धीस्वरूपा ।
 साचोशब्दवापि नाकेस्वरस्य परतो श्रेष्ठा भासि माये अगतमु
 सायं लोको से परे, वृत्तभूता, मया तथा रसानादि श्रुतियों

के द्वारा बलिष्ठा हैं । अथवा धिस्तु भी आपका स्वरूप करते हैं । धान
 काल को सहृदय से सहसारी रहती हैं । सभी श्रेष्ठ प्राणियों विनाश कीमत
 से रहते हैं । ऐसी आप सयार दुर्ग से तारने बानी को नमस्कार करता
 है । ३। मूर्ध्ति से सादि, मया और लय काल मे सायं ही स्थित रहती
 हैं । धान एक ही सायंमहात्मा को पूर्ण मय पर वृत्तमात्र ही ही सायं
 । सहाता है । देवता, सिपन्धु और मनुष्यादि जीवियों में सायं ही
 लय होकर प्रकटित है । धान सयार की सायंमभूता एवं ब्रह्म-

गीता और अवतारवाद—

'गीता' को अधिकतर लोग व्यावहारिक वेदान्त तथा दर्शन-शास्त्र की एक रचना मानते हैं। वैसे भी उसको 'ब्रह्म विद्या शास्त्र' कहा गया है, जिसका आशय अध्यात्म-ज्ञान तथा उसके अनुकूल व्यवहार से है। यद्यपि 'गीता' मुख्य रूप से अवतार-सिद्धान्त का प्रतिपादन करने या किसी अवतार का चरित्र वर्णन करने के उद्देश्य से नहीं लिखी गयी है, तो भी उसके रक्ता भगवान् कृष्ण हैं और उन्होंने अपनी विशेष शक्तियों से ही मनुज को प्रभावित किया था। इसलिये उसमें अवतार-वाद की धर्मा अनिवार्य रूप से भागई है और जो कुछ कहा गया है, वह बड़े प्रामाणिक रूप में कहा गया है।

पौण्ड्र अध्याय के प्रारम्भ में ही भगवान् कृष्ण ने यह कहा है कि " इस अनामक कर्मयोग का उपदेश सर्व प्रथम मैंने सूर्य को दिया था। सूर्य ने अपने पुत्र मनु से कहा और मनु ने अपने पुत्र राजा इन्द्राक्षु से कहा। उनके द्वारा यह परम्परागत रूप में राजर्षियों में प्रचलित रहा।" इस पर शर्वा करके मनु ने पूछा कि "आप ने इस योग का उपदेश सूर्य को कैसे दिया होगा ? क्यों कि आपका जन्म तो अभी हुआ है और सूर्य का जन्म बहुत पुराना है।" इस पर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्बाम्यात्ममामय ॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

'हे मनुज मेरा जन्म प्राकृत (सामान्य) मनुष्यों की तरह नहीं होता। मैं अविनाशी स्वरूप, अजन्मा होने पर भी, तथा सब सासारिक प्राणियों का ईश्वर होने पर भी अपनी प्रकृति को धारण करके योग-माया से प्रकट होता हूँ। इसलिये मेरा जन्म और कर्म दिव्य शब्दा असौखिक है। इस बात को जो पुरुष तत्त्वपूर्वक समझ लेता है, वह भव-दन्धन से छुटकारा पाजाता है।'

सा मत्वा भवनं युक्तं प्राह शर्मिष्ठाया कृत्स्नम् ।
 तच्छुत्वा कृपितं विप्रं वृषपर्वाह् सात्त्विकम् ॥११॥
 दण्डघ्नं मां दण्ड्यं विभो कोपी यद्यस्ति ते मयि ।
 शर्मिष्ठाया वाग्प्रकृतां कुशं यत्नतः संस्रितम् ॥१२॥
 राजानं प्रशूतं पादे पितुर्हृत्वा तया प्रवीत् ।
 देवयानी त्विवा कथा मम दासो भवतिवति ॥१३॥
 समानीय सदा राजा दास्ये तां विनियुज्य सः ।
 ययो निजगृहं ज्ञानी देवं परमर्कं स्मरन् ॥१४॥
 ततः शुक्रस्तमानोय प्रयति प्रनिलोमकम् ।
 तस्मै ददौ तां विधिबद्धेवयानी तया सह ॥१५॥

इपर देवयानी ने अपने घर पहुँच कर सुजायर्मिणी को शर्मिष्ठा की सब कहतूँ सुनाई, जिसके ये मायल प्रोपित हुए । तब देवराज वृषपर्वा ने उन्हें आलम्न की ॥११॥ यह बोला—हे विभी ! यदि माय मुझ पर कुपित हो तौ मुझे दण्ड दीजिए प्रथमा यथाकार करने दाभी शर्मिष्ठा को दण्ड देना चाहें तो उसे दण्ड करिये ॥१२॥ देवराज वृषपर्वा को अपने विवा के बरछों में पडा हुआ देख कर देवयानी ने उससे कहा—हे गहव भाव ही पुत्रो शर्मिष्ठा मेरी दाभी बने ॥१३॥ यह सुन कर देवपति को प्रबल मानते हुए देवराज ने शर्मिष्ठा की बुला कर उसे देवयानी की दाभी बना दिया और फिर अपने घर को चला गया ॥१४॥ तिर सुजायार्वा ने राजा प्रयति को विधि विधान सहित अपनी पुत्री देवयानी का कथाशन कर दिया । उसके साथ उसकी दाभी शर्मिष्ठा भी प्रदान कर बी गई ॥१५॥

इत्वा प्राह वृषं विप्रोऽभ्येना राजसूतं यदि ।
 सयने ह्यप्ये सद्यो जरा त्वा मुपमोक्षयति ॥१६॥
 शुक्रस्यैतद्वचनः श्रुत्वा राजा तां वत्सलितम् ।
 महश्यां स्थापयामास देवयान्यतृणा भिवा १७॥
 सा शर्मिष्ठा राजपुत्री वृत्तश्रीकर्मयोगिता ।

धिपोलोकी की मस्वापिका मंडम ब्लैवटस्की ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सोफेट टाक्टरिन' (नृत रहस्य) में लिखा है कि संसार में जन्म तीन प्रकार के होते हैं । प्रथम जन्म सामान्य जीवात्माओं का सृष्टि विकास क्रम के अनुसार होता है । दूसरा जीवन्मुक्त आत्माओं को जन्म होता है जो वे अपनी इच्छा से किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये लेते हैं । और तीसरा जन्म भगवान के भवतारों का होता है, जो यद्यपि सब लोगों को सामान्य मनुष्यों के समान ही पान पड़ता है, पर जिसे वे अपनी योगनामा के प्रभाव से ग्रहण करके ठीक प्रवचन पर कही भी शकट होनाते हैं । 'गीता' में भगवान् का कथन इसी तथ्य को पुष्टि करने वाला है । यद्यपि 'भागवत' और 'हरिवंश' के अनुसार भवेत्त पदरानी और रानियों से विवाह करके बहुगण्यक पुत्र उत्पन्न करने वाले श्रीकृष्ण चन्द्र महाराज और म मारी जीव जान पड़ते हैं, पर हाग ही आवश्यकता पड़ने पर वे भक्तों की रक्षा और दुष्टों के नाश के लिये ऐसी प्रलोकितः शक्ति भी दिखाते हैं जो अन्य नर तन धारी के लिये संभव नहीं । इसी लिये वे एक बार गहो वार-वार भद्रुंन को अपनी ईश्वरीय शक्ता का विश्वास दिलाते रहे और परिचय देते रहे । सातवें अध्याय में उन्होंने कहा है कि यद्यपि लोग अपने भ्रमान के कारण मेरे अवितारो म्बरूप को नहीं समझ पाते पर जो व्यक्ति श्रद्धा और भक्ति पूर्वक मेरा ध्याय ग्रहण करते हैं मैं सदा उनका कल्याण करता हूँ ।

अतवत्तु पल तेषाम् तद्भवत्यत्प्रेषमाम् ।

देवान्देवयजो यान्ति मदभक्ता यान्ति मामपि ॥

अव्ययत व्यक्तिमापन्नं मन्यते माम बुदयः ।

परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥

नाह प्रकाशः सर्वस्य योगभाया समावृतः ।

मूढोऽयं नामिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

"जो पल बुद्धि लोग मकारिक नाग की भाशा से विभिन्न

पश्चिमवर्धमानहरं शीतल सुमनोहरम् ।

परमानन्दजनकं गृहाण परमेश्वरम् ॥२१॥

उन्होंने वैदी पर अष्टम कलम बनाया और वैदी के चार कोशों से कवली कृत स्थापित किये ॥२१॥ शत्रुओं से बने हुए अरुण से एक स्वर्ण विभक्त चासन पर अश्वानु वसुदेवकी विविध रत्नमण्डुगोले प्रसक्त प्रतिमा प्रतिष्ठित थी ॥२२॥ उन्होंने पुनः सुक्त का पाठ करते हुए विभिन्न सुगन्धों से सुक्त जल, पञ्चामृत, पञ्चपण्य आदि सिद्ध किया और ब्राह्मणों के द्वारा उचचारण किया हुए मन्त्र से मन्त्रोक्ता स्थित कर्णिक पर अश्वानु श्रीवासुदेव की विराड्प्रतिमा किया । फिर सोमह पन्डू अथवा दश अश्वारों से उल्लास पूजन किया ॥२३-२४॥ हे परमेश्वर ! आपका प्रेम दूर करने के निमित्त यह परमानन्द का देने वाला सुन्दर पाप निवेदिन है । इसे स्वीकार कीजिये ॥२५॥

दूर्वाचन्दनगन्धाद्यध्यायै सुक्तं प्रयत्नत ।

गृहाण रुक्मिणीनाथ प्रसन्नस्य मम प्रभो ॥२६॥

मातातीर्थोद्भव धारि सुगन्धि सुमनोहरम् ।

गृहाणामनोय त्व श्रीनिवस विद्या सह ॥२७॥

गानाकृपुमग्न्यादय सुप्रसिद्धमुत्तमम् ।

वक्ष्ये शोभाकर चारु माल्य नव सुरेश्वर ॥२८॥

सन्तुसन्तानसन्धारचित वन्यन हरे ।

गृहाणावरणं मृदुम निरावरणं सप्रिय ॥२९॥

ममप्रार्थितं देव ! प्रजापतिविनिमित्तम् ।

गृहाण वासुदेव स्व रुक्मिण्या रमया सह ॥३०॥

हे रुक्मिणी नाथ ! हे वासुदेव प्रभो ! दूर्वा से सुक्त यह धान-

वर्चन धर्म्य मन्त्र पूर्वक स्थापित किया है, इसे प्रसन्न होकर स्वीकार कीजिये ॥२६॥ हे श्रीनिवास ! मृदु अथवा शीतों का पवित्र जल उपहृत

है । प्राय इत सुगन्ध अलङ्करी धन्य मनीष द्वारा लक्ष्मी के सहित प्रकृत

कीजिये ॥२७॥ हे परमेश्वर ! यह माया पत्रक प्रकार के पुण्यों से विभक्त

कीजिये ॥२८॥ हे सुरेश्वर ! यह माया पत्रक प्रकार के पुण्यों से विभक्त

देवताओं की उपासना किया करते हैं, वे स्याई लाभ प्राप्त नहीं कर सकते क्योंकि समार स्वायत्ते पर वे उन्ही देवताओं के संकल्पे जाते हैं, ब्रह्मा से फिर वापस माना पडता है। पर भगवान के भक्त उनके पास जाकर सदैव को मुक्त हो जाते हैं। ऐसे मूढ लोग मेरे 'भगवान' के श्रेष्ठ उत्तमोत्तम और प्रथम रूप को न जानकर मुझे व्यक्त रूप में पर्याप्त मनुष्य ही मानते हैं। मैं भी अपनी योगमाया से प्राचछादित रह कर सबको अपनी वास्तविक रूप नहीं दिखाता, इससे मूढ लोग यह नहीं जान पाते कि मैं अजन्मा और अव्यय हूँ।"

इसमें भगवान कृष्ण ने प्रजुत के सामने अपने ईश्वरत्व को प्रकट करते हुए कहा है कि मैं अनधिकारी लोगों के सामने अपने वास्तविक प्रतिनाशो और अनन्त रूप को प्रकट नहीं करता। इससे वे मुझे सामान्य मनुष्यों की तरह जन्म-मरण और पाप-पुण्य में बंधा हुआ मानते रहते हैं। ऐसे लोग समझते हैं कि भगवान की भक्ति से तो केवल मोक्ष ही प्राप्त हो सकती है। गालारिक वैभय, अपिकार, शक्ति देने का कार्य सो अन्त देवताओं का है। इस लिये वे उन्ही की उपासना में लग जाते हैं। अगर वे अपने हृदय में उपासना करते हैं तो उसका फल भी उनको मिलता है। पर चूँकि वे देवगण स्वयं अस्याई है, इसलिये उन सबके पास घूम फिर कर मनुष्य को भगवान के पास ही माना पडता है और उन्ही की श्रद्धाभक्ति द्वारा अपने जीवन को सार्थक बनाना पडता है। वैसे सामान्यता भगवान की उपासना मूर्ति आदि की पूजा जप, ध्यान आदि के द्वारा ही की जाती है, पर जो लोग सामान्य से किसी 'भवतार' के युग में जन्म लेकर उसका सान्निध्य प्राप्त कर लेते हैं वे तो भवसागर से तर हो जाते हैं। जीवन्मुक्त महान्माओं की कृपा का भी ऐसा ही फल होता है, क्योंकि वे भगवान को प्राप्त कर चुके होते हैं और इस लिये अन्य जीवामाओं का मार्ग-दर्शन करके उन्हें भी सत्य तक पहुँचा सकते हैं बड़े या छोटे (पूर्ण अपूर्ण) भवतारों का यह महत्त्व समार के वन्दारण की दृष्टि साधारण नहीं है।

अष्टदश अध्याय

एतदा कथित विद्वा यत् त्रेतोपशविश्रुतम् ।
 प्रत. पर कल्किपूर्वः कर्म प्रच्छुणुत द्विजा ॥१॥
 शम्भते वसतस्वरय सहस्रारिवत्सराः ।
 क्यतोता भ्रातृपुत्रस्वजातिसम्बन्धिभिः सह ॥२॥
 शम्भते युयुमे श्रियो सभापण्यकचत्वरैः ।
 पताकाध्वजविश्रादुर्षं यथेन्द्रस्यामरावतो ॥३॥
 यथाऽपष्टौतीर्षाणी सम्भवः जन्मसेधमवत् ।
 मृत्योर्भोज्य सिती कन्ठेरकत्करय पदायमात् ॥४॥
 यनोपवतमन्तान्ताना कुमुभ सङ्कुर्वा ।
 सोमित शम्भत श्वास मन्ये भोजयद भुवि ॥५॥

शुक्लो बोले— हे प्राह्मणो ! तीनों मौरु में प्रसिद्ध इस क्षत्रियशी
 प्रत को देने कायके प्रति कक्षा है । अपने परवात् कल्किजी ने जो कावे
 क्लो दे, उन्हें कहला है, युयुमे ११। इस प्रकार कल्किजी अपने माई,
 पुत्र, भावव और स्वजनों के साथ एक हजार वर्ष तक शम्भत प्राण में
 निवास करते रहे ॥२॥ उस समय यह शम्भत युगी ध्वजा-पताकादि के
 विभूषित हुईं सब प्रकार इन्द्र को शययवती के सपात सोमपत्नी प्रतीत
 होती थी ॥३॥ शम्भत प्राण में लक्ष काल-व्यपठ शीघ्रं एकाक्षित हो गए थे
 नियन्त्रक कल्किजी की महिषा से शम्भत प्राण में मृत्यु होने पर मौरु को
 प्राप्ति होती थी ॥४॥ वही के वन-वचन खादि अपने क प्रचार के सुन्दर पुण्यो

नीचे प्रख्याप में भगवान ने यह स्पष्ट किया है कि यद्यपि मैं समस्त जड़ भूतों, सामारिक पदार्थों को उत्पन्न करता हूँ, उनका पालन-पोषण भी करता हूँ फिर भी अपनी योगशक्तियों के प्रभाव से अपनी शक्तियों को उन भूतों से सदैव अलग ही रखता हूँ—

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।

भूतभृन्न न भूतस्थो ममात्मा भूत भावना ॥५॥

यथाकाश स्थितो नित्य वायु सर्वत्रगो महान् ।

तथा सर्वोणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

सर्वं भूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामि काश ।

कल्प वृक्षयो पुनस्तानि कल्पादौ विमृजाम्यहम् ॥७॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विमृजामि पुनः पुनः ।

भूतग्राममिदं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥८॥

ममाध्यक्षेण प्रकृतिः सृपते सचराचरम् ।

हेतुनातेन कौन्तेय जगद्विपरिकर्तते ॥

‘मेरी योग सामर्थ्य का यह समन्कार है कि मेरी शक्तियाँ उन भूतों को उत्पन्न करती हैं, उनका पालन भी करती हैं पर उनसे सर्वथा अलग रहती हैं । जिसप्रकार वायु सर्वत्र बहती हुई आकाश में ही रहती है, उसी प्रकार समस्त भूत सदैव मेरे भीतर ही रहते हैं । ये सृष्टि रचना के समय विभिन्न पदार्थों का रूप धारण करते हैं, पर अन्त में सब मेरी प्रकृति में ही धा मिलते हैं । प्रत्येक कल्प के आरम्भ में मैं इसीप्रकार उनका निर्माण करता हूँ । पर यह कार्य मैं स्वयं नहीं करता, चरन शक्तियों से प्रकृति द्वारा ही सब कार्य करता हूँ । इस प्रकार यह जगत् का धनना-विनाशना सदैव चलना रहता है ।’

भगवान का यह वचन है कि समस्त भूत मेरे भीतर हैं, पर मैं उनसे सर्वथा अलग रहता हूँ, एक पहरेवाली की तरह जान पड़ता है इनसे पाठक को एक विरोधाभास की भाँसक दिखाई पड़ती है । पर परमात्मा का विपर ही ऐसा है कि मानव बुद्धि कभी उसको ठीक रूप में पहचान

में यह भगवान् पीढ़ी के मुख से निकल होकर सतत के विश्वर को को प्राप्त हुआ है । १२०।

किन्तु इस पुराण की आत्मा रूप में पृथिवी पर प्रवर्तित होकर भगवान् वेदव्यासजी ने कहा । इसमें कति कल्प भगवान् विष्णु के पारणत भद्रमुन पत्राय का बर्णन किया गया है । १२१। सभी पुराणों के सार रूप इस कति पुराण का जो साधुजन भगवान् विष्णु के कति भाव से मान होकर किसी आश्रम या वृक्षवतीय में निपति होकर वसना मुण्डो द्वारा आह्वानो का साकार कर ले हुए तथा उन्हें राज भवन, जो, शक्ति धन दात देते हुए अकल्प प्रपन्न नीतन करेंगे उनको सारय ही मोक्ष की प्राप्ति हो जायेगी । १२०।

यत्त्वा विद्या विश्ववद्राहाणी वेद पारय ।

कामिनी भूपतिर्वरधो धनोयुद्धो महान्भवेत् । १२१।

पुत्रार्थो लभते पुत्र पनार्थो लभते धनम् ।

विद्यार्थो लभते विद्या पठनाच्छ्रवणार्थम् । १२२।

इत्येतत्पुण्यभास्वान सोमहर्षण लो मुनि ।

श्रावयित्वाभुनीन्मन्त्रा गयौ तीर्थटनादतः । १२३।

शौनकी मुनिभिः साहं सूत्रमामन्यधर्मवित् ।

पुण्यारण्ये ह्यत्रि द्यत्वा ब्रह्म प्राप सहस्रिभिः । १२४।

लोमहर्षणस्य सबपुराणान् धतवतम् ।

व्यस्तशिष्य मुनिवर स सूत प्रसामाम्यहम् । १२५।

इस पुराण के विषय पूर्वक प्रथम करने वाला ब्राह्मण बंद में पारंगत होता है, कतिव को राज्य की प्राप्ति होती है, धर्म्य पर्वा और पुत्र महत् हो जाता है । १२१। यदि पुत्र की कामना से इसका भरण करे तो पुत्र-भाव, धन की इच्छा वाले की धन साध और विद्या के अधिस्त-पिषो को विद्या की प्राप्ति होती है । १२२। लोमहर्षणसुत मुनिवर मुनिको ने कतिव गार सहित यह पुण्य आर्याल जोधवादि मुनियों की सुत्राण

नहीं कर सकती, न उनका निश्चयात्मक रूप से वर्णन कर सकती है। इसका विवेचन करते हुए लोकमान्य तिलक ने 'गीता रहस्य' में लिखा है—

“उपनिषदों में परमात्मा का स्वरूप अभ्यक्त माना है और उसे तीन प्रकार का बतलाया है अर्थात् सगुण, सगुण-निर्गुण और अन्त में केवल निर्गुण। अब प्रश्न यह है कि अभ्यक्त और अदृष्ट स्वरूप के उक्त तीन परस्पर विरोधी रूपों का मेल किस तरह मिठाया जाय ? यह कहा जा सकता है कि इन तीनों में जो सगुण-निर्गुण अर्थात् उभयात्मक रूप है, वह सगुण में निर्गुण (अथवा अज्ञेय) में जाने की सीढ़ी या साधन है। क्योंकि, पहले सगुण रूप का ज्ञान होने पर ही धीरे-धीरे एक एक गुण का त्याग करने से निर्गुण स्वरूप का अनुभव हो सकता है, और इसी वृत्ति से ब्रह्म-प्रतीक की चवती हुई उपनिषदों में उपनिषदों में घटसाई गई है। उदाहरणार्थ 'तैत्तिरीय उपनिषद' में ब्रह्म ने भृगु को यही उपदेश दिया कि 'अन्न ही ब्रह्म है' फिर जप से प्राण, मन, विज्ञान और आनन्द इन ब्रह्म रूपों का ज्ञान उसे करा दिया। दूसरी बात यह भी है कि मुख्य-बोधक विशेषणों से निर्गुण रूप का वर्णन करना असम्भव है, अतएव परस्पर-विरोधी विशेषणों से ही वर्णन करना पड़ता है।

“इसका कारण यह है कि जब हम किसी एक वस्तु के सम्बन्ध में 'दूर' या 'सत्' शब्दों का प्रयोग करते हैं तब हमें किसी दूसरी वस्तु के 'समीप' या 'असत्' होने का भी अप्रत्यक्ष रूप से बोध होना पड़ता है। परन्तु यदि एक ही ब्रह्म सर्वव्यापी है तो परमेश्वर को 'दूर या सत्' कह कर 'समीप या असत्' और किसी दूसरी वस्तु को कहे ? ऐसी अवस्था में दूर नहीं समीप नहीं "सत् नहीं असत् नहीं" इस प्रकार के परस्पर विरुद्ध विशेषणों की भाषा का ही उपयोग करना पड़ता है।”

यही सिद्धान्त स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने 'गीता' में प्रतिपादित किया है—

धीर्हृत्तद्वच भूतानाम चरं चरमेव च ।

सूक्ष्म स्वात्तददित्तो य दूरस्थ चातिके चतत् ॥

“यह परमात्मा एक भूतों के भीतर और बाहर भी है, चर है चर भी है, सूक्ष्म होने के कारण यह जानने में नहीं आता, और दूर होकर भी समीप है ।” ‘विष्णु-पुराण’ के मन्त्र में भी भगवान की इन परस्पर विरोधी जान पड़ने वाली विशेषताओं का उल्लेख मिलता है—

तस्यैव योजु गुणभुखहृषक एव
गुडो ऽप्यगुद्ध इव भाति हि मूर्तिभेदं ।

ज्ञानान्वित. सकलसत्वविभूति कर्ता

तस्मै नमोऽस्तु पुरुषाय सदाव्ययाय ॥

“जो ईश्वर के सदृश्य ही विशेषताओं से सम्पन्न है, एक होकर भी अनेक रूप है, गुद्ध होकर भी अनेक रूपों के कारण अगुद्ध ‘विकार-घन जैसे’ प्रतीत होते हैं, जो ज्ञानस्वरूप और समस्त तत्त्वों और विभूतियों के कर्ता हैं, उन निरर्थक ‘अविनाशी’ तथा अव्यय पुरुष को नमस्कार है ।”

जो व्यक्ति इस परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण को समझ लेता है और यह विश्वास कर लेता है कि जब भगवान को ‘सर्व शक्ति-मान’ कहा जाता है तो उसके त्रिपे निर्गुण और त्रिगुण दोनों रूपों में विश्व की व्यवस्था कर सकना असम्भव नहीं, वे ‘अवतार’ के तत्व को भी सहज में हृदयगत कर सकते हैं । वास्तव में मानव बुद्धि और ज्ञान अभी वहाँ तक विकसित हो सका है, उसके आधार पर परब्रह्म के स्वरूप का समझ संकलन प्रपञ्चा उसके कार्यों के गलत अर्थ वा नहीं होने का फैसला कर डालना अबुद्धिमत्ता का प्रमाण है । इस विषे यदि कोई राग, कृष्ण कल्कि आदि को पूर्ण परमात्मा का अवतार मानता है और दूसरा उनकी आत्म विकास के तत्त्वोंपरि पर त्रिस्वर पर पहुंची हुई जीवात्मा ही बतलाना है, तो इस पर अगहना व्यर्थ की बात है । सभी जीवात्मा परमात्मा के अंश माने गये हैं । “ईश्वर अत्र त्रिवि अविनाशी” “रामायण”

वे अनुसार जो जीवात्मा अपने पुरपाप से प्रथिम कथ्य तक पहुँच पाता है उसमें और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं रहता । इसलिये 'प्रवतारो' को चाहे किसी ऊपर के लोक से स्वेच्छापूर्वक 'धर्म रक्षार्थ' भाई हुई देवी आत्मा माना जाय और चाहे जीवन्मुक्त अवस्था को पहुँची हुई कोई आत्मा उससे तत्काल कोई अन्तर नहीं पड़ता । ये दोनों एक ही परमात्मा के अत्यन्त विकसित भग हैं, जो चाहे तो अपने को बिना किसी भूत के 'परमात्मा' बह सकते हैं क्योंकि वे परमात्मा में से ही प्रवट हुए हैं और उसी में अब चाहेगे चले जायेंगे । उनमें और साधारण जीवात्मामों में यही अन्तर होता है कि जीवात्मा स्वेच्छापूर्वक चाहे जहाँ नहीं जा सकते, वरन् कम बन्धनों में बंधे रहने कारण उनको विद्वान् होकर बार-बार जन्म मरण के चक्र में भ्रमण करते रहना पड़ता है । वे भी उद्योग करके 'प्रवतारो' के समान जीवन्मुक्त स्थिति को प्राप्त कर सकते हैं, पर वह केवल मुन लेने या सम्म लेने की चीज नहीं । जो वास्तव में उतना ऊँचा परमार्थ, त्याग, तप वर सनेगा और सत्तार के सर्वोच्च ज्ञान को प्राप्त करलेगा, वही एक या अनेक जन्मों के प्रयत्न से उस स्थिति को पहुँच सकेगा ।

इस सम्बन्ध में हम एक विचित्र अवस्था आश्रय करने देश में देख रहे हैं । एक तरफ तो नर्षशिक्षित कहलाने वाले प्रवतार आदि को 'गणोहा' अथवा मन्धविश्वस्त के सिवाय और कुछ मानने को तैयार नहीं और दूसरी तरफ कुछ लोग आत्मा, परमात्मा, कर्म-फल तप, जीवन्मुक्ति आदि की बातों को पढ़ या सुनकर, अपने भीतर कुछ अनुभव करने सपते हैं, और थोडा जप, तप या किसी प्रकार का योग साधन करके अपने को देवी-पुरप-प्रवतार समझने, कहने लगजाते हैं । वे अपने को स्वयं इस रूप में प्रकट करते हैं और उनके सहयोगी भी, कुछ मन्धथडा से और कुछ किसी स्वार्थ-भाव के कारण इसका प्रचार करने लगजाते हैं । ऐसे एक नहीं बहुसंख्यक व्यक्ति इस समय हमारे देश में मौजूद हैं और प्रत्येक को हजार-दो हजार या कुछ सौ

अनुयायी प्राप्त हो जाते हैं, जिन्हें वे मिथ्या प्रचार वारके हिन्दू-समाज के धार्मिक वातावरण को दूषित बनाते हैं। पर यह एक भ्रम ही समझा है, जिस पर कितनी भ्रष्टे अध्याप ने विचार करेंगे।

गीता के अवतार सिद्धान्त की विशेषता

'गीता' में भगवान् कृष्ण ने अपने भगवत्स्वरूप का जो उल्लेख स्थान-स्थान पर किया है, उसका ध्यानपूर्वक मनन और विश्लेषण करने पर अन्वेषणों की अपेक्षा उसमें एक विशेषता यह जान पड़ती है कि उनका मुख्य उद्देश्य अपने को भगवान् का अवतार घोषित करना नहीं है, वरन् भर्तृन् को 'ब्रह्मविद्या' (अध्यात्म शास्त्र) का मर्म समझाने के लिये वे अपने को ईशानेश-शक्ति के प्रतीक रूप में उपस्थित कर रहे हैं। उन्होंने मनन स्थानों पर इस तरह के उद्गार प्रकट किये हुए एक श्लोक में अपने को ईश्वर या अवतार के रूप में प्रकट किया है और दूसरे में परमात्मा की शक्ति का विश्व रूप में उल्लेख किया है। उदाहरण के लिये गीता का उदेंत समाप्त हो जाने पर १८ वे अध्याय के अन्त में उन्होंने भर्तृन् ने कहा है—

भवत्या मामभिजानाति यदा-यश्चास्मि तत्त्वतः ।

ततो मा तद्वदती ज्ञात्वा विशते तदन्तरम् ॥ १५

सर्वं कर्माण्यपि सदा कुर्पास्या मदध्यपाययः ।

मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वत पदमव्ययम् ॥ १६

चेत्तमा सर्वव्याप्तिं यज्ञि सन्मस्य मत्परः ।

बुद्धियोग मुपाश्रित्यमञ्जितः सतत भवः ॥ १७

“भाष्य को भक्ति के प्रभाव से मेरा तात्त्विक ज्ञान हो जाता है। कि मैं कितना हूँ और कौन हूँ? इस प्रकार मेरी तात्त्विक पहिचान हो जाने पर वह मुझ में ही प्रवेश करता है और उस अवस्था में मेरा ही आश्रय लेकर, सब कर्म करती रहने परभी मेरे अनुग्रह से उसे शाश्वत एवं अव्यय स्थान प्राप्त होता है। इमलियेभू भर्तृन्! तू हृदय से सब कर्मों को भ्रम में धारण करके मेरे पराधन हुआ, समस्तबुद्धि रूप

निष्काम कर्मयोग को अवसम्बन्धन करके निरन्तर मुझ में चित्त रखने वाला होगा ।”

इस प्रकार अपनी ईश्वरीय सत्ता को बहुत स्पष्ट शब्दों में प्रकट करके उगी प्रकृति में पृथक भाव से भी ईश्वरत्व का उल्लेख करने लगते हैं

ईश्वर सर्वं भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यदृच्छन्ति भाषया ॥६१

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।

तत्प्रसादात्परा शान्तिं स्यान् प्राप्स्यसि शश्वतम् ॥

“क्योंकि हे अर्जुन! शरीर रूप यंत्र में आरूढ़ हुए संपूर्ण प्राणियों को अन्तर्धामी परमेश्वर अपनी भाषा से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमात्मा हुआ सब भूत प्राणियों के हृदय में स्थित रहता है । इसलिये हे भारत ! सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही अनन्य शरण को प्राप्त होकर उनकी कृपा से परम शान्ति और अनातन परम धाम को प्राप्त करो ।”

इस प्रकार एक बार अपने को कर्ता बताकर दूसरी बार मानव-हृदय में स्थित ‘ईश्वर’ का उल्लेख करना यह प्रकट करता है कि श्री कृष्ण का भाषण अपने ईश्वर होने पर जोर देना नहीं है, धर्म के अर्जुन के सम्मुख नाटक के एक पात्र के समान ‘ईश्वरत्व’ का पाठ पढ़ा करके उसे अपने कथन का अर्थ भली भाँति समझ देना चाहते हैं । इसके अतिरिक्त जब वेदान्त-शास्त्र निश्चिन्त रूप से जीव के ब्रह्म होने का प्रतिपादन करता है और अत्येक मनुष्य के लिये ‘महं ब्रह्मास्मि’ की घोषणा करता है, तो श्रीकृष्ण जैसे महाशानी और योगीश्वर को यदि भगवान् कहा जाय तो इसमें अनुचित क्या है ? वे तो स्वयं ही जीवों से अपनी तुलना करते हुए अपनी यही विशेषता मानते हैं कि वे आत्मा और परमात्मा के वास्तविक रहस्यों को जान गये हैं जब कि अन्य लोग उसे नहीं जानते ।

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मति तत्र चार्जुन ।

तामहं वेद सवाग्निं न त्वं वेत्स्य परतप ॥

अर्थात् 'हे अर्जुन ! मेने और तेरे भी बहुत से जन्म हो चुके हैं । परतु हे धनञ्जय उन सब को तू नहीं जानता और मैं जानता हूँ ।'

इस कथन से यदि यह तात्पर्य निकालना जाय कि भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं अपने को भी मानव-श्रेणी में रखते थे और अपने ईश्वर-भाव को देवी-मत्ता का विषय प्रभावशाली रूप में प्रतिपादन करने के निमित्त ही प्रकट करते थे, तो यह सर्वथा अनुपयुक्त नहीं है । जो भी 'भागवत' 'महाभागवत', 'हृदयेश' 'ब्रह्मसंस्कृत' 'विष्णु पुराण' आदि न उनके अर्थ की दृष्टियों में से अनेक आक्षेप बोधवत्तनाई जा सकते हैं, पर श्रद्धालु भक्तगण उनका शास्त्र 'भगवान् ही नर नीला याना कर मामला खाम कर देते हैं । यदि हम 'श्वेतार' का शाशय किन्हीं 'महा मानव' या 'अति मानव' के लक्ष्य अथवा उनकी विशेष विचारधारा को कार्य रूप में परिगणित करने को ही (आत्मनिव 'श्वेतार' माने तो फिर इस में बुद्धिवादी लोगो को भी कोई विरोध नहीं हो सकता । जब भगवान् कृष्ण को सर्वोपरि ईश्वी सत्ता को मानने से इनकार नहीं करने, पर हमने ऊपर 'श्वेतार-समस्या' का जो एक भयावह रूप रखा है, वह भी 'श्वेतार का' एक रूप ही बनता है । भगवान् य तो कही न कही एकाग्र कीर्तन और अक्षर भक्त्या सर्वत्र उत्पन्न होती ही रहती है, और उसका निवारण किसी नए आन्दोलन नई विचारधारा को प्रभावित करने से ही हो सकता है । ऐसी प्रभावशाली विचारधारा ईश्वर की प्रेरणा से ही उत्पन्न हो सकती और धारो तरफ पर्यन्त सकती है । इस विषय यदि उसे ही ईश्वर का एक 'भाव श्वेतार' कहा जाय तो इसमें कुछ अन्तर्हित नहीं ।

गोता का मतलब करने में यह प्रकट होता है कि उनका मूल उद्देश्य मनुष्य को कर्तव्य बर्णना करना है, और उसका यह कर्तव्य प्राप्त का भाव इतना स्पष्ट होना चाहिये कि उसकी पूर्ति में वह मुच-दुःख हासि-नाश, यत्न-उपयग और अनेक सम्पत्तियों तक का त्याग न करे ।

भगवान् कृष्ण का कहना था कि यह सिद्धान्त ईश्वरीय विधान के अनुसूल है, और इसपर चलकर मनुष्य मात्सरिक जीवन व्यतीत करना दृष्टा भी मोक्ष और जीवनमुक्त स्थिति को प्राप्त कर सकता है। उनको यह 'निष्काम कर्म' विचारधारा हजारों वर्षों से स्थिर है और इनसे न मातुम कितने मनुष्यों का उद्धार हो चुका है। आज भी सत्सार भर में 'गीता' का जो आदर और प्रचार है, उससे यह सिद्ध होता है कि यदि बहूस्मयक व्यक्ति नहीं तो कुछ चुन्नी हुई आत्मायें अवश्य उससे प्रभावित होकर मोक्ष-मार्ग को और घटकर हो रही होती। ऐसी सशक्त विचार-धाराएँ जो पाँच हजार वर्षों से जन-मानस पर अविचार जमाएँ कर रही हैं 'ईश्वरीय सत्ता का प्रकटीकरण' ही मानी जा सकती है।

भगवान् के सम्बन्ध में सब से बुद्धिमत्त धोषणा भगवान् कृष्ण ने गीता में ही की है कि 'जब कभी 'धर्म' पर संकट आता है 'अधर्म' का उत्थान होने लगता है सभी उसका निराकरण करने को ईश्वी-गता का प्रकटीकरण होता है।' यह विचारधारा इतनी स्वाभाविक और सुदृढ सिद्ध हुई है कि प्रत्येक विद्वान् और धर्मशास्त्र ने इसको अपना लिया है। इस धोषणा में यह नहीं कहा गया है कि भगवद्-व्यक्ति अथवा भगवद्-मानकाबार और किसी व्यक्ति विशेष के रूप में ही प्रकट होगी। ईश्वर सर्व शक्तिमान और घट-घट व्यापी है, वह अपना उद्देश्य अनेक प्रकार से पूरा कर सकता है। जब गीता (१८.३१) के अनुसार ही ईश्वर प्रत्येक नर तन धारी के हृदय-देश में प्रतिष्ठित है और उसे निरन्तर भ्रमता रहता है, तो वह किसी एक या अनेक व्यक्तियों को समयानुसृत प्रेरणा देकर ही महान् कामों की पूर्ति करा सकता है। इसलिये गीता के अनुवाइमों को 'भगवत्-वाद' के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण समीचीन नहीं विस्तृत रखना चाहिये। 'भगवद्-वाद' की तरह भाव रूप ईश्वर-व्यक्ति के सिद्धान्त को भी स्वयं बुद्धिपूर्वक और शास्त्रानुसृत मानना चाहिये।

कल्कि पुराण के अवतार वर्णन पर एक दृष्टि

‘कल्कि-पुराण’ के रचयिता ने भगवान कल्कि के प्रावर्द्ध वर का वर्णन बहुत सीधे-साधे ढंग में ‘शायीन शैवी’ पर कर दिया है, कि “जब कविमुनि ने पाप बहुत बढ़ गये और धर्म कायों के बन्द हो जाने से दृष्टकण नाट जाने लगे तब ने अपनी दुरवस्था का निवारण करने के लिये ब्रह्माजी की सेवा में उपास्थित हुए । ब्रह्माजी मग को सकर विष्णु भगवान की सजा में उपस्थित हुए । भगवान ने धर्म की दृष्टि होते देखकर प्रयत्न सेना स्वीकार किया और व शक्य’ नाम में विष्णु-मदविश्व की भार्या के गर्भ में प्रविष्ट होने, और यथा समय जन्म लेकर अपने लोका कार्य को सम्पन्न करने लगे ।”

इस वर्णन में कोई नई बात नहीं है । अन्य सब पुराणों और रामायण आदि में यही प्रविष्ट विष्णु के साहित्यिक ढंग से वर्णन किया गया है । कल्कि पुराण का अन्तर्गत अनेकाङ्क बहुत छोटा है, इसमें उक्त दम-शोक श्लोकों में ही इस वर्णन को निरटा दिया है । तो भी उसमें दो-चार बातें ऐसी हैं जिन से कल्कि भगवान के जन्म ताकिक के द्वारा देवी सिद्ध ही सकता है । कल्कि भगवान का जन्म होने पर उनके आरम्भिक तस्कार ईश्वर सम्पन्न हुए इस सम्बन्ध में कहा गया है—

धातृमाता महापत्नी तामिच्छेशी तदम्बिका ।

गमोदक वनेदमोक्षा सावित्री मार्जनोदता ॥

तस्य ।वन्शोरनन्तस्य वसुधा ज्यारपय मुधाम् ।

माथका माङ्गल्य दत्त कृष्णजन्मदिने यथा ॥

पर्याप्त—“कल्कि भगवान के जन्म होने पर भगवती महापत्नी ने पानी (दूध) का कार्य किया, पत्निका देवी ने नाल काटा, भगवती भगीरथी ने अपने अल से धर्मवेद (शिशु के कपड़े के मरे रस्स आदि)को दूर किया, और सावित्री देवी उनका मार्जन करने लगी । भगवान कृष्ण के जन्म के पक्षर की भाँति भगवान कल्कि के

जन्म लेने पर गणपती बभ्रुवती ने पुण्य धारा प्रवाहित की और मातृवा भवानों ने मंगल गीत गाये ।”

यह दर्शन जीवित नहीं, भलीविध ही रहा था सवगा है । जैसे यह तो हर प्रकार में बह दिया गया है कि भगवान के धरतीर रूप में जन्म ग्रहण करने का रहस्य कोई जान नहीं सकता । इसी प्रसंग में यह भी लिखा है कि “उसी अवसर पर जब भगवान का नाम करण सरकार विद्या जाने लगा तो उनके दर्शन के निमित्त परशुराम जी, वृषाधार्य, व्यासमुनि एवं द्रोणाचार्य-पुत्र अश्वत्थामा भिक्षु भेष धारण करके वहाँ आये ।” इन प्रकार के बखाने स्पष्ट जगत् की प्रवेष्टा सूक्ष्म-जगत अथवा ईश्वरी-जगत के निचे अधिका उपरुक्त ज्ञान पड़ते हैं । कल्कि-पुराण के रचयिता ने श्री कल्कि के प्रकट होने का दर्शन परम्परागत रूप में कर दिया है । पर समस्त पुराण के अर्थानुसार पर ध्यान देने से कल्कि-भगवान का प्राकट्य अर्थात्कृत रूप में मानने की प्रवेष्टा भावना में मानना अधिका बुद्धिसंगत ज्ञान पड़ता है । जैसे जब किसी धर्म और धर्म के विरोधी पक्षों में संघर्ष प्रकट रूप में घोर विनाश परिणाम में होगा तो धर्म रक्षाय अथवा लोक कालों में एक या दो-चार व्यक्ति भी प्रमुख हो सकते हैं, उनमें से किसी एक का भावोत्कर्ष और अधिराज सर्वोपरि भी माना जा सकता है, पर किसी जब इसकी बहुत अधिका महत्त्व देना अनादर्यय्य करवाने है । ऐसे समय में महत्त्व की दस्तु वह सिद्धान्त या विचार धारा ही होती है । निगचे प्रेरित होकर हमने सुयोग्य और अज्ञानि अशिक्षित्व मातामिद रचार्य को ज्ञान कर पारमार्थिक उद्देश्य के निचे धर्म के विरुद्ध उठ खड़े होते हैं, और एक साथ ही धर्म के निचे किसी भी अर्थ या सिद्धान्त को मानने से पीछे पड़े नहीं रहते ।

इसी प्रकार जब श्री कल्कि भगवान के पुत्र संकुल जाने का दर्शन किया है तो कहा गया है कि भगवान तो वास्तव में निराकार और रूपविहीन थे । सरकार के प्राणियों को ज्ञान प्रो रूप दिखाई दिया

वह उनकी माया की शक्ति ही थी—

सुदुर्बुधुर्मुहुः सर्वलोकानुसंधाय जगता ।

दृशोन्मपमन्वभ्य निर्वाणो वाङ्मूर्त पदम् ॥

मार्तन् "श्वर भगवान् कल्कि ने इन जगत् को स्थाप कर विष्णु-पद में प्रवेश किया तो उन भक्ष्य विष्णु भगवान् के रूप दर्शन कर समस्त स्थावर और जगत् प्राणी मोहित होकर स्तुति जान पड़े।"

प्रवचन के सम्बन्ध में निम्नलिखित शब्दों के साक्षात् रूप में प्रकट होने की सम्भवा तथा वे विजादास्पद नहीं है। हमी कायण निराकार-वादी और वेदान्ती विचारों वाले किसी प्रवचन को साक्षात् परमात्मा के उभे का स्वीकार नहीं करते, वरन् विशेष देवी शक्ति में अन्तर्देवपुरुष ही मानते हैं। यद्यपि शक्त्युपवादिनों ने बल जैसे निराकार जगत् के उभे वाकर जगत् आने पर साक्षात् रूप में परिवर्तित होने का प्रमाण दिया है पर उनके वादी लोग का उभे संतोष नहीं होगा। उनका कहना है कि जब भी वायु के निष्कारण तथा परमाणु तत्व के निराकार होने में बहुत शक्ति है। विज्ञान के अनुसार भौतिक तत्व-गैस, द्रव और ठोस तीन अवस्थाओं में रह सकती है और रहते है। पर परमाणु तत्वों को किसी प्रकार पद-भौतिक नहीं कहा जा सकता है। वह तो केशव शक्ति या सत्ता के रूप में है, उनका स्तुत रूप में प्राप्तता प्रकट नहीं। वित्त प्रकार उच्छ्वास और विद्युत् की शक्ति के रूप किसी माध्यम में ही प्रकट होती और काम करती है, उसी प्रकार परमात्म-शक्ति भी परमाणु-अणुकार एक या अधिक चीजों का प्रेरण करने ही देवी शक्ति की शक्ति करती है।

जैसा हमने ऊपर धारणा है 'कृष्ण पुत्राणु' का अन्तर्गत बहुत सीधा सीधा और परमाणु में प्रकट एक उच्छ्वास की तरह है। उनमें अन्य पुत्राणु की तरह सर्वा, प्रविष्ट, मन्कार, वेद-शक्ति और गन्धर्गी, शक्ति का महाविश्व नहीं किया गया है। पर तो शक्ति का ही उभे शक्ति का ही प्रकट किया है यद्यपि किन्हीं अन्य विज्ञान में उनका

यह लक्षित कक्षरत्न तैयार किया है वही सनक्या 'निष्पु पुरार' के सम्बन्ध में भी वर्णित है बिनकी अन्य पुरारों की सूचियों में २३ हजार श्लोकों का बनाव है, पर वर्तमान समय में जो ६॥ हजार श्लोकों का ही मिलता है। कुछ भी हो 'कल्कि पुरार' में भवनार के लक्षण और निराकार रूपों के सम्बन्ध जोइ स्पष्ट विवेचन नहीं किया गया, पर अब हम 'समाप्त' गीता 'भगवान् प्रादि के विवेचन की ध्यान में रखते हुए उसके वचन पर विचार करते हैं, तो 'कल्कि भगवान् का स्वरूप अधिकांश में 'भावान्क ही प्रतीत होता है। हम जानते हैं कि जो लोग भवनार का से केवल 'राम कृष्ण मरनिह, 'वामन प्रादि जैसे चमत्कारी देवी पुरारों का ही भाव्य समझते हैं और मोहित-लोभाओं के कारण ही उनको 'भगवान् मानते हैं, वे बदर ही भावात्मक भवनार के सम्बन्ध में तरह-तरह की गवाह करेंगे। उनसे हम इतना ही कह सकते हैं कि जिसप्रकार वेदव्याज, गी० तुलसी-दान प्रादि महामानवी ने भगवान् के निराकार और 'लाकार' दोनों रूपों को अपना स्वोकार किया है। उन्ही प्रकार 'शरीर धारी' भवनार और धार रूपी भवनार दोनों ही मान्य हो सकते हैं !



पाँचवा अध्याय

कल्कि अवतार का विश्वव्यापी प्रभाव

समस्त अवतारों का 'युग-परिवर्तन' में विशेष सम्बन्ध होता है। हम यह कह सकते हैं कि जब नये युग का प्राविर्भाव होने लगता है, तो उसकी प्रविष्टि किसी 'अवतार' नामधारी द्वारा आरम्भ की जाती है। इसी बात को दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि जब ससार में किसी 'अवतार' का प्रावृत्त्य होता है, तो उसके परिणाम स्वरूप एक नवीन युग का जन्म भी होता है। इसी सिद्धान्त के आधार पर आज लाखों व्यक्ति वर्तमान विश्वव्यापी हलचल में एक नये युग के सूत्रपात के चिन्ह देखकर भावी अवतार के आगमन की आशा भी कर रहे हैं।

'कल्कि' का कलियुग के माघ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनका नामकरण इसी आधार पर किया गया है। सभी पुराणों में यह वर्णन पाया जाता है कि जब कलियुग के प्रभाव से मानव समाज की अवस्था विशेष शोचनीय हो जायगी तब 'कलियुग' को नष्ट करके 'सतयुग' की स्थापना के निमित्त 'कल्कि भगवान' प्रकट होंगे। कुछ लोग इस घटना का समय भव से कई लाख वर्ष बाद मान रहे हैं और कितने ही वर्तमान चिन्हों को देखते हुए शीघ्र ही उनके प्रादुर्भाव की भविष्यवाणी कर रहे हैं। वे मान के एक स्थानी जो ने तो 'शास्त्रों के प्रमाण' और निम्नी 'भौतिक अनुभूतियों' के आधार एक बड़ा ग्रन्थ रूपा कर सन् १९८५ में कल्कि के प्रकट होने की घोषणा ही कर दी है। हम इस स्थान पर 'कल्कि' के प्रकट होने की तारीख सम्बन्धी विवाद में पड़ना नहीं चाहते, पर जो लोग अवतार को लाखों वर्ष प्राय की घटना मानते हैं, उनसे तो हमारा मतभेद स्पष्ट है। अधिकतर पुराणों और मनुस्मृति

आदि में भी नतिवृत्त को १२०० वर्ष का लिखा है। पर पुराने इन के प्रति उमरो दो-वर्ष पहलर ह जाग ३२ हजार की संख्या बतनाते है, अब कि प्रस्त लिखत उनको मानव वर्ग मानार बागो कृया का परिमाण १२ हजार वर्ष निश्चित करणे है। से इससे प्रमाण स्वरूप 'मनुस्मृति' क य इतोत उचित करणे है —

इत्यादिह सप्तमि वर्षाणात् कृत दुग।
 मय लावतु शन्ती क वा सध्याह न तुया विधि ॥
 नैरपु म ह पु य ग-।यियु १ यियु।
 शोषाणन र्त्तने र ह्वासा र्त्तति च ॥

इन श्लोकों में स्पष्ट प्रमाण य कहा गया है कि पूर्वयुग (तन्वयुग) ४ हजार वर्षों का होता है और १०००-१००० वर्ष की उमरी संख्या और मध्ययुग होने है। इसी प्रकार तीता, द्वितीय तथा तृतीय युग प्रथम हजार, २ हजार और एक हजार वर्षों के होते हैं और उनके रहने की काल की उमरी दोनों तृतीय (तृतीय और चतुर्थ) भी होती है।"

दुगों की प्रथम का निर्माण करने के लिए प्रथम ४० वर्ष पहले 'वेतापनी' नामक पुरिखवा से लेकर ५० राजाशासक गृहशास्त्री ने बड़ा परिश्रम और आ-दाग रिया भा। इसी 'वेतापनी' साम्राज्य बनता य पत्नी गौरागिण हा गर्द भी और इससे की संख्या में ६५ कर विधी भी। उक्तान सारो धर्म के पुगो के लक्ष्यन के उद्योगिय, धर्मशास्त्र तथा महाभावन आदि के तथा भव्य शोकर बहुत से प्रमाण दिखे थे। उक्तान में हा वा उभेन नीचे लिखा जाता है—

उदयपुर जयपुर, जोधपुर तथा वाग्मीर के महाराज अपने यम का शायद भवनात राम के सुवंधन से बतनाते हैं और इन्हन चमक विभाग पश्चिमी को नियुक्त करके तथा समस्त प्राचीन ग्रन्थो तथा पुराणा में दी हुई वधा-परिचयों की राम और मिश्रण करके प्रस्त क श्रीमत्सुवन्द से प्रथम समय तक के समस्त राजाओं की नामावली संस्कार कराई। इसमें सुवगाद श्रीमत्सुवन्द से जयपुर के वर्तमान महा-राज भानसिंह का पुत्र २३६ राजा हा चुके हैं। यह प्रथम पुराने इ-

के पंडितों के हिसाब से माना जाय तो श्रीरामचन्द्र को करीब २-१० लाख वर्ष पहले या मानना पड़ेगा । पर इन लाख वर्षों में २३१ पीढ़ियों का होना किमी हिसाब में ठीक निश्चय नहीं होता । विद्वानों ने एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी का अन्तर म मान्यतया २५, ३० वर्ष का ही निर्धारित किया है । इस हिसाब में २३१ पीढ़ियों में ३-६ हजार वर्ष में अधिक का समय व्यतीत नहीं हो सकता ।

इसमें अगर यह दलील भी जाय, जैसा कि अन्तर 'पंडित' नाम-धारी प्रायः दिया करते हैं कि पुगाने जमाने में मनुष्यों की आयु हजारों वर्ष की हुआ करती थी, इसलिए एक-एक पीढ़ी का अन्तर बहुत अधिक हो सकता है, तो यह निष्पत्ति है । हजारों, लाखों वर्ष की आयु और सैपटो गज लम्बे बौड़े बगैर क्या प्रायः उपरान्तों में सुनाय जा सकते हैं, पर जब गौरीतापूर्वक विचार विमर्श किया जाय तो उन को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता । प्राचीन प्रायः गाधुनि, वातावरण और रहन-सहन में अन्तर पड़ गया है उसके आधार पर उम्र समय बहुमायिक लोगों की आयु अब से हज़ारों गुणों तक माना जा सकता है जैसा कि आजकल भी छहोंके के कृत्रिम वातावरण में दूर पामीरा वयस पहली स्थानों के निवासियों में प्र.क. व्यक्ति १२५, १५० या हमें भी अधिक आयु के पाये जाते हैं । धर्मशास्त्रों की दृष्टि में भी जो 'वेद' समार के सबसे प्राचीन ग्रन्थ स्वीकार किये गये हैं उनमें सब जगह 'त्रिंशत्तमं सततम्' कह कर परमात्मा में सौ वर्ष की आयु की शर्षता की गई है । पाठक इस पर विचार करके स्वयं वास्तविकता का अनुमान कर सकते हैं । ऐसी ही दशाओं में श्री रामचन्द्र जी का शासन-काल आठ हजार वर्ष लम्बे दिया गया है, पर उनके दिवस के सम्बन्ध में यही कहा गया है कि उस समय 'रामचन्द्र जी की आयु २३ वर्ष और सीता की १८ वर्ष की थी ।' इसमें भी यह जाना जा सकता है कि हजारों वर्ष की आयु वाली बात ठीक नहीं है, कम से कम उमर का अन्त्य वर्तमान 'मानव' में नहीं हो सकता ।

‘विनायकी’ की दूसरी खोज यह है कि अनेक स्थानों पर चारों मुर्तियों जो ४२ लाख २० हजार वर्षों का लिखा है, वे वास्तव में ३६० दिन बाने वर्ष नहीं है, वरन् सूर्याब्द (३४ घंटे का रात दिन) है । प्राचीन ग्रन्थों में बहुत से वर्णनों में इसी प्रकार ‘सूर्याब्द’ का उल्लेख किया गया है । इसका एक उदाहरण ‘वाल्मीकि रामायण’ में मिलता है । उसके उत्तरकाण्ड (सर्ग ७१) में एक द्राक्षरा का वर्णन मिलता है जिसने धीरगम के दरवार में घाकर अपने बालक के मर जाने की घिकारत की थी बत-
 पौर कहा-

अत्रापि यौवनं बले पञ्च वर्षं सहस्रकम् ।

अगाले बालमापन्न मम दुःखाय पुत्रकम् ॥

इसमें कहा गया है कि “भिय पाँच सहस्र वर्षों की आयु का बालक यौवनावस्था प्रप्त होने से पूर्व ही अज्ञान में बाल-वचसित हो गया है, इससे मैं अत्यन्त दुःखी हूँ ।” इन श्लोकों में ५ हजार वर्षों की आयु बाने की बालक कहना बड़ा बेनुका जान पड़ता है पुराणों की कथाओं में महागुरु दत्तत्रय और श्री रामचन्द्रजी की आयु लगभग दस-दसह सहस्र वर्षों की बतलाई है । थोड़ी देर के लिए उत्तरी भी मान लिया जाय तो भी ५ हजार वर्षों की आयु बाला ‘युवा’ समया प्रौढ हो कहा जा सकता है, उसे बालक कहना तो गलत ही माना जायगा । इसलिये रामायण के एक विशद टीकाकार पं० रामाभिराम ने इसका अर्थ करते हुए लिखा है—

“पञ्च वर्षं सहस्रकं वर्षं शब्दोऽथ दिन परः ।

विश्विन्मृतं चतुर्दश वर्षं मित्यर्थः ।”

अर्थात् “ यहाँ पर जो ‘पञ्च सहस्र वर्षं’ कहा गया है उसका भावार्थ दिन में है । इस हिसाब से उन द्राक्षरा का बालक चौदह वर्षों से कुछ कम आयु का था ।”

अगर कोई इस ‘सूर्याब्द’ की बात को मन्वन्त प्रपञ्च काल्पनिक बदे तो यह उत्तरी भूल और जातकारी की क्षमी है । वास्तव में क्या

कहने वाले या पूजा-पाठ कराने वाले 'पंडितों' में से एक प्रतिबल भी ऐसे नहीं होते जिन्होंने प्राचीन साहित्य का गहरा अध्ययन किया हो और उसका मर्म खोजने में परिश्रम किया हो। यदि वे खोज करते तो उनको मालूम हो जाता है कि वर्ष केवल ३६० या ३६५ दिनों का ही नहीं होता बरस इससे बहुत कम और बहुत अधिक अनेक प्रकार का होता है। गणित ज्योतिष के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सूर्य सिद्धान्त' में भी प्रकार के वर्ष बतलाये गये हैं—

ब्रह्मं दिव्यं यथा पित्र्यं प्रजापत्य गुरोःस्तथा ।

सौरं च सावनं चान्द्रं मासं माननी वै नव ॥

(सू० १३-१)

अर्थान्—“ब्रह्म—वर्ष इस सृष्टि के बराबर होता है। 'दिव्य-वर्ष' (यह सूर्य की उत्तर-दक्षिण गति से ३६० दिन का होता है)। 'पित्र्य वर्ष' (यह हमारे एक महीने के बराबर होता है)। 'प्रजापति वर्ष' (यह एक प्रतिमसं सृष्टि के समान कहा गया है।)। 'गुरु वर्ष' (यह बृहस्पति के भ्रमण काल के अनुसार १२ वर्ष का होता है।)। 'सौर-वर्ष' (३६५ दिन का।)। 'सावन वर्ष' (सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक २८ घंटे का। इसी को 'सूर्य-वत्सर' या 'सूर्यवर्ष' कहा गया है।)। 'चान्द्र वर्ष' (यह तिथियों के हिसाब से ३५४ दिन का होता है।)। 'मक्षय वर्ष' यह ५२ महीने कुल पल का होता है।)

वेदों में 'युगों' का हिसाब भी कई प्रकार से बतलाया गया है और वेदांग-ज्योतिष के ग्रन्थों में छः-छ महीने के ('देवयुग' और 'अनुष्य-युग') से लेकर पाँच, बारह, साठ, बारह हजार तथा लाखों वर्ष की मर्यादा वाले अनेक युगों का विवरण पाया जाता है। 'अथर्व वेद' में भी एक स्थान पर चारों युगों का परिमाण १२ हजार वर्ष का होने का वर्णन मिलता है—

कर्तव्यं युत हायता द्वं युगे त्रीणि चत्वारि कृष्णः ।

इन्द्राग्नि विदवेदेवाःस्ते तुत्तग्यनामर्हणोय माना ॥

मायणाचार्य ने इस मत का भाष्य करते हुए लिखा है—

“वनुषा युगाना सधि सवत्सरान् विहाय युग चतुष्टय
निनिहा, भ्रुत सवत्सरा, स्तु तानु विभज्य कलि द्वापरारो
नीरिा चेता साहितानि चत्वारि कृत्वयुग साहितानि कुर्म इति
आदात्म्ये ।”

अर्थात्—‘चारों युगों के सन्धि-मन्तरो को छोड़ दस हजार वर्ष
होने हैं। कलि द्वापर त्रेता और कृत्वयुग सहित ये चारों युग होने
हैं।’

आचरण के आधार पर युग परिवर्तन—वही तक हमने उन
पाठों को समझने के लिये जो मानते हैं कि शास्त्रानुसार चारों
युगों का क्रम में निरन्तर घटते-जाते रहना अनिवार्य है, कुछ शास्त्रीय
विवेचन किया। अतएव हम तो इस सम्बन्ध में वैदिक ऋषियों के
उक्त सिद्धान्त को यथार्थ मानने में विचलित नहीं हुए हैं कि ‘युग’ का
आधार मनुष्य के कर्मों और विचारों पर है। जैसा ब्रह्मा-बुध हमारा
आचरण होगा वैसा ही युग (समय) हमारा जान पड़ने लगेगा।
‘ऐतरेय ब्राह्मण’ में इन्द्र ने कहा था—

कले दयानो भवति सगिहानस्तुद्धार ।

उत्तिष्ठन्नेता भति कुत सम्यचने चरन् ॥

अर्थात्—‘जब समाज या व्यक्ति सोना रहता है (असमर्थ अवस्था
में रहता है) तो उसे कलियुग की अवस्था कहना चाहिए। जब वह
प्राण छोड़कर जेभाई लेने लगे तो वह द्वापर की दशा होती है। जब
उठ जाना है तो वह त्रेता में पर घटना है, और जब चलने लग जाना
है (अपने कर्तव्य पालन में सलग्न होता है) तब वह कृत्वयुग की अवस्था
को प्राप्त हो जाता है।

शासन और युग का सम्बन्ध —

इससे भी अधिक व्यावहारिक बात इस सम्बन्ध में महाभारत
में भीष्म विनायक ने कही थी। उन्होंने युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए

प्रभाव नामकी बुद्धि वागो'धोर मद्यना अभिचार, युधा धादि दुष्क-
 सलो मे लिप्त व्यक्तियो पर ही अधिक पडता है। अतएव अपना
 बह्वाण चाहने वाले मनुष्यो नो सबसे पहले 'पत्नियुग' की दूषित
 भावना को सर्वथा त्यगकर थोछ युग के प्रागमन की ही भावना करनी
 चाहिए। हमारे विचार मे वही 'कल्चि' का सबसे सुर्य धोर वास्तविक
 सन्देश धोर उद्देश है। युगो की वर्ष-सम्या के सम्बन्ध एक मध्यम
 मार्गीय इस उन लोगो का भी है, जो कहते है कि प्रत्येक महायुग मे
 कम अवधि वाले चारो युगो की अन्तर-दशा मे निरन्तर घानी रहती
 है। इसी विचार के एव मञ्जन न 'सतयुग' मासिक पत्र (सितम्बर
 १९३६) मे लिगा था कि 'कल्चियुग ४३२००० वर्ष तक रहता है, पर
 बीच-बीच मे प्रत्येक ५०५३ वर्षो के बाद ८० वर्षो के लिये सतयुग
 आता रहता है।' इन दोषो मे से किसी का खडन न करते हुए परीकार
 परिस्थितियो को देख कर हम युग-परिवर्तन की सम्भाना पर लिखित
 रूप मे विश्वास करते है, धोर हमारी यह भी धारणा है कि इस
 उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'कल्चि अवतार' की प्रविधा इस समय भी
 भी विषयव्यापी आतावरण मे चल रही है।

'महाभारत' (वन पर्व पृ० १६०) मे कल्चि-अवतार के प्रकट होने
 का वर्णन अन्त यन्धो की स्मोधा क्लितारपूर्वक किया गया है। उगमे
 प्रारम्भ मे कल्चियुग मे समाज की दुग्बस्था धोर लोगो मे उत्पन्न होने
 वाले भयकर दोषो का वर्णन करते कहा गया है—

कल्की विष्णुयशा नाम । द्वज. काल प्रचोदित ।

उदीत्यते महावीर्यो महा धुद्धि पराक्रम ॥६३

मम्भूत मम्मल यानि दाह्याणा नमथे सुभे ।

(महात्मा कृत्स्नपन्ने, प्रजानि हितकृन्प)

मनसा तस्य सर्वाणि वाहनान्यायुधानि च ॥६४

उपस्थास्यन्ति योधाश्च शस्त्राणि यवधानि च ।

न धर्म विजयी राजा चक्रवर्ती भविष्यति ॥६५

विचरन्नासूनु क्षोण्या हरेणाप्रतिमद्युति ।
 नृपनिगच्छदो रस्युत कौटिलो निहनिष्यति ॥२०
 अथ तेषा भविष्यन्ति मनाग्नि विशदानि वै ।
 वासुदेवागराणातिपुण्यगन्धानिलसप्रदाम् ।
 पौरजानपदाना वै हृतेष्वशितदस्यपु ॥२१
 तेषा प्रजाधिसर्गदत्त म्दविष्ट म्म्भाविष्यति ।
 वासुदेने भगवति सत्त्वमूर्ता हृदि स्थिते ॥२२
 यदायतीर्णो भगवान् कल्किर्धर्मपतिर्हरि ।
 नृत भविष्यति नदा प्रजामूनिश्च गान्धिवकी ॥२३

“अब भवतार के प्रकट होने का भवमर घायला उठा समय बम्बल
 घाम में विष्णुपत्र नाम के एक श्रेष्ठ शास्त्रण होंगे । उनका हृदय बड़ा
 उदार एवं भक्तियुक्त होगा । ऊँची के घर में कलि-भगवान् भवतार
 ग्रहण करेंगे । श्री भगवान् ही भ्रष्ट सिद्धियों के तथा समस्त मनुष्यों
 के एषणात्र प्राथम्य है । समस्त चराचर जगत के वे ही रक्षक और
 स्वामी हैं । वे देवदत्त नामक क्षीणगामी घोड़े पर सवार होकर दुष्टों
 को अपनी जगत प्रतिष्ठ तलवार के फाट उतारेंगे । उनके रोम-रोम में
 तेज छिन्नता होगा । अपने क्षीणगामी वाहन पर पृथ्वी पर सर्वत्र
 विचरण करके ‘राजाघो के देश में प्रचलित करोड़ों लुटेरों का सहार
 करेंगे । जब भगवान् के प्रगण से सुगन्धित हुई वायु लोगों को स्पर्श
 करेंगी तो उनका हृदय पवित्र हो जायगा और पाप कर्मों का भ्रन्त
 हो जायगा । इससे सबके हृदय में भयवद्भक्ति का सवार होगा और
 वे सुखी तथा पूर्ण स्वस्थ होने लग जायेंगे । प्रजा के नयन-मनोहारी
 श्री हरि ही धर्म के रक्षक और जन के रवागी हैं। वे ही भगवान् जब
 कल्कि रूप में प्रकट होंगे, तो कलियुग का भ्रन्त होकर मत्स्युग (श्रेष्ठ
 युग) प्रारम्भ हो जायगा और सब मनुष्य तथा उनकी सत्तान स्वयमेव
 मत्स्यगुण युक्त बन जायेंगे ।”

‘उत्तमवतार पर पुराण, पुरुष, परमेश्वर ‘कल्कि’ प्रकट होंगे, जो दिव्य अश्व पर साहस्य और द्यौति (तलवार), धर्म (कदम), धर्म (शाल) आदि सवस्तु वस्त्रों से सुसज्जित होंगे । वे साजो मलेच्छों को उनके दुष्टों के फलस्वरूप नष्ट कर देंगे और उसके पदचान् ‘महात्मार्थि’ ग्रहण कर लेंगे । उनके प्राकट्य के पहले यह भूमि धर्म-धर्म रहित धर्म विमुख लोगों से भर जायगी, पर भगवान् कल्कि के प्रभाव से वह फिर पुरुष-रूपी बन जायगी । जब कल्कि भगवान् धर्म रक्षार्थ महायज्ञ का अनुष्ठान करेंगे, तो देवगण अपना नियमित भक्ष प्राप्त करके शक्ति सम्पन्न हो जायेंगे और पृथ्वी निवासियों के कल्याण साधन में तत्पर होंगे ।’

‘शहावतं पुराण’ के ‘प्रकृतिखण्ड’ में ‘कल्कि’ का वर्णन करते हुए कहा है—

एष कनो सम्प्रवृत्ते सर्वे म्लेच्छमयो भवेत् ।

विप्रस्य विष्णुपशसः पुत्र कल्किर्मविष्यति ॥

नारायण फलांशश्च भगवान् बलिनां बली ।

दीर्घेण करवालेन दीर्घं घोटक वाहन. ॥

म्लेच्छशुभाश्च पृथिव्या त्रिरात्रेण करिष्यति ।

निर्मल्लेच्छां यमुषा कृत्वा अनुषानिं करिष्यति ॥

‘जब कल्पियुग की वृद्धि होकर समाप्त अर्थात् म्लेच्छों (धर्म-शोद्धियों, से भर जायगा, तब भगवान् नारायण के वसाक्ष से विष्णु पश के यह में ‘कल्कि’ का प्राविर्भाव होगा । वह बड़े-बड़े शक्तिशालियों की अपेक्षा भी अधिक शक्तिमान् होंगे । वे अपनी विशाल तलवार और विशाल अश्व द्वारा तीन रात्रि में अत्यन्त शीघ्र म्लेच्छों का मूलोच्छेदन कर डालेंगे और पृथिवी के धर्मयुक्त हो जाने पर पुनः वैकुण्ठ को चले जायेंगे ।’ ये ही लोक कल्कि अवतार का वर्णन करते हुए ‘द्वितीया भागवत’ में भी मिलते हैं । ‘विष्णु पुराण’ (३—२) में कल्कि अवतार के विषय में कहा गया है—

घेदास्तु द्वापरे ध्यातः कलेरग्रे पुनर्हरि ।

कल्किस्वरूपो दुर्वतान् मार्गं स्थापयति प्रभु ॥

अर्थात् 'भगवान् नारायण द्वार में आसने के रूप में देवों का विभाजन करके पुनः कलियुग के अन्त में 'कल्कि' के रूप में प्रकट होंगे और दुष्ट स्वभाव वाली को सन्मार्ग पर लगावेंगे ।' आगे चलकर चतुर्थ अध्याय के चौबीसवें अध्याय में कल्कि अवतार का विशेष वर्णन करते हुए कहा है—

'श्रोते स्मार्ते च धर्मे विप्लवमत्यन्तमुपगते क्षीणप्राये च कलावशेषजगत्स्रष्टुश्चराचरसुरोरादि मध्यान्तर रहितस्य ब्रह्ममयस्यात्मरूपिणो भगवतो वासुदेवस्याशशम्बलसामप्रधान-ग्राहणस्य विष्णुयशसो गृहेऽष्टगुणद्विसन्वित कल्किरूपी जगत्प्रावर्तीयं सकल म्लेच्छदस्युदुष्टा चरणचेतसामशेषाणामपरि-च्छिन्न शक्तिमहात्म्य. क्षमं करिष्यति स्वधर्मेषु चाखिलामेव सत्स्थापयिष्यति ।१६८।

अर्थात्—'जब थोड़ा वैदिक और स्मार्त धर्म की अत्यन्त हानि हो जायेगी और कलियुग प्रायः समाप्ति पर होगा, तभी 'शम्बल' नाम में निवास करने वाले विप्रश्रेष्ठ विष्णु यश के यही सम्पूर्ण विश्व के कारण, चण्डाल के स्वामी, मादि-मध्य-अन्त में हीन, ब्रह्मघ्न एवं आत्मरूप भगवान् अपने धर्म से अष्टगुण युक्त कल्कि रूप में अवतार धारण करेंगे। वही अपनी शक्ति और महिमा में सम्पन्न होकर सब म्लेच्छों, दस्युओं और दुष्ट हृदयों और दुराचारियों को नष्ट कर सभी प्रजा को अपने-अपने धर्म में स्थापित करेंगे ।'

'धर्ति पुराण' में कलियुग के कारण धर्म और अमान की दुर्वतस्या का चित्रण करते हुए 'कल्कि' के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है—

सर्वे कल्पियुगान्ते तु भविष्यन्ति च संकराः ।
 दस्यवः शीलहीनाश्च वेदो वाजसनेयकः ॥
 धर्मं कञ्च कुसंश्रिता अधर्मं इवमस्तथा ।
 मानुषान् भक्षयिष्यन्ति म्लेच्छान् पार्ष्णिद रूपिणः ॥
 कल्कि विष्णुयुग पुनो याज्ञवल्क्य पुरोहितः ।
 अत्सादयिष्यति म्लेच्छान् गृहीतास्य कृतायुधः ॥
 कल्कि रूपं परित्यज्य हरिः स्वर्गं गमिष्यति ।
 तथा कृतयुग नाम पुष्वतु सम्भविष्यति ॥

‘कल्पियुग का अन्त होने के समय सब लोभ बाणें रुकर हो जायेंगे । वे सुटेरे, शीला रहित और वेद विरुद्ध भाषण करने वाले होंगे । उनकी शक्ति धर्म की तरफ से हटकर अधर्म की तरफ चली आयगी । म्लेच्छ राजागण मनुष्यों का बहुत बुरी तरह शोषण करेंगे । सब कल्कि भगवान् श्री विष्णु युग के यही प्रकट होंगे और याज्ञवल्क्य उनके पुरोहित होंगे । वे शस्त्र लेकर अपनी शक्ति से म्लेच्छों को नष्ट कर डालेंगे । इसके पश्चात् जब पृथिवी पर फिर से सत्ययुग स्थापित हो आया तब भगवान् कल्कि पुनः अपने लोक को चले जायेंगे ।’

‘गर्भ पुराण’ (अध्याय—१४६) में भी ‘कल्कि’ का वर्णन बहुत संक्षेप में कर दिया गया है—

कल्कि विष्णुश्च भार्गवा शम्भल ग्रामके पुनः ।
 अश्वारूढोऽप्रखिलान् लोकोस्तदाभोतान् करिष्यति ॥
 एष स भगवान् व्यास धर्म संरक्षणाय च ।
 दुष्टानां च वघार्याय अवतारं करिष्यति ॥

‘शम्भलग्राम में विष्णु युग के यही भगवान् ‘कल्कि’ रूप में प्रकट होंगे । वे घोड़े पर चढ़कर समस्त संसार को प्रभावित करेंगे । जैसा भगवान् व्यास कह गये हैं उनका अवतार दुष्टों का वध करने के लिए होगा ।’

‘विष्णुधर्मोत्तर पुराण’ में भी कल्कि के सम्बन्ध में निम्न-
लिखित श्लोक मिलता है—

कलेरन्ते तु संप्राप्ते कल्किन्मं ब्रह्मवादिनम् ।

अनुप्रविश्य कुशले वासुदेवो जगत्स्थितम् ॥

‘बस कल्पियुग समाप्त होने लगेगा तो सर्वव्यापी भगवान् पृथ्वी पर ‘कल्कि’ रूप में प्रकट होये और दैवरीय सत्ता (धर्म) की स्थापना करेंगे ।’

इस प्रकार प्रत्येक पुराण में ‘कल्कि’ का न्यूनाधिक परिमाण में उल्लेख मिलता है । सभी विद्वानों और श्रद्धि महर्षियों ने उनकी गणना प्रमुख भक्तारों में की है और उनकी महिमा अज्ञाप्यक भाई है । यद्यपि ‘कल्किपुराण’ में ‘कल्कि’ का चरित्र-चित्रण सामान्य रूप में ही किया गया है और अन्य पुराणों की तुलना में यह नाममात्र का ही ग्रह माना जा सकता है, पर इससे ‘कल्कि’ के महत्व में कोई अन्तर नहीं पड़ा और हम कह सकते हैं कि इस भक्तारों में से राम, कृष्ण अति-रिक्त वाक्य ही कोई ऐसा भक्तार हो जिसकी चर्चा प्राचीन और नवीन प्रयोगों में ‘कल्कि’ की अपेक्षा अधिक मिल सके । कारण यही है कि ‘कल्कि’ का उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप में दुष्टों और अप्रियों से मानवता का परित्रण करना माना गया है । एतना ही नहीं अनेक विद्वानों की यह भी धारणा है कि ‘कल्कि’ संसार की भावी सभ्यता, जो वर्तमान से बहुत विन्न होगी, के संस्थापक होंगे । यही कारण है कि प्राचीन धार्मिक विद्वानों के साथ नये युग के विचारकों ने भी ‘कल्कि’ की तरफ अधिक ध्यान दिया है और इस विषय की पर्याप्त विवेचना की है । प्रियोज्ञाचार्य लाल लोसाइटी की विदेश स्थित शाखाओं के द्वारा ‘कल्कि’ की चर्चा वहीं भी पहुंच गई है और विद्वानों में इस विषय पर विचार विमर्श हुआ करता है ।

पुराणकारों के प्रतिरिक्त प्राचीन विद्वानों तथा कवियों में से श्रीमनेत्र ने अपनी रचनाओं में ‘कल्कि’ का गुणगान और ध्यानध्या की

रक्षा करने के उपलक्ष्य में उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। एक संस्कृत कविता में जिसको 'राक्षुराचार्य' की रचित बताया गया है, 'कल्कि' के सम्बन्ध में कहा है—

दुराचार संसार सहारकारी

भक्त्यञ्चार कृपाणप्रहारी ।

मुरारिर्दंकाकार पारोह फल्की

करोतु द्विपा ध्वंसनं व. स कल्कि ॥

'भगवान् कल्कि, ओ इश भवतारो मे ते है, हमको भीषण संहार-सागर से पार करें और कृपाण से दुष्टों का नाश करके हमारे बंधों को मिटाओ ।'

काश्मीर के सुप्रसिद्ध प्राचीन संस्कृत कवि क्षेमेन्द्र ने 'दशावतार चरित' नामक सुन्दर काव्य लिखा है। इसमें कल्कि भगवान् (क्षेमेन्द्र ने इसका उच्चारण 'कल्कि' दिया है) की गुण गाथा विस्तार पूर्वक गाते हुए कहा है—

तस्मिन् काले निरा लोके लोके पाप तमोदये ।

उत्पत्स्य तेऽर्कं सकाशः शिशुकैकिकुक्षे द्विजः ॥

विष्णुभूमं भार शान्तवर्था सोऽथ विष्णुमशः क्षिती ।

परिष्यत्यश्वमारुह्य म्लेच्छ संक्षय दीक्षितः ॥

'अस मन्धकार युग में जब कि योग पाप-कर्मों में सिद्ध होये, विष्णुमश नामक प्रमुख ब्राह्मणों के घर में सूर्य के समान तेजस्वी एक बालक जन्म लेगा। वह 'कल्कि' नाम वाला भगवान् का अवतार होगा और पृथिवी को भारमुक्त करके सुखी बनायेगा। वह मन्ध पर सवार होकर सर्वत्र दुष्टों का नाश करता हुआ फिरगा।'

दशावतार सम्बन्धी एक अन्य रचना में कहा गया है—

कल्पावसाने तुरगाविरुद्धो

सह्यदायामात निभेषमाश्रात् ।

यस्तेजसातिश्च हतार्तिभीष

स्तं कालिकं विश्वपतिं भजामः ॥

‘युग’ के समाप्त होने पर प्रथम पर पारुद्ध ‘कालिक’ प्रकट होने जिनका तेज अत्यन्त तीव्र और भीषण होगा, वे दुष्टों को देखते-देखते भस्म कर देंगे ।’

‘कालिक’ की भावना का प्रभाव भारत के अन्य धर्म-सम्प्रदायों पर भी पड़ा है । चाहे वे उनको किसी दृष्टि से क्यों न देखते हों पर उनके रूप में भारी प्रवृत्तार की सम्भावनाओं को उन्होंने स्वीकार किया है । ‘जैन हरि वल्ल’ (१०-२-५२) में कहा गया है—

मुवित्तगते महावीरः प्रतिवर्षं सहस्रकम् ।

एकंको जायते कालिक जैनमत विरोधकः ॥

‘जैन श्री परंशु महामोह स्वामी के निर्वाण के पश्चात् प्रति एक हजार वर्ष पर एक ‘कालिक’ प्रकट होता रहेगा, जो जैन मत का विरोधी होगा ।’

इस अर्थ में एक हजार वर्ष का उल्लेख विशेष महत्त्वपूर्ण है । कल्पियुग की षड्विंशति पुराणों में एक हजार वर्ष ही बतलाई है और सूरदास आदि कई सन्त एक हजार वर्ष तक ‘सतयुग’ कायम रहने का कथन कर गए हैं । ‘कालिक’ प्रकट होने का मान्य ‘युग-परिवर्तन’ से निश्चित रूप से लिया जाता है । इसलिए प्रति एक हजार वर्ष पर संसार की प्रवृत्तार में एक नया विशेष परिवर्तन होने की सम्भावना का प्रतिपादन करना अवश्य ज्ञान देने योग्य है ।

एक आश्चर्यजनक बात यह है कि कालिक की भावना भारतवर्ष की पारमिक कल्पियों में प्रबल-प्रबल जनता तक ही सीमित नहीं रही पर उनका प्रभाव सब से दो सौ वर्ष पूर्व इस्लाम तक पहुँच गया । वहाँ के Thomas Cambell (घामत कैम्बेल) नामक कवि ने सन् १७६६ में ‘Pleasures of Hope’ शीर्षक जोरदार कविता में

'कलिक' के यद्वात् वायो का वर्णन करके उनके अपदुदारक रूप को
बड़ी भक्ति भावना से नमस्कार दिया या—

Nine times have Brahma's wheels of lightning
hurled.

His awful presence o'er the alarmed world

Nine times hath guilt, through all his giant
frame.

Convulsive trembled, as the mighty came.

Nine times hath Suffering, Mercy spread in
vain.

But heaven shall burst her starry gates again !

He comes ! dread Brahma shakes the sunless sky,
With murmuring wrath and thunders from
on high.

Heaven's fiery horse, beneath his warrior form,
Paws the light clouds and gallops on the storm
Earth, and her trembling isles in oceans bed
Are shook, and Nature rocks beneath his tread.

The tenth Avtar comes ! at heaven's command,
Shall Saraswati wave her hallow'd wand.

Come heavenly powers ! pristine peace restore
Loves !—Mercy !—Wisdom !—rule for ever
more

पर्याय—परमात्मा के रूप के विस्तृत चक्र नौ बार घूम चुके हैं
और भयभीत समस्त उसकी दास्यता का अनुभव कर चुका है,
नौ बार जब वह एकत्रिंशती सत्ता प्रकट हुई समस्तस्वामि दुष्टता का

विशालकाय हाँचा नीप उठा और अस्त-व्यस्त हो गया । तो वार उस मत्ता ने जो दया दिखाई वह निरपेक्ष मिट्ट हर्द, पर जब लोकुण्ठ का नक्षत्र-मण्डित द्वार फिर एक बार खुलने वाला है । 'वह' धा रहा है । उसके भय से आकाश हिलने लगता है, दिशाओं में सघटा छा जाता है और एक महा भयङ्कर गर्जना ऊपर से आती है । बँकुण्ठ लोक के अग्निमय अक्ष पर आच्छ होकर वह देवी योद्धा (कल्कि) बादलों पर नदम रखता है और तूफानों के क्रुद पड़ता है । तब समस्त पृथिवी और महासागरों में स्थित थड़े-बड़े टापू कम्पायमान हो उठेंगे और प्रकृति के शक्तिशाली चरण उनकी अड़ तक को हिला देंगे । दशवीं अवतार महा-काल के आदेश से धा रहा है । भगवती सरस्वती अपने पवित्र हस्त-दण्ड से उसका अविनाशन करेगी । हे दिव्यलोकवासी सर्वशक्तिमान् ! प्रकट होकर फिर से धान्ति को प्रतिष्ठित करो, जिससे संसार में एक बार पुनः प्रेम, कदर्या और ज्ञान का राज्य स्थापित हो जाय ।'

यद्यपि हम इन उद्गारों का आत्म भावात्मक रूप में ही ग्रहण करते हैं और हमारा अनुमान है कि इस अवसर पर देवी-सत्ता (कल्कि) महेश्वर रूप से ही युग-परिवर्तन का ध्येय पूरा करेगी । तो भी अत्यन्त-बादी जन समूह के लिए उसका मानवाकार में दिखाई देना भी सर्वथा असम्भव नहीं है । सगर स्रष्ट के निवारण के लिए कोई न कोई महान् आत्मा अवतर होगी ही । उसे सब देश के न्यायप्रिय लोगों का सहयोग भी प्राप्त होगा, जिससे वह दुष्टता की दासियों का अन्त कर सके । पर हम इसको अधिक महत्व इसलिए नहीं देना चाहते कि वह तो सृष्टि का अटन नियम है और सदा से होता आया है । पर ऐसे अवसर पर एक नहीं धनेक महापुण्य सम्मुख आकर उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील होते हैं । उनमें से कौन प्रमुखा है, सर्वोच्च देवी सत्ता का प्रतीक है इसे शीघ्र ही जान सकना सम्भव नहीं होता । इसीलिए हमारी दृष्टि में तो सर्वाधिक महत्व और आश्चर्य की बात यह 'अवतार नाचना' है, जो कम से कम दो-डेढ़ हजार वर्षों में हमारे देश में प्रकृण

चली भाई है और जिसकी प्रतिध्वनि दो सौ वर्ष पूर्व योरोप जैसे सुदूरवर्ती महाद्वीप में भी उठने लग गई ।

इतना ही नहीं इसी भावना के प्रभाव से यहूदी, ईसाई, बौद्ध, शिष्टोपन [जापान का धर्म] इस्लाम आदि सभी प्रमुख मन्त्रहवों में 'मन्वतार' की चर्चा प्रारम्भ हो गई है । ईसाइयों में ईसावर्षीह के 'द्वितीय प्रागमन' की चर्चा दिन पर दिन जोर पकड़ती जाती है, और अमरीका प्रादि में इस सिद्धान्त का प्रचार करने के लिए 'कैलिफ एड-वेंचिंग चर्च' का पृथक् ही गढ़ाठन हो गया है । मुगलमानों में 'हजरत मेहदी' के प्राकट्य का विश्वास साखो ध्वषित कर रहे हैं और उसके लिए बहुत कुछ कष्ट सहन कर चुके हैं, क्योंकि कट्टरपथी मुगलमान ऐसी चर्चा को 'अधर्म' मानते हैं । बौद्धों में 'मैत्रेय' के रूप में बुद्ध भगवान् के मवीन मन्वतार की सम्भावना गम्भीरता पूर्वक स्वीकार की जा रही रही है । इस प्रकार 'कल्कि-भावना' ने दुनिया भर का ध्यान आकृषित किया है और जगह-जगह के लोग किसी घटवप प्रेरणा के बशीभूत होकर 'उत्त प्राणे वाले' की राह उत्सहुकता पूर्वक देख रहे हैं ।

इसका आशय यही है कि सर्वस्त मानवता इतने समय से निर-न्तर किसी 'उद्धारकर्ता' की राह देख रही है और उसके स्वागत के लिये हर तरह की तैयारियाँ भी कर रही है ।

समय के चिन्हों की देखकर हम कह सकते हैं कि जन-समुदाय की उस चिर-अभिलाषित कामना की पूर्ति का समय बिल्कुल समीप आ चुका है । जिन लोगों को किञ्चित भी दैवी-प्रकाश प्राप्त है ये इस समय 'कल्कि' के अश्व की टापों का शब्द अपने कानों से सुन रहे हैं और उसकी कृपाण की चमक सुदूर आकाश में देख रहे हैं । समस्त शास्त्रों, गविष्य वेत्ताओं, सन्तों, भक्तों ने आत्मा से जो उद्गार प्रकट किए हैं उनके पूरा होने में अब विलम्ब नहीं । इस-लिए हम सब भी उन सबके स्वर में स्वर मिलाकर गगन-भेदी स्वर में कहे—

“ कल्कि की जय ”

छठा अध्याय

कलियुग और कल्कि

कल्कि अवतार का नामकरण कलियुग के आघार पर ही हुआ है। कलियुग का नाश करने वाला होने से ही उनको 'कल्कि' कहा गया है। कलियुग को पाप-पुरुष से उत्पन्न माना गया है और सर्व-साधारण में घाम और मे यह धारणा पाई जाती है कि जब तक कलियुग रहेगा लोगों का भुकाव अधिकतर में पाप-कर्मों की तरफ ही रहेगा और धर्म दुर्दशा होती रहेगी। यह भावना चाहे किसी कारण उत्पन्न हुई हो, पर इसने समाज की बड़ी हानि की है और दोषों तथा दुर्गुणों का प्रतिकार करने की प्रवृत्ति को निरन्तर निर्वस किया है।

फिर हम जिस पुराण या शास्त्र को देखें उसमें कलियुग की पापपूर्ण अवस्था और दूषित सामाजिक वातावरण का वर्णन अवश्य पाते हैं। सभी पुराणों ने यह कहा है कि ब्राह्मण ही समाज में सर्वोच्च हैं, उनकी पहिना देवताओं से भी अधिक है पर कलियुग में वे ही ब्राह्मण महत्त्व ही जायेंगे और इसके फलस्वरूप समस्त समाज का पतन हो जायगा—वह मनगिन्ती छोटे-बड़े दोषों का मण्डार बन जायगा। हमारी सम्मति में भी कलियुग संबंधी भविष्यवाणियों में सबसे सच्ची बात यही है।

आज हम निस्संकोच कह सकते हैं कि ब्राह्मणों का पतन हो जाने से ही भारतीय समाज वर्तमान दुर्दशा को प्राप्त हुआ है। जब तक ब्राह्मण सच्चे अर्थों में 'राष्ट्र के रक्षक' थे और अपने तुल्य स्वार्थ के बजाय जन समुदाय की वास्तविक कल्याणकारी मार्ग दिखाने में ही

अपनी शक्ति और साधनों का उपयोग करते थे, तब तक यह देश सब तरह से सुखी और अधिकार सम्पन्न बना रहा । पर जब वे स्वार्थ के लक्षोभूत हो अपने कर्तव्य से विमुख हो गये और लोगों को सम्मार्ग दिग्गमने के बजाय अपनी पूजा-पाठ की परमाई की खातिर उनको धर्म-विश्वास के गर्त में डकेलने लगे, तो समाज को गिरते हुए देख लगी । इस दूषित वातावरण का वर्णन करते हुए 'कल्कि पुराण' में कहा गया है—

यज्ञाध्ययनदानादिभेद तन्त्र विनाशकाः ।

आधिभ्याधि जराग्लानि दुःख शोक भयाश्रया ॥

'जब कलियुग ने अपना प्रभाव फैलाया तो देश में 'दल के दल धर्म' निन्दक पैदा होने लगे । ये आधि-अधि, जरा, भयानि, दुःख, शोक, भय का माध्यम लेकर यज्ञ, स्वाध्याय, दानादि, धर्म कार्य एवं-वेद तन्त्रादि धर्म शास्त्रों के विनाश करने वाले हुए ।'

आगे चल कर कहा गया है कि 'ऐसे लाखों समाज को नष्ट करने वाले कलिराज के अनुयायियों ने क्षण भर और कामुक मानव-परीरधारण किया । वे अत्यन्त बन्धी दुराचारी, माता-पिता-हितक कलि-पुरानुयायी शास्त्राण मोति में अन्ध लेकर वेद-शास्त्र से विमुख, दरिद्र और शूद्र जाति के सपासक हुए । धर्म भेदने वाले, वेद भेषने वाले, रत और नीति भेदने वाले, सत्कारहीन, अत्यन्त घृतर्कवादी, शिश्नादरपरा-यण, सन्मत्ता, परपत्नीरत, घपम, वर्ण सङ्घरो के जनक अहंभावों पैदा हो गए । विवाद और कलह में शूभ्र, केश विग्यास में निपुण, धनी और धराज पाने वाले शास्त्राण कलियुग में पूज्य माने जाने लगे । इस समय सन्धाती पुरुषों की तरह रहने लगे, सब मनुष्य सुदमनों के निन्दक हो गए और धर्मस्वयं धारण करने वाले साधु ठगी का घग्घा करने लगे । घनबाद् पुरुष ही सज्जन समझे जाने लगे, दूर देश का जल ही तीर्थ हुआ, यज्ञोपवीत—माण में ही ब्राह्मणत्व माना जाने लगा और

केवल दण्ड ही सम्पाप्नी का चिन्ह रह गया । पराश्रितोत्तुर्न ब्राह्मणगण
 चण्डाल-गृह में पञ्चन करने लगे, मेघों ने बल्य जल बरसाना आरम्भ
 किया, पृथ्वी चौड़ा अन्न उपजाने वाली हुई, राधा प्रजा का भक्षण
 करने लगे और प्रजा करों के भार से व्याकुल होने लगी । कलियुग के
 प्रथम में ही साधारण जन भगवान की निन्दा करने लगे । दूसरे धरण
 में मयशानु का नाम तक लेना उन्होंने छोड़ दिया ।'

अन्य ग्रन्थों में भी कलियुगीन स्थिति का ऐसा ही चरित्र-चित्रण
 किया, और यद्यपि उनके रचयिता भविकाश में ब्राह्मण ही थे, पर
 उन्होंने कलियुगी ब्राह्मणों के सम्बन्ध में ऐसी कड़ी आलोचनात्मक बातें
 लिखी हैं । नीचे हम पाठकों के अवलोकनार्थ 'महाभारत' (धन पर्व
 अ० १६०) में दिए गए 'कलियुग वृणंत' का कुछ अंश उद्धृत करते हैं,
 जिससे पाठकों को अनुमान हो सकेगा कि भय से संकड़ों-हजारों वर्ष
 पूर्व जिन विद्वानों ने इन वृणंतों को लिखा था, वे निस्सन्देह मानव-
 प्रकृति और समाज के उदयान और पतन के कारणों के किन्तु सच्चे
 ज्ञाता थे —

व्याजैर्धर्मो चरिष्यति धर्मं वैतसिका नराः ।
 सत्यं सक्षेप्यते लोके नरः पण्डितमानिभि ॥
 सत्यहान्या ततस्तेषामापुरल्पं भविष्यति ।
 वायुपः प्रक्षयाद् विद्यां शक्यन्त्युपजीवितुम् ॥
 विद्याहीनानविज्ञानाल्लोभोऽध्यामि भविष्यति ।
 लोभक्रोधपरा मूढाः कामासक्ताश्च मानवाः ॥
 वैरवद्ध भविष्यन्ति परस्पर वर्धयिषुः ।
 ब्राह्मणाः क्षत्रीया वैशा संकीर्यन्तः परस्परम् ॥
 शूद्रतुल्या भविष्यन्ति तपःसत्यविवजिताः ।
 अन्या मघ्या भविष्यन्ति मघ्याश्चान्त्या न संशयः ।

'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी जातियों के लोग कष्ट-
 पूर्वक धर्म का आचरण करेंगे और धर्म का जाल बिछाकर दूसरे लोगों

को ठाने लेंगे । 'परिग्रह' कहवाने शाने सोर भी सत्य का परित्याग कर देने । सत्य को कसो हो जाने से उसकी पातु भी घट जायगी, और पातु कम होने के कारण वे शीतल-निर्वाह के योग्य विद्या प्राप्त नहीं कर सकेंगे । विद्या के बिना ज्ञान का होना कैसे सम्भव है ? इसलिए उनमें सोम की प्रवृत्तता हो जायगी । सोम और लोभ के बलीभूत हुए अनुस्य माननामों के ऊँसकर धारण में बंद करने लेंगे और शत्रुभाव ने एक दूसरे को मारने की उत्तर होंगे । सत्य ही धारों बलों के शी-दृश्य माधार-भ्रष्ट होकर परस्पर बलमकर मन्थान उत्पन्न करने लगेगे । वे तपस्या और सत्य से रहित होकर नीच सोमों के समान हो जायेंगे । छोटी जाति वाले लोभियों के मार करने लगेगे और लोभे कहलाने वाले नीच कर्मों में सरोष अनुभव अनुभव नहीं करेंगे, इनमें सत्य नहीं ।

भार्यामित्राश्च पुरुषा भविष्यन्ति युगक्षये ।
 मत्स्याभियेण जीवन्तो दूहस्तश्चाप्यजंडकम् ॥
 गोषु नष्टानु पुरुषा येऽपि नित्यं घृतव्रताः ।
 तेषु लोभसमायुक्ता भविष्यन्ति युगक्षये ॥
 अन्यान्य परिमृष्टान्तो हिमयन्तश्च मानवाः ।
 भक्षणा नास्तिकाः स्तेना भविष्यन्ति युगक्षये ॥
 श्राद्धे दैवे च पुरुषा येऽपि नित्यं घृतव्रताः ।
 तेषु लोभसमायुक्ता भोक्षयन्तीह परस्परम् ॥
 न द्रवतानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा वैदनिन्द्रकाः ।
 न षड्यन्ति न होष्यन्ति हेतुबाध विमोहिताः ।
 निम्नेऽप्यीहां करिष्यन्ति हेतुबाधविमोहिताः ॥

'उस समय सोम स्थितो से ही मित्रता करने वाले होंगे । अपने-क सोम मछनों मत्स्य से जीविका चलाने वाले होंगे । गायों के नष्ट हो जाने से भेड़, बकरी का दूध व्यवहार में लाने लगेगे । जो शक्ति-घटों का पालन करने वाले हैं वे भी युद्ध-प्रभाव से सोमों बन जायेंगे । सोम एक दूसरे

को झूटने-मारने लगेगे और उनमें से प्रथिकाश भजन-साधन से रहित नास्तिक, परहरणकर्ता बन जायेंगे । जो लोग सदेव पराध्र का स्थापन करके प्रतपील रहते हैं वे लोभवशा देवपक्ष और मृतक आत्माओं में खाने लग जायेंगे । साहाय्य लोग वनों का पालन स्थापन कर उल्टा वेदमिन्दक बन जायेंगे, वे पशु और होम को छोड़ बैठेंगे और झूठे सकंवाद में फँस कर बोध कर्म करने को उद्यत हो जायेंगे ।

प्राग्मशः कृपणानां हि तथा बन्धुमतामपि ।
 विषवानां च वित्तानि हरिष्यन्तीह मातवा ॥
 स्वल्प वीर्यवलाः स्तभ्या लोभमोहपरायणाः ।
 तत्कथादान संतुष्टा दुष्टनामपि भानवाः ॥
 परिग्रहे करिष्यन्ति मायाधार परिग्रहाः ।
 समाह्वयन्तः कोन्तेषः राजानः पाप बुद्धयः ॥
 परस्परवधोष्कृता मूर्खाः पण्डित मानिनः ।
 भविष्यन्ति युगस्यान्ते क्षत्रिया लोककण्टयाः ॥
 अरक्षितारो लुब्धाश्च मानाहंकार दपिताः ।
 केवलं दण्डरुचयो भविष्यन्ति युगक्षये ॥

‘अर्षपिशाच मनोवृत्ति के अनुपम दीनो, प्रसहार्थी और विषवाग्नी का भी धन भी हृदय लेंगे । उनके शारीरिक बल और पराक्रम क्षीण हो जायेंगे । वे उहंड होकर लोभ और मोह में रस्त रहेंगे । वैसी ही चर्चा, प्रशंसा करने और उनसे दान लेने में प्रसन्नता अनुभव करेंगे । कपटपूर्ण पाचरण करते हुए वे धुरे लोगों के दान को भी ग्रहण कर लेंगे । राजा लोग पाप-परायण होकर एक-दूसरे का प्राण लेने की उद्यत होंगे और साहाय्य मूर्ख और नीब होने हुए भी पण्डितों का दास करेंगे । क्षत्रीय लोग (शापक-वर्ग) जगत् के लिए कंटक स्वरूप बन जायेंगे । उस समय उनको प्रजा की रक्षा की भी जगत् भी बिना न होगी केवल उनसे स्वयं ऐंठकर अपना घर भरने का ध्यान रमोंगे । सदा मान और महद्कार के

मद मे दूर रहो घोर प्रज को घनावश्यक रूप से इण्डित करते रहेंगे ।

आक्रम्याक्रम्य साधूनां दाराश्चापि घनानिव ।
 मोक्षयन्ते निरनुक्रोशा कदापि भारत ॥
 न कर्षां यापते कश्चिन्नापि कस्या प्रदीयते ।
 स्वयंप्राहा भविष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते ॥
 स्वैरुद्गीभूत जगत् सर्वं भविष्यतिन सशयः ।
 हस्तो हस्त परिमुषेद् युगात्ते समुपस्थिते ॥
 सर्वं सञ्चिप्यते लोके नरैः पण्डितमानिभिः ।
 स्थाविरा बालमतपो बाल स्याविरबुद्धयः ॥
 एकद्वारं युगं सर्वं लोभ मोह व्यवस्थितम् ।
 अघमो वद्धंते नश्च न तु घमं प्रसवन्ते ॥

'लोग हमने कुछ ही आँसों में कि सीधे-साधे मने मानसों पर मका-
 रण पारकपण करके उनके घमं घोर स्त्री घाड़ि का दल पुकेक घपहरण
 करने मगने घोर उनके लोभ-पीटने पर जो कुछ इमान न देंगे । उस समय
 न तो कोई किसी से कन्या को कायका करेगा । घोर न कन्यादान ही
 करेगा नर-कन्या स्वय ही एक दूसरे को पारण कर मने । सब सारा जगत्
 अनेकदम हो मारणा घोर एक हाथ दूसरे हाथ को सूटेगा-घर्षाण मना
 भाई ही नाकि एन को हृदय मेषा । घपने को सञ्चित मानने काले मनुष्य
 न तार ताम को मिटा मने। बुद्धो की बुद्धि बानको देहो घोर बानकी की
 बुद्धो के लनात ही जायगी । मर कोई लोभ घोर मोह मे कसकर
 मरनामरण का विचार किए बिना सम्पत्ति मोचन करते लगेदे ।
 घममं बड़ेगा घोर घमं निवा ही जायगा ।'

न कश्चिन् कस्याचिन्नोता न कश्चिद् कस्याचिद् गुरुः ।

तगोप्रस्तास्यदा लोभो भविष्यति जनार्धिप ॥

दल्प दृष्ट्यां युगान्तिव च प्रभविष्यति ।

न कश्चित्कस्यचिद् दाता भविष्यते युगक्षये ।
 अदृशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः ।
 केशशूलाः स्थिपञ्जापि भविष्यन्ति युगक्षये ॥
 ऋष्यविक्रय काले च सर्वैः सर्वस्य वञ्चनम् ।
 युगान्ते भरतश्रेष्ठ वित्तलोभात् करिष्यति ॥
 आरामाञ्चैव वृक्षाश्च नाशयिष्यन्ति निर्व्यंथाः ।
 भविता सशयो लोके जीवितस्य हि देहिनाम् ॥

‘उस समय कोई किसी का उपदेश नहीं सुनेगा और न कोई किसी को गुह्र मानेगा । समस्त जगत् एक प्रकार के भ्रमकार में प्रस्त होगा । लोगों के पास सम्पत्ति का भाव होगा, वे विद्या के लिए साधु वेश धारण कर लेये हिमा की भावना बड़ जायगी और कोई किसी को दुष्ट देने वाला न होगा । उस समय सभी शान नगर प्रादि भ्रम देखेंगे आह्वान वेद भेचने वाले होंगे, स्थिपञ्जा वैश्यावृत्ति प्रपन्ना सँगी । लोग दगीचो के वृत्तो को भी काट डालेंगे और इससे इनको किसी प्रकार का खेद नहीं होगा । उस समय लोगों के जीवित रहने में भी शङ्का हो जायगी ।’

दस्युभिः पीडिता राजन् काका इव द्विजोत्तमाः ।
 कुराजभिश्च सततं करमार प्रपीडिता ॥
 धैर्यं त्ववत्त्वा महीपाल दारुणे युगसंक्षये ।
 विकर्माणि करिष्यन्ति शूद्राणां परिचारकाः ॥
 निविशेया जनपदास्तथा विष्टिकरादिता ।
 क्षाधमानुषलयस्यन्ति फलमूलोपजीविनः ॥
 भर्तृणां यत्ने चैव न स्यास्यन्ति ततः स्त्रियः ।
 पृथाश्च मातापितरौ हनिष्यन्ति युगक्षये ॥
 जन परिजनं चापि युगान्ते पशुं पश्यिसे ।

अथ देशान् दिक्षश्चापि पत्तनानि पुराणि च ।
कमशः संश्रियष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ॥

‘श्रेष्ठ ब्राह्मण भी लुटेरो से पीड़ित होकर व्याकुल-भाष से चारों तरफ फिरने लगेगे । राजाघो (शासक-वर्ग) के कर भार से दुःखी और धर्महीन होकर वे पार्श्वों की नोकरी करने लगेगे । उस समय मनी बूभागों के निवासी एक-सौ वैधभूषा बना लगे । लोग बेगार सेने वालो और कर वसूल करने वालो से पीड़ित होकर निजंन स्थानो में चले जायेंगे और वन के कम-मूल साकर गुजर करने लगेगे । स्थियाँ पति के वचनों पर मुझ भी ध्यान न देंगी और पुत्र माता-पिता को मारने में संकोष न करेये । उस समय लोग अपने परिवार वालों को भी त्याग देंगे । बहुसंख्यक लोग स्वदेश छोडकर दूसरे देशो, दिशाओ, नगरों, गाँवों का प्राधय लेंगे ।’

‘श्री मद्भागवत’ भी ‘महाभारत’ की तरह ही महत्त्वपूर्ण और मौलिकता से युक्त है । इसका कतिमुग बर्णन है तो इससे मिलता-जुलता ही, पर उसकी शैली में कुछ भिन्नता है और कई बातें उसकी भावकल प्रत्यक्ष दिखाई पड रही हैं । उसमें कतियुगी धर्म (स्कन्ध १२ प० २) का बर्णन करते हुए कहा गया है—

सतश्चानुदिनं धर्मं सत्यं शौचं समा दया ।
कालेन बलिना राजन् न क्षयत्यायुदुर्बल स्मृतिः ॥
वित्तमेव कलौ नृणां जन्माचारगुणोदयः ।
धर्मं न्यायव्यवस्थायां कारणं बलमेव हि ॥
दाम्पत्येऽभिश्चिहंतुर्मायिकं व्यावहारिके ।
स्त्रीत्वे पुंस्त्वे च हि रतिविप्रत्वे सूत्रमेव हि ॥
लिङ्गमेवाथमस्मात्तावन्योऽथापत्तिकारणम् ।
अवृत्त्याऽप्यायदीर्घं ह्यं पाण्डित्ये चापलं वचः ॥

अनाद्य तवासायुत्वे सायुत्वे दम्भ एव तु ।
स्वीकार एव चोद्वाहे स्नानमेव प्रसाधनम् ॥

‘समय बड़ा बतगार है । जैसे-जैसे कलियुग बढ़ता जायगा, वैसे-वैसे ही धर्म, शरय, पवित्रता, क्षमा, दया, प्रायु, बल और स्वरण शक्ति का लोप होना जायगा । कलियुग में जिसके पास धन होगा, उसी को लोग कुलीन, सदाचारों और सद्गुणी मानेंगे । जिसके हाथ में शक्ति होगी वही धर्म और न्याय की व्यवस्था अपने अनुकूल कर सकेगा । विवाह-सम्बन्ध के लिए कुन, शील, योग्यता आदि की निरख-परख नहीं रहेगी, दुबक-दुपती का मन मिल जाने से ही विवाह सम्पन्न हो जायगा । जो जितना छल-कपट कर सकेगा वह उतना ही व्यवहार-कुशल माना जायगा । स्त्री-पुरुष भी श्रेष्ठता का साधारण उनका शील-समन न होकर उनका रति-नोशन ही रहेगा । शास्त्रों की पहिचान उनके गुरु-स्वभाव से नहीं यज्ञोपवीत से हुमा करेगी । धस्त्र, दण्ड-कमण्डल आदि से ही ब्रह्मपारी, सन्यासी आदि की पहिचान होगी, और एक दूसरे का चिन्ह स्वीकार कर लेना ही एक से दूसरे माध्यम में प्रवेश का स्वरूप होगा । जो धूम देने या धन खर्च करने में भ्रममर्भ होगा उसे सदासत्यों में छीक न्याय न मिल सकेगा । दात-धीत में व्यापक होने से ही पण्डित माना जायगा । गरीब होना ही भगाधुना, दीयी होने का चिन्ह होगा और जो जितना दम्भ कर सकेगा वह उतना ही साधु मान लिया जायगा । विवाह परस्पर की स्वीकृति से ही जायगा और श्रृङ्गार कर लेने से ही स्नान करना मान लिया जायगा ।’

दूरे वायंघन तीर्थं लाविष्य केशधारणम् ।
उदरम्भरता स्वार्थं सत्यलो घाष्टंघमेव हि ॥
दाक्ष्यं कुटुम्बभरणं यशोऽर्थं धर्मसेवनम् ।
एवं प्रजाभिर्दृष्टाभिरासीर्थं क्षितिमण्डने ॥
प्रज्ञाविद्वज्जगद्गणां यो बलो भविता नृपः ॥

प्रजा हि लुण्ठ्यै राजन्यैनिष्ठुं सुदस्वपुषर्मभिः ॥
 सनावृष्टया विनंश्चन्ति दुर्मिक्षकर पीडिताः ।
 शीत वातातपप्रावृष्ट् हिमेरन्योन्यतः प्रजाः ॥
 सुतृड्म्यां व्याधिभिर्ध्वं च सन्तप्स्यन्ते च चिन्तया ।
 त्रिंशद्विंशतिवर्षाणि परमायुः कलौ नृणाम् ॥

'तीर्थ दूर के तात्वाद को ही तीर्थ' मान लेंगे, सिर पर बड़े-बड़े
 बाल रखना ही सुन्दरता का चिन्ह समझा जायगा, अपना पेट भर सेना
 ही बड़ा पुढार्या होगा, जो जितनी दिवाई से बात कर सकेगा वह
 उतना ही सच्चा मान लिया जायगा । अपने कुटुम्ब का भरखु-भोषण
 कर सेना ही सबसे अधिक योग्यता मानो जायगो, 'धर्म' का सेवन यज्ञ
 के लिए किया जायगा । इस प्रकार अब पृथिवी में सर्वत्र दुष्टों की प्रमा-
 नता ही जायगो, तब राज्य व्यवस्था भी दूषित हो जायगो । ब्राह्मण,
 वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र आदि ने से जो भी शक्तिशाली, पतता पुर्था होगा
 वही शासक बन जायगा । ये शासक अत्यन्त लोभी, निर्दय और सुटेरे
 होंगे । वे जन-साधारण के धन तथा स्त्रियों तक को सूटने में संकोच न
 करेंगे । इनके कृत्वस्वरूप सर्वसाधारण सदैव भ्रूल-भ्यास, चिन्ता, रोग
 आदि से दुःखी रहेगे । उनकी आयु भी बहुत छोटी—शीत, शीत वर्ष
 की ही रह जायगो ।

क्षीयमाणेषु देहेषु देहिना कलि दीपतः ।
 वर्णाश्रमावता धर्मं नष्टे वेदपथे नृणाम् ॥
 पाण्डुप्रचुरे धर्मं दस्वुप्रायेषु राजसु ।
 चौर्यान्तवृषाहिंसानाना वृत्तिषु वै नृषु ।
 शूद्रप्रायेषु वर्णेषु चक्षामप्रायासु धेनुषु ।
 गृहप्रायेष्वाश्रमेषु योन प्रायेषु वाणुषु ॥
 इत्थं कलौ गतप्राये जने तु सरधर्मिणि ।
 धर्मं प्राणाय सत्त्वेन भगवानवतारिष्यति ॥

‘कलियुग के दोषों से लोगों के शरीर भी क्षीण हो जायेंगे और वर्णाश्रम धर्म का प्रकाशक वेद-मार्ग नष्ट हो जायगा । धर्म में पाक्षण्ड्य बहुत अधिक बढ़ जायगा, सामक-बर्ग सुटेरों की तरह बन जायगा और लोग जीवन-निर्वाह के लिए सामान्यतः चोरी, झूठ, हिंसा का व्यवहार करने लगेंगे । सब वर्णों के मनुष्यों का भाषरण सूट्टो जैसा मर्यादा रहित हो जायगा, गाँव वस्त्रियों की तरह दूध देने वाली हो जायेंगी । संन्यासियों के आश्रम गृहस्थियों के घरों की तरह बन जायेंगे और जिनसे विवाह-सम्बन्ध होगा वन्ही को मरना सम्बन्धी माना जायगा । इस प्रकार का कलियुगी वातावरण छा जाने पर लोग गर्वों की तरह मार डोने वाले और विषयी हो जायेंगे । ऐसी तामसी प्रवस्था हो जाने पर भगवान पुनः सतोगुण लाने के लिए स्वयं अवतार लेंगे ।’

वर्तमान दशा को देखते हुए इन वर्णों में कितनी बराबरी है, इसे पाठक स्वयं अनुभव करते होंगे । समाज में जो नीचतापूर्ण स्वार्थ-भावना तथा स्त्री-पुरुषों में भ्रष्टाचार और चरित्रहीनता का व्यवहार इसमें वर्णों किया गया है वह आज प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा है । यह तो नहीं कहा जा सकता कि आज सभी लोग ऐसे ही हो गये हैं, क्योंकि भले-बुरे व्यक्ति तो सब कालों में रहेंगे, पर आज ऐसे ‘कलियुगी’ व्यक्ति ताजो-करोड़ों की संख्या में प्रत्येक देश में मिल सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं ।

‘विष्णु पुराण’ में महर्षि पाराशर ने बतलाया है कि जिस समय कलियुग की प्रवृत्तता होगी तो समस्त सामाजिक व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो जायगी और तर-कारियों में बहुत से दोष बढ़ जायेंगे । यद्यपि काम, क्रोध, लोभ आदि के दुर्गुण किसी परिमाण में मनुष्यों में सदा ही बने रहते हैं, पर प्राचीन समय में जब उनकी पाप की तरह माना जाता था, तो लोग यथासम्भव इन प्रवृत्तियों को दबाकर रखने थे । पर कलियुग में छोटे-बड़े सभी लोगों में उनका प्रादुर्भाव हो जाने से सामाजिक मर्यादा भङ्ग

हो जायगा और लोग इन बातों में किसी प्रकार के संकोच या पाप का अनुभव नहीं करेंगे । जिसके मन में जो भावेया उसी तरह करने में सब धन को स्वतन्त्र समझेंगे । पुराणकार ने इस स्थिति का दिग्दर्शन कराते हुए कहा है-

सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्वचन द्विज ।
 देवता च कलौ सर्वा सर्वस्सर्वस्य साध्वमः ॥
 उपवासस्तथायापो वित्तोत्सर्गस्तपः कलौ ।
 धर्मो मयाभिर्षविरंरनुष्ठानैरनुष्ठितः ॥
 वित्तेन भविता पुंसा स्वल्पेनाद्यमदः कलौ ।
 स्त्रीणां ह्यमदाश्चैव केशीरेव भविष्यति ॥
 परित्यज्यन्ति भर्तारं वित्ताहीन तथा स्त्रियः ।
 भर्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम् ॥
 यो वै ददाति बहुलं स्व स स्वामी सदा नृणाम् ।
 स्वामित्वहेतुस्सम्बन्धो न चाभि जनता तथा ॥
 गृहान्ता द्रव्यसघाता द्रव्यान्ता च तथा मतिः ।
 अर्थाश्चारमोपभोग्यान्ता भविष्यन्ति कलौ युगे ॥

'कलिपुत्र' ने जिसके मुंह से जो निकल जाय वही 'शास्त्र' मान लिया जायगा, सब कोई देवता बन बैठेंगे और जो जिस साध्वम को चाहेगा उसी को धरना लेगा । उपवास व्रत आदि ही बहुत बरा काम मान लिया जायगा, धन दे देना ही दया तप हो जायगा और अपनी पसन्द से जो जिस अनुष्ठान को कर लेगा वही 'धर्म' हो जायगा । लोग बोले से धन से ही धरने को सेठ, साहूदार समझने लगेगे और स्त्रियाँ बेटा विन्यास से ही सो दयें या पर्व करने लगेगी । वे धनहीन पति का त्याग कर देंगी, जो अधिक धन दे सकता है वही स्त्रियो का वास्तविक पति होगा । उस समय पुराने सम्बन्ध धरना कुलीनता का रगल न बरके जो अधिक धन देगा उसी को स्वामी माना जायेगा । गृह-संघासन के

लिए ही समस्त द्रव्य होता, और द्रव्य कमाने में ही मनुष्य की समस्त बुद्धि संलग्न रहेगी, और उस द्रव्य का उद्देश्य स्वयं पारान से जीवन विधान ही होगा ।'

स्त्रियः कलौ भविष्यन्ति स्वीरिष्यो ललितस्पृहाः ।
 अन्याय वाप्तवितेषु पुष्यः स्पृहयालवः ॥
 अन्यायितापि सुहृदा स्वार्थं हानिं न मानवाः ॥
 पणार्घाद्धमात्रे ऽपि करिष्यन्ति कलौ द्विज ॥
 समान पोष्यं चेतो भावि विप्रेषू वै कलौ ।
 क्षीरप्रदानसम्बन्धि भावि गोषु च गौरवम् ॥
 यो योऽश्वरथनागाह्यस्त स राजा भविष्यति ।
 यश्च यश्चाङ्गलस्सर्वंस्त स भृत्य कलौ युगे ॥
 वैश्याः कृषिवाणिज्यादि सन्त्यज्य निलकर्म यत् ।
 शूद्रवृत्त्या प्रवत्स्यन्ति कारुकर्मोपजीविनः ॥

'उस समय स्त्रियाँ प्रायः स्वेच्छारिणी होकर सुन्दर वैपभूषा वाले पुरुषों की ही चाहेंगी और पुष्य अन्वामपूर्वक प्रतिक्रमिक धन कमाने में ही योग्यता समझेंगे । निकट सम्बन्धियों की प्रायश्ता करने पर भी कोई अपनी दोषी सी भी स्वार्थ हानि के लिए तैयार न होगा । छोटी जाति वाले ब्राह्मणों के साथ समानता का दावा करेंगे और पाषों का भी दूध देने की विगाह से ही भादर किया जायगा । जिसके पास हाथी, घोड़ा, सधारी आदि बहुमूल्य सामग्री होगी वही राजा या शासक बन जायगा और साधन विहीन मनुष्य सज्जन होकर भी उनका सेवक बन कर ही रहेगा । वैश्य लोग अपने स्वामाधिक कर्म—छेती और व्यापार को त्याग कर शिल्प, कारीगरी आदि के कर्मों से जीवन निर्वाह करने लगेंगे ।'

'शिव-पुराण' का तो कथारम्भ ही कनिष्ठम वर्णन से हुआ है । जब पुराण-भर्तृश सूतजी प्रयाग में पहुंचे तो वहाँ के दीर्घ-यज्ञ से उपस्थित

श्रुतियों-मुनियों ने कलियुग की मपङ्कुरता का वर्णन करते हुए उनसे उदार होने का मार्ग पूछा। उनी समस्या का समाधान करते हुए उन्होंने शिक्षासाधन का उपाय दिया था। मुनियों ने कलिकाल में प्राध्यात्मिक पतन का वर्णन करते हुए कहा था—

प्राप्ते कलियुगे घोरे नरा पुण्यविवर्जिताः ।
 दुराचाररता. सर्वे सत्यवात्पिराद्मुस. ॥
 परामवादनिरता परद्रव्याभिलाषिणः ।
 परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापराधणाः ॥
 देहात्मदृष्टयो मूढा नास्तिका पशुबुद्धयः ।
 मातृपितृकुलद्वेषा स्त्रीदेवा. कामकिकराः ॥
 विप्रा लोभग्रहप्रस्ता वेदविक्रयजीविनः ।
 घनाजंनार्थमभ्यस्त विद्यामदविमोहिताः ॥
 क्षत्रियाश्च तथा सर्वे स्वधर्मत्याग शीलिनः ।
 भसत्सङ्गा पापरता व्याभिचारपराधणा. ॥
 वैश्यासत्कारहीनास्ते स्वधर्मत्यागशीलिनः ।
 कुपथाः स्वार्जनरताः तुलाकर्म कुवृत्तयः ॥
 सवृच्छद्राश्च ये केचिद् ब्राह्मणाचार तत्पराः ।
 उज्ज्वलाकृतयो मूढा. स्वधर्म त्यागशीलिनः ॥

‘कलियुग में मनुष्य पुण्य पथ को त्यागकर दुराचार में प्रवृत्त हो रहे हैं और सत्य व्यवहार से दूर हटते जा रहे हैं। वे दूसरों की निन्दा करने में निपुण हैं और इसी दोह में रहते हैं कि दूसरे के घन को किस प्रकार रूपा जाय। चाप ही परस्त्रीगामी और निरपराध व्यक्तियों की हिंसा करने वाले बन गये हैं। पशुआत्म सत्य को भूल कर वे देह को ही प्रात्मा मानने लगे हैं और इस कारण पशुओं की तरह विवेक रहित व्यवहार करने लगे हैं। वे स्त्री के बन्धीभूत होकर माता-पिता से द्वेष-भाव रखते हैं और इस प्रकार विषय भोगों के दास बने हुए हैं। ब्राह्मण

घन के लोभी होकर घर्ष को बेवने लग गए हैं। वे घन कमाने की विद्या ही सीखते हैं और उसी विद्या का बड़ा गर्व दिखाते हैं। क्षत्रियों ने भी प्रजा संरक्षण का कर्तव्य त्याग दिया है और वे कुनड्ड में रहने वाले पाप कर्मों में लीन और महाबन्धुभिचारी हो गए हैं। वैश्यों ने अपने अतीव सत्कारों को त्यागकर छोईमानी का व्यापार अपना लिया है और तोल-माप में छल करके घन कमाने को ही बड़ा गुण समझ रहे हैं। शूद्र परिश्रम के कार्यों से विमुख होकर ब्राह्मणों के ढंगों को अपना रहे हैं, वैसे ही वेपथूपा बनाकर लोगों को भ्रम में डालना चाहते हैं।”

इस प्रकार सभी पुराणों ने 'कलिपुगीन-नमाज' की भ्रष्टता के प्रति घृणा और निन्दा का भाव प्रकट किया है और उसका दोषारोपण मुख्यतया ब्राह्मण-वर्ग पर किया है, क्योंकि ये ही समाज के अनुपा हैं। यह तो प्रत्यक्ष है कि इस गिरो-गुजरी हालत में भी अधिकतर भारतीय जनता उनको पूज्य मानती है। प्राचीन काल में जब भारत अग्नि के उच्च गोपान पर स्थित था और उसे जगद्गुरु की इदरी प्राप्त हुई थी, तो उसका ध्येय पर्वों के विद्वान् और त्यागी, तपस्वी ब्राह्मणों को ही दिया गया था। फिर जब उसका पतन हुआ, उसे अपने दोषों के कारण विधर्मी और विदेशियों की दासता स्वीकार करके अपने मस्तक पर कर्णक का टीका लगाना पड़ा तो वह उत्तरदायित्व भी ब्राह्मणों का ही माना गया। वास्तव में भारतीय समाज पर उनका प्रभाव इतना अधिक था कि उन्होंने जब जो वृद्ध निर्णय किया—जो आदेश दिया जो मार्ग दिलनाया, देश के निवासी बिना किसी प्रकार का विरोध किये भले-बुरे का विचार किए उसी के अनुसार चले। इसीलिए पुराण के लेखकों ने, जो प्रायः सभी ब्राह्मण थे, न्यायसार्थ ब्राह्मणों को ही देश और समाज की दुर्दशा के लिए दोषी ठहराया। इसका एक उद्देश्य यह भी है, कि ब्राह्मण अपनी भूल को समझें, और जनता को फिर से सही रास्ता दिखाने के लिए तत्पर हो।

ऊपर धर्मशास्त्रों से कलियुग वर्णन के जो उद्धरण दिए गए हैं, उनके प्रतिरिक्त मन्व सभों पुराणों में इस सम्बन्ध में इसी प्रकार के भाव प्रकट किए गए हैं। पर उनमें कोई विशेषता नहीं, वरन् कई में तो ऐसा ज्ञान पटना है कि एक दूसरे की नकल करती गई है। उन सबका सारांश देव-भाषा में गोस्वामी तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में बड़े प्रभावशाली रूप में लिख दिया है। साथ ही यह वर्णन दृश्याभाविक भी है, और सामान्य बुद्धि के अति भी उसका पाठ्य भली प्रकार समझ लेते हैं। गोस्वामी जी ने उत्तरकाण्ड में काकभुशुम्भ और गण्ड सम्पाद में किसी प्राचीन काल के कलियुग का नामोल्लेख करके उसके दोषों का वर्णन इस प्रकार किया है—

तेहि कलियुग कोसलपुर जाई । जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई ॥
 सो कलिकाल कठिन उरगारी । पाप पराधन सब नरनारी ॥
 द्विजश्रुति वेदक भूप प्रजासन । कोठ नहि मान निगम अनुशासन
 मार्ग सोई जा नहुँ जो भावा । पण्डित सोई जो गाल बजावा ॥
 सोई सयाम जो परधन हारी । जो करि धर्म सो बड़ आचारी ॥
 जाकेँ नख अरु जटा विसाला । सोइ साधरा प्रतिद्ध कलिकाला ॥
 असुम बेप भूषन धरे, भन्ध्यामच्छ जे खाहि ॥
 तेई जोगी तेई सिद्ध नर, पूज्यते कलियुग माहि ॥
 सब नर काम लोभ रत क्रोधी । देव विप्र श्रुति संत विरोधी ॥
 गुर सिध बाँधरअ ध का लेसा । एक न सुनइ एक नहि बेला ॥
 ब्रह्म भयान विनु नारि नर, कहहि न दूसरि बात ।
 कौडी लागि लोभ बस, करहि विप्र गुर घात ॥

काकभुशुम्भजी ने कहा—“इस कलियुग में मैंने प्रयोध्याधी में जन्म लिया था। यह ब्रह्मा ही दाहण-युव था और उस समय समस्त स्त्री, पुष्प भ्रांति भ्रांति के पापों में नित्य रहने वाले थे। ब्राह्मण और धर्मिय भयम पर चलने वाले हो गए थे और कोई शास्त्राज्ञा की तरफ

ध्यान नहीं देता था। सभी मनुष्य मनमाने मार्ग पर चलते थे। जो बहुत बातें बनाता उसी को परिष्ठत समझा जाता। दूसरों का धन हर्षण लेना बड़ी होशियारी की बात पानी साही की घोर जो जितना दम्भ-होय करता बहु उतना ही भाषरणमान माना जाता। बड़े-बड़े गान्धुन घोर दिशान जटाके तपस्विनों के बिन्हु धान लिए गये थे। गन्धा बेप घोर गन्दा प्राहार करने वाले योगी घोर निग्र सात्र लिए जाते थे। पञ्च-कांक्ष म्यक्ति काम घोर लोभ जैसे दुगुं लो में प्रस्त थे घोर वे मय घाद्यों तथा महापामों की दिक्षाओं का विरोध करने वाले थे। शिष्य गुरु की बातों को सुनते न थे घोर गुरु शिष्य के प्राचरनों की तरफ से देखबर रहते थे। वे गुरु कहवाने वाले शिष्य के धन पर तो अधिकार जमा लेते थे पर उसके मझानाम्भकार के दूर करने का प्रयत्न नहीं करते थे। उस युग में सभी लोग ब्रह्मज्ञान, मध्यात्म को बात को बड़ी-बड़ी करते थे, पर जरा से लोभ के लिए गुरुदनों की हिंसा करने की भी तैयार हो जाते थे।'

पर शिष्य संपट कपट समाने । मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
 तेह अमेदवादी ग्यानी नर । देसा में चरित्र फलियुग कर ॥
 नारो मुई गृह सम्पति नासो । मूढ मुडाई होई संन्यासी ॥
 ते विप्रन सन आपु पुजावहि । उभय लोक निज हाथ नसावहि ॥
 विप्र निरच्छर नोलुभ कामी । निराचार सठ वृपलो स्वामी ॥
 तपसी धतबन्त दरिद्र गृही । कनि कौतुक तात न जात कही ॥
 नृप पाप परायन धर्म नहीं । करि दण्ड विडम्ब प्रजा नितहीं ॥
 फति वारिहिसार दुकाल परै । बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै ॥

'कनिपुगी मनुष्य दुराचारी घोर कपटी हो गए घोर सदैव मोह, कपट, ममता प्रादि में फंसे रहने लगे। जो भी अपने को बड़ा वेदाग्ता-वादी घोर झाली समझते थे। सभी के घर जाने घोर घर की सम्पत्ति के लक्ष हो जाने पर इन जातिनों के लोग साधु, संन्यासी बन जाते थे घोर

ब्राह्मणों से पैर पुराने थे । तबसे ब्राह्मण घनपठ, लालची और चरित्र-हीन थे । वे नीच जाति की स्त्रियों से सम्बन्ध स्थापित कर लेते थे । कलियुग की एक बड़ी घनीची बात यह देखने में आई कि तपस्वी कढ़-साने जाने लगे । इन मन्थानि पुन दिग्गजाई पड़ते थे और गृहस्थी दरिद्र थे । राजा लोगों की पाप-पुण्य का बोझ ध्यान न था, प्रजा की लूटना-मारना ही उनका काम रह गया था । कलियुग में एकान्त ही सदा ही बना रहता था और लोग प्रायः 'हाय भय' 'हाय भय' कहते हुए ही मरते रहते थे ।

अंगा हम युग परिवर्तन के सम्बन्ध में एक स्थान पर लिख चुके हैं वृक्ष और मनुष्य समय कभी एक-सा नहीं चलता । अन्तर्दशा और अन्तर्दश के रूप में समाज के उत्थान और पतन का चक्र चलता ही रहता है । यद्यपि सामान्य लोगों के मतानुसार राजा परीक्षित के समय से, जिसे ५००० हजार वर्ष ही चुके हैं, कलियुग ही चल रहा है और दिन पर दिन उसकी भयङ्करता बढ़ती जाती है । पर हम जानते हैं कि इसी बीच में महाराज विक्रमादित्य का समय भी था चुका है जिसे सब कोई 'रामराज्य' मानते हैं और इसी साधारण पर उनका शक्ति-प्राप्त तक सर्वश्रेष्ठ माननीय है । उनके कुछ समय बाद राजा मोक्ष का शासन-काल भी 'स्वर्णयुग' के नाम से प्रसिद्ध है । इसीलिए हमको यह मानकर कलियुग के इन वर्णनों को पढ़ना चाहिए कि इन वर्णनों के लेखकों ने या उनके परिवारियों ने इन वर्णनों से भ्रम-लुप्त समय देखे थे और उन्हीं अनुभवों के साधारण पर उन्होंने कलियुग का ऐसा चित्र खींचा है जो आजकल अधिकांश में प्रचलित दिग्गजाई पड़ रहा है ।

पर इन वर्णनों का यह साशय हृदय नहीं कि हम इन सब बातों को कलियुग के नाम पर उचित या अनिर्वाच्य मान लें । जहाँ तक हम समझ सकते हैं पुराण-लेखकों ने भी इन वर्णनों को इसी भाव से लिखा है कि पाठकों में इस प्रकार की अधन्य प्रवृत्तियों के प्रति विरक्ति और घृणा का भाव उत्पन्न हो और वे महाशक्ति इनसे बचने की चेष्टा

करे । 'कलियुगो जीव' कड़ा जाना किसी के लिए सम्मान की बात नहीं हो सकती और कोई भी सज्जन, सम्यक् पुरुष इन प्रकार के सम्बोधन को गद्गित ही मानेगा । चारों युगों का विभाजन शास्त्रकारों ने इसीलिए किया है कि लोग मलाई-दुराई ने भेद को समझ जायें और सदैव इन विषय में सावधान रहे कि वे 'युग' की प्रचलित दुराइयों में पस्त न हो जायें । यदि अधिकोश व्यक्ति इस प्रकार भी भावना धरनाये रहे और समाज के सदस्य, देश के शासक भी इन दुराइयों को दबाते रहने का ध्यान रखें तो कोई शरणा नहीं कि 'महाभारत' में व्यासजी का यह कथन कि 'राजा बलस्य कारणम्' (जैसा राजा होगा है वैसा ही युग धरने लग जाता है) यथार्थ सिद्ध न हो ।

कलियुग की इस दुरवस्था और महान् दोषों का निराकरण करके समाज में सुखवस्था और सद्-गुणों का प्रसार करना ही 'कल्कि अवतार' का उद्देश्य माना गया है । 'अघम' का मूलोच्छेद और 'धर्म' की स्थापना ही पृथ्वी पर अवतरित भगवद् शक्ति का सर्वप्रधान लक्षण बतलाया गया है । इसलिए 'कल्कि' चाहे किसी 'भावनात्मक आन्दोलन' के रूप में प्रकट हों और चाहे किसी व्यक्ति या संस्था, समुदाय आदि के रूप में, यदि वह संसार में से वर्तमान भ्रष्टाचार को मिटाकर न्याय और नीति पर आधारित समाज की रचना में सफलता प्राप्त करके दिखा देंगे, तो यह निश्चय ही 'सबसे बड़ा चमत्कार माना जाएगा और भारत की 'भक्ति-प्राण' जनता ही नहीं योरोप अमरीका के साइंस [विज्ञान] का अभिमान रखने वाले भी उसके सम्मुख तुरन्त नतमस्तक होंगे ।

सातवाँ अध्याय

कल्कि-पुराण पर एक दृष्टि और उसका तार्क्य

पुराणों को दो श्रेणियों में विभाजित कर दिया गया है—महा-पुराण और उपपुराण। कुछ लोग इसका मान्य बड़े और छोटे पुराणों से लगाते हैं, पर यह विचार ठीक नहीं। जिनको उपपुराण कहा गया है उनमें से कई महापुराणों की अपेक्षा बहुत अधिक बड़े और सर्वाङ्गपूर्ण हैं। उदाहरण के लिए 'देवी भागवत' का उल्लेख किया जा सकता है, जो 'ब्रह्मपुराण', 'विष्णु पुराण', 'मत्स्यपुराण', 'वामनपुराण' आदि मनेक पुराणों से दुगुने से भी बड़ा है। यह विविध विषयों से युक्त है, पुराणों के पाँचों लक्षण इसमें विस्तारपूर्वक पाये जाते हैं। 'विष्णु चर्मोत्तर' तथा 'हरिवंश' भी काफी बड़े और विद्याल प्रथ हैं। लेखक सभी महापुराण और उपपुराणों को 'व्यासजी' माने गए हैं। इसलिए केवल 'उपपुराण' कह देने से किसी को छोटा महत्त्वहीन नहीं माना जा सकता। जनता में जो 'देवी भागवत' 'हरिवंश' आदि का प्रचार सर्विक्रम पुराणों की अपेक्षा कहीं अधिक है और उनको 'पुराण' की दृष्टि से अधिक मान्यता प्रदान की गई है।

'कल्किपुराण' भी 'उपपुराणों' की सूची में ही आता है, और इस समय उसका जो संस्करण प्राप्त हो रहा है वह बहुत छोटा भी है। यद्यपि 'कल्किपुराण' में ही उसको छः हजार एक सौ दसको का बतलाया गया है, पर इसका जो संस्करण काशी के 'श्रीभारतधर्म महा-मन्दल' द्वारा स्थापित 'श्री विनयायम पुस्तक मन्दार' द्वारा प्रकाशित किया गया है उसकी दसको सख्या छेड़ हजार के मात्र-मात्र ही है। इसका

कारण शायद यह हो कि 'भारतघन' महामण्डल' के पठितों ने इसको संक्षिप्त करके 'कल्कि-कथा' सम्बन्धी सामग्री ही इसमें से संगृहीत की हो जैसे कई प्रकाशकों ने 'महा-पुराण' के केवल 'प्रोत्खण्ड' को ही पृथक् करके उक्त पुराण के नाम से छाप दिया है। यथथा जैसे 'विष्णुपुराण' तथा 'कूर्मपुराण' आदि आजकल उतने लिखी हुई श्लोक ससया से चौथाई घोर तिहाई की संख्या में ही मिलते हैं, वंसा ही हाल 'कल्कि-पुराण' का भी हो गया हो। जो कुछ भी हो इस समय 'कल्कि पुराण' के नाम से केवल यही पुस्तक बाजार में उपलब्ध है। इसमें तीन पंच और ३५ अध्यायों में 'कल्कि' जन्म, विवाह, म्लेच्छ राजाओं से युद्ध तथा राज्य-शासन आदि का मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। यद्यपि यह माना जाता है कि 'कल्कि भवतार' कलियुग के अन्त में होगा, पर इस ग्रन्थ में जितनी भी घटनाएँ वर्णन की गई हैं वे सब भूतकाल वाचक रूप में ही लिखी गई हैं। अर्थात् उनको इस शली में लिखा गया है जिससे पढ़ने वाले को यह प्रतीत होता है कि ये सब से पहिले किसी समय हो चुकी हैं। इस सम्बन्ध में पुराणकार ने स्वयं एक स्थान पर स्पष्ट कर दिया है यह लेखन-शैली की ही एक विशेषता है जो पुराण-ग्रन्थों में प्रायः प्रयोग में आई जाती है।

'कल्कि पुराण' के आरम्भ में ही 'दशम भवतार' की ओर लक्ष्य दिखलाई गई है वह काफ़ी प्रभावपूर्ण है और लेखक की कवित्व-शक्ति परिधायक है—

यद्गोर्दण्ड कराल सपकवलज्वालाज्वलद्विग्रहाः ।

नेतुः सत्करवातदण्डदलिता भूपाः क्षिति क्षोभकाः ॥

धाम्भवत सैन्धव वाहनो द्विजजानि कल्कि परात्मा हरि ।

पराद् सत्ययुगादिकृत स भगवान् धर्म प्रवृत्ति प्रिया ॥

अर्थात् 'जिन राजाओं, शासकों)ने पृथ्वी को क्षान्ति की नष्ट किया है, वे जिसकी बुद्ध-भुगङ्गा विषण्वात से मरम होंगे, जिनकी भयदूर

सङ्ग-धारा से घस्याचारी भूतानों को मज्जी तरह दण्ड दिथा बायगा ऐसे शाहाण वधोरपन्न थोष्ठ मभारोहो, सवुण मादि विभिन्न पुर्णों ने मयतार धारण करने वाले, धर्म—रथाक भगवान कलिक सुन्दारी रथा करे ।'

पर्योकि 'कलिक' का प्रादुर्भाव कलियुग के दोषों और भीषणता को मिटाने के लिए होगा, इसलिए 'कलिक-पुराण' में सबसे पहले कलियुग की विकारयुक्त प्रवस्था का ही वर्णन किया गया है । पुराणकार ने सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर दिया है कि कलियुग की उत्पत्ति 'पथर्म' और 'मिथ्या' के संयोग से होती है । इन दोनों के एकत्र हो जाने से इम्म, माया, लोभ, निकृति, क्रोध, हिंसा आदि दोषों की उत्पत्ति होती है और ये ही सब घाने घल कर घस्यन्त विकार और भ्रष्टाचार युक्त 'कलियुग' जैसे समय की वृद्धि के कारण बनते हैं । इस प्रकार के दोष जब तक नीच धर्म के पोड़े-बहुत व्यक्तियों तक सीमित रहते हैं तब तक तो उनका प्रभाव विशेष रूप से अनुभव नहीं होता, पर सब समाज के उच्च और शिक्षित वर्ग—ब्राह्मणों में उनका प्रवेश हो जाता है तो दसा बिगडने लग जाती है । उनके उदाहरण को देखकर अधिकांश लोग उसी मार्ग का अनुसरण करने लगते हैं और इससे सर्वत्र मनाचार और दुराचार का बोधबाला हो जाता है, और मन्त्र में धर्म का लोप होकर पथर्म की ही प्रतिष्ठा होने लगती है—

निःस्वाध्या—स्वधा—स्वाहा—धीपडोकार वजिताः ।

देवा. सर्वे निराहाराः ब्रह्माणु शरणं ययुः ॥

अर्थात् 'जब पण, कर्म पथवा परमार्थ, परोपकार, उदारता, सेवा धर्म की भावनायें नष्ट हो जाती है तब समस्त देवगण (पशुपत्तियाँ) भी लीण होने लगती है और वे विश्व संचालक शक्ति (ब्रह्म) को धारण प्रहण करके समाज में फँसी दुरवस्था को दूर करने की प्राप्ति करती हैं ।'

कल्कि-कथा का एक बहुत बड़ा भाग सिंहल द्वीप की राजकुमारी पद्मा के साथ विवाह होने का है। उसमें सेलक ने एक युव (सोता) को साम्यम बनाकर जित प्रकार दोनों तरफ प्रेम का सूत्रपात कराया है और फिर विरह की अवस्था दिखलाकर दोनों का मिलन कराया है, वही भारतीय और अन्य देशों की भी अधिकांश प्रेम-कथाओं की सँसी है। इसी प्रकार कल्किजी के युद्धों का वर्णन भी उन्हीं गिने-पुने शब्दों में किया गया है जो अन्य पुराणों में दलित संकटों देव-दानवों के युद्धों मया राजाओं के प्रसिद्ध सन्नामों में पढ़ने को मिलते हैं। अन्त में अपनी कितनी ही रातियों के साथ उनके विहार और रमण आदि का जो दृश्य दिखलाया गया है वह भी अन्य कवियों के शृङ्गार रस वर्णनों से मिलता-जुलता ही है।

पुराण में कल्कि जी का प्रथम वृद्ध बौद्धों के साथ दिखलाया गया है और बाद में कलिपुत्र के साथ होने वाले युद्ध में भी खम्बूपद को बौद्धों तथा यवनों के अनुरूप ही चित्रित किया है। अन्य स्थानों पर भी बौद्धों को मारने, हटाने का संकेत मिलता है। जब तो भारतवर्ष में बौद्धों का अस्तित्व एक प्रकार से समाप्त ही हो गया है, और भारतीय धर्म से उनके सम्पर्क का वर्णन केवल इतिहास का विषय रह गया है। सैद्ध हज्जार वर्ष पहले ऐसा समय अवश्य था, जब दोनों दलों में निरन्तर लाग-झटि बनी रहती थी और उनके रक्त रजित साम्राज्य भी हुए थे। इससे यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि यह रचना उसी समय के भास-वास की है अब भारतवर्ष में बौद्ध युग प्रचलित था और उसे नष्ट करने के लिए हिन्दू धर्माभियासियों का पक्ष भी कमर कसके उठ सड़ा हुआ था। उन घटनाओं को देखकर या सुनकर लेखक के दिमाग में उन्हीं युद्धों का नक्शा धूम रहा था और उन्होंने उन्हीं दृश्यों को कल्कि जी के युद्धों में प्रधानता दी है।

पर अन्य पुराणों के वर्णनानुसार उन्होंने उनका मारम्भ मन्व-
मेघ यज्ञ के लिए किए जाने वाले युद्धों की तरह किया है और उसके
लिए वन संघर्ष कल्कि जी को सर्वप्रथम कीकट देश (मण्डल या
वर्तमान समय का बिहार प्रदेश) पर पाठमण्डल करते दिखलाया गया है ।
यहाँ के शासक 'जिन' ने एक बार जो युद्ध में उनको भयङ्कर सन्नायत
द्वारा सजा दूना कर दिया, पर वह उनको उठाकर नहीं ले जा सका,
जैसे सहमण्डली की शक्ति से मार देने पर भी मेघनाथ उनको उठा नहीं
सका था । पर मन्त में कल्किजी द्वारा बौद्ध पक्ष सर्वथा नष्ट कर दिया
गया ।

अब कल्किजी अगस्त्यपुरी पहुँचे तो गुनि-ऋषियों ने उनसे कुयो-
दरी राक्षसी को मारने का अनुरोध किया जो कुम्भकर्ण के पुत्र निकुम्भ
की पुत्री थी । वह इसकी विद्यालकाय थी कि कल्किजी और उनकी सेना
उनकी शक्ति द्वारा लिचकर उसके पेट में चले गई । पर वे भीतर से
उनके पेट को फाड़कर बाहर निकल आये, जिससे कुयोदरी मर गई ।
ये सब वर्णन पुराणों के देव-दानवों की तरह ही हैं । जिस प्रकार
सुलसीदासजी ने कुम्भकर्ण द्वारा लाखों बन्दरों को एक साथ निगल
जाने की बात लिखी है उसी प्रकार कल्किजी और उनकी सेना के
राक्षसों के पेट में चले जाने की बात कौतूहल का भाव उत्पन्न करने की
दृष्टि से ही मानी जा सकती है । मन्वया मानवाकार दारीरों में इतना
अधिक मन्तर न कभी हुआ और न होगा ।

कल्कि और कलियुग का संघर्ष—

कुयोदरी को मारकर कल्कि हरिद्वार आ गये, जहाँ उनकी भेंट
मरु और देशपि नामक राजाओं से हुई जो अब तपस्वी जीवन गतीत
कर रहे थे । मरु ने अपने को रघुवंशी बतलाया और कल्किजी के पूछने
पर समस्त राम-कथा का सारांश उनको सुना दिया । उस समय 'मन्-

युग' और 'धर्म' भी सग्यासी और साहसो के रूप में वहाँ आ गये । ये पारो व्यक्ति कल्किजी के पक्के अनुयायी बनकर भले-खो से युद्ध करने और धर्म-सुस्थापन के कामों में सदैव लगे हुए रहे । कहा गया है कि 'धर्म' के साथ उनके अनुयायी भी थे । उनके नाम थे— श्रुत (सत्य) प्रसाद, प्रभय, सुख, मोति, योग, धर्म, मृति, श्रेय, प्रतिश्रय । इनके प्रतिरिक्त श्रद्धा, मंत्री दया, धान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उद्यति, मुक्ति, मेधा, त्रिदिशा ही आदि भी मूर्तिमान रूप में उनके साथ थे ।'

इस उद्धरण में कल्कि की सेना का वर्णन प्रतीकात्मक प्रकट होता है । 'श्रुत, प्रभय श्रद्धा, मंत्री, दया आदि धर्म' के भाग ही हैं और कल्कि (धर्म पदा) तथा कलियुग (मधर्मपदा) के सम्पर्क में उनका कल्कि के साथ रहना स्वाभाविक ही है । जब धर्म कल्किजी के साथ पान्थों पर विजय-यात्रा के लिए उद्यत हुआ तो उसके शस्त्रों तथा रथ का जो वर्णन किया गया है वह भी प्रतीकात्मक होना चाहिए । इस विषय में लेखक कहते हैं—

साधु उत्कार ही युद्ध के लिए प्रस्तुत 'धर्म' का रूप हुआ । वेद और ब्रह्म महारथ स्वरूप से प्रकट हुए । अनेक सात्वो का सम्बन्ध धर्म का अनुप हुआ । वेद के सात स्वर उसके रथ के ध्वज, भूदेव सारथि मन्त्र धारण हुआ । इस प्रकार धर्मरूप सायक ने अनेक क्रियानुष्ठानों के रूप में बड़े बल से युक्त होकर यात्रा की । उधर कलियुग के जो सहु योगी कल्कि-सेना से युद्ध करने लगे उनमें 'दम, लोभ, क्रोध, भय, निरय, माधि-भ्याधि, म्लानि, जरा' आदि के नामों का उल्लेख किया गया है । ये सब लघुधर्म के भाग ही हैं । इस प्रकार लेखक ने यहाँ पर इस बात का संकेत किया है कि कल्कि और कलियुग का सम्पर्क एक प्रकार से भावार्थक माना जा सकता है और सूक्ष्म दृष्टि से विचार न किया जाय तो यह संसार में सदैव होता रहता है ।

तो उसमें भी कोई दोष नहीं। शशिध्वज ने कहा कि कल्किजी देवी पुरुष घदप्य है और हम उनकी पूजा भी करते हैं, पर जब वे एक दिवसी मोडा के रूप में हमारे नगर पर आते हैं तो हमको सयाम भूमि में उनका मुखावसा भी करना चाहिए। हमसे न उनके प्रति कोई धनुता का भाव होगा न हमारी धृष्टा में कोई कमी पावेगी। हम केवल उन की बनाई सर्वादा का पालन करते वाले माने जायेंगे। युद्ध समाप्त होने पर फिर भी वे भगवान् और हम भक्त ही बने रहेंगे। कर्तव्य का प्रश्न पाने पर एक बार भगवान् कृष्ण और धनुंन के बीच भी युद्ध ठन गया था और इसी सिद्धान्त के आधार पर श्रीकृष्ण ने गीता में धनुंन को भीष्म जैसे पूजनीय सम्बन्धी से सन्ने की प्रेरणा की थी।

‘कल्कि-कथा’ के अनुसार जब युद्ध करते हुए कल्किजी शशिध्वज के प्रहार से सन्तान्म्य हो गए तो वह उनको उठाकर अपने महली में ले गया और पत्नी सहित सेवा सुधूपा करने उनको स्वस्थ रिया। दोनों पत्नी में मेन ही जाने पर युद्ध बन्द कर दिया गया और शशिध्वज ने अपनी पुत्री का पाणिग्रहण कल्किजी के साथ कराके उनको सब प्रकार से सन्तुष्ट और प्रसन्न किया। उन्होंने अन्य राजाओं के प्रश्न करने पर बहुत भी प्रकट किया कि कृष्णायतार के समय भी सत्राजित के रूप में भगवान् कृष्ण के धसुर थे और अपनी कन्या सारवभामा का विवाह भगवान् के साथ किया। उन्होंने कहा कि येने अनेक जन्मों में भगवान् की भक्ति करके ही यह महात् पदवी प्राप्त की है और भक्ति ही मानव जीवन का सार है। इस समय में जन्ही भगवान् को कल्किजी के रूप में अपने सम्मुख देख रहा है। इसीलिए अपनी कन्या और सर्वस्वको उन्हें समर्पित करके मैं अन्त समय में उसी भक्ति-मार्ग का ही अनुसरण करता हूँ।

भगवान् कल्कि इसके पश्चात् भी अनेक दुष्कर्मरत व्यक्तियों का ध्वंस करके धर्म-संस्थापन का कार्य करते रहे। उन्होंने नागों की

इस समय केवल पृथ्वी-जल पर ही भीषण ज्वल की तैयारियाँ नहीं हो रही हैं वरन जल, पल घोर भन्तारिण तीनों में मृत्यु के प्रभूत-पूर्व यन्त्र इकट्ठे किए जा रहे हैं । भयस्था यहाँ तक गम्भीर हो गई है कि यदि आज किसी एक सत्ताधारी व्यक्ति को सतक सवार हो जाय तो वह किसी भी दिन इस 'धारुद के पदंत' में निनगारी छोड़कर समस्त जगत् को एक अज्ञानामुखी के रूप में परिचिन्त कर सकता है । उस समय न छोटा बच्चा शोक घोर न रहा — न माकूमण किया जाने वाला शेष रहेगा घोर न माकूमण करने वाला, न हारने वाला जीवित रहेगा घोर न जीवने वाला । इस भीषण-भविष्य से भयवान् ही मानव-जाति की रक्षा कर सकते हैं । इसलिए किसी भी रूप में भयवत्-शक्ति का प्रकट होना आवश्यक है । चाहे प्रेम से घोर चाहे दण्ड से वे ही इस सवार की रक्षा कर सकते हैं । अगर इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम 'कल्कि भयतार' की शक्तता करें तो हममें कोई मनुचिन्त बात नहीं है । 'कल्कि' शब्द नदीन घोर उत्कृष्ट मानव सम्पत्ता का प्रतीक माना जा सकता है ।

'कल्कि' के अनेक रूप—

'कल्कि' कहाँ होंगे, कब होंगे और किस रूप में होंगे ? इसका निर्णय विचारशील लोग स्वयं कर सकते हैं । ऐसे संक्रान्ति-काल में देवी शक्ति का प्रकट होना अनिवार्य है, इसना ही हम जानना हमारे लिए पर्याप्त है । वह शक्ति कब, कहाँ घोर कैसे सांसारिक मनुष्यों को अपना परिचय देगी ? यह एक गौण प्रश्न है घोर इस विषय को उठाना विशेष महत्त्व की बात नहीं । गुलाब का फूल किसी भी क्यारी में सिले वह यहीच की सुरभित बनायेगा ही, उसकी सुगन्ध दूर-दूर के लोगों को कुछ लाभ पहुँचायेगी ही ।

तो भी हमारे अनेक भाई कौतूहल पूर्वक यह प्रश्न ही रहते हैं कि 'भगवती भयतार' कब तक प्रकट हो जायगा ? वह किस भूभाग को सुरभित करेगा ? हमारे सनातन धर्मों भाई तो परस्परगत बातों का

धार्मिक महत्तम मानकर उत्तरप्रदेश के 'सम्भल' नामक कम्बो को 'मग-
वान् कल्कि' का जन्म-स्थान मान रहे हैं और नहीं बहुत बरसों से उनका
एक मन्दिर भी बना रखा है। 'विश्वेश्वरिणी' की सस्थापिका
मैडम डल्लैवटस्की ने अपनी 'मीक्रेट डायट्रिन' पुस्तक में 'शमल' का
पना चीन स्थित गोबी के रेगिस्तान में बतलाया है, जहाँ कोई मानव
नहीं पहुँच सकता। 'सतयुग' धार्मिक पत्र (नवम्बर १९४०) के एक
लेखक श्री भारद्वाज रघुनाथ ने उड़ीसा के सिद्धयोगी पद्मपुतानन्द दास
रचिन 'मालिका' ग्रन्थ के भाषार पर, जो इस समय भी वहाँ के मन्दिरों
में साङ्गण पर लिखा मिनटा है, यह बतलाया था कि 'शमलपुरी'
उड़ीसा में है और वही पर 'कल्कि अवतार' होगा। इसके लिए उन्होंने
'मालिका' का एक उद्धरण दिया था जो उड़ीसा भाषा में है—

जाण सोसुक नदी याउत्ति मेदि ।

प्रपुना गाई चीर नाम ता दुधि ।

भक्तद्वेषेष्ट

गिरि उपरे देख उदय वट ।

भगडे नदी आसे उजाणि केरी ।

नदीर उत्तर कु शमल पुरी ।

पद्म पोखरी

पोखरी पश्चिम कु लिङ्ग विहारी ॥

'इस पत्र के अनुसार इस समय भी उड़ीसा में 'दुधि' नाम की
नदी मौजूद है। उदयगिरि नाम का पर्वत भी है और बिल्कुल पास ही
एक वट वृक्ष है। इस स्थान से थोड़ी दूर उत्तर की तरफ शमलपुरी
(वर्तमान नाम चार गपुर) है। इसके पास ही एक शिव-मन्दिर में 'लिंग-
विहारी' विराजमान है। दुधि नदी चारगपुर के दक्षिण ओर पश्चिम
की तरफ बहती है और उसने 'सम्भल' को दो तरफ से घेर रखा है।

हमने यह लेख मात्र से २८ वर्ष पहले 'सनयुग' में प्रकाशित किया था, इस तरह ज्यादा ध्यान इसलिए नहीं दिया था कि प्रत्येक लोग इसी प्रकार अपने-अपने प्रदेशों को भावी घटतार की नीला भूमि बतलाते हैं। पर जब कलिक पुराण को 'श्रीभारतवर्ष महामण्डल' द्वारा प्रकाशित तथा काशी के प० दासोदर शास्त्री द्वारा सम्पादन और सन् १९०७ में प्रकाशित पुस्तक का प्रबलोकन करते समय हमको यह देखकर कुछ आश्चर्य हुआ कि उसमें भी उड़ीसा का जिक्र पाया है। जैसा कि इस पुराण के कथा-भाग में वर्णित है श्रीकलिक भगवान् महेंद्र पर्वत पर परशुरामजी पाठ वेदाध्ययन और वास्तु विद्या की शिक्षा प्राप्त करने गए थे। यह महेंद्र पर्वत कहाँ है, इस भगवद् में उक्त पुराण में यह फूट नोट दिया गया है—

“पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ जी) में ऋषिकुत्वा नाम की मही है। यह गोवर्धन देश की पर्वतमाला से उत्पन्न हुई है। इसी स्थान में 'महेन्द्रमाती नाम से एक पर्वत' प्रचाराट है। यही महेंद्र पर्वत है। यह महेंद्र पर्वत माला उड़ीसा के उत्तर पश्चिम दिशा से गौदवन् तक फैली हुई है। भारतवर्ष के साथ कुलावली में से महेंद्र पर्वत भी एक है।”

इससे विदित होता है कि दिन लोगों ने उड़ीसा स्थित 'समत' की कलिक का स्थान माना है उनके पास वैसा अनुमान करने का कोई कारण था। पर अन्य स्थानों वाले भी अपनी बात के लिये अन्य प्रकार के प्रमाण देते हैं। श्री बङ्गाल के स्वामी जगदीश्वरानन्द ने 'Kalki Comes in 1935' (कलिक भवतार सन् १९८५ में होगा) नाम की चौब सौ पृष्ठ की पणरेखी पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि "हिन्दु धारणों में उत्पत्तिगत एक भवतारों में से जब तक शेष रहे एक मात्र अवतार 'कलिक', बीस वर्ष के बाद बङ्गाल १९६२ बैशाख सुक्ल द्वादशी (सन् १९८५ ईशवी के प्रथमाध)।

भविष्य में ही कहना कर रहे हैं। हमारा अनुमान इस विषय में इतना ही है कि वर्तमान घोर भयवस्था और विश्व का नाश करने वाले महायुद्ध की प्रतिदिन बढ़ती हुई संभावना को देखते हुये किसी रूप में 'देवी शक्ति' का हस्तक्षेप अनिवार्य है। इस विश्व रक्षा के कार्य-क्रम का प्रत्यक्ष संचालक कोई भी हो, सर्व साधारण उसे "जगत उद्धारक" ही मानेंगे।

उत्ते 'कल्कि', 'ईश', 'मैंहदी', 'मैत्रेय', (शोड) या यहूदी, पारसी प्रादि मनहूद वालो की मान्यता के अनुसार किन्ही नाम से पुकारा जाय। हमारा कोई धार्य नही। और न हूय उनके प्राकटय को कोई विधि नियत करने को उचित कह सकते हैं। 'देवी' घटनाओ का निरवधारक मान अनुभू को नही हो सकता। यह उक्त सम्बन्ध में पुन अनुमान ही कर सकता है। हमारे अनुमान का आधार यही है कि जब जब तसार पर कोई ऐसा घोर सकट आया है, कि मानव-सभ्यता का प्रन्त होने का भय उपस्थित हो जाय, तभी कोई न कोई देवी शक्ति किसी व्यक्ति या घटना मयथा विचार के रूप में सम्पुल आई है और उगते मानवता की रक्षा हो सकी है। गीता में गणवान वृष्ण के पाषाणसन का धर्म भी यही है कि वे सार घोर ध्याय की पूर्ण रूप से हत्या नही होने दे सकते और समय रहते उसकी रक्षाये प्रयत्न प्रष्ट होते हैं। इतनिये घणामी दश-बोस-तीस वर्षों में ऐसी किन्ही शक्ति के प्राविभाव पर विश्वास गाना अनुचित नही कहा जा सकता।

'रत्न पुराण' पर यदि घटनाओ की दृष्टि से विचार किया जाय तो वे सब प्राचीन-काल के मानावरण के अनुसार ही किसी गई बर्णान् हैं और मात्र उनके उसी रूप में घटित होने को कोई धारणा नही की जा सकती। इनमें हर जगह बाण, तनधार, यदा प्रादि से युद्ध होने का वर्णन किया गया है जिनकी इस समयकाल, मधीनपन, धम और

सम्यक् पुरुष की तरह ही होगा। मगर 'अधतार' का कार्य-दोष मकेला भारतवर्ष ही होता तब भी योही देर के लिए इस सम्भावना पर विचार किया जा सकता था, पर इस समय जो कोई भी मानवता के उद्धार और ज्ञान का प्रयास धारम्भ करेगा उसे समस्त सत्तार के लोगों से सम्बन्धित रहना पड़ेगा और सब देश वालों के साथ आत्मोपता का व्यवहार करके उनका विश्वास प्राप्त करना होगा। ऐसा व्यक्ति यदि किसी एक देश की प्राचीन सभ्यता और रश्मि-सहन के भीतर आशय हुआ तो अन्य देश तथा धर्म वालों को कदापि प्रभावित नहीं कर सकता।

इन सब बातों पर विचार करने से हम स्वभावतः इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'कल्कि पुराण' का मुख्य उद्देश्य कलियुग की दूषित भावना की दुराहर्षा दिसमाकर सर्वे साधारण को उसके कुप्रभाव से बचाना है। यदि मनुष्यों के हृदय में यह विचार जड़ जमा ले कि कलियुगी व्यवहार वास्तव में अत्यन्त गहिर और धुरित है और भावना भी उसके विरुद्ध है, तो वे उससे दूर रहने की चेष्टा कर सकते हैं। पाप से बचने और पुण्य की तरफ आकर्षित होने का उपदेश यों तो सभी सद्गन्ध और सामु देते हैं, पर सामान्य पाठकों पर उसका प्रभाव कम पड़ता है। पर जब उसकी कथा रूप में कहा जाता है और पाप का कुपरिणाम तथा पुण्य का लाभ शायद परिणाम अन्य लोगों के उदाहरण के साथ बर्णन किये जाते हैं, तो वह बात उनकी समझ में अच्छी आ जाती है। इसलिये यदि कल्कि पुराण के लेखक ने "कलियुग तथा कल्कि" की कथा को अनोखे और प्रभाव शाली ढङ्ग से बर्णन किया, और उसे पुराने पुराणों की शैली पर ऐसे ढङ्ग से लिखा है कि जिससे धार्मिक तथा अन्ध-विश्वासी दोनों का ध्यान उपर आकर्षित हो और वे उसे खड़ा और यत्न की दृष्टि से देखें, तो इसके लिये हम उसे किसी तरह दोष नहीं दे सकते। हमारा कर्तव्य है कि हम कथा के साथ ही उसके मूल उद्देश्य का भी ध्यान रखें, और यही तक सम्भव हो धर्म के वास्तविक स्वकद को समझ कर तदनुसार व्यवहार करें।

बतनाइये ।' यह बात सुनकर राजा कुछ नहीं बोले । वाष्कनि ने फिर वही प्रश्न किया और राजा चुप ही रहे । जब चार-पाँच बार ऐसा ही हुआ तो उन्होंने वाष्कनि से कहा — "मैं तो तुम्हारे प्रश्न का उत्तर बराबर दे रहा हूँ, परन्तु यह तुम्हारी समझ में ही नहीं आता तो मैं क्या करूँ ? प्रश्न स्वयं किसी तरह समझाया नहीं जा सकता, इसलिये चुप रहना ही सच्चा प्रश्न पदार्थ है ।"

जब ज्ञान-मार्ग में इतनी कठिनाई है और निरावार प्रश्न प्रत्यक्ष प्रश्न को समझ सकना विश्व ही लोगों के लिए संभव है, तब सामान्य जन उसे किस प्रकार ग्रहण कर सकते हैं और कौसे उस मार्ग का अनुसरण करके भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं ? प्रत्यक्ष प्रश्न निर्गुण ब्रह्म की उपासना का विवेचन करते हुए श्री विष्णु ने लिखा है :-

' उपनिषदों में जिस श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है, वह इन्द्रोपासीत, प्रव्यक्त, धर्मत, निर्गुण और "एकमेवाद्वितीय" है, इसलिये उपासना का आरम्भ उस रूप से नहीं हो सकता । जब श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का अनुभव होता है तब मन धन्य नहीं रहता, परन्तु उपास्य और उपासक, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों एक हो जाते हैं । निर्गुण ब्रह्म अन्तिम साधन वस्तु है, साधन नहीं और जब तक किसी ने किसी साधन से निर्गुण ब्रह्म के साथ एक बन होने का पापता (योग्यता) मन को प्राप्त नहीं किया, तब तक श्रेष्ठ ब्रह्म स्वरूप का आधारकार नहीं हो सकता । मतएव साधक की दृष्टि से जिसे प्रह्लाद-सोकार किया जाता है वह दूसरों के लिये का अर्थात् सगुण होता है ।

मनुष्य के मन की स्वाभाविक रचना ऐसी है कि जो वस्तु धर्मरसयुक्त होती है अर्थात् जिसका कोई विशेष रूप रङ्ग आदि नहीं, उसका हमेशा विचार कर सकना चाहते हैं दुस्साध्य होता है । मन की रचना से ही संबन्ध माना गया है, इसलिये जब तक मन के सामने

करता है। जब इसमें यह विवाद उठाना कि "ब्रह्म परमात्मा का वास्तविक स्वरूप निर्गुण या सम्बन्धित है, तो ज्ञान-मार्ग ही अधिक लोच्य है" व्यर्थ है। भारतवर्ष में ऋषियों ने दोनों मार्गों का प्रतिपादन मनुष्यों की गिना दृष्टि और योग्यता के आधार पर किया है। जैसा हम प्रतिदिन अनुभव करते हैं। अनेक मनुष्य 'बुद्धि-प्रधान' और अनेक 'ध्यान-प्रधान' देखने में आते हैं। बुद्धिवादी लोग स्वभावतः ज्ञान-मार्ग की ओर जाते हैं और निर्गुण, विराकार ब्रह्म की उपासना द्वारा मुक्ति प्राप्त का प्रयत्न करते हैं। ध्यानवान सगुण, साकार भगवान की भक्ति द्वारा उसी मुक्ति या सायुज्य स्थिति तक पहुँचने का उद्योग करते हैं। इसी तथ्य को कन्निक पुराण में नारद जी द्वारा इस प्रकार कहलाया गया है—

"नेत्र, कान, नासिका, जिह्वा, त्वचा—एत पञ्च ज्ञानेन्द्रिय और मन को एक कर परम-ज्ञान का प्राप्ति ले गुण के चरणों में आत्मसमर्पण करना चाहिए। जब गुण प्रसन्न, संकुच रहते हैं तो स्वयं भगवान भी कृपालु हो आते हैं। बुद्धिमान तिम्य को चाहिये कि प्रणवाम्नि के बीच 'अं' को मनन्य हृदय से स्मरण करते हुए साधन होकर पाद्य, अर्घ्य, प्राणमनीय आदि एक स्तनीय ध्यान-भूषणों से युक्त कर एकत्र चित्त से नारायण जी के चरणरूपों को पूजा करे। अन्तर हृदय-कमल के बीच विराजमान रमणीय सर्वोद्गु सुन्दर भगवान नारायण का ध्यान करें। इस प्रकार ध्यान करके मन, वचन, बुद्धि एवं इन्द्रियों सहित आत्मा को नारायण में समर्पण करें। देव मूर्ति को भगवान विष्णु का धनस्त रूप मान जिन नामों को जानता हो उनका स्मरण करें। क्योंकि नाम के सिवाय और कोई मार्ग मध्य प्राप्ति का नहीं है।

भगवान कृष्ण वेद्य हैं, मैं वेदक हूँ और समस्त जीव भगवान की ही मूर्ति (पंक्त) है—यह भेद-बुद्धि ज्ञान की दृष्टि से परिचायन्य

हुए हैं और सब प्राणी एक प्रकार से उनकी ही मूर्ति हैं। इस लिये इन प्राणियों में से किसी को भी सेवा-सहायता करना भगवान की सबसे बड़े पूजा और भक्ति है।

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय अपने-अपने पृथक-पृथक सिद्धांतों का प्रतिपादन करते रहते हैं, जिनमें से कोई मूर्त, कोई दंत, कोई चैत, कोई विशिष्ट-वाचैत और कोई शुद्धार्थ कहलाता है। इन सब सिद्धांतों की वारंवारियों को समझना सामान्य लोगों का काम नहीं है। वे तो परम्परा पर चमते हुए भगवान की मूर्ति या किसी अन्य प्रतीक के सम्मुख विनीत भाव से प्रणवा मस्तक झुका देना, कुछ भेट चढ़ा देना या पूजा आरती कर देना ही अपने कर्तव्य की दृष्टि में मान लेते हैं। वे नहीं जानते कि उनकी यह उपासना-प्राणियों धर्मशास्त्रों के अनुसार भी सबसे निम्न कोटि में आती है। 'योगवासिष्ठ' ने एक स्थान पर कहा था है—

अक्षरावगमसम्बन्धे यथा स्थूलवस्तु लटपत्परिग्रहः ।
 शुद्धबुद्धपरितन्मये तथा दासमृध्ममशिलामयार्चनम् ॥

पर्याय — "अक्षर-ज्ञान कराने के लिये जित प्रकार छोटे बच्चों को छोटे-छोटे कचुड, रेत आदि रख कर आकार दिखलाना पड़ता है, उसी प्रकार (निरव) शुद्ध-बुद्ध परब्रह्म का ज्ञान कराने के लिए लकड़ी, मिट्टी या पत्थर की मूर्ति को स्वीकार किया जाता है।"

इस प्रकार इस समय लोग भक्ति-धर्म के इस वास्तविक धर्म को भूल गये हैं कि "भगवान प्रत्येक प्राणी में समाया हुआ है, इसलिये प्राणियों की सेवा करना ही भक्ति का सबसे बड़ा साधन है।" गुजरात के महान भक्त मरती मेहता के एक भजन की प्रथम पंक्ति में ही कहा गया है कि "बैष्णव धन तो लेने कहिये वे और पचाई पाए रे।" 'एषथा विष्णु भक्त (बैष्णव) तो यही है जो परमै दुख को अनुभव

करते हैं, बिना किसी प्रकार की स्वार्थ-भावना के समाज की प्रगति, उत्थान के लिए अपनी योग्यता और क्षमता को खर्च करते हैं। ईश्वर-शक्ति का सर्वोपरि सहाय यह है कि मनुष्य अपनी क्षमता और साधनों का एक संघ प्रवर्ध ही दूसरों की भाँड़ी के लिए-समाज के उपकारार्थ खर्च करे।

शक्ति का स्वरूप और उसकी प्राप्ति—

शक्ति का यह विशेषकारण पुनः और प्रथम एव ही सर्वोच्छेद और मनुष्य को देवता बना देने वाला है। यह मनुष्य अपने स्वार्थ को त्याग कर दूसरों के हित की कामना करता है, उनका कष्ट मिटाने के लिये स्वयं यत्न करना, कष्ट सहना स्वीकार करता है, और इनके उप-सदय में किसी प्रकार की कामना नहीं रखता, सभी यह 'भक्त' की पदवी का अधिकारी बनता है। ऐसा भक्त चाहे बिल्कुल सामान्य रूप में रहे, माता, पति, मित्र, ब्रह्म आदि कुछ भी पारस्य न करे, तो भी भगवान की दृष्टि में वही सर्वाधिक शुद्ध और पवित्र प्रतीत होता है। उसी को वास्तव शक्ति और आत्म-सुख का उपहार प्राप्त होता है। इस प्रकार की शक्ति की महिमा 'श्रीमद्भागवत' में भी वर्णन की गई है जिसे शक्ति-भाष्य का सर्वोपरि ग्रन्थ माना गया है और जिसका सम्मान सामान्य धर्म में मेरु बड़े से बड़े विद्वान् भी करते हैं। इसमें देवदूत और भगवान् कवि के उद्वाह में भक्त के सहायों का वर्णन करते हुए तीवरे स्फुट के अन्वय २६ में कहा है—

निपेक्षितेनानिमित्तेन स्वधर्मेषु महीमता ।

क्रियायोगेन शक्तेन ताति द्विष्येण निरवशः ॥

मद्विष्य दशनं स्पृशं पूजास्तुस्वभि वन्दनैः ।

भूतेषु मदभावनया सुखेनासङ्गमेन च ॥

का शकोच नहीं करते, घोर फिर भी वे अपने भक्त कहते रहते हैं । भागवतकार ने घागे धलकर स्पष्ट वाक्यों में कहा दिया है कि बिना परोपकार वृत्ति के केवल मुनि की पूजा-पूजा निरर्थक है—

यथा वातरयो घ्राणमावृ षते गन्धजाशयात् ।

एव योगरत चेत् आत्मानविकारि यत् ॥

अह सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा ।

तमवशाय मांमर्त्यं कुस्ते ऽर्चाविडम्बनम् ॥

यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ।

हित्वार्चा भजते मोक्षयाद् भस्मन्येव जुहोति सः ॥

द्विषतः परकामे मां मानिनो भिन्नदर्शिनः ।

भूतेषु बद्ध वैरस्य न मत्तः शान्ति मृच्छति ॥

“जिस प्रकार पुष्प को गन्ध वायु द्वारा उड़ कर मनुष्य की नासिका तक पहुँचती है उसी प्रकार भक्तियोग में हृत्पर और राग-द्वेष विकारों से मुक्त चित्त परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । भगवान् घातरूप में सभी जीवों में स्थिर रहते हैं, इसलिये जो सर्वभूतस्थित परमात्मा का घनादर करके केवल प्रतिमा के रूप में ही उनका पूजन करते हैं, वह पूजा स्वयं मत्त है । जो इस प्रकार जीवित परमात्मा की उपेक्षा करके प्रतिमा पूजन में ही लगा रहता है वह मानो भस्म में ही हवन करता है । जो भेददर्शी घोर अधिमानों पुरुष दूसरे जीवों के साथ घैर साधना है, घोर इस प्रकार उनके शरीरों में विद्यमान मुक्त घातरूप से ही घैर करता है, उनके मन को कभी शान्ति नहीं मिल सकती ।”

इस उद्धरण में भागवतकार ने ‘भक्ति’ का लक्षण साधका घादर करना, सबसे प्रेम भाव रखना, किसी को दातु मानकर धिस्तन न करना बतलाया है । इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार की भावनाओं के बिना मनुष्य किना भी पूजा-नाठ करे वह सब धोग ही है । एक तरफ भगवान् के प्रति घादर, घट्टा का भाव दिखाना घोर दूसरी तरफ

स्त्री की प्रति-मूर्ति सस्य प्राणियों से द्वेष करना, उतका सममान करना, स्पष्टतया परस्पर विरोधी बातें हैं। इस प्रकार की दुरंगी नीति वामा गनुष्य मनुष्यता का कभी शिथ नहीं हो सकता। वन्द के लो लेशे लोगो, बलिष्ठ को बदनाम करने वाले व्यक्ति को किसी प्रकार का पुरु फल न देकर सब क दाम्य ही मानेंगे। इसीलिए 'भगवत' म कहा गया है—

अहमुच्छ्वावर्षैर्द्वै क्रिययोत्पन्नमानघे ।
 नैव तुष्येर्षितोऽर्वाया भूतप्रामादमानिनः ॥
 बर्षादिवर्षेणावदोऽस्वरं मा स्वकर्मं कुम् ।
 यावन्न वेदं स्वहृदि सर्वभूतेष्व वा स्थितम् ॥
 आत्मनश्च परस्यापि य करोत्यभ्रुतेः परम् ।
 तस्य मिश्रद्वा मृत्युविदधे भयत्मुन्वयाम् ॥
 अथमां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतानयम् ।
 लक्ष्म्येहानमानाम्या भौश्याभिन्नेन चक्षुषा ॥

पर्याप्त—“जो दूसरे जीवों का अपमान करता है वह यदि बहम-धी नईया चरिया सामर्थियों से अपने प्रकार के विधि विधान के साथ किसी मूर्ति का पूजन भी करे, तो भी मैं अपने प्रसन्न नहीं हो सकता। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने धर्म का पटुष्ठान करता हुआ तब तक मनुष्यता भी प्रतिभा प्रादि का पूजन करता रहे जब तक उसे अपने हृदय में एक सम्पूर्ण प्राणियों में स्थित परमात्मा का अनुदर न हो जाय। जो धार्मिक आत्मा और परमात्मा के बीच मोटा भी भरता करता है उस भेददर्शी को मैं मृत्युक्ष से महान गद उपस्थित करता हूँ। अतएव समस्त प्राणियों के भीतर निवास करत हुए उन प्राणियों के ही रूप में स्थित मुख्य परमात्मा का यथायोग्य शान, मान, मित्रता के व्यवहार तथा सगृहि के द्वारा पूजन करना चाहिये।”

जो लोग सर्वत्र पुराणों पर 'पापाण' और 'काष्ठ पूजा' का ही आशेर करते रहते हैं उन्हें उपर्युक्त उद्धरण से समझना चाहिये कि उनमें केवल मूर्ति पूजा का विधान ही नहीं बतलाया गया है, बरन् कुछ और भी है। 'भागवत' जैसे पुराण में, जिस पर न मासूम कियेने और कसै आशेप किये जावे है, स्पष्ट कहा गया है कि 'जब तक मनुष्य अपने हृदय में तथा समस्त प्राणियों में पाये जाने वाले परमात्मा का अनुभव करने की स्थिति की प्राप्ति न हो जाय तब तक वह ईश्वर की प्रतिमा का पूजन करके ही अर्मानुष्ठान करता रहे।"

यही बात किन्ते ही मन्त्र पुराणों और सनातन धर्म ग्रन्थों के में कही गई है। उनमें साफ-साफ बतलाया गया है कि 'अस्यु देवाः बालानाम् दिवि देवता मनीषिणाम्'—अर्थात् बाल बुद्धि के (अशिक्षित और अनपढ़) लोगों के लिए तीर्थों का अथ और पापाण आदि की मूर्तियाँ ही ईश्वर के रूप में उपासना के योग्य होती हैं। विद्वान् मनुष्य सूर्य, अग्नि, वायु आदि की ईश्वर रूप में उपासना करते हैं, और जिनकी ज्ञान दृष्टि अथवा योग दृष्टि प्राप्त हो गई है वे केवल आत्मा को ही पर ब्रह्म स्वरूप स्वीकार करते हैं।" सच्चे भक्त का सदाएँ यहो बतलाया गया है कि वह सब जीवों में परमात्मा का अस्तित्व समझकर उनकी सेवा, सहायता, उपकार का प्रयत्न करता रहे, मूर्ति पूजा भले ही करता रहे या न भी करे। उपरोक्त उद्धरण के अन्त में भगवान् ऋषिपदेव ने समस्त ज्ञान का सारास बतलाते हुए अपनी माता देवहूति से यहो कहा है—

"सर्व प्रकार के लोगों को अचेता मुझे वे व्यक्ति ही उच्च और श्रेष्ठ जान पाते हैं जो अपने सम्पूर्ण कर्म, उनके फल तथा अपने शरीर को भी मुझे ही अर्पण करके भेदभाव छोड़कर मेरी उपासना करते हैं। इस प्रकार मुझे ही चित्त और कर्म अर्पण करने वाले अर्थात् और समदर्शी पुरुष से सर्वोपरि और कोई नहीं श्रेष्ठ पड़ता।

मतः वह मान कर कि जीव रूप से साक्षात् भगवान ही सब में अनुगत हैं, समस्त प्राणियों को बड़े मादर के साथ मन से प्रणाम करे।”

शिवगु भगवान के परम भक्त कहे जाने वाले ब्रह्माय जी ने भी दैत्य बालकों को यह उपदेश दिया था कि भगवान को प्राप्त करके संसार सागर से वाप होने का उपाय समस्त प्राणियों में ईश्वर के दर्शन करके उनके साथ वैसा ही व्यवहार करना है। जो इस सिद्धान्त के अनुसार व्यवहार करेगा उसे संसार की वेद से श्रेष्ठ सभी वस्तुयें स्वयं प्राप्त हो जायेंगी। उन्होंने कहा—

न ह्यश्रुत प्रीणयतो ब्रह्मात्मसोऽमुरात्मजाः ।

आभक्त्यात् सर्वभूतानां तदस्वादिह सर्वतः ॥

परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तन्यादरादिषु ।

भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥

गुरोषु गुरुसाम्ये च गुरुव्यतिहरे तथा ।

एकएवपरोह्यत्मा भगवानोऽशरोऽपमः ।

केवलानुभवानन्द स्वरूप, परमेश्वर ।

माययान्ताहिंसस्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥

ज्ञान तदेतदमत्तं दुरवापमाह

तादायणो नरसखः किल नारदाम् ।

एकान्तिर्ना भगवत्सदकिञ्चनाना

पादारविन्दरत्नाऽऽश्रुत देहिमास्मात् ॥

“ब्रह्मादि जी ने अपने सहपाठियों से कहा—मित्रो ! भगवान को प्रसन्न करने के लिए कोई बहुत बड़ा परिश्रम या प्रयत्न नहीं करना पड़ता, क्योंकि वे समस्त प्राणियों के आत्मा हैं और उन्हें सबकी सत्ता के रूप में स्वयं विद्य वस्तु हैं। ब्रह्मा से लेकर उनके तक छोटे-बड़े समस्त प्राणियों में, पक्षमूर्तों ने बनी वस्तुओं में, सूक्ष्म प्राणियों में, महत्तर में, शीतो गुणों में और गुणों की साम्बावस्था प्रकृति में

एक ही मविनाशी परमात्मा विराजमान हैं। वे ही समस्त सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यों की धारण हैं। वे केवल धनुमत्त स्वरूप, धानन्द स्वरूप एक मात्र परमेश्वर ही हैं। गुणमयी माया के द्वारा ही उनका ऐश्वर्य छिप रहा है, इसके निवृत्त होने ही उनके दर्शन हो जाते हैं। यह निमित्त ज्ञान सर्वाधिक महत्त्व का है। इसका उपदेश सर्व प्रथम भगवान् नर-नारायण ने भारद्वाजी को किया था। पर जो लोग भगवान् के धन्य प्रेमी और अहिंसक (सम्पत्तिहीन) सच्चे भक्तों की धरणीय ही शिरोधार्य करते हैं (अर्थात् उनके उपदेश को स्वीकार करके व्यवहार में लाते हैं), उनको यह ज्ञान सहज ही में मिल जाता है।"

प्रह्लाद ने भगवान् को ममत्त ऐश्वर्यों, धन, सम्पत्ति, महत्त्व, राज्य आदि का सम्झार बताया, पर धन्य ने यह भी कह दिया कि जो कोई अपना जीवन दीन-दान और धरमन्त परीय, उपदेशोप लोगो की सेवा करने में लगा देता है उसको सहज में ही भगवान् के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान ही जाता है। उसका सब प्रकार का भ्रम मिट कर वह 'परम सन्निवृत्तानी और सामर्थ्यवान्' बन जाता है। मनुष्य जीवन को सार्थक बनाने और सब तरह की सांसारिक सकलता प्राप्त करने का मार्ग यह नहीं है कि मनुष्य किसी एकान्त कोने में घुम कर केवल भगवान् का नाम लेता रहे, उनकी प्रतिमा पर धूल-पत्ता धराना रहे वरन् समाज के परदन्त मज्ज—गरीब लोगो के उद्धार—उत्थान के लिये प्रयत्न करते रहना ही भगवान् की प्रसन्न करने और प्राप्त करने का सच्चा उपाय है।

पुराणों में अथर्व-संहिता जो समदर्शी और धारमवेत्ता होने का उपदेश दिया गया है, वह केवल ग्रन्थ में पढ़ लेने प्रथवा पढ़ा सुन लेने मात्र की वस्तु नहीं है वरन् उसके अनुसार सदैव आचरण करने—उन सिद्धियों के अनुसार हमेशा व्यवहार करने से ही मनुष्य को मानव

केवल ज्ञान का नाम ब्रह्मे रक्षा चाहिये और सांनतिक श्रुतियों की उपासना कर देनी चाहिये । इनके विरोध 'कल्कि' ने यही उद्देश्य दिया है कि मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म और ईश्वर को प्रसन्न करने का उपाय आत्मनः से अन्वय और पाप कर्मों का विरोध करना उनको नष्ट करने के लिए ब्रह्मना ही है । इनका एक बहुत बड़ा उदाहरण राधा 'देवायि' और 'मह' के साथ हुआ अयोध्या का युद्ध है । वे लोग बहुत बड़ों से ज्ञान की प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहे थे । जब अनेक ऋषि-मुनियों के साथ वे 'कल्कि' के कर्मों में आये तो उनका दर्शन करके उन्होंने अपने ज्ञान को सत्य समझ लिया । उनको मक्ति-मार्ग द्वारा ज्ञान की उपासना करते हुए बहुत अधिक समय हो गया था और अब उनका यह उद्देश्य पूरा भी हो चुका था, इसलिए उन्होंने कल्कि जी के पूछने पर यही कहा—

मरणाग्नेन मुनिभिरेभिः प्राप्य पदाम्बुजम् ।

तव कालं करात्तात्प्राद्या स्मृतात्मवर्ता पदम् ॥

देवायि ने कहा— मैंने सब और इन समस्त मुनियों के साथ आपके परम कर्मों के दर्शन प्राप्त कर लिये हैं । इसलिये हमारा विश्वास है कि अब हमको काल के काल गात्र में—मह-अग्नि में नहीं गिरना पड़ेगा और हमको आत्मवेत्ता-ब्रह्मज्ञानियों का पद प्राप्त हो जायगा ।”

इन प्रकार 'देवायि' और 'मह' ने भक्तों की परम्परानुसार ज्ञान से जीवन मुक्ति और वैकुण्ठ की प्राप्ति का 'वरदान' ही माँगा । उनका आशय यही था कि हम अनेक बड़ों से ज्ञान का अनुग्रह प्राप्त करने के निमित्त उपन्यस्य कर रहे थे । अब आपका साक्षात्कार हो जाने से इन श्रुतियों को पढ़े और अब आप हमको अपने लोक में स्थान दीजिए ।

गुरुन्हृत्वा हि महानुभावान् श्रेयोभोक्तुं भेदयमपीह लोके ।

प्रपत्ति "इन गुरुओं से साथ संग्राम करके उनकी हिंसा करने की प्रेरणा तो भिक्षुक बन कर जीवन निर्वाह करना ही अच्छा है।" पर भगवान् कृष्ण ने इस भावना को गहिरा मोर कर्तव्य विमुरता की छोनक बतला कर कहा—“वलंध्य मास्म गमः पार्थ नैषत्वभ्युप-पद्यते ।” हे अर्जुन ! इस प्रकार कर्तव्य से भागना तुमको शोभा नहीं देता । परम, भक्ति या ज्ञान का यह तात्पर्य नहीं कि लकट के समय, कठिनाई या हानि लाभ की घातकता से कर्तव्य पालन से हटने की चेष्टा की जाय । वह भक्ति झूठी है जो मनुष्य को निष्क्रियता की ओर ढकेलती है । इसके विपरीत सच्ची भक्ति का मसख तो यह होना चाहिये कि अब स्वयं भगवान् हमारा रक्षक है और हम प्रत्येक कार्य वगी के इत्तति (इशारे) पर करते हैं तो हमको भय किस बात का ? 'गीता' में भगवान् ने स्वयं स्पष्ट कर दिया है —

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति

धाममन् सर्वभूतानि यन्प्राह्णानिमायणाय ।

तमेव शरणं गच्छ्या सर्वभावेन भारत ।

तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्वान् प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥

(अ० १८-६१, ६२)

“हे अर्जुन ! मनुष्य के शरीर रूप यन्त्र में पाहव होकर पन्तुर्षामी परमेश्वर सब प्राणियों को अपनी माया के द्वारा धमिस करता है, नचाता रहता है । इस लिए जो मनुष्य सब प्रकार से मन्मथ भाव से उस परमेश्वर की शरण में जाता है वह उसकी कृपा से लक्ष्मी शांति और स्थिरता को प्राप्त होता है ।”

सच्चे भक्त की स्थिति—मानसिक-भावना ऐसी ही होती है । यह अच्छी तरह समझता है कि इस सवार में किसी एक भक्ति की, चाहे वह भौतिक दृष्टि से कितना भी बड़ा और शक्तिशाली क्यों न

नाम पर दूसरों के द्वार भारतस्वरूप बन जाय । वरन् के प्रति और में पूरी तरह समन्वय रखने को ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग बतलाते हैं । वे कहते हैं कि न तो संसार के माया-भोग में, सोभ-लान्ध में इतने निश्चल हो जाओ कि तुमको धारणा का भी स्वास न रहे और धन, अधिकार को खातिर धारणा का पतन करने वाले कार्य करने लग जाओ, और न जप-तप, भजन-उपासना में ही इस तरह लीन हो जाओ कि जीवन-निर्वाह के साधनों के लिए भी तुमको दूसरों का मुस तकना पड़े । बुद्धिमान का मक्षल यही है कि धर्म और कर्म दोनों को अपनी परिस्थिति के अनुसार संभालता रहे और सबका सुरपार उसी भगवान को समर्प कर जैसी भी स्थिति आ जाय उसमें शान्त और निर्भय बना रहे ।

इस सिद्धान्त की दृष्टि से 'कल्कि-पुराण' में वर्णित राजा शशिध्वज का उपाख्यान निस्सन्देह बहुत अधिक प्रेरणाप्रद है । वह भगवान का दूत भवन था और कल्कि जी को भगवान का अवतार भी मानता था । पर जब वे दिग्विजय करते हुए उसके राज्य में पहुँचे तो उसने एक सत्रिय और राज्य का रक्षक होने की हैसियत से युद्ध करने में जरा भी मानाफानी नहीं की । यद्यपि उसकी रानी ने यह पूछा की कि "कल्कि जी तो विष्णु के अवतार हैं और हम विष्णु भगवान के उपासक 'वंशीय' हैं । ऐसी दशा में भाप उनके ऊपर शस्त्र-शहार कैसे करोगे ?"

पर राजा शशिध्वज का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में सर्वत्र बहुत स्पष्ट रहा । उसने यही कहा कि "जब कल्कि जी मानव रूप में नर-सीसा करते हुए हमारे सम्मुख प्राक्रमणकारी के रूप में उपस्थित हुए हैं तो हमको भी अपने धर्म-वर्तुल्य का पालन करते हुए पूरी शक्ति से उनका सामना करना चाहिये । चाहे हम हृदय में कभी उनके प्रति अनु-भाव नहीं रख सकते, पर इस कारण अपने लौकिक कर्तव्य-पालन से पीछे हटना कदापि उचित नहीं ।"

नौवाँ अध्याय

‘कल्कि-पुराण’ का माया वर्णन

भारतीय इतिहास, पुराण और अन्य धर्मग्रन्थों में संसारी जीवों को भ्रमिष्ठ करने वाली माया का वर्णन प्रदत्त पाया जाता है। हमारे मध्यम-शास्त्र में जीव को परमात्मा का पद और गुड-बुद माना गया है। पर वही जीव इस संसार में आकर, विशेषतः सर्वश्रेष्ठ कही जाने वाली मनुष्य-योनि को पाकर धन, सम्पत्ति, परिवार की माया में ऐसा विलस हो जाता है कि अपने मूल स्वरूप को बिल्कुल भूल जाता है, और ऐसे-ऐसे कर्म करने लगता है जिनकी पूर्वा करना भी उचित नहीं। इस अवस्था को देख कर घनेक लोग पूछा करते हैं कि परमात्मा का भ्रम होने पर भी जीव को ऐसी दुर्दशा, इतना पछन क्यों हुआ करता है ?

प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रज्ञों ने इसका कारण ‘माया’ को ही बताया है। उनके कथनानुसार ‘माया’ ने ईश्वर तथा जीव के बीच एक ऐसा पर्दा डाल रखा है जिससे वह अपने चैतन्य तथा गुड रूप को भूल कर सांसारिक प्रपञ्चों में विलस होकर पछन की परिस्थितियों में पड़े जाता है।

‘कल्कि-पुराण’ में माया का वर्णन प्रकृत भुक्ति के उपायान के रूप में किया गया है। जिस समय सिंहलद्वीप में राजकुमारी पद्मा के साथ ‘कल्कि’ का विवाह हो रहा था उसी अवसर के रात्र-कथा में पा

सूत्रों के आकाशवाणी के अनुसार उनको 'कलिक' के दर्शन करते सुक्ति-
नाथ कहते हैं। कलिक जी ने उनसे कहा—

कृत दासं त्वया ज्ञानं तर्षं याद्यु निवर्तकम् ।

अदृष्टं सकुसुमं त्विति श्रुत्वा ह्युपमनः मुनिः ॥

परार्थ—“हमारे किये हुए सपत्त कर्मों को तुमने देखा है
मोर ने तुमको सब साह है। अदृष्ट (कर्मों) का कारण कोई नहीं कर
सकता मोर दिना तर्षं किये किमी का उदक फन की प्राप्ति की नहीं
होती। यह सुन कर मनस्य मुनि बहुत क्रोध हुए।”

मनस्य मुनि ने बताया कि “मैं जन्म के समय कमीर (सपुंसक)
पैदा हुआ। इस पर मेरे पिता ने शिवजी को प्राराधना करके उदके
पर शश करके मुझे पुंसस्वर प्रदाय कराया। पिता के देहान्त होने पर
मैं बहुत दुःखों दुःख मोर दिव्यतु मन्त्रान की प्राराधना करते बना।
अन्तर्नि मेरी कलिक से समुद्र होकर स्वर्ग में चला ये कहा—

“इस संसार में स्नेह, ममता भावों की भावना हमारी भाषा
है। ‘वह हमारे पिता हैं, वह हमारी माता हैं’ ऐसी ममता से जिनका
मन भाग्युन होता है, वह मेरी भाषा द्वारा लोक, दुःख, चम, उदोग,
भरा, मृत्यु भादि का कर्मस्य अनुभव किया करता है। ममता की
भाषा की बोलने की भावना से मैं पुण्योत्सव लोक में भाषण बनाने
रहने काग मोर अपनी सद्गति के विचार से मन्त्रान की उन्नतता,
स्वात, अत भादि में प्रथिकर्षण समक भागने लगा। एक दिव मैं क्षण-
भान्तर्को कलिक उदकी का पारल्लय करने के विद् क्षण्ड में स्थान बनने
ग। तो सर्वकर सद्गति में प्रैस कर हुए तब बड़ गया। कलिक विना
में सद्गो हुए आकर किन्ही बना। कद्दी एक उदहम्य मे मेरी रत्न क
मोद कुछ समय तक मुझे प्रपने पर मैं एक कर मन्त्री कलिक का
विवाह कृपते कर दिया। तब स्वर्ग में भी बहुत सौं तब निवात

करके मैं एक प्रसिद्ध धनी-मानो बन गया और मेरे पाँच पुत्र हो गये जिनमे से बड़े पुत्र का विवाह मैं घूमघाम के साथ करने लगा। इस उप-सह्य मे मैं फिर समुद्र मे स्नान करने गया, तो उसमे से बाहर निकलने पर मुझे फिर अपने सब पुराने बन्धु बान्धव दिखाई पड़े जो स्नान करके हादशो का पीरला करने को तैयारी कर रहे थे। उन्होने मुझमे कहा—
“मनन्त ! तुम ऐसे व्याकुल क्यों दिखाई पड़ रहे हो। क्या तुमने जल के भीतर या स्थल मे कोई पारवर्त्यजनक प्रसंग देखा है ?”

मनन्त ने कहा—मैं कुछ कह नहीं सकता। मुझे श्री भगवान की माया ने विमूढ कर दिया है, जिससे मेरी इन्द्रियाँ व्याकुल हो रही हैं।” अब मैं अपने पुराने स्त्री-पुत्रों को सामने खड़ा देख रहा था और उधर मुझे अपनी नई भावों, उसके पाँच पुत्रों और बड़े पुत्र के विवाह की चिन्ता सता रही थी। इस प्रकार मुझे पाताल के समान अथाक् खड़ा देस कर मेरी स्त्री घबडा गई और कहने लगी—
‘देखो, इनकी क्या हो गया ?’

उसी समय वहाँ एक तेजस्वी परमहंस आ गये। उन्होने मुझ से कहा—‘हे मनन्त ! तुम्हारी चाकमती नाम की स्त्री, कुछ पादि पाँच पुत्र तथा घटा-घटारियों से सुशोभित अष्टमं गृह, धन-अच्छार सब वहाँ गया ? वहाँ तुम कैसे आ गये ? मात्र तो तुम्हारे पुत्र का विवाह था और उसमे हमको भी निमन्त्रण दिया गया था ? पर वहाँ तो तुम सत्तर वर्ष के बृद्ध दिखाई पड़ते थे और इस समय पञ्चीस तीस के युवक जान पड़ रहे हो ? और पास में तुम्हारी सुवती पत्नी भी खड़ी है ? यह क्या रहस्य है ? क्या तुम वही मनन्त हो अथवा अन्य कोई हो ? मैं भी क्या वही भिक्षुक है अथवा अन्य कोई है ? हमारा तुम्हारा इस स्थान पर मिलना इन्द्र ज्ञान के समान जान पड़ता है। तुम स्वधर्म-निष्ठ सम्मानोय गृहस्थ हो और मैं परमार्थ चिन्ता में तत्पर ब्राह्मण हूँ। पर इन सब लोगों के समक्ष हमारी बाँटे जानको अथवा उम्मतों के

समान असङ्गत (वे सिर पैर की) जान पड़ती हैं । हे अहम् ! मूझे जान पड़ता है कि यह जगदीश्वर विष्णु की माया ही है । इससे ही त्रिलोकी के प्राणी मोहित हुए रहते हैं ।”

पाठको को भी यह अर्थान असङ्गत-सा ही जान पड़ेगा कि कोई व्यक्ति एक ही घण्टे के भीतर सत्तर वर्ष का वृद्ध और पच्चीस वर्ष का युवक कैसे दिखाई पड़ सकता है ? साथ ही जितनी देर में मनस्त के पुष्पोत्तम क्षेत्र निवासी बन्धु-बान्धव स्नान करके द्वादशी के पारणो की तैयारी हो कर रहे थे, उतने ही समय में उसने नई स्त्री से विवाह, पाँच पुत्रों का जन्म और बड़े पुत्र के विवाह की तैयारियों की घटनाएँ एक स्वप्न की तरह कैसे देख लीं ? वास्तव में हम उपनिषद्वादी से लेखक का आशय यही है कि इस संसार में हम जो कुछ देखते, सुनते और करते हैं यह माया का एक खेल ही है । उनमें बहुत अधिक वास्तविकता मानना भ्रम है । यह दृश्य क्षण भर में किसी दूसरे रूप में बदल सकता है । इसलिए मनुष्य को सांसारिक व्यवहार करते समय अनिश्चयता और अस्थिरता की भावना सर्वदा, ध्यान में रखनी चाहिए और संसार के प्रपञ्चों में इतना अधिक लित कभी नहीं हो जाना चाहिये कि जिससे जीवन के अक्षय लक्ष्य परमार्थ और परलोक-सुधार में बाधा पड़ जाय ।

ज्ञानी मनुष्य वही कहा जा सकता है जो दुनिया में रह कर और उसके समस्त व्यवहारों को करता हुआ भी वहाँ की माया के फन्दे में न फँसे और अपने को इस 'मात्री-निवास' में एक यात्री की तरह ही समझता रहे, जहाँ से न मासूम कब उठ कर चला जाना पड़ेगा । इसी भाव की प्रकट करने के लिये पुराणकार ने कहा है—

मायया मायया जीव-पुरुषः परमात्मनः ।

संसार शरण व्यस्री न वेदात्मर्गाति चवचित् ॥

अर्थात्—“परमात्मा की माया द्वारा सब प्रकार से ठके-बंधे रहने से यह प्राणी संसार के प्रबन्धों में लिप्त रहता है और अपने उदार का कुछ भी उपाय नहीं सोच पाता ।”

अनेक व्यक्ति इस माया को जीतने के लिए कठोर तपस्या का प्रवचन करते हैं । वे सब प्रकार के भोगों को त्याग कर इन्द्रियों का दमन करने का प्रयत्न करते हैं । पर इस प्रकार का अधरण तपयोगी नहीं होता । जो लोग इस मार्ग पर बहुत कठोरता के साथ चलते हैं प्रायः उनके शरीर का शव हो जाता है । तब या तो उनकी मृत्यु हो जाती है, जो एक प्रकार की आत्महत्या के सदृश होती है, अथवा वे लडवपु बन कर निकम्मा जीवन बिताते हैं । अनेक पौराणिक कथनों में ऐसी तपस्याओं का वर्णन किया गया है जिनमें तपस्वी व्यक्ति का शरीर सूख कर लकड़ी ही गया, उनके शरीर पर मिट्टी जम गई और केवल साँस चलना ही जीवन का एक मात्र किन्हा शेष रह गया । यदि इन बातों को सत्य ही मान लिया जाय, और हम जानते हैं कि प्राचीन समय में कुछ ‘ज्ञान मार्गों’ सम्प्रदायों और भवभूत धारि धर्मों के संन्यासियों में ऐसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया था, तो भी हमारे उन तपस्वियों का अथवा संसार का कुछ हित हुआ हो, ऐसा विदित नहीं होता ।

प्राज्ञ भी उक्त प्राचीन परम्परा का अनुसरण करके कुछ लोग धरम तक त्याग कर सिद्धकुम नमन रहने लगते हैं, कठोर ज्ञान और शरीर को झुनका देने वाली गर्मी को सहन करते हैं, गर्मी में जलती हुई शानू या पत्थरों पर लड़े रह कर प्रा करते हैं और जाड़े में ठण्डे जल में लड़े होकर ध्यान लगाते हैं, पर उनमें भी माया, मोह, अहङ्कार, क्रोध आदि की मनोवृत्तियाँ बनी ही रहती हैं । इस दृष्टि से ऐसी तपस्या आत्मोन्नति के लिए अकार ही सिद्ध होती है और उससे मनुष्य परमात्मा का साक्षात् प्राप्त नहीं कर सकता । इन तप्य का समर्थन करते हुए राज-सभा में उपस्थित राजाओं में अमन्त मुनि ने कहा—

पते ! हरिमक्ति से ही जीवकोष का इमन होया और भगवान का साभिष्य प्राप्त करके तुम कृतार्थ हो सकोये ।”

पुराणकर्ता ने इस उपास्यान द्वारा स्पष्ट रूप से कठोर शर्तों और शरीर को सुखा देने वाली तपस्या के स्थान पर भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन किया है जैसा कि उसने इसके अन्त में भलद्वारमयी रचना द्वारा व्यक्त किया है —

संसारबन्धि विलासलालसमन्तिः श्री विष्णुसेवादरो ।

भवत्याजमिदं स्वभेद-रहित निर्माय घमरिम्ना ।

ज्ञानोत्सास-निघात-खड्गमुदितः सद्भक्ति दुर्गाश्रयः ।

पट्ध्वर्ग जयतादशेष जगतामात्म स्थितं वंष्णवः ॥

अर्थात्—'जो घमरिमा वंष्णव विष्णु सेवा परायण होने पर भी विलास-कामना से संसार में घासवत् रहते हैं, वे इस उपास्यान द्वारा भेद ज्ञान-रूप उत्तमवित्त शोषण खड्ग को धारण कर मन्त्रि रूप दुर्ग के आश्रय से शरीर स्थित राग, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य इन छ पात्रुघो को पराजित करें ।

कठोरता पूर्ण ज्ञान मार्ग और भक्ति मार्ग का यह विवाद बहुत पुराना है और हम इसका उल्लेख मात्र से दार्द हज़ार वर्ष पूर्व होने वाले भगवान बुद्ध के चरित्र में स्पष्ट रूप से पाते हैं । उन्होंने पारम्भ में आत्मज्ञान प्राप्त करने के उद्देश्य से कठोर तपस्या का ही सहारा लिया था और ज्ञान-दान का पर्यन्त फड़ा संघम करके शरीर को अशक्त बना डाला था । पर इससे भी जब किसी प्रकार की आरमोर्गन के बिन्दु दृष्टिगोचर हुए तब उन्होंने समझा कि शरीर तो एक पात्र के समान है जिसमें संघासक मन, बुद्धि आदि हैं । इसलिए जब तक ज्ञान और भक्ति के समन्वय द्वारा मन की संघट और आशाकारी न बनाया जायता तब तक इहलौकिक और पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति होना असम्भव है । इसके बाद उन्होंने अज्ञत में रहकर तपस्या करने की

प्रज्ञानी को श्याम्य मान लिया और लोकात्म्य में रह कर उद्धान और सत्कर्म द्वारा अपना और दूसरों का उपकार करने को ही आत्मोद्धार का मार्ग स्वीकार किया ।

इस अनन्त उपास्यान में भी 'कल्कि' ने अनन्त मुनि को यही उपदेश दिया है कि 'बिना कर्म किये किसी को उसके कर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती ।' अगर तुम मोक्ष के प्रमितापी हो तो उसके लिए भी तुमको कर्म द्वारा ही उसके योग्य बनना पड़ेगा । हाँ, यह आवश्यक है कि उन वर्षों में तुम आसक्त मत बनी, कर्म को भ्रष्टा त्याग कर केवल कर्तव्य भाव से उन्हें करो रहो । इस प्रकार अनन्त कर्म योग का साधन ज्ञान और भक्ति के समन्वय से ही उत्तमता पूर्वक हो सकता है और 'गीता' में भगवान कृष्ण ने इसी का उपदेश दिया है । 'कल्कि पुराण' ने भी उसी सिद्धान्त को अनन्त मुनि की कथा के रूप में प्रकट किया है और इसका आहात्म्य बतलाते हुए कहा है—

अनन्तस्य कथामेतामज्ञान ध्वान्त नाशिनोम् ।

मायानियन्त्री प्रपठञ्छुष्वन्बन्धाद्विमुच्यते ॥

अर्थात्—'अनन्त की इस कथा के पाठ करने तथा सुनने से संसार की मर्षा छूट जाती है, अज्ञान रूप बंधकार दूर होता है और बंधन से मुक्ति प्राप्त होती है ।'

'भागवत' का पुरञ्जन-उपास्यान्—

जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं माया के बन्धनों और उससे छुटकारा पाने के विषय में सभी पुराणकारों ने विचार किया है, क्योंकि यह प्रप्यात्म-मार्ग की एक मुख्य समस्या है । अध्यात्म केवल कहने सुनने की चीज नहीं है परन्तु उसका असली उद्देश्य साधारण माया-मोह से ऊपर उठकर कर्तव्य-भावना से जीवन के कर्तव्यों का पालन करना ही

है। ऐसा होने पर ही मनुष्य को कर्मकाण्ड, धारमज्ञान अथवा अर्द्धत ज्ञान होना सम्भव होता है। 'भागवत' का पुरञ्जन उपास्थान भी इसी अर्थ-प्राय से कहा गया है। उसमें कर्मकाण्ड को ही विशेषता देने वाले प्राचीन 'बर्हि' नामक राजा को नारद जी द्वारा ज्ञान-मार्ग का उपदेश दिया गया। नारदजी ने उसे पुरञ्जन नामक राजा का एक उपास्थान सुनाया जो स सार की माया में अत्यधिक अस्त होने के कारण बहुत अधिक दुःखों का भागी बना और अन्त में मगधान् की कृपा से ही उस दुःखस्था से छुटकारा पाने में समर्थ हुआ।

'राजा पुरञ्जन अमस्त स सार में घूमते हुए अपने निवास योग्य स्थान ढूँढ रहा था। अन्त में उसे एक ऐसा नगर मिला जिसमें नौ द्वार थे और जो सब ओर से परकोटों, बगीचों, भटारियों, झरोखों और रात्रद्वारों से सुशोभित था। वहाँ एक सुन्दरी कन्या भी दिखलाई दे गई जिसके अनुपम सौन्दर्य ने उसे शीघ्र ही स्ववश कर लिया। अब, वह राजा उस कन्या को पत्नी रूप में ग्रहण करके ती वर्ष तक उसी पुरी में निवास करता रहा। वह स्त्री और पुत्रों के कारण होने वाले मोह, प्रसन्नता एवं हर्ष आदि विकारों का सदैव अनुभव करता रहा, उसका चित्त तरह-तरह के कर्मों में फँसा हुआ था और काम परवश होने के कारण वह मूढ़ रमणी द्वारा ठगा गया था। उसकी पत्नी जो-जो काम करती थी, वही वह भी करने लगता था। जब वह मद्यपान करती तब वह भी मदिरा पीकर अन्मत्स हो जाता, जब भोजन करती तब प्राण भी भोजन करने लगता, और जब क्रुद्ध नद ती तब प्राण भी बढ़ी अस्तु खाने लगता था। इसी प्रकार उसके गाने पर गाने लगता, हँसने पर हँसने लगता, बोलने पर बोलने लगता।

'इस प्रकार कामातुर चित्त से उसके साथ बिहार करते-करते राजा पुरञ्जन की मुद्रावस्था प्राये क्षण के समान बंध गई। उस पुरञ्जनी से राजा पुरञ्जन की अनेक संतानें हुईं। इतने में उसकी प्रायः

वह सब देखकर पुरजन मगार चिन्ता में डूब गया और उसे विपत्ति से छुटकारा पाने का कोई उपाय न दिखाई दिया । वह अपनी देह, परिवार में 'मैं और मेरा' का भाव रखने से अत्यन्त बुद्धिहीन और दीन हो गया था । जब जब इनसे बिबुधने का समय आया तब वह अपने पुत्र, पुत्री, पौत्र, पुत्र-वधु, दामाद, नोकर पर आदि सबके लिए घरी चिन्ता करने लगा कि 'मेरे पदचार्इ इन सबका क्या होगा ?' वह इसके लिए बहुत शोक करने लगा, पर उसका कुछ बल न बल सहा और उसी समय यवन राज स्वयं आकर उसको बांध कर ले गया ।'

'यद्यपि राजा पुरजन की आसक्ति अन्त समय तक अपनी स्त्री में रही थी, इसलिए उसने मागामी जन्म में विदर्भराज के यही कन्या के रूप में जन्म लिया । दुखती होकर उसका वैदर्भी का महाराज मनप-केतु के साथ विवाह कर दिया गया । जब उनके पुत्र और पुत्रियों को उत्पन्न करके महाराज मनपकेतु तपस्या हेतु वन को चले तो उनकी स्त्री भी साथ आकर वहाँ भी उनकी सेवा करती रही । पर धातु पूरी हो जाने पर मनपकेतु का देहाश्रु हो गया तो वह वायव्य शोक करने लगी और एक दिन बनाकर स्वयं भी उनके साथ जलने को प्रस्तुत हो गई । उस समय पुरजन का एक मात्र पुराना मित्र 'मन्दिशत' ब्राह्मण वेश में यही आया और उसने शोक करती वैदर्भी से कहा—

'तू कोन है ?' किसकी पुत्री है ? जिसके लिए तू शोक कर रही है, वह सेटा हुआ पुरुष कोन है ? क्या तू मुझे नहीं जानती ? मैं यही ठेप मित्र हूँ जिसके साथ पहले तू विचारा करती थी । सचें । क्या तुम्हें यह याद नहीं आता कि किसी समय मैं तुम्हारा 'मन्दिशत' नाम बना ससा था ? सुन पृथ्वी के भोग भोगने के लिए निवासस्थान की शोच में मुझे छोड़कर चले गये थे । धर्म । पहले मैं और तुम एक दूसरे के मित्र और मातसरोवर निवासी हूँ सचें और उहसीं क्यों एक बिना स्थान के हो रहे थे । किन्तु मित्र । विषय भोगों की इच्छा से

'विष्णु-पुराण' का जड़नरत उपाख्यान—

दौराणिक कथाओं के अनुसार षोडीस पर्वतारों में से पार्वे क्षवत्तार माने जाने वाले श्यमदेव के पुत्र राजपि भरत बड़े योगी और ज्ञानी थे। वे अपना राज्य पुत्रों को देकर तपस्या हेतु वन में निवास करने लगे थे और बहुत वर्षों तक उन्होंने तपस्या और ध्यात्म ध्यान किया था। पर फिर भी एक हिरन के बच्चे की माया में पड़ जाते थे उनको ब्रह्मन् में पड़ना पड़ा। इसकी जो कथा 'विष्णु-पुराण' में श्री पराशर ऋषि ने वर्णन की है उसका सारांश इस प्रकार है—

'राजा भरत ने भगवान का ध्यान करते हुए बिरकाल तक पालकाम क्षेत्र में निवास किया था। गुणियो में श्रेष्ठ उन भरत ने ऋषिवादि गुणों के पालन पूर्वक, मन की सयम में रखकर परम श्रेष्ठता प्राप्त की। वह मामूक्ति रहित योगी और तपस्वी राजा प्रभु पूजन के निमित्त सविधा, पुष्प और कुशा मात्र एकत्र करते और इसके प्रति-रिक्त प्राय कोई कर्म नहीं करते थे। एक दिन उन्होंने नदी पर स्नान करते समय एक हरिणों को वन पीने देखा। वह उस समय पातल प्रसवा थी। उस समय ब्रह्मन् में से निहताद का भयङ्कर शब्द आया। ब्रह्मन् ऊँचे स्थान तक उछलने के कारण उसके पन का बच्चा निकल कर नदी में गिर पड़ा और हिरनी भी पृथिवी पर गिर कर मर गई। वह दृश्य देख राजपि भरत को बड़ी कष्टता हुई और वे उस मृग सावक को अपने माध्यम में लाकर पातल-पोषण करने लगे। जब वह कुछ बड़ा हो गया तो घरेले-घरेले ब्रह्मन् में भी गया जाता। भरत से भी वह बड़ा प्रेम रखता था और भरत को भी उस प्रसवार्थ को देखकर उसके हार्दिक स्नेह उत्पन्न हो गया था। इसलिए जब कभी उसे ब्रह्मन् से लौटने में देर होती तो वे उसके लिए चिन्तित होने लगते कि उसे कोई भेदिया या विहृषा न गया हो।

कहा—‘भरे यह क्या करते हो ? इस प्रकार दिग्गम नाव से क्यों चल रहे हो ?’ राजा द्वारा बार-बार टोके जाने पर अश्विनों ने कहा—‘हम में से यह एक व्यक्ति बहुत मन्द गति से चलता है । इसी कारण गति में समानता नहीं आती ।’ राजा ने कहा—‘भरे, तूने तो अभी पालकी को बहुत थोड़ी दूर ही डोया है, क्या इतने में ही एक गया ? देखने में तो तू इतना मोटा-ताजा है, फिर क्या तू इतना परिश्रम भी नहीं कर सकता ?’ जहमरथ ने कहा—“राजन् । मैं न तो मोटा-ताजा हूँ और न मैंने आपको पालकी ही उठाई हुई है, न मैं पला हूँ और न मुझे परिश्रम ही करना पड़ रहा है ।” राजा ने कहा—‘भरे, तू तो प्रयत्न ही थोटा-ताजा दिखाई पड़ रहा है, इस समय भी यह पालकी तेरे कंधे पर रखी है और भार बहुत करने से परिश्रम भी होता ही है ।’

जहमरथ ने कहा—“राजन् । तुम प्रयत्न क्या देख रहे हो ? यही मुझे बताओ । तुम्हारा यह कहना बिल्कुल ठीक नहीं कि पालकी मेरे कंधे पर रखी है । अब इस सम्बन्ध में मेरा मत सुनो । पृथ्वी पर दोनो पाँव, पाँवों पर जायें, जायों पर ऊर और ऊर पर उदर स्थित है । उदर पर वक्षःस्थल, बाहु और कंधे हैं और उन कंधों पर यह पालकी रखी है, तो इसका भार मेरे ऊपर कहाँ है ? इस पालकी में तुम्हारा बताया जाने वाला देह रखा है । यथाथं मैं तो तुम वहाँ ही और मैं यहाँ हूँ ।

‘हे राजन् । तुम या अन्वय्य सब प्राणी पञ्चभूतों द्वारा ही बहून किये जाते हैं और यह भूत-वर्ग भी गुणों के द्वारा प्रवाहित हो रहा है । यह अस्वादि तीनों गुण कर्मों के अयोग हैं और कर्मों की उत्पत्ति अविद्या अथवा माया से होती है । परन्तु आत्मा तो, जिसे ‘मैं’ कहा जाता है, बुद्ध, भक्तर, शान्त, सुखरहित तथा प्रकृति से परे है, तथा सब प्राणियों में एक ही अस्व मोक्ष-मोक्ष है, इसलिए उसकी न कमी घृष्टि है और न दाय है । अब तुम किस आधार पर कह सकते हो कि

का भी ध्यान रखना चाहिए । परोपकार एक साधन ही है, उसे साध्य नहीं बना लेना चाहिए ।

'कल्कि पुराण' का माया-स्तव—

पर माया भलो घोर घुरी दोनों तरह की होती है । जहाँ यह विषय-विकारों में फँसाकर मनुष्य को पतनोन्मुख करती है, वहीं उसके प्रभाव से तरह-तरह के धर्म कार्य करके अनेक जीवों के माय उपकार किया जा सकता है और उसके फलस्वरूप स्वयं भी उच्च गति को प्राप्त कर सकता है । वास्तव में भला-बुरा मनुष्य स्वयं होता है, माया तो उसके लिए एक निमित्त बन जाती है । यदि धन के सम्बन्ध में ही विचार करें तो मालूम होता है कि अनेक अविद्वित उसे पाकर तरह-तरह के विकारों में ग्रस्त हो आते हैं, अपने घोर दूसरों के पतन का कारण बनते हैं । पर अन्त अविद्वित धन से बहुत से सत्कर्म करते हैं और अपने को तथा अन्य बहुत से जीवों को सुख पहुँचाते हैं । इसलिए धन को पुरा या भला कहना ठीक नहीं, उसका सदुपयोग या दुरुपयोग मनुष्य की मनोवृत्ति पर निर्भर है ।

यही विचार करके 'कल्कि पुराण' के लेखक ने यद्यपि भारम्भ में 'माया' की तुलना वेद्या से की है, पर अन्त में उसे एक देवी विभूति ही बतलाया है और उसके द्वारा संसार के कल्याण का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है । इसमें राजा शशिध्वज द्वारा एक माया-स्तव कहलाया है । जिसमें माया के लोचि स्वरूप की कल्पना की गई है और उसे उसके लिए हितकारी कहा है—

'शशिध्वज ने कहा—हे माया । तুম शुद्ध सशक्तमयी, विमुक्तस्पर्शी एव प्रह्ला, विष्णु, शिव की ओ माता हो । वेद में तुम्हारी ही महिमा प्रतिपादित हुई है । तुम्हारी शक्ति में भूतगण और पञ्च-तन्मात्रा स्थिति है । देव, पद्मवं, सिद्ध और विद्याधर-गण तुम्हारी

बन्दना करते हैं। तुम लोक से परे हो, तुम्हारे स्वरूप में द्वैत-भाव लगाया गया है। व्यास भादि मुनिगण तुम्हारी बन्दना करते हैं। विष्णुजी तुम्हारा स्तव सङ्गीत गान करते हैं। तुम ही कलि रूपी रामुद्र की कल्लोन में सहरावी हो, जिससे ममस्त प्राणी मौषाटिक प्रपञ्च में पद जाते हैं सृष्टि के भादि, मध्य और अन्त में तुम ही विराजमान हो। तुम सब प्राणियों को साध्य प्रदान करती हो। ईश पपवा पूर्ण भाद से उपासना करने पर तुमको प्राप्त किया जा सकता है। तुम देवता, त्रिर्यक और मनुष्य जाति में अनेक प्रकार से विभिन्न प्रकार से विभक्त हो रही हो। तुम सारे ससार को साधार हो। तुम ब्रह्म स्वरूपिणी हो। तुम्हारे प्रभाव से ही विजयत भूतमन्त्रक करके प्रकाशित हो रहा है। तुम्हारे प्रकाश के बिना काल, देव, कर्म उपाधि भादि विधाता का नियत किया हुआ कोई भाव प्रकाशित नहीं होता। तुम उसी प्रभा से प्रभावती हो रही हो।”

माया वास्तव में प्रकृति का ही एक नाम है। उस रूप में माया ही इन संसार का मूल है परमात्मा ही अपने मूल स्वरूप में पूर्णतः निस्पृह है। उसे जगत की रचना भवना उसके कल्याण-अकल्याण से कोई प्रयोजन नहीं। संसार की उत्पत्ति, रचना और सञ्चालन माया द्वारा ही सम्भव होता है। काल, देव, कर्म भादि ही वे कारण हैं जिनसे यह ससार स्थित जान पड़ता है, भागे बढ़ता रहता है और तरह-तरह के दृश्य लपटिपट करता है।

माया का मूल रूप शुद्ध और कल्याणकारी ही है, पर जब धीवात्मा विषयासक्त हो जाता है तब 'माया' उसके लिए पतनकारी बन जाती है। माया ही अग्नि, जल, वायु भादि असी शक्तियों की तरह है, जिनसे मनुष्य का जीवन कायम है और समस्त व्यवहार सम्भव हो रहे हैं, पर इन्हीं को अनेक लोग नाशकारी लक्ष्मियों के लिए भी प्रयुक्त करते रहते हैं। अग्नि लपटाकर किसी के घर को अस्मसार किया

जा सकता है, जल में डूबेन कर मारा जा सकता है वायु को रोक कर प्राणान्त किया जा सकता है। इसी प्रकार माया का प्रयत्न घोर बुरा दोनों प्रकार का प्रभाव होता है, जिसे लोग अपनी शक्ति के अनुसार ग्रहण करते हैं। विपदासक्त सौन्दर्य का अनुभव वेश्याओं के कुटिल हावभावों से करता है और पवित्र भाव वाला जपका दिः दर्शन अपनी सती-न्यायवी धर्म-वली के प्रेमपूर्ण हाव-भाव में करता है। एक माता अपने पुत्र को स्वर्गीय स्नेह प्रदान करके जपका हर तरह से बहाल करती है और अनेक विरोधी भाव रखने वाली महि सायें या पुष्प झूठा स्नेह प्रकट करके किसी सम्बन्धी या सर्वस्व अग्रहण कर लेने भी संकोच नहीं करते।

इसीलिए पुराणकार ने माया को स्वर्गीय और नारकीय दोनों रूपों में बतलाया है। प्रागे धरकर उनके सर्वधारी विविध रूपों का वर्णन करते हुए 'माया-स्तव' में कहा गया है

'तुम विद्याप्राप्त रूप से भूमि में रज्य, जल में रस, तेज में रूप पवन में स्पन्द और वाकाय में वाग्—इस प्रकार अनेक रूपों से विराजमान होकर सुचार में प्रवेष्ट कर रही हो, अणुव अणु विश्वरूपिणी हो। तुम ब्रह्म रूपिणी सावित्री हो, भ्रूवधर की भवानी हो, नारायण की लक्ष्मी हो, इन्द्र की इन्द्राणी हो। हे माया ! समस्त गणन में तुम इसी प्रकार भावमान हो रही हो। तुम्हीं स्त्रियों को दोषभावस्था में बाला, यौवनकाल में पुवती और वृद्धावस्था में वर्षीयनी के रूप से परिणत करती हो। तुम कर्म से कल्पित हो, ज्ञान से परे और कामरूपिणी हो। एवं अनेक प्रकार की मूर्तियों धारण करके प्रकाशमान हो रही हो। यज्ञ और योग से तुम्हारी पूजा की जाती है। तुम उपासकों को वर और प्रमोद प्रदान करती हो। सब लोग तुम्हारा सम्मान करते हैं। तुम्हीं चण्डी, दुर्गा, शक्तिरा आदि नाम धारण करके समयानुसार अनेक रूप और वेशों में प्रकटित होती हो।'

निस्तन्देह 'माया' विविध रूपधारिणी है। श्रीरामकृष्ण काली देवी से कहा करते थे—“मा ! तू ही गृहस्थ के घर का सती-साध्वी नारी है और तू ही बाजार के कोठे पर बैठने वाली बेव्या है। एक रूप में तू माता बनकर मुझे स्नेह प्रदान करती है और दूसरे रूप में पत्नी बनकर रुचिकर भोजन बनाकर खिलाती है। 'इसका भाषण यही है कि संसार में कुछ भी यथार्थ रूप से भला-बुरा नहीं है, मनुष्य अपनी भावना से प्रत्येक वस्तु में भलाई-दुराई का भाव आरोपित कर लेता है। जो चांदनी रात सब को सुन्दर जान पड़ती है वही चोर को बुरी जान पड़ती है। संसार के सब मनुष्य में लड़ाई-झगड़ा, शत्रुता, सङ्घर्ष इत्यादि का कोई कारण नहीं है, सब की दृष्टि से वे सब एक ही चैतन्य सत्ता के अंश रूप हैं और सबकी अन्तिम गति भी एक-सी होती है। पर केवल मनोवृत्तियों की भिन्नता के कारण एक मनुष्य अन्य लोगों को अपना विरोधी मानने लगता है और उनके साथ अधिक से अधिक करता का व्यवहार करता है। दूसरा मनुष्य उन्हीं परिस्थितियों में रहता हुआ सबको मित्र, धारणीय मानता है और सबके हित साधन के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील रहा करता है। इसे हम 'माया' की सीला ही कह सकते हैं।

प्राक्काल के नवार्तिष्ठित और विज्ञानवादी मनुष्य 'माया' को एक काल्पनिक और धर्म पाक्षों से वर्णित कथा-कहानियों का विषय ही मानते हैं। निस्तन्देह अतन्त्र मुनि, पुरश्चन, जड़मरत के उपाख्यान लोगों को माया का स्वरूप और उसका भला-बुरा प्रभाव समझने के लिए ही रचे गए हैं, पर तनमें प्रवर्धित सिद्धान्तों को गलत नहीं बतलाया जा सकता। मनुष्य अन्न, त्वाचं और सूक्ष्मता के बंधीभूत होकर बिना किसी यथार्थ कारण के भय, क्रोध, काम आदि का बातावरण उत्पन्न कर लेता है और परिणाम स्वरूप अपने और दूसरों के लिए तरह-तरह के सङ्कट उत्पन्न कर लेता है। इसे यदि 'माया' की सीला कहें तो क्या अनुचित है ?

हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि पुराणकर्ताओं के समय में ही 'माया' का प्रभाव मनुष्यों पर व्यक्तिगत रूप से ही हुआ करता था, वे भूठ-भूट के कारणों से दुःख या सुख का अनुभव करने लगते थे। पर आज तो बड़े-बड़े प्रगतिशील और सर्व-भाषन सम्पन्न राष्ट्र भी वंश ही उदाहरण उपस्थित कर रहे हैं। रूस और अमरीका में लड़ाई-झगड़े का कोई कारण नहीं है, दोनों ही जीवन-निर्वाह के साधनों और आवश्यक धन सम्पत्ति से सम्पन्न हैं, पर केवल सत्कार में 'प्रधानता' प्राप्त करने के लिए अपने समस्त साधनों को सैनिक तैयारी के लिए भ्रोक रहे हैं। उनके उदाहरण से चीन, फ्रांस, इङ्ग्लैण्ड आदि अन्य अनेक देश भी उसी मार्ग पर चल रहे हैं। परिणाम यह होता है कि सत्कार के भाषे साधन युद्ध की निरर्थक तैयारी में खर्च हो रहे हैं और कलस्वरूप इन्हीं देशों के करोड़ों व्यक्ति उचित भोजन और वस्त्र से भी वञ्चित रहकर दुःख सहन करते हैं सब वे तरह-तरह के धार्मिक और हानिकारक उपायों का अवलम्बन करके अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयत्न करने लगते हैं। इससे अन्य संकष्टों प्रकार की समस्याएँ और उलझने पैदा होती हैं और मनुष्य स्वनिर्मित भय, धर्म और मूर्खता के कारण स्वर्ग सदृश पृथ्वी को नर्क के रूप में परिणित कर देते हैं।

यह बात हमी यहाँ कहते, स्वयं योरोप, अमरीका के अनेक विचारशील व्यक्ति अपने देशवासियों को स्वार्थ परतापूर्ण मनोवृत्ति और भौतिक यन्त्रों के लिए पागलपन की शीट को देकर बड़े विचित्र हो रहे हैं और बार-बार चेतावनी दे रहे हैं कि यदि यहाँ के कर्ता-पता और प्रमुख व्यक्ति इस प्रकार की हानिकारक वृत्ति के निरोध का का कोई प्रयत्न न करेंगे तो उनकी सभ्यता लीज ही नष्ट-भ्रष्ट होकर पत्थर की धातु बन जायगी। इस सम्बन्ध में 'Human Destiny' (मनुष्य का भाग्य) नामक पुस्तक के लेखक "Lecomte Du

निर्धारित करते हैं। इस प्रकार वे गोला-बारूद बोधकर इतना नफा कमाते हैं जिस पर जल्दी विश्वास करना कठिन होता है। उन्होंने योरोप अमरीका के शासकों की स्वार्थपरता पूर्ण नीति की आलोचना करते हुए कहा था —

“हम सबके हितों के ऊपर एक विश्व-आपी सङ्घर्ष का खतरा मँडरा रहा है। हम बराबर सुनते रहते हैं कि एक ओर विश्व युद्ध अनिवार्य है और लोग उसकी प्रतीक्षा करते ही रहते हैं। प्रत्येक देश ने राष्ट्र की समस्त शक्तियाँ ‘हरा के साधनों’ के प्रस्तुत करने में लगाई जा रही हैं, जिससे अन्य राष्ट्रों में रहने वाले अपने ‘मानव-भाइयों’ को मारा जा सके। शिक्षा-संस्थानों के खर्च में कमी जा रही है और सार्वजनिक सेवा के विभिन्न मसौ का ध्यय भी घटाया जा रहा है, ताकि किसी प्रकार इन ‘मौत के यन्त्रों’ की कीमत घुकाई जा सके।”

“इससे भी शोचनीय बात यह है कि विभिन्न राष्ट्रों के बीच भय और घृणा की दीवारें खड़ी की जा रही हैं। प्रत्येक देशों में तो स्वयं सरकार ही इस प्रकार के अविश्वास का भाव फैला रही है और सहृदयता तथा भ्रातृभाव के कुँवों को विपाकत बना रही है। समाचार पत्र भी घासक-प्रचार-कामों में सरकार के सहयोगी बने हुए हैं। परिणाम यह होता है कि प्रत्येक राष्ट्रों में सिवाय कठोर शब्द और निन्दा की भाँती के सिवा और कुछ गुनाई नहीं पड़ती। यही दूषित भावना-प्रवाह किसी भी समय भी समय युद्ध के रूप में फूट पड़ने को तैयार रहेगा और अगह-अगह सामूहिक नर-संहार के बीमारम दृश्य दिसलाई पड़ने लगेंगे। न मालुम कब तक लोग इस घातक प्रक्रिया में सचे रहेंगे और अन्त में एक दिन उनको होश आयेगा कि उन्होंने एक विकृत अस्तित्व दाराबी की तरह अपने ही घर में जल लगा दी है और प्रत्येक व्यक्तियों को जिनसे उनके प्रिय सम्बन्धी भी हैं, मार दिया है।”

सत्ता में हिरनाफुस, राक्षस, कस और दुर्बोधन जैसे प्राचीन शोषण-कर्त्रियों का मान मर्दन करके जड़मूल से नष्ट कर दिया वहीं अपनी माया से मात्र 'एटम बम' और 'हायड्रोजन बम' के अभिमानी राष्ट्रों की बुद्धि को विवरीत करके पारस्परिक सङ्घर्ष द्वारा उनके गत पाँच सौ वर्षों के पापों का इन्ध देने का आयोजन कर रही है। मगर हमको सीखें ही और पुरातन ऋषि-मुनियों के अध्यात्मज्ञान का एक पंख भी हमको प्राप्त हुआ हो तो हम योरोप समरीका की घातक 'वैज्ञानिक उन्नति' में परमात्मा की माया के प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं।



सर्गेगी । एक मुल्क दूसरे मुल्क के घोर एक राज्य दूसरे राज्य के के विरुद्ध लड़ा होगा । इस समय प्रकाश पड़ेंगे, महामारी फैलेगी और जगह-जगह भूकम्प आयेंगे । यह दशा आरम्भ में होगी और इसके बाद भी भयङ्कर कष्ट भोगने पड़ेंगे ।' (रिवेलेसन)

'बाइबिल' की भविष्य वाणियों के बन्ता महारमा जान की एक योगी पुरुष माना गया है । उनका जो विषय ईसाई धर्म की पुस्तकों में प्राप्त होता है उसमें वे अटलजुट और दमशू [सम्झी टाडी] से युक्त कम्बल लपेटे हुए किसी प्राचीन शूण्वि की तरह ही दिखाई पड़ते हैं । सब तो विद्वानों ने यहाँ तक विद्व कर दिया है कि भारतवर्ष में आकर उन्होंने नाथ सम्प्रदायो वालों से योग की शिक्षा प्राप्त की थी और उनका नाम भारतीय-मठों में गुरुद्वारा 'नाथ-नामावली' की हस्त-लिखित पुस्तकों में भोजूद है । उन्होंने 'बाइबिल' में 'रिवेलेसन' [दिख-वाणी] नाम का पूरा चम्पाय ही विश्वास है, जिसमें भविष्य-कथन के रूप 'युग-परिवर्तन' की समस्त घटनाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है और बतनाया है कि महापुट और देवी-प्राणी से होने वाले नाथ के परवात् देवी-शक्ति (मयतार) का प्राविभाव होगा और वह सम्पत्तियों को बिटाकर न्याय-शासन (समराज्य) की स्थापना करेगी ।

क्या अन्तिम समय प्रा पहुँचा ?

वर्तमान समय में युद्धों की अधिकता और भीषणता से घबराकर अधिकांश धार्मिक ईसाई महारमा जान की प्राचीन भविष्यवाणी के सत्य होने में विश्वास करने लगे हैं और जगह-जगह यह विषय प्रकट किये आ रहे हैं कि सब 'सतार के उट्टारकर्ता' के प्रकट होने का समय बिल्कुल समीप प्रा पहुँचा है । इन विचारों का प्रचार करने वाले ईसाई धर्म के मासिक पत्र "New Jerusalem fellowship" (पू जेरुसलम फेलोशिप) के मई १९१७ के पन्ने में श्री जान प्रोकिंग नामक सम्बन्ध में निम्न सम्पत्ति प्रकट की है—

क्या अन्तिम समय था पहुँचा है। हमारे चारों तरफ अन्ध-कार गहरा हो जा जाता है, ऋद्धे झुक गये हैं, पाप की वृद्धि हो रही है और संसार 'न्यायकर्ता' (भगवान्) ने सम्मुख फैसले के लिए बढ़ता जा रहा है। लोगों में तरह-तरह के अनुचित कर्मों के साथ समझौते की प्रवृत्ति बढ़ रही है। सब पक्ष विरोधी अनियोज्य छोटी पर पहुँच चुका है। इस अवसर पर भगवान् ही सत्य-मार्ग दिखसाकर हमारी रक्षा कर सकते हैं, अन्यथा हम पूरी तरह से शैतानियत (दानव-राज्य) में डूब जायेंगे।'

'शैतान का सबसे बड़ा हथियार लोगों को भ्रमकाना है। वह असत्य के सहारे ही अपने समस्त कार्यक्रमों को पूरा करता है। इस समय संसार के राष्ट्र इतने अधिक हथियार बन्द होते जाते हैं, जैसे पहले कभी नहीं थे, क्योंकि सबने इस 'असत्य' पर विश्वास कर लिया है कि हम जितना अधिक मनु-बम सँवार करके रखेंगे उतना अधिक शान्ति कायम रह सकेगी। इस समय युद्ध के समर्थकों द्वारा चारों तरफ प्रचार किया जा रहा है—'तुम्हारा विरोधी दहाड़ते हुए धेर की तरह चारों तरफ घूम रहा है कि वह किसको खा जाय। इसलिए तुम भी फत्ती से जल्दी अपनी रक्षा का उपाय करो।' ऐसे प्रचार के प्रशाह में बड़े-बड़े धार्मिकों और ईश्वर-भक्तों के भी वह जाने की सम्भावना हो जाती है।

'यह बरखाबरक है कि ऐसे अवसर पर हम शान्ति चित्त से विचार करें और सोचें कि हमारा क्या कर्तव्य है? हम जो कुछ नियंत्रण करेंगे वही हमारे भाग्य का फैसला करने वाला होगा। इस समय हम चौराहे पर खड़े हैं, और सही तथा गलत रास्ते का चुनाव करना हमारे ही कर्पर निर्भर है। अगर हम सत्य-मार्ग पर चले तो भगवान् के राज्य में पहुँच जायेंगे और गलत मार्ग ग्रहण किया तो पक्ष विरोधी दल के भयङ्कर कुचक्र में फँसकर नष्ट हो जायेंगे।'

इस उदरान मे धार्मिक ईसाइयो को चिन्तापूर्ण मन स्थिति स्पष्ट प्रकट होती है । इस समय युद्ध की तैयारी करने वाले प्रमुख राष्ट्र ईसाई धर्म के अनुयायी ही माने जाने हैं । इङ्गलैण्ड फ्रान्स, अमरीका, जर्मनी के सभी लोगों की पिनती ईसाई मजहब वालो में ही की जाती है और जहाँ में से कुछ लोग इस तरह युद्ध का प्रचार करके समस्त सभार को युद्धाग्नि की मही में भोकने की तैयारी कर रहे हैं । वहाँ अधिकांश जनता ईसा-मसीह के प्रेम-सन्देश और क्षमा-भावना को समझने हुए भी झूठी राष्ट्रीयता के प्रवाह मे बहकर युद्ध की तैयारी में सहयोग कर रही है । इसी से स्पष्ट होकर उक्त सज्जन ने अपने भाइयों को यह चेतावनी दी है ।

संसार की समस्या को भगवान् ही सुलभायेगा—

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण और अवधार मे विश्वास रखने वाले उद्धार पादरो जान मेसाह के हैं, जो इङ्गलैण्ड से Healing Life (हीलिंग लाइफ) नामक पाश्चिक पत्रिका प्रकाशित करते हैं और साम्प्रतिक विषयो पर अपने भाइयो का मार्ग दर्शन करते रहते हैं । उन्होंने वर्तमान समयका और लोगों की स्वार्थपरता को लक्ष्य करके कहा है—

‘संसार की समस्या मनुष्य की बुद्धि द्वारा नहीं सुलभाई जा सकती । यह विशाल कार्य मनुष्य की ताकत के बाहर है । वर्तमान समस्या ऐसी उलझनपूर्ण है, और अन्याय, भ्रष्टाचार इतने बढ़ गए हैं कि उनका सुधार कर सकना साधारण मनुष्य के लिए अशक्य है । तो भी हम निराश मषवा उरसाहीन नहीं होते वरन् घाघा से प्रतप्त-विश हो रहे हैं । क्योंकि ऐसे ही समय मे—ऐसी ही हासत में मगवान की शक्ति प्रकट होती है, संसार मे एक महान् आगुति होती है और सच्चा कृतवाण हो सकता है । हम मे से बहुत से लोग धर्म-राज्य को

करेगा ऐसी उतकी धारणा नहीं है । अन्य सच्चे धार्मिकों की भी ऐसी ही सम्मति हो सकती है ।

आकाश की शक्तियाँ विचलित हो रही हैं—

इसी प्रकार श्री जे० एच० कोनीवियर नामक विद्वान ने अपनी "Civilisation or chaos" (सम्पत्ता भयदा भयवदस्या) नामक नामक पुस्तक में संसार में भीषण घटनाएँ होने के पश्चात् भयतार के भागमन की भविष्यवाणी की है उन्होंने 'वाइबिल' के 'सूक' खीपक अध्याय की एक भविष्यवाणी का उल्लेख करते हुए कहा है—

“उस समय सूर्य, चन्द्रमा और तारों में चिन्ह प्रकट होंगे, संसार के देशों में कष्ट और हलचल बहुत अधिक बढ़ जायगी, समुद्र और उसकी लहरें भी गर्जने लगेंगी । मनुष्य संसार में होने वाली घटनाओं को देख सकने का भी साहस न कर सके, क्योंकि उस समय आकाश की (देवी) शक्तियाँ विचलित हो जायेंगी । इसके पश्चात् 'मानव-पुत्र' शक्ति तथा क्षोभा के साथ आकाश से उतर कर संसार का उद्धार करेगा ।”

‘इस उद्धरण की बातें जो 'ईश-पुत्र' महारामा ईश ने दो हजार वर्ष पहले कही थी, अबस्य सत्य होने वाली है और उसके यत्नायै हुए चिन्ह दृष्टिगोचर होने लग गये हैं । ज्योतिष-विज्ञान के ज्ञाता सूर्य और चन्द्रमा में होने वाले नवीन परिवर्तनों को प्रत्यक्ष देख रहे हैं । एटम और हाइड्रोजन बमों के जन में परीक्षण किए जाने के कारण समुद्र में भी हलचल पैदा हो जाती है और करोड़ों जसःअन्तु नष्ट हो जाते हैं । समस्त देशों में इतने अधिक आन्दोलन और खूनी क्रांतियाँ हो रही हैं कि उनसे आकाशी शक्तियाँ विचलित हो रही हैं । ये समस्त संसार पर होने वाले मयङ्कर परिणाम की सूचना दे रही हैं । इस नासकारी घटनाओं के बाद 'मानव-पुत्र' पृथिवी पर अवतरित होगा ।’

समाज में असन्तुलन उत्पन्न हो गया है। इसके परिणामस्वरूप मानव-पाहि सृष्टि रचना की देवी योजना के अनुसार अपने लक्ष्य की तरफ नहीं बढ़ सकती, बरन् एक स्थान पर झटक कर रुकतव्य विमूर्ध हो गई है और ऐसे कार्य करने लग गई है जो ईश्वरीय नियमों के प्रतिकूल है। निम्न ही ऐसी प्रवस्था अधिक समय तक कायम नहीं रह सकती। भारतवर्ष के अध्यात्मपथित सम्प्रदायों ने इस समस्या पर भली प्रकार विचार किया है और अब से कुछ वर्ष पूर्व ही भारत के महान आध्यात्मिक नेता श्री परबिन्द ने हम सम्बन्ध में एक घोषणा की थी—

‘मुझे भय है कि जो लोग इस समय स सार की संकटपूर्ण परिस्थिति पर दुःखी हो रहे हैं, उनको मैं कोई विशेष सान्त्वना की बात नहीं कह सकता। इस समय हासत बुरी है, निरन्तर अधिक बुरी होती जाती है और सम्भव है किसी भी समय वह अधिक से अधिक बुरी बन जाय। अब इस अवान्तिपूर्ण जगत में कोई भी बात, चाहे वह जितनी भी विपरीत प्रपचा असङ्गत क्यों न जान पड़ती हो, सम्भव नहीं है।

‘इस परिस्थिति में सबसे बड़ी बात यही है कि हम विश्वास रखें कि अन्त संसार में एक नया और घेष्ठ युग आना है, जो उसके लिए हमारी सब घुराइयों को प्रकट होकर निकल ही जाना चाहिए। यह एक घेसी ही प्रणाली है जैसे योग-माधन में अपने भीतर की हीन वासनाओं को प्रकाश में लाकर उसके साथ संघर्ष करके दूर कर दिया जाता है। बुद्धि का यही तरीका है। इसके सिवाय हमको यह बहावत भी याद रखनी चाहिए कि प्रमात होने से पहले रात्रि का अन्धकार सबसे अधिक घनीभूत हो जाता जब पच्छा है।

‘मैं यह बताना देना चाहता हूँ कि जिस घये संसार के आगमन की हम आशा कर रहे हैं वह उभी आगमी का बना न होगा, जिसका

कि वर्तमान संसार दिखाई पड़ रहा है, वरन् उसका निर्माण भिन्न प्रकार के साधनों और तत्त्वों से ही होगा। इस समय बाहरी चीजों का ही ज्यादा महत्व है जब कि उस नये जमाने में भान्तरिक शक्तियों की ही प्रधानता होगी। इसलिये यदि इस समय धन, सम्पत्ति, शान-शोकत जैसी बाहरी वस्तुओं में दोष उत्पन्न होकर वे नष्ट होती जाती हैं तो इस पर ज्यादा ध्यान देने या चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। इनके स्थान में लोगों को अपनी भाविक शक्तियों के विकास का उद्योग करना चाहिए जिससे वे नये-युग के उपयुक्त बन सकें।

'संसार की वर्तमान स्थिति पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह दुनिया अब बहुत पुरानी हो गई है और अब उसको कायापलट होने की आवश्यकता है। उसकी एक-एक पाहुँचायें जबर-स्ता के कारण टूट रही हैं। न तो आज कोई समाज ही अपने स्थान पर अस्तित्व में है और न कोई सरकार ही। समाज का बन्धन धीरे-धीरे प्रशात किन्तु स्पष्ट रूप से टूटता जा रहा है। एक के बाद दूसरी सरकारें असफल होती जा रही हैं। मानव-समाज सतरे में है। मनुष्य की आजादी, देशों तथा राष्ट्रों की स्वतन्त्रता नष्ट हो रही है। सम्पूर्ण विश्व की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ, पारस्परिक सम्बन्ध, सामंजस्य सभी हिल उठे हैं। निर्धनता, अपराध, प्रजात भोक्ता आदि का सारा जगह शिकार बन चुका है। संसार की इस अस्वाभाविक अवस्था के कारण गत चौबीस वर्षों के भीतर दो बार भयङ्कर विश्व-युद्ध हो चुके हैं और तीसरे प्रलयकारी युद्ध की सम्भावना प्रतिदिन निकट आती पली जाती है।'

इस भयङ्कर अवस्था का—इस क्रमशः नाश की प्रक्रिया का इलाज प्राक्तर क्या है? मानव-जाति को गृह-जगृह करने वाली इस व्यापक अन्दरूण परिस्थिति को किस प्रकार घटाना जा सकता है? सामाजिक और भाविक क्षेत्र में जानकारों ने इसके लिए अनेक प्रकार

के सुन्दर सामने रखे हैं राजनैतिक नेताओं ने रिठने की उपाय इस
 घबराहट के मिटाने के लिए बनाये हैं वे उनको धनद्ध हैं । वे सफल
 कैसे हो सकते हैं ? अब राजनीतिज्ञों का मल्लिक स्वयं अपनी भाव-
 नों पर ही निर्भर नहीं रख सकता, अब सारे विश्व की व्यवस्था
 को सुधारने के लिए वह कैसे कोई उपाय खोज सकता है ?

यदि इन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक विचारों को छोड़
 कर धार्मिक वर्ग पर निगाह डालते हैं तो मालूम होगा है कि धर्म के
 स्वच्छ स्वरूप पर, सौतेले हुए धर्मों की धार्मिक शिक्षा पर, पंडित, पुजारी
 पादरी, मुल्ला बहे जाने वाले लोगों ने धर्मनाम की छाना डाल दी है,
 जिससे मनुष्य की दिव्य-दृष्टि बूझ हो गई है । सही-सही प्रमाण, धर्म
 के नाम पर होने वाले झूठे पाखण्ड और समाज के टूटते हुए बंधन
 सभी व्यर्थ हैं । न तो इनसे विश्वास का कोई हिस्सा हो सकता है और न
 सब इसको धारण करता है ।

धर्म में श्री परब्रह्म ने नये युग का स्वागत करते हुए
 कहा है—

‘वह दिन कितना घन्य होगा जब मानवता एक नये युग में
 प्रवेश करेगी । वह युग जिसमें शान्ति होगी, प्रेम का शासन होगा,
 एकात्मता होगी, सुख होगा और मानव-जीवन की सफलता होगी । उस
 दिन सभार के कण-कण में सुख और शान्ति व्याप्त हो जायगी । उस
 युग का एक दिन भी जिसने सुषों को सतावियों को तुलना का
 होगा ।’

पर यह भी निश्चित है कि इन नवयुग में प्रवेश करने से पूर्व
 मनुष्य जाति को एक बार अग्नि-परीक्षा में होकर गुजरना पड़ेगा । युग
 परिवर्तन के समय शान्ति का होना अनिवार्य है । अब एक युग मृत्यु के
 युग में दिनीत होगा है तथा नया युग नम शेष में प्रवेश करता है तब

दोनों में तुल्य-स प्राय होना स्वाभाविक ही है। 'कल्कि पुराण' में इसी भीयसु सङ्घर्ष का रूपको तथा कदाभी क रूप में उल्लेख किया गया है। जो व्यक्ति इस सङ्घर्ष में धर्म-व्यस का सफलतापूर्वक नतूल करके वर्तमान प्रत्याय, प्रनीति और भ्रष्टाचार का सम्म कर सकेया उसे 'अवतार' मानन से कोन इन्कार करेया ?

युग-परिवर्तन तथा 'अवतार' अवश्यम्भावी हैं-

यद्यपि राजनीति के क्षेत्र में नालबाजी और कूटनीति को प्रधान-नीय यतमाया गया है तो भी कितने ही राजनीतिज्ञ साथ ही उच्च धार्मिक को पूर्णतया ठीक समझते हैं और व्यवहार ध्यान पर उसका प्रतिपादन और समर्थन भी करते हैं। गन वर्षों में भारतीय-राष्ट्र के कर्णधार २० अवाहूरमाल नेहरू और प्रथमिका के प्रेसीडेण्ट केवली इसी कोटि के महापुरुष हुये हैं। यद्यपि प्रथमिका एक वक्र की शोड में सबसे आगे हैं और उसने इस कार्य में कितना धन खर्च किया होगा इसकी कोई गिनती नहीं की जा सकती। पर २० केनेडी विश्व शान्ति के सिद्धान्त की कल्याणकारी मान निवृत्तीकरण के लिये तैयार हो गये थे और कश्चित् अपने प्रतिद्वन्द्वी कम से कक्षा या कि 'जब तक तुम अक्र निर्माण में हमारे साथ लोड़ लगाते रहे तो एक निवृत्तीकरण में ही हमारे साथ लोड़ो।' पर प्रथमिका के सबसे बड़े पूर्णोपति, जो हथियारों का व्यापार करके प्रति वर्ष अरबों रुपया कमाते हैं ऐसी बात को कब सहन कर सकते थे ? परिश्राम यह हुआ कि पाँचे ही समय बाद केनेडी की मृत पाठक द्वारा हत्या करली गई। विश्व-शान्ति के नाम पर एक महामानव का बलिदान हो गया।

पुरानी दुनिया अवश्य मरेगी-

२० अवाहूर साल नेहरू जी भी बहुत समय से राजनीतिक धार्मिक के साथ नये युग और नये सार के निर्माण को चर्चा करते

भाये थे । वे इतिहास के बहुत बड़े ज्ञाता थे और प्राचीन घटनाओं के प्रकाश में आगामी घटनाओं के स्वरूप का बहुत कुछ वही अनुमान कर सकते थे । उनका दृढ़ विश्वास था कि वर्तमान दुनिया अब ज्यादा दिन तक इस हावत में नहीं रह सकती और मानव-जाति शीघ्र ही एक नये युग में प्रवेश करेगी । इसका विवेचन करते हुये उन्होंने २५ वर्ष पूर्व लिखा था—

“इस समय दुनिया में बड़े जोरदार परिवर्तन हो रहे हैं, तो भी दिन पर दिन यही दिखलाई पड़ता है कि वे माने वाली घटनाओं के लक्षण मात्र हैं । हम इस समय एक ऐसे महान् क्रान्तिकारी युग में जीवित हैं जिसकी सुलना का युग अब तक के इतिहास में शायद ही मिल सके । यह क्रान्ति अपना नियत कार्यक्रम पूरा करके ही रहेगी । सब तक हमारी पृथिवी पर शान्ति या समझौते की कोई आशा नहीं ।

‘हमें समझ रखना चाहिये कि पुरानी दुनिया अब खत्म होगी, चाहे यह बात हमको प्यन्द हो या न हो । जो सोच इस पुरानी दुनिया के सबसे बड़े समर्थक थे, नष्ट होकर भूतकाल की धूल बन चुके हैं । हमको यह भी समझ लेना चाहिये कि एक युग समाप्त हो चुका है और इस घून-सराबी के बीच में होकर हम नये युग में प्रवेश कर रहे हैं । मैं यह तो नहीं कह सकता कि यह नया युग अवश्य ही बहुत अच्छा होगा, पर मैं इतना आनता हूँ कि वह बिल्कुल भिन्न प्रकार का होगा । संसार के नर-नारी भाग्य के सिनौने बन गये हैं और माता के अँवर में खिचते चले जा रहे हैं । हम नहीं जानते कि हम कियर जा रहे हैं । फिर भी इतना तो हम कह ही सकते हैं कि हमारी आज की दुनिया हमारी पीढ़ी के सामने ही तेजी से बदल रही है, और कोई नहीं कह सकता कि इसकी जगह हमें क्या देखने को मिलेगा ।”

नेहरूजी ने एक अन्य घबसरा पर इस महान् परिवर्तन के सन्धान-सन्वर्तना (प्रवर्तार) के विषय में भी अपने विचार प्रकट किये थे—

“मनुष्य-समाज के उद्धार के लिये समस्त-समय पर इस देश और दूसरे देशों में भी महापुरुष पैदा होते रहते हैं। पर ऐसे किसी महापुरुष की अपेक्षा यह भावना बड़ी है, जिसकी यह मानने जीवन के अन्वहार में पूर्ण करके बताया है। ऐसे महापुरुषों को भाग 'प्रवर्तार' कहते हैं। इस युग का 'प्रवर्तार' यह भावनाएँ ही हैं, जो कि मनुष्य-समाज के सुधारने के लिये प्रकट हो रही हैं। भाग भी यह भावना जिसको प्रवर्तार कहा जा सकता 'सामाजिक-न्याय' की है। चाहे, इस भावना रूपी प्रवर्तार के सन्देश को हम सुर्भे और उसके द्वारा होने वाली सामाजिक क्रान्ति के हम उपयुक्त साधन बनें। इससे मनुष्य का जीवन बन्धन-आपना और यह सकार मनुष्यों के निवास के योग्य प्रतिक उपयुक्त बन जायगा।”

नेहरूजी ने प्रवर्तार की प्रवर्तार या भावना के रूप में बताया है और उसमें कुछ गलती नहीं है। जब तक लोगों की भावनाएँ जागृत नहीं होंगी तब तक वे किसी महापुरुष के पीछे चलने की तरफ न होंगे। यह भावना ही है जिसके आधार पर वे एक अपने जैसे नरवान धारी को अपने से बहुत ऊँचा, ईश्वर के समान मान लेते हैं। पर उपयुक्त उद्धारण में जो यह कहा गया है कि भावना प्रवर्तार से बड़ी होती है, उसमें दो गलतियाँ हैं और दोनों ही ठीक हैं। जैसे ईश्वर को निराकार माना जाता है और भक्तिमय शान्ति पुरुष निराकार-गण का ही समर्थन करते हैं, पर सामान्य मनुष्य निराकार ईश्वर की उपासना प्रार्थना, भक्ति ठीक ढङ्ग से नहीं कर सकता, इसलिए वह उसके आकार रूप को ही मानता है, चाहे उसमें वास्तविकता का भाग कितना ही उतनी बात 'प्रवर्तार' के विषय में है। चाहे भावना ही मुख्य वस्तु

हो, पर जन-सामान्य उस सूक्ष्म और केवल बुद्धिगम्य तत्त्व को ठीक तरह हृदयंगम नहीं कर सकते, इसलिये भावना को टभी स्वीकार करते हैं जब उसकी प्रेरक शक्ति को प्रत्यक्ष रूप में देख लेते हैं। दोनों स्थितियों में कार्य एक ही होता है पर ज्ञानी भावना की उच्चता से अधिक प्रभावित होता है और सामान्य बुद्धि वाला उसके सञ्चालक अथवा नेता को प्रमुख मानकर उसका अनुसरण करता है।

सूर्योदय पूर्व दिशा में ही होगा—

महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक दिव्य दृष्टि रखने वाले महा-मानव थे। वे मानवता के पतन को देखकर बड़े सिद्ध होते थे और आध्यात्मिकता की भाषा में लोगों को पाप से मुक्त होने की प्रेरणा देते रहते थे। वे संसार की वर्तमान अवस्था को बहुत खचनीय और एक धार्मिक शक्ति की दृष्टि से कसकूपुण मानते थे। उनकी मम्मति थी कि—

‘पाप के भार से लदी हुई धसुन्धरा की कलुषित धूल पर आज नम से रक्त की धारा बरस रही है। पाप का पङ्क हवापे मानस को कलुषित कर रहा है और शक्ति के बिन्दु हमारे हाथों पर टोख पड़ने लगे हैं। शक्ति के इन पत्थों को हम कब तक धोते रहेंगे?’

निस्तन्देह युद्ध और किसी भी देश के निरपराध शक्तियों का हत्याकाण्ड धार्मिक कहानाने वाले मनुष्य के लिए कर्त्तक स्वरूप ही है। ऐसे व्यक्ति कभी मगधान की दृष्टि में पाप मुक्त नहीं माने जा सकते।

महाकवि ने ‘अधतार’ के सम्बन्ध में भी यह विश्वास प्रकट किया है कि वह भारतवर्ष में ही प्रकट होकर संसार के उस भ्रम और अज्ञान को दूर करेगा, जिसके कारण आज यह दुनिया सर्वनाश के

अपाह के गढ़े में कूदने की तैयारी कर रही है। उन्होंने अपनी ८० वीं वर्षगांठ पर, एक सन्देश देते हुये कहा था—

“एक समय था जब कि मैं यह विश्वास करता था कि सम्यता का स्रोत योरोप के भीतर से उत्पन्न होगा। पर आज मैं इस मानवान् जगत को छोड़ने की तैयारी कर रहा हूँ, मेरे उस दृढ़ विश्वास के टुकड़े-टुकड़े हो चुके हैं। आज मेरी एकमात्र मन्त्रिम ममिलाया यही है कि ‘उद्धारकर्ता’ का प्राविर्भाव इस ‘पश्चिम देश’ में ही होगा। पूर्वे दिशा से ही उसका सन्देश समस्त संसार में फैलेगा और मानव-जति ने हृदयों को पूर्णतया माया से भर देगा।”

जैसे-जैसे मैं आगे बढ़ता जाता हूँ, पीछे की तरफ मुझे प्रायु-निक सम्यता का भयन दृष्टकर सपत्तहर बनता दिसनाई पड़ता है। यह मानवीय असफलता के एक बहुत बड़े धूरे की सरह जान पड़ता है। पर यह देखकर भी मैं मनुष्य में प्रसन्न नहीं कर सकता। ऐसा करना बहुत बड़ा पाप होगा। इसके विपरीत मैं भाषा करता हूँ कि जब पश्चिम के सत्ताधारियों का बुद्धोन्माद समाप्त हो जायगा और उनका का वातावरण स्वच्छ होकर सेवा और त्याग की भाषना का उदय होगा, तो संसार के इतिहास में एक नया ही प्रभ्याय प्रारम्भ होगा।

“सम्भवतः प्रभात इसी पूर्वीय क्षितिज पर होगा, जहाँ से सूर्योदय होगा है। तब एक नया दिन आयेगा जब कि मनुष्य समस्त बिभ्र-बाधाओं को नाशकर अजेय भाव से फिर अपने प्राचीन योरोप के मार्ग पर प्रसन्न होगा और अपने छोये हुये उत्साहिकार को प्राप्त करेगा।”

भारतीय सन्तों के उद्गार—

भारत के धार्मिक क्षेत्र वाले व्यक्ति तो, चाहे वे बड़े हों या छोटे, विद्वान् हों या सामान्य, किसी न किसी तरह प्रसन्न अवतार में विश्वास रखते ही हैं। जब तक देश में राम-कृष्ण और शिव की भक्ति पारा प्रवाहित है, तब तक यहाँ ‘अवतारों’ में यदा का भभाव नहीं हो

सकता। बिग लोगों का घटस विश्वास है कि भगवान हाथी के पुका-रने पर उमरी रक्षार्थ भाये थे, उन्होंने घुब, प्रहाद जैसे बालकों की प्रार्थना को स्वीकार किया था, द्रौपदी की साज बचाने को एक के स्थान पर हजारों साधियाँ उपस्थित करदी थी, वे यह क्यों नहीं मानेंगे कि यदि भयों पर भावति पायेगी तो भगवान पात्र भी उनकी रक्षार्थ उसी प्रकार अवश्य लड़े होंगे ? इस लिए यहाँ के धार्मिक जन धीरे साधु-मठारमा सदैव भगवान के भागमन की राह देखते ही रहते हैं और पात्र कस ही सत्कार में दानवता की प्रवृत्तता देखकर उनका विश्वास और भी सुदृढ़ हो रहा है।

सूरदास आदि प्राचीन सन्तों के सतयुग और भवसार सम्बन्धी सविष्य कथनों की चर्चा तो लोग करते ही रहते हैं, पर आत्रकस भी अपने भगवद्-भजन, तपस्वी महापुरुष यही कहते कि संसार की दुर्दशा को मिटाने और यम राज्य को स्थापना करने के लिए 'दैवी-शक्ति' का आविर्भाव शीघ्र ही होगा। इस सम्बन्ध में पञ्जाब प्रदेश के एक महा-पुरुष का नीचे उद्धृत विवेचन हमको विशेष रूप से युक्तियुक्त जान पड़ता है जो हमने अपने 'सतयुग' मासिक पत्र में अब से कितने ही वर्ष पूर्व प्रकाशित किया था—

'प्रत्येक युग में दूसरा युग वर्तता है, यह प्रकृति का नियम है। सतयुग में भी कलियुग बती था। इसी प्रकार अब कलियुग में सतयुग बर्तगा। गृष्टि की वर्तमान अवस्था ऐसी हो गई है कि यदि अब सतयुग न भाये तो यह धार्मिक समय तक स्थिर नहीं रह सकती। मनुष्यों की शक्तियाँ और मनोवृत्तियाँ ऐसी हीन होती आ रही हैं कि अब यदि नया युग न भाये तो मानव-जाति सो-दो-सो वर्ष में नष्ट प्राया हो सकती है। और यह भगवान को पट नहीं। हमविषे काम-धरु के कायम रहने के लिये भगवान बीच में 'तपयुग' रूपी टेका (सहारा) लगाकर इसे स्थिर ने की व्यवस्था करेगे।

विनाम-क्रम के उच्च स्तर पर आरोहण करके प्राणायाम प्रम-रूप के प्राणमन के स्वप्न पर भगवान्-चरण चढ़ना की प्रतीक्षा में है। प्रभु प्रेम-भक्ति-धरणावधि की नीला भी स्वयं कर्णधार बनकर पार लगावेंगे। इसे वास्तव बन कर उस परम-पिता का प्राण ही पहलू करना आवश्यक है।'

राधास्वामी सम्प्रदाय के प्रधान गुरु स्वामी ब्रह्मचंकर (हजूर महाशय) ने भी प्राणायामिक-व्यक्त की सूक्ष्म गति का निरीक्षण करके बताया है कि 'हमारा विश्वास है कि निकट भविष्य में ही आध्यात्मिक क्षेत्र में से निकलकर अविज्ञानों सहित पृथिवी पर आधिपत्य जमाने वाली है। इस समय हम जितनी प्राणतियों का अनुभव कर रहे हैं, सब वे सब गायब हो जाएंगे और 'सतसुषु' से भी बढ़ कर प्रेम, भक्तिक और कल्याण की दशा सर्वत्र व्याप्त हो जाएगी। जो आध्यात्मिक शक्तियाँ इस समय खिरी पड़ी हैं सब वे बहुत कुछ प्रकट हो जाएंगी।'

ब्रह्मसत् के भगवान्नाम प्रचारक तथा पतितोद्धारक महाप्रभु जगद्गुरु के उद्धार हैं—'माँ! महाप्रलय माने वाली है। तेरे नाम की रट लगे तो आज पाप का आज रुटे और वृद्धि को भी रखा हो। कल्पियुग की अर्धाधि पूरी हो चुकी अब अतिक्रम भी देर न लगे। पर हृदय धर्म मेरी नीला चलेगी। इस बार मैं सबको भगवान् का नामा-मृत चलाऊँगा, सभी मेरा नाम 'जगद्गुरु' सार्थक होगा। मेरे इस महाप्रद का उद्यान इसी बीसवीं शताब्दी के भीतर पूर्ण रूप से हो जाएगा।'

पूर्वाध्यात्म के एक प्रसिद्ध आध्यात्मिक नेता स्वामी प्रतीनामन्द सरस्वती का कहना है कि—'मना में जितने भी दण्ड, मजहब, पक्षियाँ हैं वे सब मेरे ही हैं। अब ऐसे विभिन्न प्रकार के व्यक्ति मेरे पास आते हैं तो वे सब मुझे अपने परमस्वरूप ही जान पड़ते हैं। मुझे इस

पड़ेगा । परन्तु उनके साध्यात्मिक प्रभाव से ही सब बृह-द्विष व्यक्ति अभिभूत हो जायेंगे और संसार में शान्तिवृक्ष का प्रागमन सम्भव हो जायगा । हिन्दू धर्म में जितने अवतारों का वर्णन है उनमें बृहदेव के प्रतिरिक्त सबको दुष्ट-रमन करके ही धर्म की रक्षा करनी पड़ी है । पर मासूम होता है कि मया प्रयत्न, जिसे सर्वथा सम्भवतः ईशामसीह का द्वितीय प्रागमन मानता हो और भारतवासी जिसका नामकरण 'कल्कि' करना पसन्द करते हैं, अपनी साध्यात्मिक शक्ति और प्रेम-भावना द्वारा ही सभी देशों और पर्वों के अनुयायियों को स्वयं कर लेंगे ।

'कल्कि पुराण' में उनके पुत्रों का जो वर्णन किया गया है उसे अविनाश विचारक अलंकारात्मक मानते हैं और उसमें दिये गये षोडशों नामों का अर्थ भी विन्न रूप से करते हैं । उदाहरण के लिये एक धर्म-प्रेमी सज्जन ने 'शशिध्वज' का अर्थ 'चन्द्र जितकी डरवा में हो' अर्थात् वाणाशुर या महाकाल किया है । इसी प्रकार 'शशिराज' अर्थ 'जिसका घोड़ा रक्त जैसा भास हो' होता है । इसका प्राण्य प्रतः और संख्या के उस समय से है जबकि आकाश में लाली छा जाती है । 'शोषारणुं' अर्थात् 'जिसके दोनों कान बौरा जैसे हों' अर्थात् 'दिवस' 'गुणान्ता' अर्थात् जिसकी गोद में महाशान्ति प्राप्त होती हो, अर्थात् कालरात्रि मृत्यु । इनो प्रकार 'कल्कि' की परनी 'पत्नी' के मातापिता के लिए 'ब्रह्मण्य' का अर्थ 'मन', 'शोमुशी' का इच्छा और 'सिहल' का 'बलस्थल' लगाया गया है ।

हम यह नहीं कहते कि पाठक शर्ही धर्मों को ठीक मान लें, पर इनको लिखने से हमारा प्रयोजन इतना ही है कि 'कल्कि पुराण' में 'कल्कि' के पुत्रों का जो वर्णन किया गया है उसे स्पून जगत से ही सम्बन्धित नहीं समझना चाहिए । अनेक उम्बरोटि के विद्वानों में भी यह सम्पत्ति प्रकट की है कि 'कल्कि' के हाथों में जित

पर वह ज्ञान छोक नहीं कि 'कल्कि' का प्रचार 'वेदाधरों' के लेखक ने ही प्रारम्भ किया। 'कल्कि प्रवचन' का उल्लेख तो 'भाष्य-वत्' तथा सभी पुराणों से मिलता है और साथ में वह भी कह दिया है कि वह भविष्य में होगा। इन आधार पर हनेवा ही उनके प्रकट होने की भावना किन्हीं न किन्हीं व्यक्ति के मन में उत्पन्न हो जाती थी, और उनकी बातें सुनकर सर्व-भाषारण में उसकी बर्बा होने लग जाती थी।

इस प्रकार की घर्षणों का फैलने का फैलाने का तरीका पुराने खनाने में यह था कि ऐसा व्यक्ति एक बिट्ठी लिखकर बाँटा देता था कि भगवान ने मुझे प्रवचन देने का संदेश दिया है और उसका प्रचार करने का आदेश दिया है। इसलिए बिट्ठी लिखे वह भी इस प्रकार की कम से कम दस बिट्ठों लिखकर बाँट दे। 'ओ ऐसा न करेगा उठे पाव लगेगा।' पिनगुवा (मिरठ) निवासी भक्त राम चरण दासजी ने प्रवचन सम्बन्धी एक लेख में बताया है कि 'जब मैं बाल्यावस्था में अपने माता-पिता के साथ तीर्थ-यात्रा की गया था तो सम्मल (मुण्डाबाद) में हमने बाजार में एक छोटी सी पुस्तक दिखी देखी जिसका नाम था 'भगवान का प्रवचन हो गया है।' इसके कुछ समय बाद जब मैं एक पाठशाळा में पढ़ता था तो किन्हीं मनुष्य ने मुझे एक बिट्ठी दी। उसमें लिखा था 'एक पहाड़ पर सर्व' लिखा। उसने कहा कि यह भगवान का प्रवचन हो गया है और वे दुष्टों को मारेंगे' बाजार में लिखा था कि 'जो इसे पढ़े इसी प्रकार की दस बिट्ठी बटि, नहीं तो मोक्ष का पाव लगेगा।' हमने मोक्ष का पाव से डरकर दस बिट्ठियाँ लिखकर बाँटीं।

पर भी इस प्रकार की एक सूचना हमारे सामने है। यह एक छोटे पर्व के रूप में है जो लगभग एक माघ पूर्व हमको एक बालक से मिल गया था। इसमें लिखा है—

करने को सह्य तैयार है। जब मैं वहाँ पर पहुँचा तो वे गा रहे थे—

योनि जय जय जय कल्कि प्यारे।

मुकुट की शोभा अति प्यारी है जय जय जय सम्मल वारे ।
मस्तक पर मलयगिरि चन्दन जय गौअन के रखवारे ॥
कानन कृण्डल अति प्रिय लागे जय घोड़े चढ़ने वारे ॥
कल्कि मण्डल नित प्रति भावे, प्रकटो युग पलटन हारे ॥

मैंने ऐसा कि उनमें से अधिकांश श्रमजीवी वर्ग के अल्पशिक्षित व्यक्ति थे, जो उच्च धार्मिक सिद्धान्तों के विषय में प्रायः अनजान थे। पर इस प्रकार कीर्तन और भवतार में अविन-भाव पैदा हो जाने से उनका पीछा बहुत सुघार अवश्य हुआ था और भावों में शुद्धता आई थी। अनेक व्यक्ति इन तरह के आयोजनों को व्यर्थ और समय का अपव्यय बतलाते हैं, पर मैं नहीं समझता अगर वे महीना में एक-एक दिन ऐसे कीर्तन में सम्मिलित हो जाते हैं तो इसमें लाभ के बजाय कोई हानि क्यों या सकती है। भारत के सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता श्री शचीन्द्र नाथ सान्याल भी उस दल के सञ्चालकों से परिचित थे और उन्होंने इस सम्बन्ध में एक लेख 'बङ्गवाणी' में सन् १९२४ में प्रकाशित कराया था। उसमें उन्होंने इस दल की कार्यवाही में कोई हानिकारक बात नहीं बतलाई थी। उस लेख में कहा गया है—

'दिल्ली में एक 'निष्कलन्दी दल' का आविर्भाव हुआ है। मात्र प्रायः ३० साल से यह दल दिल्ली में है 'सतनामी सम्प्रदाय' की तरह यह दल भी बहुत ही सद् (अत्यन्त श्रेष्ठ) है। मात्र सोल साल से यह दल भारत में सतपुत्र साने के सिधे परमात्मा से प्रार्थना करता आया है। वे विश्वास करते हैं कि कलियुग समाप्त हो गया है और तीर्थ

हो कल्कि भगवान प्रकटहोगे । किन्तु इस 'खीघ्र' का पर्यं क्या है — पर्याप्त किशु ठीक समय पर भगवान प्रकट हो जायेंगे, यह बात वे लोग नहीं कह सकते ।

वे यह भी कहते हैं कि इस अवतार का आवरण ऐसा होगा कि जिस पर देश विदेश में कोई उँगली न टका सकेगा । मस्थान्य युगों के अवतारी पुरुषों के आवरण ऐसे नहीं थे कि उनमें कोई दोष न दिखाया जा सके । पर इस बार उनका आवरण ठीक भगवान की तरह कलंक रहित होगा । इसी कारण उनको 'निष्कलङ्को अवतार' कहा जाता है । नये अवतार तलवार धारी होने पर भी किसी को अपने हाथ से नहीं मारेगे । वे किसी के विरुद्ध अस्त्र-गस्त्र ग्रहण न करेंगे । खल प्रकृति के लोग मायम में ही लड़-बिड़कर सत्य हो जायेंगे । जो बनेंगे उनको रोग-महामारी और भकात हृष्य कर जायेंगे । तरह व्यपित पृथ्वी भारमुक्त हो जायगी और केवल सत्वगुणी प्रकृति के जीव ही बचेगे ।'

'निष्कलङ्की दल' के संस्थापक प० से बालमुकुन्दजी एक दिन मेरी (श्री सान्यास जी) मुवाक़ात हुई थी । उनको पब्लिक 'हनुमान जी' कहा कहती थी । वे कभी-कभी दिल्ली की सड़को पर पुकार उठते थे—'भगवान का अवतार हो गया है । पापी लोगो ! ताडधान । मज्जनों ! मनुः-करण से भगवान की शरण हो जाओ । जो पाप कर चुके हो उनके क्रिये माफी माँगो और धामे के लिए तौबा करो । मगर पापियों का निस्तार नहीं ।'

श्री० सान्यास जी सेंट्र बालमुकुन्द जी से सन् १९१४-१५ के लगभग हुई थी । पर वे सन् १९८५ के आसपास से ही दिल्ली में 'कल्कि अवतार' की उपासना और प्रचार कर रहे थे । उन्होंने अपने घर में कल्कि भगवान की एक पीठल की मूर्ति स्थापित कर रखी थी । नित्य प्रति उसकी पूजा करते और वह भजन पाठे —

भावन-भावन कह गये जो तुम कर गये कौल अनेक ।
 माधुरी मूरत मुख रेख, सम्मल वाले जाना हमारे देश ॥
 देखत-देखत वाट पारी म्हारे रूपा हो गये केश ।
 गिनत-गिनत म्हारो घिसी अंगुरियो की रेख ॥
 माधुरी मूरत लम्बो केश ।
 सम्मल वाले जाना हमारे देश ॥

बालमुकुन्दजी बड़े गौमन्त्र भी ये घोर वास्तव में उनके प्रचार
 कार्य का मुख्य उद्देश्य भी रखा ही था। वे प्रायः हनुमान जी की सी
 पदा कबजे पर रखकर शाम के बक्क राजारो में निकलते घोर यह
 ऐतान करते थे—

'सृष्टि तू गोपी से द्रोह करना छोड़ दे बरना तुझे विनाशकारी
 महाभारत का सामना करना पड़ेगा। कलिक भगवान गोपी की रक्षा
 विरद के साथ घोर विध्वंसकार रूप में आ रहे हैं। वे सतयुग की स्था-
 पना करेंगे। जो लोग भगवान के नाम के मरो में घूर होंगे वे प्राक्मिर
 ऐश्वर्य से भरे पूरे हो जायेंगे। मादृ-ग-परास्त (भौतिकवादी) फूड़ा-कर-
 कट की तरह आइसे बुझा जायेंगे।'

बालमुकुन्दजी का यह भी कहना था कि 'भगवान महाराज'
 के प्रकट होने के पहले हजारों भक्ति ऐसे निकलेंगे जो कहेंगे कि हमी
 कलिक हैं। सब बात प्रायः यह भी देखने में आई कि 'गुलामी' की
 सामना वालों को कलिक भगवान के नाम से विशेष धरराहट होती है,
 क्योंकि वे स्वयं 'भगवान' बन कर बेलों को मूढ़ना चाहते हैं। 'कलिक'
 के प्रकट होने पर ये सब 'नकली भगवान' छतरे में पड़ जायेंगे, इसमें
 संदेह नहीं।'

ठाकुर दयानन्द का प्रख्यात मिशन—

विश्व-प्रेम के प्रचारक ठाकुर दयानन्द का धार्मिक आशान के

सितंबर' नामक स्थान हुआ था और वहीं उन्होंने सन् १९०६ में 'पद्मनाभल माथम' की स्थापना की। इसमें 'दानन्दमयी' (काली) और 'भद्रनाभेश्वर' (शङ्कर) की मूर्तियाँ स्थापित की गईं। वे ब्राह्मण और ब्रह्मूत, स्त्री तथा पुरुष, छोटे तथा बड़े के भेदभाव के विरुद्ध थे और उन्होंने अपने कार्यक्रम में सब को भाग लेने का समान रूप से अधिकार दिया था। उनका मुख्य उद्देश्य 'संकीर्तन' द्वारा जनता में साम्प्रदायिक भावों की वृद्धि करना था।

उनके माथम में कितने ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त मध्यमवर्ग सम्मिलित हो गये। उनमें से अधिकतर ने ग्रन्थासक्त ग्रहण कर लिया। कुछ महिलाएँ भी सम्पादिका बन गईं। जब इनका दल गांधी में घुसकर भगवद्-भक्ति के साथ ही समाज सुधार, समान अधिकार, राजनीतिक स्वाधीनता आदि का प्रचार करने लगा तो सरकारी अधिकारियों की अकृष्टि इन पर पड़ी। उपर 'ऊँची जातियों' के कितने ही लोग, विशेषतः 'ब्राह्मण पण्डित' नामधारी भी इनकी प्रसूश्यता निवारण, पारी स्वतन्त्रता जैसी 'समाज विरोधी' पानी जाने वाली प्रवृत्तियों के विरोधी बनकर सरकारी अधिकारियों को और भी भड़काने लगे। परिणाम यह हुआ कि दो चार वर्ष के भीतर सरकार ने पुलिस और सेना द्वारा इनका माथम भङ्ग करा दिया और बहुमहत्वक लोगों को पकड़कर जेल भेज दिया।

पर ठाकुर दयानन्द पर इन घटनाओं का कुछ प्रभाव न पड़ा। वे जेल में रहकर 'भगवान' का कार्य करते रहे। छूटनाम जाने पर उन्होंने फिर संकीर्तन प्रचार कार्यक्रम शिवा और देश विदेश में विश्व-शांति का आन्दोलन करने लगे। ठाकुर दयानन्द ने विश्व-शान्ति का जो पौधा लगाया था वह सठ वर्ष का दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर भी अभी तक फलप रहा है। उनका 'भद्रनाभेश्वर मठान' कई स्थानों में अपनी छात्राओं स्थापित करके अनुपम मात्र में छात्रावास के सिद्धान्त का प्रचार

कर रहा है। उन लोगों का विश्वास है कि 'यद्यपि ठाकुर के भौतिक तौर का तिरोधान अब से बीस वर्ष पूर्व हो चुका है, पर वे यादव प्रभर हैं और निरन्तर अपने भक्तों के द्वारा 'विश्व-धर्म' की ज्योति को प्रकाशित रखेंगे।' ये सुब 'भवतगणु' ठाकुर दयानन्द की एक देवी सत्ता के रूप में ही मानकर अभी तक उनके 'विश्वत' को अंधित रखे हुए हैं।

माता आनन्दमयी—

यद्यपि माता आनन्दमयी ने सार्वजनिक रूप से 'प्रवृत्तार' जैसी कोई घोषणा या कार्य नहीं किया है और वे अपने अनुयायियों को धार्मिक उपदेश ही दिया करती हैं, पर उनके सम्बन्ध में उनके सह-कारियों ने कितनी ही ऐसी धमस्कारपूर्ण बातों प्रचारित कर रखी हैं, जिनसे हजारों लोग उनको भादि पक्ति जगदम्बा का प्रवृत्तार ही मानते हैं। कहा जाता है कि—'विवाह होकर अनेक वर्ष तक पति के साथ रहने पर भी कभी उनका दाम्पत्य सम्बन्ध सम्भव न हो सका।'

माता आनन्दमयी के प्राग्यात्मिक उपदेश काफ़ी सारगर्भित होते हैं, यद्यपि वे बाल्यावस्था में पढ़ी-लिखी अथवा सुशिक्षिता नहीं थीं। जिस प्रकार श्री रामकृष्ण परमहंस धनपढ़ होने पर भी भाषा-ज्ञान की ऊँची से ऊँची शिक्षा देते रहते थे और सामान्य पाठशाला में ही धर्म के सूक्ष्म तत्वों का निरूपण कर देते थे, कुछ उसी प्रकार की स्थिति माता आनन्दमयी की है। इसलिये अनेक बड़े-बड़े शिक्षित और पदाधिकारी व्यक्ति और उच्च पदाधिकारी व्यक्ति उनके अनुयायी बन गये हैं, जिनमें एक बहुत बड़ा भाग शक़्तालियों का ही है।

सत्य समाज का प्रवृत्तारवाद—

'प्रवृत्तारवाद' का सबसे सदा उदाहरण वर्षों (मध्य प्रदेश) के 'सत्य समाज' और उसके सञ्चालक 'स्वामी सत्यभरतजी' का है। हम तो समझते थे कि गज तीस वर्षों में कई ही 'प्रवृत्तारों' के हो जाने पर

प्रबन्ध यह पान्दोलन समाप्त हो गया होगा, पर 'सत्य-समाज' के मुहावर 'जङ्गम' को देखते से पता चलता है कि उनके सञ्चारक स्वामी सत्यभक्त जी ने इन दो चार वर्षों में ही 'भवतार' को पदवी धारण की है। वैसे हमने स्वामीजी की मिली पुस्तकें बहुत वर्षों पहले से पढ़ी हैं और उनके धार्मिक विषयों के बुद्धिवादी विवेचन से सभी पाठक बहुत प्रभावित होते हैं। ये धर्म के उसी रूप को मानते हैं जो तर्क और विज्ञान की कठोरी पर सत्य और उपयोगी सिद्ध हो सके। पर न मात्रूम क्या सोचकर इधर कुछ समय से वे और उनके 'भवतार' उन्हें भवतार प्रथवा पैगम्बर के रूप में प्रकट करने की चेष्टा कर रहे हैं। दिसम्बर १९६८ में 'सङ्गम' पर जो 'अध्याती विशेषाङ्क' प्रकाशित हुआ है उसमें पृष्ठ २७० पर एक कविता में कहा गया है—

नर नारायण दयामय सत्यभक्त सरताज ।
जन्म धार कर रख लई विश्व-जनों की लाज ॥
सत्य शरण का कर दिया सद्गुरु ने उद्धार ।
सर्वेश्वर है दास के सत्यभक्त अवतार ॥

दिसम्बर १९६७ के अङ्क में भी 'भवतार' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई है जिसकी कुछ पारनें इस प्रकार हैं—

धनुषा पर गुञ्जित कलित नियति क्षण,
विहंग वृन्द उड़ा करने नय चौर पोषण ॥
भानुरश्मि दौड़ी करने छिन्न सानी को,
द्विखेरने अमिट स्नेहोज्ज्वल वाणी को ॥
जागृतार्थ सत्येश्वर इत सत्यभक्त प्रकटा ।

बन मानवता हमदर्दी दुर्गुणों पर रूपटा ।
सत्य-समाज प्रवर्तक आया फैलाने सुवास ।
सन् अठारह सौ निनानवे के एकादश मास ॥
युग-युग जीवो युग पुरुष सत्य ज्योति दातार ।
युग सृष्टा युग देव तुम सत्यभक्त अवतार ॥

हम स्वामी जो से बहुत समय से परिचित हैं। हममें घोर उनमें नाम की साम्यता भी है, जिससे भ्रम में गिरकर अनेक व्यक्ति दोनों को एक समझने लगते हैं। इसलिए एक धुम विन्तक को हीनियत से हम उनको बताना चाहते हैं कि 'बुधालो' मे जैसी 'अवतारी' की महा-महा' आई है, वैसी ही समय-समय पर उनकी छोछासेदर भी की गई है। इस 'लोक' को त्याग देने में ही मलाई है पुराने धमाने मे तो ऐसी बारों किसी हद तक धम भी जाती थी पर इन बीसवीं शताब्दी में 'अवतार' बनने वालों की व्यङ्ग-विद्रूप घोर विस्तृत के सिवा घोर कुछ नहीं मिल सकता।

जिनकी नीयत पर हमको सन्देह नहीं—

सन् १९३६ से १९५० तक 'सतयुग' को प्रकाशित करते हुए अनेक 'अवतारी' साग्रतों का परिचय मिला था जिनमे से कुछ प्रमुख का वर्णन हमने यहाँ तक किया। इसके प्रतिरिक्त पञ्जाब के स्वामी भोसानाथ जी तथा पटना के 'श्रीनिवास' आदि घोर भी दो-चार सज्जन ऐसे थे जिनकी नीयत पर हम सन्देह नहीं करते। वे चाहे 'अवतार' हों या न हों, पर हमारा श्वास है कि वे किसी मन्त्र-प्रेरणा से ही अपने को ऐसी 'दिवी-कृपा' सम्झ बैठे या दूसरों के द्वारा बहू जाने लगे। उन्होंने लोगों को धर्म और सदाचार की शिक्षा भी दी। यद्यपि उनकी बातों की मान्यता की जा सकती है घोर अनेक 'बुद्धिवादी' उन पर तीक्ष्ण व्यंग-प्रहार कर भी चुके हैं, तो भी हम उन पर दीवारोपल नहीं करते। हम यही मानते हैं कि किसी सामाजिक प्रेरणा, बहुदेव्य के प्रति उन्माह जपवा भ्रम हो जाने के कारण ही वे ऐसा करने लग गये।

ढोंगी अवतारों का पोलखाता--

'घर 'अवतार' की गद्दी पर दावा करने वालों में एक बड़ी संख्या ऐसे व्यक्तियों की है जो धावरण, चरित्र, उद्देश्य की दृष्टि से किसी प्रकार एक 'साध्यात्मिक गुरु' या 'दिवी पुण्य' नहीं माने जा सकते

उन्होंने केवल लोग घोर प्रोपगण्डा के जोर से अपने को इस रूप में प्रसिद्ध कर दिया और इस माध्यम कुछ लोगों के अनुयायी बनाकर अपने को पुत्रवाले । और एक इच्छा नरके ऐश धाराग की विन्वगी व्य-
तीत करते रहे । हम इस प्रकार के अनाधिकार कार्यों को अधिक धर्वा
करना अच्छा नहीं समझते, पर वे लोग जिन प्रकार घोलाघटों का व्य-
यहार करके धर्म-प्रेमी जनता को भ्रम और भ्रुनावे में डाल रहे हैं वह
धर्म तथा नैतिकता की दृष्टि से पतनकारी है । धर्म-भाव की ह्रास तो
अनेक कारणों से हो ही रहा, वे स्वार्थी लोग केवल 'धर्म-ध्वजों' का ही
'भगवान्' का रूप धारण करके उसे और भी बदनाम कर रहे हैं । इस-
लिए हम 'भवतार वाद' की प्रतिक्रिया के इस पक्ष पर कुछ प्रकाश
दासना आवश्यक समझकर कुछ नमूने यहाँ उपस्थित करना चाहते हैं ।

ब्रह्म कुमारियों के दादा गुरु-

इस समय हमारे देश में जो लोग 'भवतार' या उससे भी बढ़-
कर साक्षात् ब्रह्म और विष्णु-सिद्ध होने का दावा कर रहे हैं उनमें
सबसे प्रसिद्ध 'ब्रह्मकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय' के संस्थापक दादा
लेखराव हैं, जिनका पूर्व नाम ब्रह्मचन्द्र कुमरानी या और भव अपने को
'त्रिमूर्ति ब्रह्मा' कहते हैं । उन्होंने सरकारी नौकरी से रिटायर होकर
सन् १९२७ में 'धोम् मण्डली' नाम की संस्था की स्थापना की ।
इसकी योजना सम्भवतः प्रारम्भ से ही स्त्रियों द्वारा अपनी संस्था का
कार्य-सञ्चालन कराना भी, इसलिए वे हमेशा अनेक स्त्रियों को प्रमा-
वित करने की चेष्टा करते रहे । सबसे पहले उन्होंने एक विधवा स्त्री
माया देवी को बेनी बनाया और वह इनका प्रचार करने लगी कि 'वे
हमारे भगवान हैं, हम इनकी गोविण्य हैं । परन्तु कुछ लोगों ने इन पर
इतना सगाये जिनके कारण इन पर साहोर की अशासत में मुकदमा
चला और इनकी माफी माँगकर पीछा छुड़ाना पड़ा । सन् १९४० में
बिहार के एक गाँव में रहने लगे और वहाँ भी अनेक स्त्रियों की बेनी

बना दिया। वहाँ के एक हरिजन की स्त्री 'धनिया' को लेकर चब दिने जिनके लिये उनके पति ने मुकरमा चला दिया। धनिया और दादा लेकराद दोनों को पद सन में सजा मौजनी पड़ी।

फिर म प हैदराबाद (सिन्ध) में जाकर जम नदी और वही मपनी संस्था का कार्य शुरू कलाया, जब इस रास-लोता की मोट में दुरा-चार बहुत अधिक फैलने लगा तो सिन्ध के प्रसिद्ध लोक सेवा साधु टी० एल० शास्त्रानी ने इनके कार्यालय पर धरना दिया। इसके लिए शास्त्रानी को जेल भी जाना पड़ा।

देश का विभाजन होने पर ये भारत बसे धारे और पावू पहाड़ पर एक कोठी लेकर संस्था का कार्य बनाने लगे। इसमें इनको मन्दा मकनशा दिनी। इस समय देश भर में इनकी संस्था की १३० शाखा-ये काम कर रही हैं जिनके सञ्चालन में चार-पाँच सौ स्त्रियाँ और कुछ पुरुष भी भाग ले रहे हैं। समय-समय पर ये साम्प्रदायिक विषयों का प्रचार करने के उद्देश्य से चित्र-प्रदर्शनों को काते रहने हैं। पर इनकी बातें ऐसी घंटे-घट और मपनी मजबूत-बादा में होनी हैं कि कोई उनका भाव्य बलती कमल नहीं सकता। उदाहरण के लिये इन्होंने मपनी परिषद देते हुए लिखा है—

“श्री कृष्ण की मात्मा ५००० वर्षों में ८४ जन्म लेती है—मन-पुत्र (१२२० वर्ष) में सूर्यवंशी देवता कुन्त में सतीप्रयाग एवं पूज्य महाराजन् के रूप में घाट जन्म (वैशाख १२३० वर्ष) में, कन्दव ता में राजा-भाव्य महि १२ सती कुली जन्म, दापर और कनिपुत्र (१२०० वर्ष) में तिरोमणि सत्त राजा मपवा प्रजा के रूप में ६३ जन्म, मर 'मज्जम-मान' में, जबकि वह अपने ८४ वें जन्म में श्री मन्मि मप में है तो हम कुछ हम में परम पिता परमपदा ज्योति-निर्णम शिव ने प्रकृत किया है और उनका नाम 'महा' रता है। यही 'महा' स्थापन हो रहे मठपुत्र के प्रादि में पुनः श्रीकृष्ण के रूप में जन्म लेते।”

इस प्रकार सादा लेखराज इस समय मनुष्यों के लिए 'ज्ञान और योग' को सिखा देकर मुक्ति प्रदान करने के उद्देश्य से बन गये हैं । पर वह अपनी 'शहा कुमारियों' द्वारा अपने चंगुन में फँसने वालों को कैसा 'योग' सिखा रहे हैं, इस सम्बन्ध में ज्यादा न लिखना ही अच्छा है ।

मेहर बाबा का अद्भुत मौन-व्रत-

महमदनगर (महाराष्ट्र) में रहने वाले मेहर बाबा के (जो जन्म से पारसी हैं) के सम्बन्ध में शिकायत तो कोई मुने में नहीं आई पर हीम चालीस वर्ष से 'मौनी' बनकर सबहार का खौब उन्होंने भी पूरा किया है । जिस समय वे पूना के कात्तेज में पढ़ते थे एक बृद्ध फकीरानी 'बाबा बाब' के सम्पर्क में आकर वे कोई योग क्रिया करने लगे जिससे दिमाग में खराबो का गई और पढ़ना-लिखना सब छोड़ बैठे । कुछ समय पश्चात् 'सम्भारम-भाग' में आकर जाने पर वे 'सिद्ध योगी' बन गये । उन्होंने मौन-व्रत धारण कर लिया और घोषित किया कि जिस दिन मैं अपना मौन न बंधूँगा उसी दिन संसार में सुख-प्रलय होकर नवीन युग की स्थापना होगी । इसलिये ओ लोग अपना कर्माणु चाहते हैं और उस भयङ्कर काल में सुरक्षित रहकर सतयुग के नागरिक बनना चाहते हैं वे मेरे सारेसानुसार काम करें ।"

मेहर बाबा ने गत तीस-चालीस वर्षों में इतने बार अपना मौन तोड़ने और उसी दिन 'नया युग' आरम्भ होने की घोषणा की है कि समाचार पत्रों के पाठक उनको एक तरह का मजाक समझने लगे हैं । सन् १९१८ में अपने ऐसी घोषणा एक वर्ष के रूप में छत्रवाकर सर्वत्र बँटवाई जिसमें कहा गया था—

"मैं सिद्धजाने के लिए नहीं बल्कि ज्ञान के लिये आया हूँ । समाधि काल के ये सिद्धान्तों तथा उपदेशों के मुताबिक पनना सिखाया जा रहा है, लेकिन इन्सान ने इसकी कोई परवाह नहीं की । इसलिए

मैंने अपने वर्तमान व्यवहारिक स्वभाव में और बाग्य कर रहा है। मिठनी बातें सुनने सुन्ने जाती हूँ वही मुझे बड़ाई गई। पर उनके सुन्दर जीवन बिगड़े का नन्दन था गया है। मेरी हृदय से तुम्हें पता सफुल्ल-आव दोगना नन्दन है। मैं उनी हृदय की धारा बहाने जाना है।”

एह समय भी काली का शीत रज, पर देह शरीर का शीत उनी प्रकार कायम है। वे अब उन्नत में हृदयन को बरते देखते हैं उनी ऐना ही 'श्रीत ठोड़ने' का शायदा कर देते हैं। ऐसे ही शायदे करते-करते हाल ही मैं उनका धन हो गया, पर दुनिया की दुर्दशा बँधी की उनी नोकूद है।

कलिक प्रवतार के गुरु

'प्रवतार' में बड़ा धारणंशु है और उनमें रहे-बड़े शरीर-शर रेश हो जाते हैं। हृदय के बजाती स्वामी ब्रह्मदीश्वरानन्द की वर 'प्रवतार' की धारणशक्त आन पशो ही उन्हीं कुतु बोड-ओड करके एक कलिक मन्दिर बना दिया। उनका कथा है कि कलिक धारण-शक्त नृप आण्ड में पनेक बार उनके जानने नृप कद में प्रकट होने रहते हैं। उनका जन्म सन् १९२५ में होया और उनके मातापिता इसी समय मरुग में निगत कर रहे हैं। स्वामी ब्रह्मदीश्वरानन्द के धारण में रहने वाली संन्यासिनी महाशरीरी कलिक देव की धारणास्था में उनकी नुष्ट होशी। कलिक धारण के धारण से इसी समय उन्नत देवता और शरीर दुर्जे के शक्ति कुनि ब्रह्मदीश्वरानन्द की के धारण में धारण उनकी धारणा शक्ति देते रहते हैं। उन्हीं इस समय में 'धारण' निम्नने के रूप पर कलिक धारण के प्रकट होने की धारणा धारण विनी है और उनको शक्य करके धारणा: शीतले की एक धारणी पुस्तक धारण शक्य है।

पर इस प्रकार की कहानियों से किनो का कोई नाम हो सकेगा यह हमको नहीं जान पड़ता । अधिक से अधिक उनको कुछ अनुयायी मिल सकते हैं, और उनकी सहायता से माथम का काम चल सकता है । पर लोगों के सामाजिक भावों को ऐसी मनमदन्ध बातें बहुत अधिक सुनने से धक्का ही लगता है, और वे उसकी सभी बातों पर पवित्रानु करने लगते हैं ।

कादियाँ के गुलाम महमद—

अनेक पाठकों के लिए यह एक आश्चर्य का विषय जान पड़ेगा कि प्रवतार के विषय में एक मुसलमान का नाम कैसे था गया । पर भावकल की लुभिमत्तापूर्ण दुनिया में सब कुछ सम्भव है । हम उनको बसवाना चाहते हैं कि एक नहीं बीसियों मुसलमान संकड़ों वर्षों से हिन्दुओं से धर्मगुरु बनने की कोशिश करते रहते हैं और उन्हीं में से कई धारात्म 'कल्कि प्रवतार' को सद्गुरु का दावा कर रहे हैं । हमें से प्राणा गौ का नाम तो बनता मैं बहुत प्रसिद्ध है और गुबरात तथा दक्षिण प्रमोका में कई लाख हिन्दू उनके अनुयायी बन चुके हैं । गुलाम महमद ने भी शायद इन प्राणाखी के उदाहरण से ही प्रेरणा लेकर यह जास फैलाया हो ।

जो कुछ हो सब से बहुत वर्ष पूर्व गुलाम महमद के कई प्रचारक हमसे प्रयाग के कुम्भ मेला के अवसर पर मिले थे और उनके कुछ वर्षों के 'मत्स्य' में उनके सम्बन्ध में कुछ प्रकाशित करने का अनुरोध किया था । उन वर्षों में स्पष्ट रूप से निम्ना का कि गुलाम महमद मत्स्य के प्रवतार हैं और वहीं सब कल्कि प्रवतार होंगे—

‘प्रिय हिन्दू भाइयों ! हम सब एक ही वेद में कल्पे फूले हैं और हमारी शोचनीयता की भाषा भी प्रायः एक ही है । परमात्मा के बनाये चाँद और सूर्य हम सबको समान रूप से प्रकाशित करते हैं । अब

ईश्वर को दयालुता ने हम सब में कोई भेद नहीं किया तो फिर हमारा ईश्वर के प्रेम करने में क्यों भेद हो ?

'इस समय भगवान का जो व्यवहार हुआ है वह किसी खास जाति का नहीं है । वह 'बेहूरी' भी है क्योंकि मुसलमानों को मोक्ष का आदेश साधा है । वह 'ईसा' भी है क्योंकि ईसाइयों के उद्धार की सामग्री साधा है । वह 'निष्कलंक व्यवहार' भी है, क्योंकि आपके लिए ही मेरे हिन्दू भाइयों । आपके लिए ईश्वरीय प्रेम के प्रकाश को लाया है । इस 'निष्कलंक व्यवहार' का घुम नाम श्री 'निर्वा गुणम महामद' है, जो कादिवाँ जिला मुहम्मदपुर (पञ्जाब) में प्रकट हुए हैं । ईश्वर ने उनके हाथ पर अपने हमसरो चिह्न प्रकट कराये हैं । उनके द्वारा ईश्वर की श्याम तथा सत्य से परिपूर्ण करुणा चलता है ।

इस प्रकार की व जाने कितनी दम दिगाना की बात उन पर्वों में ही गई हैं । कितने ही प्रान्तों में बहुसंख्यक हिन्दू उनको व्यवहार मानने भी लग गये हैं । पर यह भावचर्य की बात ही मानी जायगी कि स्वयं हिन्दुओं में इतने 'व्यवहार' होते हुए भी वे अन्य धर्म वाले दल-तारों के भ्रष्ट बनने की भी शैषार हो जाते हैं । हम तो इसे उनका महसूस 'व्यवहार प्रेम' ही कह सकते हैं ।

व्यवहारों की भीड़—

संसार में गुण परिवर्तन का जो-प्रयोजन लिया है वह अपने दिवानों के कल्पानुसार सन् १९४३ में साधा था । उसी को आधार बनाकर 'बिगवनी' गुस्तिफा द्वारा 'कलियुग का मन्त्र घोर सतयुग मायमत' का प्रायोगिक देश भर में फैलाया गया था । उससे कुछ देही हुए बहने लगी कि चारों ओर से व्यवहार निकल पड़े । दिन खौबों में एक बिट्टी लिए तकने की भी योग्यता नहीं थी और जो सामान्य लोग-लोक देखने की दुकान करके या मामूली बोधरी या मक-दूरी करते भीषा-निर्वाह करते थे वे भी अपने को 'व्यवहार' घोषित

करने लग गये । हमने साधारण सरकारी नौकरों और भीख माँगने वाले साधुओं को 'अवतार' होने का दावा करते देखा था । इस तरह के सब लोगों की संख्या पाँच सौ से भी ऊपर हो तो कोई आश्चर्य नहीं । उनमें से सौ-पचास की तो हम स्वयं जान गये थे । ऐसे लोगों में से कुछ को सफलता भी मिल गई और वे हजार-पाँच सौ अनुयायियों के सहारे सभी तक अपना नाम कायम रखे हुये हैं । अधिकांश उस दरसाह की सहर के ठगडा हो जाने पर अहाँ के तहा पहुँच गये । अनेक अवतार बनते-बनते ही कास के गाल में समा गये । इस प्रकार स्वार्थी अथवा अधियेकी लोगो ने उम समय 'अवतार' के नाम पर एक समासा छडा कर दिया और एक उच्चकोटि के धार्मिक और शास्त्रीय विषय को सर्व साधारण की निगाह में हास्यास्पद बना डाला ।

इससे प्रकट होता है कि यहाँ की जनता ऊपर से 'धर्म-धर्म' पुकारते रहने पर भी वास्तव में धर्म से कितनी परे और केवल अंध-विश्वास के आधार पर चलने वाली है । अन्याय यह कैसे सम्भव था कि सामान्य साधुओं से लेकर मोटर ड्राइवर और मजदूर तक अपने को 'भगवान का अवतार' कहने का साहस करने लगते । ईगार्ई, मुहत्तमान, यदूदी, पारसी आदि किसी धर्म वाले में अभी तक ऐसी छूट नहीं है कि हर एक अपने को 'भगवान' बता सकें । उनमें ऐसा करते ही उस व्यक्ति पर चारो तरफ से लानड-मत्तामत की बौछार होने लगती और उसका समाज में रह सकना भी असम्भव हो जायगा । पर जो हिन्दू धार्मिकता के सब से अधिक जानकार बनते हैं वे धार्मिक-क्षेत्र में हर प्रकार के ढोंग और धूर्तता को सहन ही नहीं कर लेते वरन् उसे सहयोग देने को भी तैयार हो जाते हैं । यह अवस्था कदापि थोपस्कर नहीं मानी जा सकती ।

हमने इस तरह के नकली अवतारों में से दो-चार का वर्णन ऊपर दिया है । अब से २५-३० वर्ष पहले इस तरह के जोसिर्षी बनावटी लोगों का हात हमने अपने 'सठयुग' मासिक पत्र में प्रकाशित किया था । उनकी सीनाएँ इतनी अधिक हैं कि यदि पूरा लिखा जाय तो ध्यय में

पचामो पन्ने गर आवेने । इत तिवे आवे हम वहुन छेनेर मे ही ऐसे कुछ
'अवतारो' का परिचय देते है ।

[१] कृष्णानन्दजी दादा धूनी वाले—

सुना जाता है कि धूनी वाले दादाजी वास्तव मे उच्च कोटि के
साधक और गुरु थे । परन्तु उनके देह त्याग के पश्चात् उनके कुछ
शिष्यों ने उ हे साक्षात् शरकर का अवतार बताना शुरू कर दिया—

इस पर भक्त वहे दादा के यहां यही है शिव अवतार ।

बादि मंथुनी-सृष्टि-पिता ये वावा आदम के दातार ॥

लादिम एडम यही इन्ही को स्वयं प्रभु ने कहा पुतार ।

मानो चहे न मानो कोई दादा निश्चय है अवतार ॥

[२] स्वामी प्रणवानन्द—

बंगाल के स्वामी प्रणवानन्दजी के सम्बन्ध मे 'हस्ताव' के एक ग्रह
मे लिखा है कि आरम्भ मे यह बहुत वपौत्रक साधन और उपस्था करते
रहे और एक निस्तुड मायु पुत्र थे । पर कुछ समय पश्चात् उनकी
तरफ से 'पूजाराधना पद्धति' गुह्यिज्ञा प्रकाशित की गई जिसमे लिखा
था—“इस युग मे फिर मुक्ति-पिपासु भक्त नरनारी के आर्तनाद से प्रण-
वान स्वयं जगद्गुरु रूप मे स्वामी प्रणवानन्द के शरीर मे अवतीर्ण हुए
है । जायो भक्त नरनारियों ने उनके शरण-अपल की शरण लेकर,
जोइन साधक किया है । चारो ओर यह समाचार बिबली की भाँति फैल
गया है ।”

[३] हस्तावतार—

इन दिनों 'हस्तावतार' जो की दिल्ली आदि नगरो मे बड़ी पून
रही । उनके पूतों पर पतासे बताया जाते थे, जिन्हे 'प्रथम लोग' माने
थे । इनका यह कार्य विछमे एकदोस सोत वर्ण से चल रहा था । उनी
समय उनके प्रचारक ने हमारे एक परिचित सज्जन से कहा था—“जो
सोता मे राम यने थे और शारर मे कृष्ण बने थे वही भगवान पर
'हस्तावतार' है । इनके बिहार, बंगाल मे सागरो शिष्य हैं, जो इनके
बताये 'मोह' मंत्र का शप करते हैं । यह अपनी मंत्र है । इस बात से

समाज समाचार में परिवर्तन हो रहा है : राजस भी इसी से घारे जा रहे हैं ।”

[४] आनन्द-मार्ग के संस्थापक—

अभी हमने समाचार पत्रों में ‘आनन्द मार्ग’ के विषय में पढ़ा था कि दिल्ली और भारतवर्ष के अनेक नगरों में ही ठगका प्रचार नहीं हो रहा है परन्तु जर्मनी तक में उनकी शाखाएँ स्थापित हो गई हैं ।” यह “आनन्द मार्ग” रेनवे की नौकरी से रिटायर होने वाले एक सज्जन ने पञ्चोत्त—तीस साल पहले चलाया था और उनका कहना था—

“आनन्द मार्ग में भगवान की साकार और निराकार दोनों शक्तियों को माना गया है । जब हम भगवान् की सर्वशक्तिमान मानते हैं तो अवतार से इनकार कैसे कर सकते हैं ?”

[५] अखिल ब्रह्माण्डपति—

हमको ‘कल्कि ब्रह्मवाणी’ नाम की मासिक पत्रिका का एक विशेषांक प्राप्त हुआ था, जिसके ऊपर यह पद्य दिया गया है—

विश्व-शान्ति का दिव्य-भाव मानव मन में साकार हुआ ।
व्याकुल यमुधा की पुकार से पुनः ‘कल्कि अवतार’ हुआ ॥

इस ‘कल्कि अवतार’ का जन्म सन् १९२१ बाराबंकी में (उ०प्र०) के एक गाँव में हुआ था । वे ही काव्यरत्न अपने को ‘अखिल ब्रह्माण्डपति’ कहने लगे हैं और कुछ मूर्खों को ‘भारतपति’ ‘एशियापति’ ‘आस्ट्रेलियापति’ आदि की उपाधियाँ दे रहे हैं ।

दूसी प्रकार के अवतार नाम धारियों के बीसियों किस्से हमारे पास मौजूद हैं जिनमें से कुछ को तो पूरा पागल या ठग ही कहा जा सकता है । कोटनूलती (राजस्थान) के एक मजदूर ने एक पर्चा छपाया और उसमें लिखा—“हम हैं श्रीमहान् भगवान् और हमको ही कल्कि भगवान् कहते हैं ।” अम्बाना (पंजाब) के एक रिटायर्ड रेनवे गार्ड ने घोषणा की “भाप बड़ी अष्टमी को भगवान् प्रकट होंगे और मैं राधा बन जाऊँगी ।” यानदेव (महाराष्ट्र) के रामदास भोसले ने अपने को ‘अवतार’ और

'मीलों का राजा' घोषित कर दिया। मान्धाता (मध्य प्रदेश) में एक साधु माजानन्द चैतन्य रूप से 'बुद्धावतार' कहने लगे। दरभंगा की तरफ का एक बानस वृक्ष के समान वेषभूषा बनाकर मध्य प्रदेश के रामपुर आदि स्थानों में भेंट-पूजा ग्रहण करने लगा। इस प्रकार 'बिना-बनो' की 'शक्तिधराणी' की आधार बना कर सन् १६४३ के आसपास देग में 'अवतारों' की बाढ़ ही आ गई।

नकली अवतारों से बचो—

उपरोक्त नकली अवतारों की लीलाओं की पढ़ने-पढ़ने पाठक वही मुझे भी कोई 'अवतारी' न समझने लग जायें! सायद वे कहें कि ये भी विभिन्न अवतारों से मिलजुल कर अपना स्थान बनाने की चेष्टा में लगे होंगे! अन्यथा इतने अवतारों को दूँदले फिरने की क्या आवश्यकता थी? इस सम्बन्ध में मैं बताना चाहता हूँ कि दिल्ली के 'अवतार-मस्ती' ने मुझे भगवान का अवतार तो नहीं पर उनका कोई छोटा-मोटा महकारी अवतार बनाने का प्रस्ताव अवरज किया था! पर मैंने अपने को किसी भी प्रकार 'अवतार' के योग्य नहीं समझा और इस कारण मैं आज तक सामान्य मनुष्य ही बना रहा। इनका ही नहीं 'मठनुय' मासिक पत्र में अनेक छोटे-बड़े अवतारों का परिचय देते हुए मैं पाठकों को इस सम्बन्ध में सावधान भी करता रहता था कि वे ऐसे मामलों में अपनी विवेक बुद्धि से काम लें और किसी 'नकली भगवान' के फेर में न पड़ें। वास्तव में यदि कभी 'अवतार' होगा तो उसको यह प्रचार कराने की जरूरत न पड़ेगी कि 'वह अवतार है।' बरन् साधु सत्तार खुद ही उसे जान जायगा और उसके सम्मुख झुक जायगा। 'मई' १९४२ के अंक में "अवतार के सम्बन्ध में एक स्रम पूर्ण धारणा" लेख के अन्त में हमने लिखा था—

"हम यह नहीं कहते कि 'अवतार' एक व्यर्थ बतलना है; पर जिन लोगों ने उसको कहानों लिखने की शीर्ष, या एक 'गुण भेद' बना रखा है, उनको मारना हम अवश्य चाहते हैं। यह कहना कि 'अवतारों' किसी रेविज्ञान या पहाड़ में छिपाकर रखा गया है" ना समझौती बात

है। सभी तब परशुराम, रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, गौतमबुद्ध आदि ब्रह्मने 'अवतार' धरुनाये गये हैं, उनमें से कोई अठारह बीस साल की उम्र तक छिपाकर नहीं रखा गया था। तब 'कल्कि अवतार' के विषय में ही ऐसी बात फंलाने की क्या आवश्यकता है? इसे हम न ही छामिकता कह सकते हैं और न भक्ति-भाव।"

अगस्त १९४३ के 'सतसुप' में "सच्चा अवतार अभी दूर है" शीर्षक लेख में तरह-तरह के अवतारों के प्रकट होने का रहस्य इन शब्दों में प्रकट किया गया था—

"यों कहने के लिए अवतारों की कमी नहीं है। एक नहीं पनाशों बड़े और छोटे, मोटे और पतले, अमीर और गरीब, साधु और गृहस्थों, शिक्षित और अशिक्षित, सुन्दर और बदसूरत, हिन्दू और मुसलमान— सारांश यह कि सब तरह के और सब श्रेणियों के व्यक्ति अवतार बनने को सामान्यिष्ठ ही रहे हैं। पर शोक के साथ कहना पड़ता है कि वे भी हम साधारण मनुष्यों की तरह नोन, डेत, सरुड़ी की समस्या में ही तनसे रहते हैं। वे भी छनवातों की छुनामद करके कुछ पाने की शेषा करते रहते हैं। वे दूमरों का उद्वार रपा करेगे, स्वयं उनका उद्वार सर्व साधारण से दान पाये बिना अमम्भव है।

"ऐसी दसा हमारे देश की ही नहीं है। सदा से जब कभी संकट का समय आया है और लोग व्याकुल होकर किसी 'उद्वारकर्ता' की खोजने लगते हैं तो ऐसे अवसर से लाभ उठाने वाले अनेक लोग लठ पड़े होते हैं। ऐसे मनुष्यों की करमूतें देखकर ईशामसीह ने कहा था—

"सूँठे नवियों (पंगम्बरों या अवतारों) से खबरदार रहो। वे भेड़ की छात्र मोड कर पाते हैं, पर वास्तव में हिनक भेड़िये होते हैं। तुम उनके कर्मों से उन्हें पहिचानो।"

"जब हम किसी रास्ते चलते हुए व्यक्ति को अपने निये 'अक्षित द्रष्टाशक्ति' 'प्रिलोनेश्वर' 'परमात्मा का मंत्री' आदि विशेषण प्रयोग करते देखते हैं, या किसी को जीवन और मृत्यु का ठेकेदार बनते पाते हैं या किसी को स्वर्ग लोक का टिकिट बेचते सुनते हैं, तो हमको यही

विचार आता है कि हो न हो उक्त व्यक्ति के दिमाग का कोई पुर्जा डीला पड़ गया है ! अथवा किसी कारण वश उसे कोई भौतिक घटना मगा है जिससे ऐसी 'मनक' सवार हो गई है । ऐसे व्यक्ति हमारे देश में ही नहीं पाये जाते । योरोपियन मनोविज्ञान ज्ञानाज्ञी ने अपने ग्रन्थों में ऐसे अनेक रिमागी बीमारों या व्यक्तियों का बिक्र विषय है और उनकी पूरी तरह से जाँच पड़ताल करके वह निष्कर्ष निकाला है कि वे मोम अवतार हो गया किसी पापलक्ष्मण में निवास करने योग्य हैं । एक समय जकृतम में ही ऐसे धार व्यक्ति वे जो ईशानसीढ़ का अवतार होने का दावा करते थे ।

“हम 'अवतार' के विरोधी नहीं हैं । अन्य है वह युग जिसमें ऐसा कोई महापुरुष पृथ्वी पर परम रक्षता है और सौभाग्यशाली है वे लोग जो उसक सद्गुणदेशों में अपना जीवन वृत्ताय करते हैं । ऐसा महामानव अपनी सोकोत्तर प्रतिभा, अतुल त्याग और विष्वक्स्थान की अशोभ कामना के अभाव पर हम पद को प्राप्त करते हैं । वे राम की तरह राजसिंहासन को टुकरा देते हैं और धर्म रक्षा के काँटों भरे मार्ग पर सहर्य चलते हैं । वे कृष्ण की तरह छोटे से छोटे 'बाल-बासी' के पाप भ्रातृभाव का व्यवहार करते हैं और सर्वोच्च पदों पाकर भी लोक हित के लिये धारणी का दर्जा स्वीकार कर लेते हैं । वे बुद्ध की तरह राजसी भोगों को त्याग कर कठिन तपस्या द्वारा अपने शरीर को तुपा डालते हैं और अपनी साधना के फल स्वेच्छा से जगत् के उदार के लिये अर्पण कर देते हैं । वहाँ वे अवतार और वहाँ आचरण के ये 'स्वयम्भू अवतार' जिन्होंने अज्ञान लक्षण लिये से इक्षिता वगुण करके आराम की त्रिन्दगी व्यतीत करना ही है ।”

हमको ये शब्द अपने के नाम पर अर्थों का प्रकार होने देखकर ही विश्वासपूर्वक लिखने पड़े थे । अवतार सब होगा, वही होगा, क्या करेगा, आदि बातों के सम्बन्ध में भावुजतावत कोई अनुमान लगावे तो उसमें कोई घात मुराई नहीं, पर कुछ भी योग्यता, शक्ति और उच्च आदर्श न होते हुए अपने को 'परमात्मा' या 'ईश्वर' कहने लगना नहीं

कह उचित है ? हमको यह देख कर आश्चर्य होता है कि हमारे में क्या कोई अन्तिम तकनी यज्ञेदार, कमन्टर, रेलवे का टीटी कार्ड भी बनकर लोगों को छोड़ा देता है जो उसे गिरफ्तार किया जाता है और कहीं कहीं भी सजा भी जाती है, पर "नकली भगवान" बनने की कोई सजा नहीं ! श्रीमद्भागवत में एक कथा आती है कि कश्यप देव के राजा पीण्डूक ने गोपना की थी कि मैं भगवान विष्णु का अवतार 'वामुदेव' हूँ । श्रीकृष्ण को वामुदेव कहना या मानना विरुद्ध गणत है । उसने अपने दो नकली हाथ लगाकर उनमें मूख, पाक, गला पथ भी धारण कर लिये थे । उसने अपना दून हाथका भेजकर कृष्ण जी में कहलबाया—

वामुदेवोऽयसीर्गोऽहमेक एव न चापर ।

मूशानामनुकम्पार्य त्वं तु मिथ्याभिघोत्यज ॥

अर्थात्—एक मात्र मैं ही वामुदेव हूँ, दूसरा कोई नहीं हो सकता । प्राणियों पर कृपा करने के लिए मैं ही अवतार ग्रहण किया है । तुमने ही झूठमूठ अपना नाम 'वामुदेव' रख लिया है, अब उसे छोड़ दो ।"

श्रीकृष्ण ने दूत द्वारा उत्तर भिजवाया कि मैं तुम्हारे पास जाकर ही 'वामुदेव' नाम तथा विष्णु के चिन्हों को छोड़ूँगा । दूसरे ही दिन वे रथ पर चढ़कर उससे सामने पहुँच गये और कुछ देर मुह करके उसको दृष्टिगो तया सना सहित समपुत्र भेज दिया । 'नकली अवतार' बनने के लोक में पीण्डूक अपने प्राण और 'रथ' सब कुछ खो बैठा । हम भी 'अवतार' बनने के शौकीनों को पचना देना चाहते हैं कि आज नहीं तो कल हमही भी बुरी हायल हो सकती है ।

यह दसा देग, धर्म, समाज और व्यक्ति के लिए हितकर नहीं कही जा सकती । उसने जो दसा समझ निस्सन्देह 'सबतार' (मागदार्थक) की बड़ी आवश्यकता है—उसके बिना हमारे अस्तित्व कायम रह सकना कठिन है । पर हमके लिए ऐसे स्वार्थ रखने या 'सुनक' में पड़ने की आवश्यकता न होगी, वरन् जब यह प्रकट होगा तब उसे पहचानने में किसी को देर न पड़ेगी ।

ग्यारहवाँ अध्याय

खतर की आवश्यकता और हमारी भाषा-

खतरक होने को निश्चय है यदि उस पर "सन्धीरता" पूर्वक विचार किया जाय तो उस खतरा यही निश्चय निश्चय है कि यदि संसार में किसी को "खतरा" कहा जाय तो उनका मुख्य उद्देश्य मानव जाति का मार्ग-दर्शन करना ही है। वैज्ञानिकों के अज्ञानानुसार पृथ्वी पर बड़े बड़े खतरों से जीवन का विकास हो रहा है और इन बीच में छोटे से छोटे प्रत्यक्ष में खतरा पड़ने वाले-जीवजन्तुओं से लेकर मनुष्य तक के उत्पन्न होने में अनेक "दुर्घ" घटित हो चुके हैं। इन विभिन्न दुर्घों के प्राणियों की भाव करने पर निश्चय तोय इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि प्रत्यक्ष सूर्योदय-मान में ऐसे जीव उत्पन्न हुए, जो अपने समय में सृष्टि के सर्वोत्तम प्राणी समझ जाते थे। फिर भी आगामी "दुर्घ" में उनमें भी और बड़े प्राणी उत्पन्न हो गये। हमारे यहाँ मन्थ, कूर्प (कपुआ), धाराह, नरसिंह आदि को जो खतरा की पदवी ही गई है, उनका मुख्य कारण यही है कि उन दुर्घ में सबसे बड़े (विशक्ति) प्राणी थे ही थे।

सृष्टि के आरम्भ से लाखों तरह के जीवों का आविर्भाव होते-होते वर्तमान दुर्घ में सृष्टि, विवेक और ज्ञान से सम्पन्न मनुष्य का आविर्भाव हुआ है। हमारे यहाँ जो यह कहा जाता है कि २४ लाख योनिओं में जन्म करके मनुष्य का पापें मिलता है, यह बहुत कुछ सत्य ही है। चर्चा तक पता लगाया गया है मनुष्य को पृथ्वीतल पर उत्पन्न हुए दस-द्वार लाख वर्षों से अधिक समय नहीं हुआ। इनके पहले करोड़ों वर्षों में जीवजन्तु कर्मणः जनवर, पत्तपर, नमपर, कीड़ा, मकोदा, पतिया, मछली, साध, बीरान्द, पत्ती आदि अनेक कर्मों में प्रकट हो चुका है। उन योनिओं में से सुन्दर कर ही यह मनुष्य के दर्जे तक पहुँचा है। और आगे चलकर उसके और भी उत्थिति करने की पूरी सम्भावना है।

पर जब परिवर्तन की गति अत्यन्त तीव्र हो जाती है तब उसे 'क्रान्ति-कारी' कहा जाता है। वर्तमान युग क्रान्तिकारी है, क्योंकि इसमें परिवर्तन की गति बहुत तीव्र है। चारों ओर हमें वस्तुओं के टूटने-फूटने और सब प्रकार की सामाजिक, राजनीतिक और अधिकांश सरप्रायो से सफल-यसल की आवाज सुनाई दे रही है। वृद्धिमान और अनुभूति-शील मनुष्यों का विश्वास है कि इस समय राजनीति, अर्थशास्त्र और उद्योग-धन्धों से सम्बन्ध रखने वाली समस्याओं (नियमों) में कड़ी न कटी फुट बड़ी गलती है। यदि मनुष्यता को बचाना है तो हमें इस गलती को दूर करना होगा।

"विज्ञानवेत्ता हमें ये विभिन्न सभावनाएँ बतलाते हैं जिनसे यह पृथ्वी नष्ट हो सकती है। उदाहरणार्थ कभी सुदूर भविष्य में चन्द्रमा के बहुत निकट आशाने या सूर्य के ठण्डा पड जाने से यह नष्ट हो सकती है। कोई पुच्छन्व तारा या उलका पृथ्वी से आकर टकरा सकता है, या स्वयं धरती में से ही कोई जहरीली गैस निकल सकती है। परन्तु ये सब सभावनाएँ तो बहुत दूर की हैं, जब कि अधिक सम्भावना इस बात की है कि मानव जाति अपने ही जान नुाकर किये गये कार्यों से या अपने मूर्खतपूर्ण स्वार्थ के कारण स्वयं ही अपना सवनाश कर लेगी।"

पास्तव में यह बड़े घेद और सज्जा की बात है कि मनुष्य अपने को 'बुद्धि-गागर' समझता हुआ भी अपने पैरों में आप ही कुन्हाड़ी मार रहा है और इस प्रकार अपनी भ्रष्टता का स्वयं प्रदर्शन कर रहा है। सेमुएल मटलर नामक विद्वान् ने इस दशा को देगकर कहा है कि 'मनुष्य के विनाश और सब प्राणी यह समझते हैं कि उनका उद्देश्य जीवन का आनन्द लेना ही है। इसी से वे पाक-पाठ, गढ़कों और नदियों का जल जैसे अत्यन्त साधारण साधन पाकर भी तदा उद्यमते-फूटते और चिन्तित करते रहते हैं। पर मनुष्य उनसे हमारे गुना श्रेष्ठ लाभ रखते हुए भी क्रोध और आवेग में भरकर विनाश का ताडव चनने दे रहा है। यदि वह इन तरफ से शीघ्र ही गादवान नहीं हुआ

‘क्या शिक्षा द्वारा यह कार्य पूरा हो सकता है, क्योंकि आधुनिक समाज में सभ्यता का सबसे बड़ा प्रसाद यही माना गया है ? पर आजकल बाह्य-शिक्षा का बहुत अधिक प्रचार हो जाने पर भी उसमें ‘जीवन-विद्या’ का वह गुण नहीं पाया जाता जिसे मनुष्य में नैतिकता तथा सामाजिक एकता की वृद्धि होती हो ।”

‘क्या महत्त्व इस समस्या को हल कर सकता है ? आजकल के बट्टरपशी और जीवन-शून्य ‘धार्मिक’ कहे जाने वाले वास्तव में वह शक्ति और साहस नहीं होता जिससे स्वार्थरता और भ्रष्ट-विश्वास की ताकतों का मुकाबला किया जा सके । इन्हीं दोनों ने मनुष्य जाति को पुलाम बना रखा है ।”

‘क्या राजनीति हमारा मार्ग-दर्शन कर सकती है ? किसी भी राष्ट्र के ‘प्रतिनिधि’ कहे जाने वाले आजकल अपनी स्वार्थ सिद्धि में ही लगे रहते हैं और लोक कल्याण के आदर्श के संबंधों पीछे धास देते हैं । वे लोग इस समय जनता का विश्वास कदापि प्राप्त नहीं कर सकते ।”

‘क्या अर्थशास्त्र सुधार की रक्षा कर सकता है ? अर्थशास्त्री अल्प-व्यय के कोरे सिद्धान्तों में डूबे रहते हैं और मानव-जीवन के वास्तविक मूल्यों की तरफ से धीरे धीरे दूर हो जाते हैं । इसलिए वे उन शक्तियों को बिस्तुल नहीं समझते जो मनुष्य के भीतर काम करती रहती हैं”

‘तब समस्त परिवार का उदार आदर्श मानव-सभ्यता की रक्षा कर सकेगा ? यद्यपि परिवार हमारे समाज का मूलभूत आधार माना गया है, पर अब उसमें अपनी रक्षा और धन की भावना ही प्रमुख बन गई है ।”

‘क्या संस्कृति की वृद्धि होने से हमारा उद्धार हो सकेगा ? यद्यपि संस्कृति का महत्त्व बहुत अधिक है, पर वह मनुष्य की अन्तरात्मा तक प्रवेश नहीं कर सकती । आजकल संस्कृति का महत्त्व बाह्य तोष्टव की वृद्धि करना रह गया है । केवल उसके द्वारा मानव की स्वार्थरता पर विजय प्राप्त करके आध्यात्मिकता की स्थिति प्राप्त करना संभव नहीं ।”

“शाब्द विज्ञान मानवता के लिये मुक्तिदाता सिद्ध हो सके ? इसमें कोई सन्देह नहीं कि विज्ञान मानव-समाज की सर्वोच्च सफलता है। इस क्षेत्र में इस समय भी मनुष्य अमूर्तपूर्व चमत्कार दिखला रहा है। अगर मनुष्य केवल देह रूपी पंख तक ही सीमित होता तो विज्ञान ने उसकी उचित व्यवस्था हो सकती थी। पर मानव की रास्ता इससे कुछ अधिक है। उसमें भावनारमक, मानसिक, आध्यात्मिक शक्तियाँ भी पाई जाती हैं, जिनमें विज्ञान अभी तक प्रविष्ट नहीं हो सका है। इसलिये वह समाज का उद्धार नहीं कर सकता।”

इस प्रकार जब हम मानवता की प्रगति के सब क्षेत्रों पर दृष्टिपात कर चुकते हैं तो हम को सर्वत्र निराशा ही जान पड़ती है। पर यह दोष इन सब उपारों का नहीं है। ये ही सब मिलकर हमारे सर्वाङ्ग-पूर्ण जीवन के आधार बनते हैं। वास्तव में दोष तो उन 'नेताओं' अथवा 'राजालों' का है जो इन सामाजिक-शक्तियों का ठीक संचालन नहीं करते।

अन्त में हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इस समय मानवता को एक 'नवीन नेतृत्व' की आवश्यकता है। पुराने नेता असफल सिद्ध हुये हैं। हमारे वर्तमान नेता केवल नाम के नेता हैं। वे तरह-तरह के सिद्धान्त उपस्थित करते हैं, वाद्यों की बातें करते हैं, पर उनमें मानव-समाज को ठीक मार्ग पर चला सकने की समझ, बुद्धिमत्ता और शक्ति नहीं है। अथवा यो कहना चाहिये कि ये स्वयं अपने तुच्छ स्वार्थों में निरत रहते हैं। तब एक अन्धा दूसरे अन्धे का रास्ता कैसे दिखाना सकता है ?

अवतार (विश्व नेता) की विशेषताएँ—

अब एक ऐसे नेता के प्रकट होने की आवश्यकता है जो समस्त सामाजिक धारामो अर्थात् विज्ञान, राजनीति, संस्कृति, मजहब, परिवार, आर्थिक व्यवस्था को एकसूत्र में समन्वित कर सके। एक ऐसे नेता की आवश्यकता है जो जीवन और मानव-प्रकृति के संतुलित रूप को समझकर इन सब विभागों का एकीकरण कर सके और वह भी केवल

गिद्वान्त रूप में नहीं बरन प्रत्यक्ष जीवन-व्यवहार में । उसके विचारों की गहनता, उसके मस्तिष्क की महानता और हृदय की उदारता उसे अपने अनुयायियों में पृथक् दिखला देनी । उमरा अपना खीरन ही ऐता होगा कि वह जनता का राक्षस शिक्षक, प्राध्यात्मिकता का उदाहरण और जीवन-विद्या का वैज्ञानिक होगा । राजनीतिक दृष्टि से वह विश्व-साग-रिफ होकर, आर्थिक दृष्टि से मानवीय युगों को मोतिक सम्पत्ति में अधिक महत्त्व देने वाला होगा । उसका परिवार वास्तविक रूप में समस्त समार होगा । वह जीवन विद्या का सबसे बड़ा ज्ञाता होगा ।

हमको खोज करनी चाहिए कि क्या ऐसा नेता वर्तमान समय में मिल सकता है ? प्राचीन समय में बुद्ध, कनपयूससत, ईसा, स्विनोसा आदि ऐसे नेता उत्पन्न हुए थे, पर लोगो ने उनका महत्त्व पितनी ही पीढियों के बाद जान पाया । क्या इस बार हम ऐसी ही भूत करेंगे ? निश्चय ही महान नेताओं के चरित्र प्रेरणादायक होते हैं, पर मानवता उद्धार सुमद सस्मरणों से ही गही हो सकेगा । हमको ऐसे नेता के प्रत्यक्ष मार्ग-दर्शन की आवश्यकता है । हमको आशा करनी चाहिए कि ऐसा नेता अपनी वर्तमान पीढ़ी में मिल सकेगा, जो इन गर्वनाथों काट से मानव-समाज को सुरक्षित आश्रय-स्थल एक पहुँचा सके ।

‘अवतार’ क्या नहीं कर सकता—

ऐसे ‘नेता’ को हम ‘अवतार’ भी कह सकते हैं । इन दोनों शब्दों में केवल लौकिक और धार्मिक भावनाओं का अन्तर है । जो इस समस्या पर केवल सागारिक दृष्टि से विचार करते हैं, उनको ऐसा व्यक्ति साग-रिफ अथवा राजनीतिक ‘नेता’ जान पड़ता है । किन्तु ही राजनीतिक नेता अथवा विजेता भी इस दृष्टिकोण में अपने जो ईश्वर कहने लगते हैं । पौराणिक काल में हिन्दूकथन का अपने को ही ‘सगर्ग’ बतलाना और राम नाम लेने पर अपने पुत्र प्रजाद को मारने का प्रयत्न करना माधव इसी भाव का लोकर हो । वर्तमान समय में भी वैश्वविद्य और हिन्दूकथन को आश्रय-स्थल विजयो को देख कर उन देता के कुछ अन्ध विश्वासी इनका ‘दूसी अवतार’ मानने लग गये थे । पर ‘अवतार’ ऐसा दासदायी

और भीषण कर्म करने वाला नहीं होता । 'अवतार' की विशेषताओं पर एक श्यामिक दृष्टि कोण से विचार करने वाले विद्वान् ने लिखा है—

"महापुरुषों का अवतार संसार की सबसे बड़ी घटनाओं में से होना है । मानव-जाति के प्रत्येक महान् मकद में, जब सत्य का अनुभव घुंघना पड़ जाता है और मनुष्य न्यायनिष्ठ-कार्य करने में अधम हो जाता है—जब कमी मानवता अपने अगत कर्मों के दलदन में फँस जाती है—जब कमी वह अपनी ही उत्पत्ति की हुई जनज्ञान के कारण किर्लक्य विमूढ़ हो जाती है—जब कमी उसे मुक्ति दिनाकर नये पथ पर नये धरे में गति देने की आवश्यकता होती है, तभी किसी महान् आत्मा का मानव रूप में 'अवतार' होता है । मानवता 'उने' भूल जाती है, पर 'वह' मकद के अक्षर पर मानवता को सहायता देने की शक्ति नहीं भूलता ।"

युग-परिवर्तन का आशय—

किसी ऐसे महापुरुष का आविर्भाव मानव-जाति के लिये 'नवयुग' का पारम्भ है । नई व्यवस्था और नई सभ्यता जिसका वह पूर्वमास देता है, उस कल्पना की बातें नहीं रहती बल्कि जीवन का सत्य बन जाती हैं । अपने विचार, जीवन और कार्यों से ये नवयुग की सृष्टि और स्थापना करते हैं । अतः उनका व्यक्तित्व भी एक बहुत बड़ी चीज होता है । वह सर्वथा कर्मशील रहते हैं और इसी माध्यम से सारी जाति के चिन्तन, जीवन और कर्मों को प्रभावित करते हैं । उनके विचार और चिन्तन समस्त जगत् में व्याप्त हो जाते हैं । प्रत्येक भूभाग की ग्रहणशील आरमाएँ उनकी वाणी को ग्रहण करती हैं और वह वाणी उनके जीवन-कार्यों में अभिव्यक्ति पाती है । इन प्रमुख विचारों के चिन्तन और विचार किर उनके धारो और रहने वाले साधियों के पास पहुँचते हैं और इस प्रकार मानव-जाति के चिन्तन और विचारों का घरातन ऊँचा होना जाता है । चिन्तन और विचारों के परिवर्तन के साथ कार्य भी बदलते जाते हैं । इस तरह क्रमशः नई व्यवस्थाओं की सृष्टि होती है, नये सम्बन्ध स्थापित होते हैं, नई सस्थाएँ

अस्तित्व में आती रहती हैं, और एक विश्वकुल नई व्यवस्था दृष्टिगोचर होने लग जाती है। यही 'युग-परिवर्तन' होता है।

नवयुग-आगमन का यही एक तरीका है। इसका आरम्भ छोटा, प्रस्पष्ट और प्रायः अनाकर्षक होता है, लेकिन इसका परिणाम बहुत दूरव्यापी होता है। किसी भी 'महापुरुष' की यही कार्य प्रणाली होती है। आरम्भ में वे अनेके ही चुपचाप और गान्धि पूर्वक कार्य आरम्भ कर देते हैं। धीनी उत्कृष्टि से कभी अधीर नहीं होते। वे एकदम निश्चिन्त और सन्देश रहित होते हैं, क्योंकि उनके हाथों में सब से शक्ति-ज्ञानी धर्म—उनका चिन्तन होता है। मनुष्यों के विचार, जीवन पद्धति और कार्य पुराण रूप से उनको पकड़ में होते हैं। आरम्भ में वह अपने को पर्दे के पीछे अपरिचित और अनजान रखते हैं। पर जैसे-जैसे आध्यात्मिक पुनर्जागरण होता जाता है वैसे वैसे ही अधिक सद्यता में लोग उनकी तरफ आकृष्ट होते जाते हैं। जब सम्पूर्ण जाति ऊँचे दर्जे की आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त कर लेती है, सब कोई उनके महान उद्देश्य की सराहना करने लग जाते हैं।

अगर ऐसे 'महापुरुष' के अवतरण की आवश्यकता भूतकाल में महान थी तो आज वह मद्दनीतर है। सब पृष्ठा जाय ती इस समय वह महानत्वम् होनी जाती है। मनुष्य को कभी भी आध्यात्मिक-प्रकाश की आवश्यकता इससे अधिक नहीं थी। प्राचीन युग में सभार के भिन्न-भिन्न छत्र महान कुछ एक दूसरे से घृणक और स्वावगन्वी थे। उनसे प्राय एक ही जाति और नस्ल के लोग रहने थे। इसलिये उस समय उनके अस्तित्व की समस्या आज से कहीं कम जटिल थी। आज सारा सभार स्पष्ट अलग और आकाश के रास्ते एक हो गया है। हर राष्ट्र एक दूसरे से मिल गया है, एक दूसरे के जीवन में प्रवेश कर गया है। राष्ट्रों के हित परस्पर मिश्रित हो गये हैं। वैश्विक समस्याओं का तब तक नहीं हल नहीं हो सकता जब तक सारे राष्ट्र की समस्या हल नहीं की जाय और अत्येक राष्ट्रीय-मनव्यः दिग्मान अन्तर्राष्ट्रीय समस्या का एक अंग है। इसलिये अस्तित्व विश्व की समस्या का हल होना, पृथ्वी पर

स्वर्गाय-राज्य की स्थापना ही इसका एक मात्र हथ है । इस कार्य को कोई भी व्यक्ति ही कर सकता है ।

सब समस्याओं का एक ही हल—

पर 'देवी सभा' सब काम अपने हाथ से ही नहीं किया करती । ईश्वर मन्त्रों की यह निश्चित धारणा है कि 'जब कभी ईश्वर किसी रूप में पृथ्वी पर प्रकट होते हैं तब वह अकेले नहीं आते । प्रत्येक देश में कुछ ऐसे 'देवी कामंठों' होते हैं जो 'अवतार' के साथ-और कुछ पहले भी उनके वापस का संदेश लेकर भूमि तैयार करने लगते हैं, जिसमें वह बीज बोकर नई फसल तैयार कर सकें ।' इस सिद्धान्त के अनुसार 'अवतार' मुख्यतः कुछ विशेष व्यक्तियों को प्रेरणा देंगे, जनता का मार्ग दर्शन करेंगे, तो उसके प्रभाव से परिवर्तन और नव निर्माण का एक स्वयं प्रेरित संदेश ।

यह भी प्रत्यक्ष ही है कि इस समय समस्त मनुष्य जाति बड़े शोक, कष्ट, अपाव, भ्रष्टाचार की परिस्थितियों में ग्रस्त है । आप किसी भी तरह निराह उठा कर देखिये प्रगति का द्वार अवरुद्ध ही मिलेगा । समस्त मानव जाति एक विश्व व्यापी शकट का अनुभव कर रही है । जीवन का प्रत्येक विभाग अस्त-व्यस्त हो गया है । सब यह अच्छी तरह प्रकट हो गया है कि कोई भी जातिवादी राष्ट्र इन समस्याओं को अकेला हल नहीं कर सकता । कारण यह कि इस युग में समस्त मनुष्य और जातियाँ, समस्त व्यापार और उद्योग-धंधे एक दूसरे के आविष्ट हो गये हैं । इससे सभी राष्ट्रों को अब यह अनुभव होता था रहा है कि सत्कार में वे मनमाने नहीं कर सकते, वरन् उनके बराबर इस बात का ध्यान रखकर होगा कि अन्य लोग उनके विषय में क्या सोचते हैं और कैसे सम्मति रखते हैं । यद्यपि इस समय संसार में बड़ी हलचल और अस्थिरता की स्थिति दिखलाई पड़ रही है फिर भी एक अदृश्य शक्ति विभिन्न देशों के नेताओं को इस बात के लिये बाध्य कर रही है कि वे परस्पर में सहयोग की वृद्धि करें, एक तरह के विचार रखें, एक तरह से बात करें और समान रूप से कार्य करें । उनके सामने ऐसी

परिस्थितियों उत्पन्न होती जाती हैं कि यदि वे अपने पृथक-पृथक परस्पर विरोधी भावों का त्याग न करेंगे तो उनका सर्वनाश हो जायगा ।

विश्वबन्धुत्व की भावना—

ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है जो इस प्रकार की 'विश्व-बन्धुत्व' की भावना को—सत्कार ध्यायी महयोग, भेल-मिनाप की सर्षा की एक अमम्वव बात अथवा मन को धृष्ट करने वाला स्वध्न मान मानते हैं ऐसे लोगों से हम कहना चाहते हैं कि जब मनुष्य पृथ्वी के गर्भ में पुसकर सोना और रेडोयम जैसी बहुमूल्य चीजें निकाल जाता है, अथाह समुद्र में मोती बनाकर अनमोन मोती बूँद माना है, आकाश में उड़ सकता है, उपग्रहों और ग्रहों तक को उत्तम मार सकता है, अथवा वह देश और काल पर विजय प्राप्त करके अपने कमरे के भीतर सेटा हुआ ही सत्कार घर के दृश्य देख सकता है और हजारों कोस दूर बैठे मित्रों से बातचीत कर सकता है, तो वह एक ऐसी आदर्श जीवन-पद्धति-राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रणाली क्यों नहीं खोज सकता जिससे सब मनुष्य अपना ग्याययुक्त भाग पाकर सुख और ज्ञान्ति से रह सकें ? क्या छन कपट, पद्धत और अंधेय स्थानों में प्राणों की हाथ में लेकर प्रविष्ट होकर लूटमार कर खाना गहूँ है, और भगवान तथा प्रकृति ने जो कुछ दे रखा है तो उसे महयोग और प्रेम पूर्वक पिन जुबकर उपभोग करना इतना कठिन है ?

हमको तो हमसे कुछ भी अममव नहीं जान पड़ता, तनिक मनुष्य की बुद्धि को मोह देने की आवश्यकता है । इसी कार्य के लिये 'अवतार' की आवश्यकता है । उनका कार्य आरम्भ हो चुका है, उसकी एकिक में विश्वास रखने वाले आज भी अनेक स्थानों में उसके लिए सचेष्ट हैं और सत्कार भी पति की देखते हुए वह दिन निश्चय ही निकट आ पड़ेगा है जब कोई "देवी शक्ति" प्रकट ह्य में इसे पूरा कर दियायेवी । हम आज की भारत के 'मक्त' लोग ही नहीं बह रहे हैं, योरोप और अम-

रीस के विरुद्धियों के बहुत बड़े सम्प्रदाय सर माहकेल सैडलर जैसे साधुनिक ज्ञानी व्यक्ति की स्वीकार कर रहे हैं—

“हम इन समय ‘प्रतीक्षा’ के युग में जोड़ित रह रहे हैं ? लोग अनुभव कर रहे हैं कि सभार में जो बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं वे निकट भविष्य में इससे भी बहुत बड़े परिवर्तनों के पूर्वभास हैं । इतिहास का एक भरपाय पूरा हो चुका है और दूसरे का प्रथम पृष्ठ अभी खाली ही खुला है । हमने समझे नहीं कि ‘प्रतीक्षा’ के युग में मनुष्यों की अदम्य आवश्यक अनुभव होने अनिवार्य है और निश्चय ही प्राचीन-जगत् इसमें बहुत निरत होगा, जैसा कि हम अब तक उसे देखते और जानते आते हैं ।”

समस्त महापुरुषों में एकता—

आज संसार के विभिन्न धर्मों (मजहबों) में काफी अमान्यता और झगड़े होने दिखाई पड़ते हैं । आज में दो-चार सौ वर्ष पहले यह इतने भी घम कर रूप में प्रकट होते थे और मजहब नाम पर कलह-काम होते थे, पूज की नदियाँ उझड़ जाती थी । एतदि इन कर्मों के करने वाले ‘धर्म और ईश्वर’ के नाम पर ही ऐका करते थे, पर वे भावों घम में पड़े होते थे पर मन्कारी में अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते थे । अथवा दैवी विद्या के अनुमात् पृथ्वी पर प्रकट होने वाले ‘विश्व-समापक’ ‘संसार’ आदि कर्म मनुष्यों की अथ लोको से प्रेष करने, उनको धारणे-नृतने की प्रेरणा नहीं दे सकते । ‘धर्म’ का नाम लेकर मारकाट और सृष्टकार करना केवल जानाकी या घृणता का प्रमाण है । ऐसे लोग धर्म के नाम पर बहुधा कर जन-समूह को अपना अनुपायी बना लेते हैं और उसकी सहायता से अपना मतम्ब पूरा करते हैं ।

आप किसी भी धर्म के मूल अर्थ में शिरो गये सिद्धांतों और उपदेशों को देख लीजिये उनमें सत्य, स्वाय, मानव-सेवा की बात ही मिलेगी । यों ‘धर्म’ को नष्ट करने वाले दुःसाध और पाप कर्मों की वृद्धि करने धार्मिकों को दण्ड देने का भी विधान है, जैसा कि ‘प्रेता’ जैसे सभार में पूर्वनीच अर्थ में भी कहा गया है—“विनासाय च दुष्कृत्यम्” अर्थात्

मगवान् के 'अवतार' का उद्देश्य दुष्टों को नष्ट करना होता है । पर वह विशेष परिस्थिति में पालन करने योग्य विशेष धर्म ही होता है । दुष्टों का धन्त हो जाने पर उसकी आवश्यकता नहीं रहती । सामान्य रूप से सभी धर्मों के प्रचारकों के उद्देश्य और आदर्श लोक हितकारी भावना से ही प्रेरित होते हैं, इस लिये सार्विक रूप से उनमें कोई अन्तर नहीं होता ।

इतना ही नहीं धर्म और ईश्वर के सन्ने ज्ञाताओं और विभिन्न धर्मों के प्रचारकों और स्थापनकर्ताओं में पूर्ण एकाकी ही भावना रहती है । वे जानते हैं कि विभिन्न मन्त्रहोमों में जो अन्तर दिग्दर्श पड़ता है उसका कारण देव और काल की भिन्नता है । ईश्वर का प्रतिनिधि धर्म प्रचारक जिस भूमि और समय में प्रकट होगा वह अपने अनुयायियों को उस स्थिति के सायक ही व्यवहारोपयोगी मार्ग बतलावेगा । पर वह सब सामयिक होता है । समय और परिस्थिति के बदल जाने पर वे नियम भी बदले जा सकते हैं । जिन स्थानों में जल का अभाव था वहाँ के 'कर्म' काण्ड में लोगों को 'मत्स्य-ज्ञान' अथवा मिट्टी से ही नुद्धि की अनुमति दे दी गई । पर इसका यह आशय नहीं कि जब तुम्हारे यहाँ नहरों और नम कुण्डों में पानी की तनुषिण व्यवस्था हो जाय सब भी तुम जल द्वारा नुद्धि और स्वच्छता न करो ।

ईश्वर के यहाँ भेदभाव नहीं—

ससार में अभी तक जितने महान धर्म-साधनाएँ हुए हैं उन सब में यही मता प्रकट किया है कि ईश्वर के वहाँ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं है । जो शक्ति जिस किसी विधि से, मन में सत्य-भाव रखते हुए, भगवान् की पूजा-उपासना करता है, वही भगवान् को स्वीकार होती है । इसी प्रकार वे यह भी कहते हैं कि ससार का कोई 'धर्म' या धर्म-संस्थापक मन्त्रिण नहीं है, उसके पक्ष में भी जैसा समय आवेगा उसके अनुसार धर्म का प्रतिपादन करने वाले 'महापुरुष' उत्पन्न होंगे । भगवान् बुद्ध ने हम सब को अपने निर्वाण के अन्तर पर बहुत स्पष्ट रूप

उपेक्षा या । जब उसका प्रधान विषय आत्मन्द उसके विद्योप की कल्पना से बहुत व्याकुल हुआ और कहने लगा कि इसके बाद हमको धर्म का उपदेश भीक देगा तो बुद्ध ने कहा—

- "मैं सब ने पहना 'बुद्ध' नहीं हूँ जो संसार से आधा हूँ और न मैं अविम 'बुद्ध' ही कहा जा सकता है । जब समय आयेगा तो संसार में हमारा 'बुद्ध' प्रकट होगा, जो बहुत यत्न, बहुत अधिक ज्ञानी, बुद्धि सम्पन्न, उदार विचारों वाला और सत्कार का पूर्ण शर्ता होगा । वह मनुष्यों का एक अनुपम नेहा होगा । वह तुमको सभी मात्मान सत्य की शिक्षा देना जिसकी मैंने की है । वह सब 'धर्म' का प्रचार करेगा जो शक्ति, नय और अज्ञ में निरन्धकारक रूप से महान् और खेद होगा ।"

जिस एतनाम को आत्मन् कट्टर और धर्म के सम्बन्ध में घोर अन्ध विश्वासी बलताया जाता है उसके आर्थिक दृश्य 'कुर्यान' में भी सब धर्मों और धर्म-संस्थाओं की प्रकृता का प्रतिपादन किया गया है । उसके एक अध्याय सूक्त पाक्षीन' में कहा गया है—

"एक भावनी की तरह एक उन्नत (मज्जुह वा सुम्भार) की उन्नत भी निरिन्द होती है । जब कपल, गुनासुया और बुद्धों की सीढ़ियों पार करके उन्नत भर जाती है, सब घुसा गई उन्नत पैदा करता है । बुद्ध ने सब संस्कारों में बचन किया है कि जब तुम्हें किताब पोगम्बरो की जाय और तुम्हारे बाल खुदा की तरफ से हमारा पैदाप माने क्षमा प्रकट हो तो उस पर ईमान लाना और उसको सहायता करना तुम्हारा बर्तम्ब है ।"

सब यही है कि संसार में जो विवेक दीयी शक्ति सम्पन्न महापुरुष होते हैं वे निरन्धकार और निरन्ध ज्ञेय के ही श्वारक होते हैं । उन्हीं आत्मज्ञानी होने के कारण वे जानते हैं कि हम संसार में जीवन और संतुष्टि का मोन एक ही है, इन सिधे मनुष्यों में किसी भेद-भाव की रचना करना या बरसपर हनु-भाव रचना निवच ही

असुद्धिमत्ता अथवा दुष्ट स्वभाव का प्रमाण है। वे अपने अनुयायियों की प्राणीभाव से प्रेम रखने और उदारता का व्यवहार करने का उपदेश देते हैं। यह बात दूसरी है कि अधिकाल मनुष्य अन्ती पूर्व जन्मों की पापविक परिस्थितियों और प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके हैं, इस लिये इन उपदेशों का उन पर अधिक असर नहीं होता और वे प्रायः नीचता और क्रूरता के कार्य करने लग जाते हैं।

हृदय परिवर्तन 'अवतार' ही करेगा—

पर अब यह समय आचुका है जब कि इस अवस्था में 'क्रान्तिकारी परिवर्तन' होना और मानव-जाति अतिमत्त, साम्प्रदायिक और जातीय सकीर्णताओं को त्याग कर एक 'विश्व मानव समाज' बनाने को चाये चलेगी। यद्यपि इस समय भी यू० एन० थो० (राष्ट्र-संघ) के रूप में उसकी चेष्टा की जा रही है, पर वह अद्ययांग में ऊपरी तथा अद-दंस्तो सादी जाने वाली है। ऐसी चेष्टा कभी अधिक फलदायक नहीं हो सकती। इसके लिये अनिवार्य है कि सभी राष्ट्रों के प्रमुख नेताओं का हृदय परिवर्तन हो और वे इस प्रकार के सपञ्ज-एकता को सर्वोपरि कार्य मान कर उसके लिये सम-सम-धन से तैयार हो जायें।

अब सत्तार भर के राजनीतिज्ञ, उद्योगपति, विद्वान अपने-पराये का भाव त्याग कर केवल मानव जाति की कल्याण भावना से एकता के लिये तैयार हो जायेंगे और इस कार्य के लिये जो भी छोटा या बड़ा त्याग करना हो उसमें त कोष न करेंगे, तभी कुछ मफलता की आशा की जासकती है। इस प्रकार के पुन परिवर्तन के लिये कभी श्रद्धा और शक्ति की भावना वाले व्यक्तियों की आवश्यकता है, इसकी एक शान्ती ईंग्लैण्ड के श्री डब्लु० ई० ओरपाई के लेख से पतासे है—

" हे राष्ट्रों के उदार, चिरवाञ्छित भावी व्यवहार। तुम हमारे बीच में अपने बंधन के साथ जब प्रकट हुंसे ? रिश्तों की बार तुम दीन वेग (ईगा मगोह के रूप में) प्रकट हुंसे ये, तो उससे कुछ लोगों की

असौम्य आनन्द और शान्ति प्राप्त हुई थी। पर सभार के लोगों में से बहुत कम तुम्हारे जाने की बात जानते हैं और जो तुम्हारे दिखवाये रास्ते पर चलते हैं उनकी संख्या तो बहुत ही कम है। पर चूँकि तुमने इसमें कहीं अधिक देने का आश्वासन दिया था, इसलिए मनुष्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

“पर सैकड़ों वर्ष बीत गये और लोग बार-बार पूछते हैं कि क्या 'अवतार' के लक्षण दिखाई देते हैं ? बृद्ध बराबर होखे ही रहते हैं, मनुष्य अन्धकार और अज्ञानि में जीवन व्यतीत कर रहे हैं। किसान खेतों को बोते हैं, पर उनकी फसल को दूसरे ही लोग खा जाते हैं। कारीगर घर बनाते हैं, पर उनमें रहता कोई और है। दरवाँ कपड़े सोते हैं, पर उनको कभी पहिन नहीं पाते। मनुष्यों ने बार-बार अपनी वेदियों को सोझकर स्वीकृत होने की चेष्टा की है, पर उनकी विषय वस्तुओं हाथों से निकल जाती है और उनकी वेदियाँ फिर से मजबूत कर दी जाती हैं।

“श्री श्री हमारा विश्वास है कि तू सब पात्र ही है। अभी तक हमारी यह भाषा बलवती है। मार्ग सुन्दर बनाया जा रहा है, उसमें से रोड़े-पापड़ हटाने जा रहे हैं। मनुष्य इस विश्वास के साथ कि 'भक्ति का समर्थ' पात्र था चुका है अपना सर उठा रहा है।

“दुर्गे गोकु है कि इस समय भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में गततकहनी और छन्देह का भाव बढ़ रहा है और इसके कम से वे हथियार दकट्टे करने में जुटे हुए हैं। विभिन्न योषियों में पुषकता और कलह का भाव बढ़ता जाता है। अब कृपा करने पधारिये, हमारे भेदभावों को दूर कीजिये। हे देवी प्रेम के सागर ! हमारे ऊपर ऐसी कृपा करो कि हमारे हृदय के द्वार आपके स्वागत के लिए सदैव खुले रहें। भगवन् ! आओ और हमारे मध्य अपना राज्य स्थापित करके गृष्ठी पर शान्ति का प्रसार करो।”

यह एक ऐसे हृदय की भावना और प्रार्थना है जो मानवीय प्रयत्नों से संसार के सुधार की आशा न देखकर अपने ही पूर्णतः भगवान के हाथों में दी है। हमारे हाथों का यह है कि संसार में अविश्वस्य

सौगो की शक्ति और उपासना इसी कारण फलदायक नहीं हो पाती, क्योंकि वे पूर्णतः भगवान के आगे आत्मसमर्पण नहीं करते बरन् भगवान से सहायता की प्रार्थना करते हुए मन में अपना भरोसा भी करते रहते हैं। यद्यपि यह एक अशुद्ध कथावत है कि 'भगवान उनको मदद का हाथ है जो अपनी मदद खाने करते हैं।' यह नियम सामान्य परिस्थिति और जीवन-निर्वाह के नियम के कार्यों के लिए है। पर जब मनुष्य पर कोई बहुत बड़ी और सामर्थ्य से सब कुछ बाहर बिपत्ति आ पड़ती है तो भगवान की शरण लेने के सिवाय और कोई उपाय कारगर नहीं होता। ऐसे ही अंधतरो पर जब पृथ्वी पर शोषणकर्ता 'अंगुरो' का आतङ्क छा जाता है और कोई उनका प्रतिकार करने में समर्थ नहीं होता, मानवता कष्टों के मारे साहि-साहि करने लगती है, तो पृथ्वी व्यापुल होकर 'विश्व सचामरु' की शरण आती है, और वे उसके उद्धार के लिए 'प्रकट' होते हैं।

पृथ्वी के भगवान की शरण में जाने का जो अर्थकारिक पर्युन रामायण तथा अन्य पुराणों में किया गया है उससे मासूम हो सकता है कि मनुष्य को अत्यन्त विषम परिस्थिति आ जाने पर कितना प्रकार एवं-मात्र भगवान का ही सहारा लेना पड़ता है। वही दशा इस समय सगार की विधवाई पड़ रही है। युद्धशील देशों की अस्त्र-शक्तियों की शक्ति इतनी अधिक हो गई है कि वे अब चाहे मानव-जाति का नाश कर सकते हैं। अणुशक्ति, जहरीली गैस, रोगों के बीजाणु आदि मनेको ऐसे नाशकारी उपाय निकाल लिए गये हैं जिनसे करोड़ों मनुष्य कुछ पण्डों में मारे जा सकते हैं।

अब तो कई-कई हजार टन के रिस्फोर्टर सामग्री से भरे गोले अंतरिक्ष में सँभरते सीन ऊपर भेजे जा सकते हैं और पृथ्वी से सगार के किसी भी देश के ऊपर गिराकर कुछ ही दणों में जीवित मर नारियों से भरे घरे मगरी और घामों की मसम की जेरी में परिणित किया जा सकता है। सगार की कोई ताजज ऐसे अस्त्रों को निवारण नहीं कर

गणती । सब मानव जाति के सामने केवल 'भगवान' को पुकारने का ही उपाय बच रहा था। है और वे ही परिस्थिति के अनुसार 'असुरों' के असुरत्व से संभार की रक्षा की कोई योजना कार्यान्वित करके समस्या को हल करते हैं ।

सभी धर्म 'देवी सत्ता' पर विश्वास करते हैं—

संसार की भयंकर हानचल पृथ्वी अवस्था से भयभीत होकर लो मनुष्य का ध्यान किसी 'देवी सहायक' की तरफ मुड़ ही रहा है । संसार के सभी धर्मों में 'अवतार' का सिद्धांत स्वीकार किया गया है, और उनका यह विश्वास है कि मानव-जाति पर कोई सर्वनाशी संघट का पड़ने पर ईश्वरीय शक्ति द्वारा ही उनका निवारण होना सम्भव होता है । कुछ वर्ष पहले इङ्ग्लैण्ड की पार्लियामेंट के दो सदस्यों—सी डब्ल्यू. ट्युडरपोस और बेंतहोन रिपर्स ने एक घोषणा पत्र में कहा था—

'पूरब और पश्चिम के सभी महान सम्प्रदायों के अनुयायी ईश्वरीय दूत के आने की राह देख रहे हैं । ईसाई मरहव चाहे ईसा के 'दूसरे आगमन' की बात बहते हैं । यहूदी आशा करते हैं कि उनके 'मसीहा' मनुष्य रूप में प्रकट होंगे । मुसलमान 'इसाम मेंहदी' के आगमन की आशा कर रहे हैं । 'बौद्ध देवों' (जापान, चीन, भारत आदि) में महान आत्माओं के आविर्भाव की चर्चा सुनाई पड़ती रहती है । अमरीका में भी ऐसा ही विश्वास फैला हुआ है । इसमें सन्देह नहीं कि नवीन जगत का निर्माण आध्यात्मिकता पर ही होना और इस सम्बन्ध में फिलने ही लोगों को यह हब विश्वास है कि 'ईश्वर के आगमन' का रहस्य अब संसार में प्रकट होने ही वाला है ।'

हम इससे पहले भी संसार के अनेक विद्वानों तथा आध्यात्मिकता के अनुयायियों के रूप में उद्धृत कर चुके हैं जिनमें 'देवी सत्ता' के प्रबल होने की बात अोरों के साथ बहो गई है । इसका कारण यही है कि अब संसार के ऊपर कोई भीषण विपत्ति आती है और लोगों की अनेक अस्तित्व से शंका होने लगती है तो उनका ध्यान स्वभावतः किसी 'देवी-

रक्षक' की तरफ जाता है और वे प्राचीन धर्मों में से इन तरह के वर्णों की तरफ विवेक रूप से आकर्षित होने लगते हैं ।

यद्यपि हमारे निचे तो 'अवतार' का सिद्धान्त 'गोडा' से बड़कर स्पष्ट और तर्कसम्पन्न नहीं नहीं मिला, पर अन्य धर्म और देशों वाले भी अपने-अपने ढंग और विश्वास के अनुसार उस सम्बन्ध में खोज और विचार कर रहे हैं, यह कम महत्व की बात नहीं है । उर्दू भाषा में एक कहावत है कि 'आवाये चलक की आवाये खरा मानो' अर्थात् जिस बात की खर्चा सब मनुष्य करने लगे और उस पर विश्वास रखें तो समस्तनी चाहिये कि यह बात 'देवी प्रेरणा' से ही हो रही है और सत्य होकर रहेगी । इसलिए जब हम ससार के दूरवर्ती भागों में रहने वाले और एक-दूसरे से अनजान लोगों को 'अवतार' और 'पुनः परिवर्तन' के सम्बन्ध में एक ही बात कहने और उस पर विश्वास करते देखते हैं तो हमारी तब एक 'तथ्य' के रूप में स्वीकार करना ही उचित प्रतीत होता है ।

'अवतार' का आधार अन्धविश्वास पर न हो—

इस प्रकार पुरख और परिवर्तन के बहुसंख्यक विद्वानों की सम्मतियों का विवेकपूर्ण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'अवतार' कोई अन्धविश्वास अथवा अन्धधृष्टता का विषय नहीं है, वरन् वह सामाजिक विश्वास और इतिहास की प्रगति का एक अंग ही है । अन्तर यही है कि भौतिकवादी उसे 'महामानव' अथवा 'जन नेता' के रूप में देखते हैं और धार्मिक-भावना रखने वाले उसे ईश्वरीय दूत या 'अवतार' की पदवी प्रदान करते हैं । यदि हम नामों के पीछे लागटना छोड़ दें तो दोनों प्रकार के मतों में कोई खास अन्तर नहीं है और दोनों का अन्तर्गत सत्य एक ही है । दोनों ही मानते हैं कि ससार में विद्वानों के बड़े जाने अथवा समाज की प्रगति में कोई बृहत् बड़ी बाधा उत्पन्न हो जाने पर ही ऐसे विशेष प्रभाव युक्त व्यक्ति की आवश्यकता होती है और वह कामने आ भी जाता है ।

यह महापुरुष जनता और संसार के उद्धार के लिये निःस्वार्थ भाव से कार्य करके सड़क को निवारण करता है, और इस उद्देश्य को पूर्ति के लिये किसी प्रकार कष्ट या हानि को चिन्ता नहीं करता। उसकी इसी 'महानता' तथा अन्य लोगों से न पाई जाने वाली अक्षुण्ण सदाशरता को देखकर धार्मिक-भाषना रखने वाले लोग उसे 'देव-मुरप' की उपाधि देते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार निःस्वार्थ भाव से किसी का उपकार करना 'देव' अथवा ईश्वर का ही कार्य है। इस प्रकार की भावना में हमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं जान पड़ती। 'धर्म-प्रधान' तथा 'नीतिवता प्रधान' भावनाओं वाले व्यक्तियों के दो हस्त दश से रहे हैं और अभी बहुत समय तक रहेंगे।

रह गई अवतार सम्बन्धी कथा-कहानियों और चमत्कारों की बात यह बौद्धिक दृष्टि से निम्नस्तर की जनता से यदा से पाई जाती है। धर्म, कृष्ण और अन्य अवतारों की बात तो छोड़ दीजिये 'धर्म' को अक्षीय' बतलाने वाले कम्युनिस्ट लेनिन के सम्बन्ध में भी रूस के किसानों में उसकी मृत्यु के बाद यह हिम्बदगती फैल गई थी कि यह रात के समय अपनी समाधि (मुनीतिवम) से निकल कर जनता की सेवा और कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकलापों की गति विधि जानने के लिये घूमता रहता है और अन्त में किसी दिन पुनः चठकर सामन-कार्य करने लगेगा। इसी प्रकार महात्मा गाँधी के विषय में सन् १९२१ में ही यह अफवाह फैली थी कि अदर का प्रचार करने के लिये उनके प्रभाव से सब प्रकार के पेटों पर पर्दे उलपन्न होने लग गई है।

अवतारों की संख्या ६४ हजार.—

इस प्रकार की 'धार्मिक' अफवाहों का 'खण्डन' करने को हम कभी विशेष बलमुक्त नहीं होते। क्योंकि हम जानते हैं कि अतिशय जनता प्रायिक विषय को जो उसकी समझ और बुद्धि से बाहर होता है, तोड़-मरोड़ कर किसी प्रकार का देवी-नमाचार बना ही देती है। पर हम धार्मिक छत्तों की वास्तविकता पर यदा से प्रकाश डालते आये हैं। सम्

१९४२ में ही जब अवतार का जनता में बड़ा दौर दौरा या भीर साधो व्यक्ति उसके प्रकट होने पर दृढ़ विश्वास करके प्रतीक्षा में थे 'सनधुन' (साधिक पत्र) में 'अखंड ज्योति' सब तक ने ऐसे अन्ध विश्वास के सम्बन्ध में चेतावनी देते हुए लिखा था-

"अब तक हिन्दू धर्म में चोरांस मुझ अवतार ही चुके हैं और अंगवतारों की संख्या इसमें बढ़ी अधिक है। जैन धर्म के सौपंक्तियों की भी एक बड़ी संख्या बनाई जाती है। ईसाई, बौद्ध, पारसो, मुसलमान आदि भी अपने-अपने अनेक पैगम्बरों, 'दैवी आत्माओं' का प्रादुर्भाव ही चुका मानते हैं। इनके अतिरिक्त हजारों की संख्या में प्रचलित अन्ध सम्प्रदायों में अपने-अपने विश्वासानुसार हजारों अवतार हुए हैं। 'विश्व-सर्व धर्म सम्मेलन' के नेता सर हार्डिन्ग्टन ने विभिन्न धर्मों के मूल ग्रन्थों (जिन्हें उन धर्मों के अनुयायी ईश्वरीय मानते हैं) के छांटकार पर करीब ६३००० 'अवतारों' का परिचय संग्रह किया था। यह सन्दर्भ सौ-डेढ़ सौ वर्ष पहले तक के हैं। इसके बाद के वर्षों में भी 'अवतारों' की कमी नहीं रही है। इस तरह प्रचलित युग के दो सौ वर्षों में यद्यपि 'अवतारों' की विशेष महत्त्व नहीं मिला है, तो भी सभार के विभिन्न भागों में करीब १४०० व्यक्ति ऐसे हुये हैं, जिन्हें 'अवतार' के रूप में पूजा गया है और स्वयं उन्होंने अपने आप मौखिक या लिखित रूप में अपने ईश्वर होने की घोषणा की है।"

"हई व्यक्ति यह कहते सुने जाते हैं कि कतिक अवतार ही पुत्रा है या होने जाना है। मुरादाबाद जिले का मधन कदवा या म गोत्रिया के रेविस्तान बाना सम्मल उनका जन्म स्थान घोषित किया गया है। उनसे माता-पिता, बहन-भाई सब का नाम बता दिया गया है और वे क्या-क्या करेंगे यह भी निश्चय हुआ मिलता है। कोई कहते हैं कि कतिक अगवान प्रकट हो चुके हैं और उन्हें परशुराम जी महेंद्र पर्वत पर उग्रुप सिद्धा मिगाने को से पड़े हैं, सब से २१ वर्ष के हो चुके हैं और बीस ही बरस के किसी स्थान पर प्रकट होंगे।

हमारा विश्वास है कि ये किम्बदन्तियाँ कभी फलितार्थ नहीं हो सकती । ऐसे कोई 'कल्कि-भगवान्' अवतार नहीं लेंगे जैसी कि हमारे जा गढ़कर संसार काली गई है । बेशक भगवान का 'अवतार' बहुत शीघ्र प्रकट होने वाला है, वह अपने कार्य में संलग्न है, पृथ्वी पर से पाप का शोध कम करने में वह प्रयत्नशील है । इसमें संदेह नहीं कि दुनिया को वह दुर्दशा अघिक समय तक इसी प्रकार बनी नहीं रह सकती । मनुष्य के अन्त के समय उसकी मृत्यु भी पैदा होती है । जैसे-जैसे वह बड़ा होता जाता है वैसे ही बड़े मृत्यु के निकट पहुँचा जाता है । इसी प्रकार पाप के साथ समय विनाश भी जन्म लेता है । आज 'कलि' का तात्पर्य-मृत्यु हो रहा है, पर इस भस्मासुर को भी जलाने वाले सऊर मौजूद हैं ।"

'अवतार क्या है ?' इस प्रश्न के उत्तर में यह जान लेना चाहिए कि दृश्य जगत का मूल अदृश्य जगत में रहता है । संसार में जब दुष्टता और अनाचार के कार्य बढ़ते हैं तब अदृश्य-लोक का वातावरण भी दुष्टता की वृत्तियों से भरा रहता है । अब अदृश्य लोक में दुर्भावनाएँ भर जाती हैं जो उनको हटाने के लिये प्रतिक्रिया स्वरूप विरोधी भावनाओं की एक लहर आती है । यह लहर उतनी ही जोरदार होती है जितनी कि उसकी प्रतिपक्षी लहर थी । गेह को जलने और से अमीन पर पटका जाता है वह उतने ही जोर से ऊपर की उछलती है । प्रकृति के अन्तराल में से दुर्भावनाओं के विधि में जो सद्बुद्धि उदित होती है, उसको शक्ति भी पूर्व-वृत्तियों के समान ही होती है ।

"अदृश्य जगत में बुराइयों के विरोध स्वरूप जब कम्प लहर उठती है जो उनका प्रभाव उन दिग्ग आत्माओं पर होता है जिनकी भाष्या-मिक घेतना जागृत और सजक्त होती है । धरों में रखे हुए लोहे-अच्छी के रेटिवो सेट आकाशवाणी स्टेशन से ब्राडकास्ट आरम्भ होते ही बीनने लगते हैं, किन्तु उनी कमरे में रखे हुए लकड़ी और लोहे के कंग-बक्स में से कोई आवाज नहीं निकलती । गुण-परिवर्तन की लहरें जब

सूक्ष्म जगत में रहती हैं तो आगुन आत्माएँ उन्हें तुरन्त पकड़ लेती हैं और उसी स्वर में बोलने लगती हैं, फिर चाहे वे उस समय किसी भी स्थिति का जीवन क्यों न व्यतीत कर रहे हों ।

“अवतार’ शब्द की व्याख्या इस प्रकार की जाय तो अनुचित न होगा कि “समाज को गिरो हुई दशा में उन्नति की ओर से आने वाला महा मानव नेता” यह तो प्रत्यक्ष ही है कि ऐसा असाधारण कार्य कर सकने वाला, ईश्वरीय शक्ति से सम्बन्धित होता है । वैसे तो जीव मान ईश्वर का अवतार (अवतार) है, पर कुछ चैतन्य आत्माओं में देवी तेज अधिक होता है । उसी तेज के अनुपात में उस अवतार की कलाएँ निर्धारित की जाती हैं । उस आगुन आत्माएँ ईश्वरीय आदेश को शिरोधार्य करने परम पिता की इच्छा पूरी करने के लिये अखिलमय तैयार हो जाती हैं और सीलापति का साधन बन कर परम सोमाय का अनुभव करती हैं । वे अपने पीछे अनन्त धन और अक्षय धन छोड़ जाते हैं । धन समुदाय उनको ईश्वर का हुत, ईश-पुत्र या माध्याय भगवान ही मानने लगता है-वे ही अवतार भी बड़े आते हैं ।”

अवतार की इस परिभाषा में कोई ऐसी बात नहीं मिलेगी उसकी कोई भुट्टि या हीनता प्रकट होती है । यद्यपि भौगोलिक कथाओं के अनुयायी ऐसे ‘अवतारों’ के अस्तित्व बनना कदाचिद् ही पसन्द करें, पर हमारे गुरु ग्रन्थों, वेदों और उपनिषदों में परमात्मा और जीव का जो सम्बन्ध बढाया गया है उससे अवतार विविध जीवों की घेरी में आते हैं ।

हमारी सम्मति में अवतार के विषय में यह विवाद उठाना कि वह वास्तव में भगवान ही होते हैं अथवा किसी उपरसुख व्यक्ति में भगवद् शक्ति प्रविष्ट हो जाती है, कुछ भी महत्त्व नहीं रखता । ऐसी बातों में सर रखाने वाले वे ही स्थिति होते हैं जिनकी कुछ करने-करने के बजाय बहुम-नुबाइने और ‘गण्डन’ में ही मग्रा आता है । यह तो कोई कह नहीं सकता कि जिन समय गृहरी पर अवतार हुये वे उस समय ‘बैकुण्ठ धाम’ भगवान से घायी हो गया था । फिर सर्वेश्वरी ईश्वर के लिये

यह विवाद उठाना कि वह कब कहाँ गृहते हैं अपनी अज्ञात का परिचा-
यक है। जब जीवमात्र भगवान के ही अंग है और वे माध्यम करके
जीवन मुक्त बन सकते हैं, जो भगवान की तरह ही इच्छा मात्र से समाप्त
के अनेक कार्यों की पूर्ति कर सकते हैं जब कोई ज्ञानी व्यक्ति अवतार की
उपपूर्णा परिभाषा से किसी प्रकार की विरोध प्रकट नहीं कर सकता।

जैसा मोक्षमार्गी तुलसीदास जी ने लिखा है कि निराकार और
साकार की विवाद उठाना अतुष्टिमता का परिभाषक है, क्योंकि कि सर्व-
शक्तिमान भगवान दोनों ही रूपों में स्वयं का संचालन कर सकता है,
यही प्रकार अवतार कई तरह से हो सकते हैं और उनकी शक्ति तथा
दर्श में भी अन्तर ही सकता है। अवतारों की जो रूप या उपादा कला
मानी गई है, उनका कारण यह अवतारों की शक्ति-की ग्युनता और शक्तिता
ही है। शास्त्रों में अवतारों का वर्णन बड़े विस्तार से मिलता है
और यही कारण है कि कविल, श्रुत्यम वेद ह्यपीय परमुराग मारि की
उप तरह उपादाना नदी की ज्ञानी जैविकी राम और हृष्य की की जाती
है। बुद्धदेव की नाम अथपि चायवत में भी दत्त मुद्रय अवतारों में विधा
यवा है, पर अनेक धार्मिक व्यक्ति उनकी अवतार नहीं मानते।

इस प्रकार अवतार के सम्बन्ध में षोड़ा-बहुत मतभेद तो प्राचीन
समय से बना आया है। इस सम्बन्ध में मुख्य विचारणीय विषय यह
नहीं है कि स्वयं भगवान अवतार लेने के निचे आते हैं अथवा किसी उप-
मुक्त जीवात्मा ने अपनी विशेष शक्ति का संयोग करके उनके द्वारा 'भूतल
का भार हलका करने' का उद्देश्य पूरा करके हैं ? वरन् मुख्य बात यह
है कि अवतार का जो स्वर्ण्य पुराने इतिहासी मानते हैं वह ठीक है
अथवा उनका तर्क और बुद्धि समस्त का जो उप महान उद्देश्य के अनु-
मूल जान पड़े उसे स्वीकार किया जान। उपपूर्णा लेख में अवतार के
वास्तविक उद्देश्यों पर विचार करके अन्त में अवतार सम्बन्धी विचार
शास्त्र के जो पक्षों की अलग-अलग उभस्थित किया है और शास्त्रों में
ब्रह्म दिया है कि भाव इन दोनों में से किसीको अधिक उपयुक्त और
हितकारी समझते हैं—

[प्रथम पक्ष]

(१) एक अवतारी विशेष आत्मा राम, कृष्ण, बुद्ध आदि की तरह प्रकट होता है। वही अपने पीछे से पृथ्वी का भार हलका कर देता है।

(२) अवतारी में इतनी सामर्थ्य होती है कि अपने धार जो चाहे कर सकता है।

(३) ईश्वर एक शक्ति की अवतार बना कर भेज देता है। उसमें ऐसी योग्यता और शक्ति होती है कि वह अनायास अपने अनुयायी उत्पन्न कर लेता है।

(४) अवतारी के काम अत्यन्त विचित्र और अमरकार तथा जादू की तरह होते हैं।

(५) अवतार गुरे व्यक्तिगो का बच करने आता है। दुष्टों का संहार ही उसका उद्देश्य होता है।

(६) अवतार की शरण में जाने से सारे पाप छूट जाते हैं और अनायास स्वर्ग मिल जाता है।

(७) अवतार अमुक देश में, अमुक जाति में और अमुक काल में ही होते हैं।

(८) अवतार सर्वथा स्वतंत्र होते हैं। वे उचित-अनुचित सभी काम कर सकते हैं।

(९) अवतारों के वर्तन, कीर्तन, स्तवन, ध्यान से ही भक्तों का उद्धार हो जाता है।

अब इन नौ बातों का मुकाबला दूसरे पक्ष की नौ बातों से सम्बन्धित करिये।

दूसरा पक्ष

(१) समय की दृष्टि से प्रवृत्तियों को बदलने के लिये एक भावना उत्पन्न होती है, जिसमें प्रेरित होकर एक, दो या अधिक व्यक्ति उस समय की आवश्यकता को पूरा करने के लिये सम्भव होते हैं। जब 'अवतार' का उद्देश्य पूरा होता है।

(२) उच्च भावना से प्रेरित होकर अनेक 'अवतारों' व्यक्ति मिल-बर कर किसी महान उद्देश्य की पूर्ति करते हैं ।

(३) सबसे पहले कार्यारम्भ करने वाले या विशेष योग्यता वाले की पूजा होती है । पर वास्तव में उस भावना से प्रेरित होकर सद्गुरु का प्रमाण करने वाले सभी व्यक्ति 'अवतार' ही होते हैं ।

(४) असाधारण शीघ्रता पूर्वक ओ परिवर्तन होते हैं, वे शत्रु को उग्र प्रतीत होते हैं । अवतार नवीन व्यवस्था बनाने जाते हैं, जमीनर का खेल करने नहीं आते ।

(५) अवतार दुराइयों को हटाने आता है । यह पाप पूर्ण निवारण को मष्ट कर देता है । यह आवश्यक नहीं कि वह शरीरों का बध ही करे । राम और बुद्ध दोनों के उदाहरण आश्चर्यमानुमार उचित हैं ।

(६) अवतार के उदार और आदर्श विचारों का अनुसरण करने से सरकार संसार की बहुत बड़ी सेवा होती है । पुण्य-पथ पर तीर्थ ज्ञान के समान सबका महान फल होता है ।

(७) अवतार किसी प्रतिघट से बँधे नहीं रहते । अघम और अवि-वेक जहाँ और जब भी बढ़ता है तभी उनको दूर करने के लिये 'अव-तार' ईश्वरीय शक्ति के रूप में प्रकट होते हैं ।

(८) अवतार अवैधान समय में प्रचलित कुपचारों को तोड़ने के लिये कोई असाधारण काम कर सकते हैं । पर वे मनुष्यता की मर्यादा को तोड़ने वाला कोई कार्य, जिसे उदरता कहा जा सके नहीं करते ।

(९) अवतार के आदर्श और उपदेशों के अनुसार भाषरण किये बिना किसी का कुछ लाभ नहीं हो सकता ।

X

X

X

इन तीनों प्रकार की अवतार सम्बन्धी धारणाओं में से कठिनायी धारणा सर अशामकिक ही गई है । समय है अब से संकटों से पूर्व जब जन समुदाय में शिक्षा का प्रचार नहीं हुआ था, लोग ऐसी सम-कारी बातों से ही अधिक प्रभावित होते थे और इसलिये उस समय के

घर्म प्रचारक अपने उपदेशों और धार्मिक कथा-गीतों आदि में वैसा ही पुट देने में । पर इस समय विज्ञान-युग के मनुष्य पर उन असफल और अविश्वस्य विज्ञान-युग के विपरीत ही प्रभाव पड़ता है । आज जब मनुष्य चन्द्रमा के परातल पर पहुँच कर उसकी मिट्टी और अन्य पदार्थों की जाँच कर रहा है, उसे केवल एक देशता मानना तथा उनके सम्बन्ध में तरह-तरह की रोचक फलानिर्णय सुनाना कहीं तक प्रभाव डालने में सक्षम है ? यद्यपि भगवान आज भी वही है जो आज से पाँच-सत्र हजार वर्ष पहले श्रीकृष्ण और श्री रामचन्द्र के जमाने में था, पर वह आज जिस 'अवतार' को भेजेगा, या जिनमें उसकी 'युग-परिचयकारी' शक्ति का प्रयोजन होगा वह आजकल की परिस्थितियों के अनुकूल ही होगा । उसके लिये यह कहना करना कि वह वन में गाय चरायेगा या पत्तन-घासों की खेती बनायेगा, भोलापन ही है ।

आजकल का 'अवतार' भी जेट विमान पर एक हजार मील प्रति घण्टा की गति से घूमने वाला और रेडियो तथा टेलीविजन द्वारा सम्स्त सगर में अपना सदेश फैलाने वाला होगा । इस लिये पुराने और नये अवतारों में शक्य-पूरत, पहिनावा-उड़ाव, ध्यान-गान, शोष-पाल की समानता कूटना निरर्थक है । वरन् इन दोनों में जो एकता होगी वह आश्चर्यजनक भावों की होगी । वह भी वर्तमान शक्तिवाद में भूरे हुये संसार की भगवान कृष्ण की भाँति 'गीता' का उपदेश देगा कि—

यह वास्तव्य-रंग और आधुनिक वास्तविक और महत्त्वपूर्ण नहीं है वरन् पाप यह है जो इनके अन्तर में प्रतिष्ठित है । गौतमिक गुण-सुविधाओं और पारमार्थिक धर्म के स्थान पर सर्वोत्थोगी धर्मों का प्रयोग करना गुरु नहीं है, पर भीतिहता की भाँति में गढ़ कर आराम और समझे बहानों की पूजना करना बहुत बड़ी गलती है । क्योंकि वास्तविक गुण और समझना शक्ति पदार्थों और धर्मों में नहीं है पादों के फल में गुण और आश्चर्य ही, वरन् इनका आधार मनुष्य के मन और आत्मा में है । यदि वह गुण, शक्ति और संतुष्ट होगी तो गढ़ छोटे और बड़े

प्रकारों में, कानन्द भावेन, और यदि बहु-प्रसुचित हो गई तो 'सर्व सादर' के प्रकार में भी अन्तकार ही जान पड़ेगा। इसलिये मोक्षिता और साध्यात्मिकता का समर्थन करके भारत-कल्याण के मार्ग पर चलो। आज साध्यात्मिकता को—पशुपति की भूत जाने से ही मनुष्य अपनी शक्ति का दुर्लभोप करके सर्वनाश की तरफ अग्रसर हो रहा है। इस लिये आत्मा को पहिचानी और चमत्त वास्तविक धर्म को अपनी नहीं बल्कि परमात्मा की देन—अगोचर समझ कर इसका स्थापानुत्तम व्यवहार करो। जिस लक्ष्य से ऐसा करने लगे उसे उसी लक्ष्य से ही पृथ्वी पर ही स्वर्ग सिद्धाई पढ़ने लगता।

नई सम्प्रदाय का आविर्भाव—

जो लोग अज्ञेय शीलकर सत्कार की दशा का निरोक्षण करते रहते हैं और उनकी हृत्तम पूर्ण स्थिति के वास्तविक कारणों पर विचार किया करते हैं, उनसे यह बात छिपी नहीं है कि इन दिनों सर्वत्र की ओर अज्ञेय और अज्ञेय-पुस्तक सिद्धाई पढ़ रही है, उसका मूल कारण यही है कि अब संसार में एक नई सम्प्रदाय, गौतम समाज और नये मनुष्य का आविर्भाव होने को है। इस समय दुनिया की हानत एक नये शिशु के जन्म लेने के समान ही रहो है। यद्यपि मातृ-पिता की दृष्टि में यह समय बड़े शोकमय और प्रसन्नता का होता है, पर जब तक प्रसन्न किया पूरी नहीं हो जाती तब तक पारों तक हृत्तम, अनिश्चित और सकट का—सा वातावरण बना रहता है। अनेक बार माता को सुरक्षा संकेत में यह आती है और उसे अकार बह सहन करना पड़ता है। जब यह स्थिति बार ही आती है और सोच नये शिशु के सुन्दर और पवित्र मुक्त को देख लेते हैं तो वातावरण एकदम बन जाता है और आगे तरक भावन्द के संगम गीत और वाद्य सुनाई पढ़ने लगते हैं।

ठीक यही हानत आज दुनिया की हो रही है। पत नौ-प्रथम शकों के भीतर संसार में ज्ञान-विज्ञान और वाच ही अज्ञेय-अज्ञेयों ने रहनी सरसही की है कि एक नई दुनिया और नई सम्प्रदाय का निर्माण किया

जा सकना संभव हीं गंगा है। पंजाब और कोंकणों में उर्वारी सामग्री बनाने के क्षेत्र में इतनी प्रगति हो चुकी है कि यदि बुद्धिमत्ता और न्याय के साथ उसका संचालन और व्यवस्था की जाय तो सतार के प्रत्येक मनुष्य को भरपूर भोजन-वस्त्र और अन्य सुख-सामग्री सहज में प्राप्त हो सकती है। पर सतार के अधिकांश देश इन प्रगति और वृद्धि का उपयोग सही ढंगसे न करके एक मात्र स्वायत्तता की निगाह से करता चाहते हैं। ऐसे उदाहरण मिले हैं जहाँ कि अमरीका में धन्न की अधिक पैदावार होने के कारण लाखों मन गेहूँ तथा अन्य खाद्य सामग्री जल बूझकर जला दी गई, मष्ट कर दी गई और उसी समय पास के दूसरे देश में लोग भूखाभाव से मृगों मरते रहे। व्यापार के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा होने के कारण अनेक युद्ध हो चुके हैं और सीमा सम्बन्धी विवादों के कारण यात्रा भी भयकर सपया हो रहे हैं।

संसार के एकीकरण की सभावनाएँ—

सांघ्यारिक्त दृष्टिकोण से ही सतार का एकीकरण आवश्यक और समझ मही जान पड़ता, परन्तु इतिहासज्ञ और दार्शनिक क्षेत्र के प्रमुख विचारकों का यही मत है कि अब जगत् में जो परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं उनको देखते हुये सब देशों और जातियों का सहयोग और प्रेम के मुत्र में घेँसकर रहना सर्वथा संभव और लाभदायक है। इसका विवेचन करते हुये माननीय श्री राधाकृष्णन ने कहा था—

हमारे सामाजिक जीवन की एक मात्र खाधि वा मुख्य कारण हमारे सामाजिक संस्थाओं और नियम के उद्देश्य बीच में उत्पन्न हो गया भेद ही है। प्रकृति ने अनेक जातियाँ बनाई हैं अलग-अलग भाषाएँ धर्म और सामाजिक परम्पराएँ मिली हैं और उतने मनुष्य को यह काम हीना है कि यह मानव-जगत में व्यवस्था उत्पन्न करे और जीवन का ऐसा रास्ता खोजनिवाले, जिसमें विभिन्न समूह बिना लड़े-मपड़े भांगि-दूषक रह सकें। यह सतार पुनर्जिय राहों का पुन-धोत होने के लिये नहीं रचा गया है, परन्तु एक ऐसा राष्ट्र-मदन बनने के लिये रचा गया है, जिसमें

विभिन्न मनुष्य सबके लिये गौरव, अच्छा जीवन और समृद्धि प्राप्त करने के लिए परस्पर सहयोग कर रहे हों ।

“सत्तार के एकीकरण के लिये आवश्यक दशाएँ अब विद्यमान हैं । केवल मनुष्य की इच्छा—सद्भावना का अभाव है । सत्तार के विनाशन के बड़े-बड़े कारण—महासागर और पर्वत अब प्रभावहीन हो गये हैं । परिवहन और संचरण की इस समय उपलब्ध सुविधाओं के कारण यह सत्तार एक छोटा-सा पदोस बन गया है । धार्मिक और सामाजिक प्रथाओं के विपरीत, जो कि प्रायः एक दूसरे से पूषक और स्थानीय दम की होती हैं, विज्ञान राजनीतिक या सामाजिक सीमाओं की नहीं मानता और वह ऐसी भाषा में बात करता है जिसे सब समझते हैं ।

“जैविक ज्ञानि ने सत्तार के आर्थिक सम्बन्धों को इतना अधिक बदल दिया है कि अब हम एक विश्व-ममाल बन गये हैं जिसकी अपनी विश्व अर्थ-श्रवस्था है और जिसकी माँग है कि एक विश्व-राजतंत्रिक व्यवस्था कायम की जाए । विज्ञान ने मानव-जीवन का वास्तव एक ही ब्रह्माण्ड-तन्त्रो की बतलाया है । धर्म में भी यह कल्पना की गई है कि प्रकृति और मानवता के पीछे एक सर्वव्यापी चेतना है । धर्म भी हम सबके लिये एक सम्मिलित आध्यात्मिक आदर्श और सत्य की ओर संकेत करता है ।”

इन प्रकार धार्मिक वैज्ञानिक और दार्शनिक क्षेत्र के प्रमुख विचारकों में सत्य की एकता होने से एक विश्वव्यापी-संगठन बनना बहुत संभव है । अब एकमात्र वाया राजनीतियों की है, जो लोगों की भिन्न राष्ट्रीयता और जातीयता की भावनाओं का उद्दीवन करके मानव प्रगति की सुदूर धारा की स्वाभाविक मार्ग में मोड़ कर संकीर्ण मार्गों की ओर प्रवृत्त करते दृष्टे हैं । भाष्य, महात्तजवादी, नान्नी, फासिस्ट, कम्युनिस्ट कोई भी क्यों न हो सबमें किसी न किसी रूप में वह संकीर्ण राष्ट्रीयता की मनोवृत्ति पाई जाती है और यही विश्व एकता के मार्ग

में सब से बड़ा रोना है। समझ है इसका अर्थ एक आध्यात्मिक विश्व युद्ध द्वारा ही हो जिसमें जाति और मानव सम्बन्धता का अभूतपूर्व नाश हो।

पर इसमें भी घबड़ाने की कोई बात नहीं। भगवान के ढंग निरासे ही होते हैं। सोच बहते है कि भगवान कृष्ण ने महाभारत रचा कर भीष्म, द्रोण, कण, अश्वत्थामा जैसे अनिर्घनीय वीरों को बतवा दिया और हजारी मुकी, विद्वान्, कलाविद् भक्तियों का अन्त करा दिया इसी में 'भारतवर्ष' को पतन का मुख देलना पड़ा। पर ये नहीं जानते कि जब भगवान कृष्ण ने देखा तबिया कि ये सैनिकतावादी और राज्य के भूमे लोच अब तक कामम रहेये तब तक जनता सुख से नहीं रह सकती। ये सोच अपनी सैनिक तंत्रारी और युद्धों के लिये जनता को धूलते ही रहेये, तो उन्होंने सामाजिक प्रगति के लिये यही हितकर समझा कि इन मद्द कारी और दुर्गाही राजनायकों का अन्त हो जाय।

ठीक ऐसी ही दशा आजकल हो रही है। आज वैज्ञानिक प्रगति की बढोत्तम उत्पादन के साधन निरर्थक प्रति बढते जाते हैं, पर सैनिक व्यवस्था के कारण जनता की अभावप्रसूता का ही जीवन बिताना पड़ रहा है। यह स्थिति तब तक नहीं बदल सकती जब तक रात्री से या विद्यमानता से इन सैनिकता के जन्मादियों का अन्त नहीं हो जायगा। यही विचार करके एक विचारक ने कहा है—'समझ है कि आधी पुरु-रोल ही धर्मक्षेत्र बन जाय।' और 'कठिक उत्पादना का मनन करके हम यह सकते है कि यही समाजना अविनाश में साथ सिद्ध होगी।

पूँजीवाद और साम्यवाद का संघर्ष

जसा हम कह चुके हैं इन समय सत्तार की समस्या इसकी अतिरिक्त उभर गई है कि अब उसकी प्रति रूढ़ हो जाना ही निरव्यव है। सब से बड़कर पूँजीवाद (कैपीटलिज्म) और साम्यवाद (कम्युनिज्म) का संघर्ष दुनिया की दो समान शक्तिशाली दलों में विभक्त करके एक सब से बड़ी प्रार्थित की समाजना उत्पन्न कर रहा है। यद्यपि पूँजी-वाद अभी तक सत्तार का प्रधान संरक्षक रहा है और अब भी दुनिया के सब से प्रतिष्ठित देश-अमरीका इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि में उसी की मता

मानो जा रही है, तो भी प्रब बह घटती पर है और साम्यवाद वृद्धि की ओर अग्रसर हो रहा है। एक लेखक के मतानुसार "साम्यवाद एक नव जीवन मन्मथ शक्ति है जबकि पूँजीवाद दिन पर दिन क्षीण होकर समाप्त होने वाली शक्ति है। साम्यवाद आक्रमण करने वाला है, पूँजीवाद आत्मरक्षा के लिये प्रयत्नशील है। साम्यवाद के सामने पूरा करने के लिये एक लक्ष्य (मिशन) है, पर पूँजीवाद के सामने कोई विशेष लक्ष्य नहीं है। इस समय पूँजीवाद के लिये इतना ही कर्तव्य शेष रह गया है कि वह साम्यवाद (कम्युनिज्म) को हिंसक और उन्मत्त हो जाने से तब तक रोकता रहे जब तक कि परमात्मा में विश्वास-पिता और मनुष्य मात्र में सन्तुष्टि की भावना रखने वाला 'नया साम्यवाद' सन्सार के सम्मुख न आजाय।"

जिस अवतार की अनेक लोग घबर्हा कर रहे हैं उसका सब से बड़ा काम यही होगा कि वह कैपिटलिज्म (पूँजीवाद) और कम्युनिज्म (साम्यवाद) में समन्वय करके सन्सार के लिये एक आदर्श सामाजिक-प्रणाली की स्थापना करे। न तो 'पूँजीवाद' को मर्थात्तु बुरा बतलाया जा सकता है और न 'साम्यवाद' को पूर्ण रूप से निर्दोष कहा जा सकता है। ये दोनों ही अपने युग की आवश्यकतानुसार ठीक थे। पूँजीवाद का मुख्य दोष यही है कि वर्तमान समय में जब परिस्थितियों के बदल जाने से उसकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है, तब भी वह सन्सार का स्वामी और कर्ता धर्मा बना रहना चाहता है। कम्युनिज्म की सब से बड़ी त्रुटि यह है कि यह मनुष्य के अन्त में उत्पन्न नहीं हुआ है बल्कि ऊपर से अबदस्ती लाया जा रहा है और उसने मनुष्य के आध्यात्मिक-विकास की बिल्कुल उपेक्षा कर दी है।

अब अपनी इन त्रुटियों को दोनों पक्ष (पूँजीवादी और साम्यवादी) समझ भी चुके हैं, पर प्रत्येक अपनी सत्ता और प्रमुखता को सिद्ध करने के लिए हठधर्मी कर रहे हैं और मानव जाति के लिये कल्याणकारी मार्ग की उपेक्षा कर रहे हैं। अयत्नागी-सत्ता अपनी विराट आत्मशक्ति के प्रभाव से इस तन्म्य को इस प्रकार और ऐसे रूप में दोनों को समझा

देगा कि उसकी बुद्धि 'गुद्ध' हो जायेगी और वे नाग के मार्ग को खान कर निर्माण के मार्ग पर चल पड़ेंगे । चाहे आज के भौतिकतावादी सघर्ष की कटुता और भ्रतिवर्द्धित उन्माह से यह कर भगवान को भ्रूण पड़े हों पर भगवान उनको नहीं भ्रूण मानता । हम जानते हैं कि समस्त समाज और विशेष रूप से आध्यात्मिक समुदाय की गोद में पनी हुई भारतीय जनता 'ईश्वर रहित' साम्यवाद को स्वीकार नहीं कर सकती पर 'नया अवतार' उसको 'गुद्ध और पवित्र' बनाकर मनुष्य मात्र में ममता के माध्य ही प्रसृभाव की भी स्थापना करेगा और तब उसका प्रचलित गौण विद्वान्त 'आध्यात्मिक साम्यवाद' के रूप में समाज का जीवन-दाता मार्ग बन जायेगा ।

भगवान मातृरूप में लक्ष्मी प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होकर मानव-जाति का मार्ग-प्रदर्शन करके विषमता के स्थान पर समता, अभाव के स्थान पर न्याय और अशर्म के स्थान पर धर्म की स्थापना करें यही इस समय मानव-अन्तरात्मा की प्रार्थना है ।

'इति पुराण' का सार यही है । यह उसकी बहुत बड़ी विशेषता है कि अन्वय और अनुमानता के युग में उत्पन्न एक 'नया' के रूप में 'सत्य-धर्म' की स्थापना की बल्यता की और 'बलि' द्वारा उसे समर्थ यतना कर प्रचारित किया । हमने तो मन्देह ही नहीं कि ऐसे विराट और दिग्बल्ययी परिवर्तन सामान्य मागशीय शक्ति द्वारा समर्थ नहीं हो सकते । उनके लिये 'अतिमानवीय' या देवी शक्ति की आवश्यकता होती है और वह 'परमात्म शक्ति' के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं हो सकती ।

—सत्यमवत

कल्किपुराण

प्रथम अंश

प्रथम-अध्याय

सेन्द्रा देवगणा मुनीश्वरवना लोकाः सपत्ना. सदा ।
स्व स्व कर्म सुसिद्धये प्रतिदिन भक्त्या भजन्त्युत्तमा. ।
त विघ्नेशमनन्तमच्युतमज सर्वज्ञसर्वाश्रय ।
चन्दे वैदिकतान्त्रिकादिविधिं शास्त्रे पुरोवन्दितम् ॥ १ ॥
नारायण नमस्कृत्य नरश्चैव नरोत्तमम् ।
देवी सरस्वतीश्चैव ततो जयभृदीरयेत् ॥ २ ॥
महोदण्डकरालसर्पकवलज्वालाज्वलद्विग्रहाः
नेतुः सत्करवानदण्डदलित भूपा.क्षितिक्षोभकाः ।
सद्वत् सन्धववाहनो द्विजजनि. फल्किः परात्मा हरिः
पापात्नत्ययुगादिवृत्त भगवान्धर्मप्रवृत्तिप्रियः ॥ ३ ॥
इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः ।
क्षीनकाद्या महाभागाः पप्रच्छुस्तं कथामिमाम् ॥ ४ ॥
हे सूत! सर्वधर्मज्ञ ! लोमहर्षणपुत्रकः ! ।
त्रिकालज्ञ ! पुराणज्ञ ! वद भागवतीं कथाम् ॥ ५ ॥
कः कलिः ? कुत्र वा जातो जगतामीश्वरः प्रभुः ।
कथं वा नित्यं घम्मस्य विनाश कलिना कृतः ? ॥ ६ ॥
इति तेषां वचः श्रुत्वा सूतो घ्यात्वा हरिः प्रभुम् ।
सहस्रपुलकोद्भिन्न सर्वाङ्गः प्राह तान्मुनीन् ॥ ७ ॥

प्राचीन ज्ञान में वैदिक तान्त्रिक आदि विविध शास्त्रों के द्वारा प्राणधिन, इन्द्र सहस्र देवता, मुनीश्वर और लोचपात्रों द्वारा स्वशर्म-मिद्धि के लिए भक्तिपूर्वक चतुस्र उपासित, विघ्नेश, भगव्य, भ्रम्युग, मरुत्मा, सर्वज्ञ एवं सर्वाश्रय स्वध्वन भगवान् विष्णु का वन्दन करता है ॥१॥ नर, नारायण बहे जाने वाले नरोत्तम को एव भगवती सरस्वती को नमस्कार करके उनकी आज शोचता है ॥२॥

जिनके भयंकर भुज भुजग के विण ज्वान में कदवर पाने घोर प्रत्याचारों में भूमडन की शान्ति भय करने वाले राजागण भस्म ही लायने और जिनके भयंकर स्वङ्ग को तीक्ष्ण धार से राजाघो में देह मर्दित होंगे, वे श्राद्धला वश में उत्पन्न होकर, युग-युग में प्रयत्न धारण करने वाले भगवान् श्री हरि वलित रूप में रक्षा करें ॥३॥

सूतजी के यह वचन सुन कर नैमिषारण्य निवामी श्रीनादि महा-भागों में उनसे पूछा ॥४॥ हे सूतजी ! हे सर्व पत्नी के शाता, हे सोम-हंगम-पुत्र ? हे त्रिपालत्र ? हे पुराणों के भनी प्रकार आम्ने वाले ? अथ प्राण भगवान् की क्या की विलून रूप से कहिये ॥५॥ कति कौन है ? वह बहो उत्पन्न हुआ ? वह किस प्रकार पृथिवी का मधीश्वर बन गया ? तथा उगने निरुपधर्म की किस प्रकार धितष्ट कर दिया ? यह सब हमारे प्रति कहिये ॥६॥ महर्षिकों के यह वचन सुनकर सूतजी ने भगवान् श्री हरि का ध्यान किया और फिर पुनर्कित भग होकर बहने लगे ॥७॥

शृणुष्वमिदमाख्यानं भविष्य परमाहुतम ।
 पश्चि ब्रह्मणा पूर्वं नारदाय विपृच्छते ॥ ८ ॥
 नारद प्राह सुमयं व्यासायामितनेजसे ।
 गन्धर्भो निजपुत्राय ब्रह्मराताय धीमते ॥ ९ ॥
 न आभिमन्वुपुत्राय विष्णुराताम सदादि ।

प्राह् भागवतान्धर्मनिष्ठादशसहस्रकान् ॥ १० ॥

तदा नृपे जयं प्राप्तो गप्साहे प्रदत्तशेषितम् ।

मार्कण्डेयादिभिः पृष्ट. प्राह पुण्याश्रमे शुक. ॥ ११ ॥

तत्राह तदनुज्ञातः श्रुतवानस्मि या कथाः ।

भविष्याः कथयामोह पुण्या भागवतौः शुभा ॥ १२ ॥

मूनबो बाने—हे मुनीश्वरो ! प्राचीन समय की बात है—इस परम भद्रभुत उपाध्यान कोपूछने पर ब्रह्माजी ने नारदजी से जो बहा था, वही मे आपके प्रति कहता हूँ ॥१०॥ फिर नारद जी ने हमका दर्शन व्यासजी से किया, जिसे व्यासजी ने अपने मेधावी पुत्र ब्रह्मरात को सुनाया ॥११॥ ब्रह्मरात ने उसे अभिमन्यु-पुत्र विष्णुरात के प्रति पट्टारह सहाय श्लोकां मे मना मठप के मध्य मे सुनाया ॥१०॥ उस समय प्रश्न होते-होने राजा विष्णुरात ने एक मत्साह मे जेप प्रश्नों को पूर्ण कर लिया और जय को प्राप्त हो गये । उसी कथा के शेष अक्ष भर्षान् शशिप्त रूप को शुकदेवजी ने मार्कण्डेय प्रभृति मुनियों के प्रश्न करने पर कहा ॥११॥ भगवान् श्री शुकदेवजी द्वारा वर्णित उमी सशिप्त पुष्पमय, भागवत उपाध्यान को, जो भविष्य मे घटित होने वाला है, आपने पढ़ना है ॥१२॥

ताः शृणुष्वमहाभागा. समाहित धियोर्जनशम् ।

गते कृष्ण स्वनिनय प्रादुर्भूतो यदा कलिः ॥ १३ ॥

प्रलयान्ते जगत्पृष्टा ब्रह्मा लोरुपितामह. ।

ममर्जं पोर मनिन पृष्टदेनात स्वपातकम् ॥१४॥

म चाधर्मं इति स्यात्स्तस्य वेदानुकीर्तनात् ।

श्रुत्वात्समरस्यात्लोक तद्वर्षा. प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

अधर्मस्य प्रियारम्या मिथ्या मार्जारलोचना ।

तस्य पुत्रोर्गतितेजस्वी दग्ध. परमकोपनः ॥ १६ ॥

स मायाया भगिन्यान्तु लोभः पुत्रश्च कन्यकाम् ।

निकृति जनयामास तयो क्रोध सुतोऽभवत् ॥ १७ ॥

अबदात् धीकृष्ण के अपने लोभ को पधारते के परचात् जिस प्रकार कलि की उत्पत्ति हुई, उस समय को कहना है, माय लोग समाहित पित सुने ॥१३॥ अब प्रलयकाल अतीत हो गया अब सप्तार-खण्डा, लोक विश्रामह ब्रह्माजी ने अपनी पीठ से घोर भलीन पातक को उत्पन्न किया ॥१४॥ उसी पातक का नाम अघर्म हुआ, उस अघर्म के वंश का धरण, स्मरण एव रहस्य जानने से प्राणोपाय सब पाये से मुक्त हो सकते हैं ॥१५॥ उस अघर्म की पत्नी बिल्ली जैसे नेत्र वाली, उत्पन्न रम्या हुई, जिसका नाम मिष्या हुआ । फिर अघर्म के संयोग से प्रति तेजस्वी, महाशोधी एक पुत्र हुआ, जिसका नाम दध था ॥१६॥ अघर्म और मिष्या ने माया नाम की एक कन्या भी उत्पन्न की । दध और माया के संयोग से लोभ नामक पुत्र और निकृति नाम की कन्या हुई । लोभ और निकृति के संयोग से क्रोध नामक पुत्र हुआ ॥१७॥

सहिसामा भगिन्यान्तु जनयामास त कलिम् ।

वामहस्त धृतोपस्थ तैलाभ्यक्ताञ्जनप्रभम् ॥ १८ ॥

काकोदर करालास्य सोलजिह्वं भयानकम् ।

पूर्तिगन्ध च तूपदस्त्री सुवर्णकृताश्रयम् ॥ १९ ॥

भगिन्यान्तु दुश्कृत्या स भय पुत्रश्च कन्यकाम् ।

मृत्युं स जनयामास तयोद्व निरमोऽभवत् ॥ २० ॥

यातनाया भगिन्यान्तु लैभे पुत्रायुतापुनम् ।

इत्य कलिबुने जाता बहवो अघर्मनिन्दकाः ॥ २१ ॥

यन्नाघयनदानादिवेदतन्त्रविनाशकाः ।

आधिध्याधिजरग्लानिदु सशोकभयाश्रयाः ॥ २२ ॥

क्रोध की मयीनि हिना हुई । उन दोनों के संयोग से सप्तार को नष्ट करने कलि की उत्पत्ति हुई । इस वाम कर में उपस्थ धारण करने वाले कलि की देह शक्ति वाज्रल के समान वाली हुई ॥१८॥ काकोदर, कराल, चरल जिह्वा वाले, भयानक दुर्गन्ध युक्त शरीरधारी इस कलि

ने धृत, मठ, स्त्री घोर स्वर्ण में निवास किया ॥१६॥ कलि की सगर्भा
दुरुक्ति हुई । इन दोनों ने मयानक नामक पुत्र और मृत्यू नाम की कन्या
उत्पन्न की । मृत्यू ने उसके द्वारा निरय नामक पुत्र को उत्पन्न
किया ॥२०॥ निरय की सगर्भा यातना हुई । इन दोनों के संयोग से
हजारों पुत्र उत्पन्न हुए । इस प्रकार कलि के कुल में बहुतेरे धर्म-निन्दकों
की प्रवृत्तारणा हुई ॥२१॥ यह सभी घ्राधि, व्याधि बुद्ध्या, ग्लानि दुःख
शोक और भय के प्राण्य को प्राप्त होकर मज्ज, पच्यवन, दानादि एवं
चैदिक तथा तांत्रिक कर्मों का नाश करने वाले हुए ॥२२॥

कलिराजानुगारनेरूपं पशो लोकनाशकाः ।

वभूवुः कालविभ्रष्टा क्षणिका; कामुका नराः ॥ २३ ॥

दम्भाचारदुराचारास्तातमातृविहिंसकाः ।

वेदहीना द्विजा दीनाः शूद्रसेवापरा-सदा ॥ २४ ॥

सुतर्कवादबहुला धर्मविक्रियणोऽप्यमाः ।

चेदविक्रियणो दात्या रसविक्रयिणस्तथा ॥ २५ ॥

मासविक्रियण क्रूराः शिस्तोदरपराधराः ।

परदाररता मत्ता वर्णसङ्घरकारकाः ॥ २६ ॥

ह्रस्वाकारा. पापसारा. दाया मठनिवासिनः ।

षोडशच्छामुपः श्यालवान्धवा नीचसङ्गमा ॥ २७ ॥

नौकाचरण का नाम करने वाले, कश्मिराज के अनुचर रूपों ने
बेचन, क्षण-भंगुर और कामुक मनुष्य-वेद धारण किये ॥२३॥ यह घोर
दम्भी, दुराचारी, मातृ-पितृ-हिंसक अनुचरगण दाह्याण कुल में अन्य
लेकर भी वेद-विहीन, रस्त्री और शूद्रों के सेवा-पराधण हुए ॥२४॥
सुतर्कवाद की बहुसंज्ञा से युक्त, धर्म, वेद, मम, मांस आदि के विषय
में तदार, मन्कार-विहीन, शिस्तोदर-पराधण, पन्धर-पराधण, उच्चम
एवं वर्णसङ्घ सन्तानों के उत्पन्न करनेवाले हुए ॥२५-२६॥ यह नाटे
प्राकार के, पापी, शट, मठों में निवास करने वाले, मोलह वर्ण की
परम घाए वाले, यह कर्म के सेवाधण माने की भाई के समान

मानने वाले घोर नीचो की सपत्ति करने वाले हुए ॥२७॥

विवादकलहक्षुब्धाः केशवेगविभूषणा ।

कलौ कुक्षीना धनिनः पूज्या वाङ्मुपिका द्विजाः ॥ २८ ॥

मन्यामिनो गृहासक्ता गृहस्थास्त्वविवेकिनः ।

गुरुनिन्दापरा धर्मध्वजिनः साधुवन्दकाः ॥ २९ ॥

प्रतिग्रहरता गृद्धा परस्वहरणादरः ।

द्वयो स्वीकारमुद्राहः मठे मंथ्री वदान्यता ॥ ३० ॥

प्रतिदाने क्षमायत्नौ विरक्तिवन्तरक्षमे ।

वाचालत्वञ्च पाण्डित्ये यनोर्ज्ये धर्मसेवनम् ॥ ३१ ॥

धनाढ्यत्वञ्च साधुदूरे दूरे नीरे च तीर्थता ।

सूत्रमात्रेण विप्रत्व दण्डमात्रेण मस्करी ॥ ३२ ॥

विवाद-कलह में क्षुब्ध रहने वाले, वैज किव्यास में आसन, पा-
वान, व्याज से बीना चलाने वाले एव कुलीन बहलाने वाले यह
शास्त्रम ही नित्यमान में पूजनीय हुए ॥२८॥ सन्यासी गृहस्थ-धर्म
परायण हो गए, गृहस्थों में विवेचन शक्ति का अभाव होगया, निम्न
गुरु निन्दक घोर धर्मध्वजी साधु वन्ता होगए ॥२९॥ गृद्ध दान देने और
पर-सम्पत्ति के हनन करने वाले हुए, स्त्री-पुरुष की सहमति ही विवाह
दृष्टा, मित्र शत्रु हुए, प्रतिदान ही दानशीलता होगया, न्यायाधीश दण्ड
 देने में अक्षम्य होकर क्षमाशील होगए, दुर्बल के प्रति उदासीगता होने
 लगी, शक्ति बोलने वाले ही गदित पहुँ जाने वाले तथा यश की वासना
 में ही मोन धर्म का सेवन करने लगे ॥३०-३१॥ धनवान ही साधु पुरुष
 माने जाने लगे, दूर का साधा दृष्टा जल ही तीर्थ का जल होगया, पशु-
 पक्षी में ही शास्त्रमत्र निहित होगया और दण्ड धारण सन्यासी का
 नशान रह गया ॥३२॥

अल्पशय्या यमुमती नदीतीरेऽजरोपिता ।

मित्रयो वेश्यानापमुखाः स्वपुंसा त्यजमानिना ॥ ३३ ॥

परज्जननोऽनुषा विश्राज्यन्तान्गृहयाजना ।

स्त्रियो वैश्व्यहीनाश्च स्वच्छन्दाचरणप्रियाः ॥ ३४ ॥

चित्रवृष्टिकरा मेघा मन्दशस्या च मेदिनी ।

प्रजाभक्षा नृपा लोकाः करपीडाप्रपीडिताः ॥ ३५ ॥

स्कन्धे भार करे पुत्रं कृत्वा क्षुब्धाः प्रजाजनः ।

गिरिदुर्गं वन घोरमाश्रयिष्यन्ति दुर्मगाः ॥ ३६ ॥

मधुमांसमूलफलैराहारैः प्राण धारिणः ।

एव तु-प्रथमे पादे कले- कृष्णविनिन्दकाः ॥ ३७ ॥

पृथिवी भलाशस्या होगयी, नदियाँ भ्रम्यान्व स्यातो में बहने वाली हुईं, भारियाँ वेशपालय में सुख मानने लगीं और भार्याओं का पहि में अनुराग नहीं रहा ॥३३॥ परामे भन्न की कामना वाले शाहूण शूद्रों के यहाँ यजन करने लगे, विगवायो ने वैश्व्य का आचरण त्याग दिया और स्वच्छन्द आचरणवाली होगई ॥३४॥ मेघ,खण्ड-वृष्टि वाले हुए, पृथिवी मन्दशस्या हुई, राजागण प्रजा-भक्षक होगये, जिसमे प्रजा कर्म के भार ने उत्पीडित हो उठी ॥ ३५ ॥ अत्यन्त क्षुब्ध हुए प्रजाजन कन्धों पर घोभसोर हाथ में पुत्र लेकर दुर्गम पर्वत और घोर वनों में जाकर आश्रय खोजने लगे ॥ ३६ ॥ मधु,मांस मूल और फल का भोजन ही प्राप्त धारण का महारा वन गया । कलि के प्रथम पाद में ही मनुष्यगण थी गुण-निन्दक हो गये ॥ ३७ ॥

द्वितीये तन्नामहीनास्तृतीये वर्णमङ्कुरः ।

एकवर्णश्चतुर्थे च विस्मृत,च्युतसद्विज्ञयाः ॥ ३८ ॥

नि स्वाध्या-स्वदा-स्वाहा-वोपडोकार-यजिज्ञताः ।

देवा सर्वे निराहाराः ब्रह्माण शरण ययुः ॥ ३९ ॥

धरित्रीमग्रतः कृत्वा क्षीणां दीनां मनस्विनीम् ।

ददृमुद्रहाणी लोका वेदध्वनिनादितम् ॥ ४० ॥

यज्ञधूमैः समाकीर्णं मुनिवर्यं निषेवितम् ।

भुयर्णं वेदिकामध्ये दक्षिणावत्तं मुञ्जवनम् ॥ ४१ ॥

यज्ञं पूषाँश्चुतोद्यान-वन-मुष्ण-कनान्वितम् ।

सरोभि सारसैर्हमैराहूयन्त मिवातिथिम् ॥ ४२

बलि के द्वितीय पाद में सौम्य धीशुष्य नाम को भी भूल गए, तीसरे पाद में बलं शफर उत्पन्न हुए और चौथे पाद में तो जाति-पाति ही कुछ न रही, सोम सन्कषं और ईश्वर को भी भूल गये ॥ ३८ ॥ स्वाभ्याय, स्वमा, स्वाहा, वषट्कार और मोक्षारदि का लोप हो गया जिसमें सभी देवता आहार न मिलने के कारण पीड़ित होकर ब्रह्माची की सरण में गये ॥ ३९ ॥ सभी धीशुष्य को प्राप्त हुए दीन देवगण चिन्तित। पृथिवी को धार्य करने ब्रह्म-लोक को गये । वह लोक उन्हें वेद-ध्वनि से गूँजता हुआ दिखाई दिया ॥ ४० ॥ वहाँ यज्ञ का घुमा पंथ रहा था मुनिगण उपामनाएव यज्ञ कर रहे थे, स्वर्ण-वेदी के मध्य दक्षिणाग्नि प्रज्वलित थी, उद्यान वन-पुष्पों और फलों से परिपूरण थे, शरोवर में सारस और हंसों के मधुर स्वर ऐसे लग रहे थे, मानों मन्त्रियों का स्वागत कर रहे हों ॥ ४१-४२ ॥

वायु लोभतलोजालपुमुमालिपुलाकुलं ।

प्रगताज्ञान-यत्कार-मधुरालापवीशरी ॥ ४३ ॥

तद्ब्रह्मभदन देवा सेश्वरा बिनप्रमानसा ।

विविशुभ्रतदनुभाता निवकार्य निवेदितुम् ॥ ४४ ॥

त्रिभुवनत्र य मदायनस्य सनक-सनन्दन-मनातनैरवशिद्धः ।

परिसेवित पादवमल ब्रह्माणु देवता नेमुः ॥ ४५ ॥

पचस पवन मना-जानो की भयोर रहा था, अनि श्वरदि कृतिवों का रम-यात काले गूँज रहे थे, यानों-घट सभी प्रणाम, पाद्वान, मत्कार आदि के लिए मधुर वाणी का प्रयोग कर रहे हों ॥ ४३ ॥ यहाँ स्वामी इन्द्र के महिन भेद पुनः मन पाने गद देवता ब्रह्माची की आज्ञा प्राप्त करने अपना दुःख निवेदन करने के लिए ब्रह्म-भदन में प्रविष्ट हुए ॥ ४४ ॥ वहाँ ज्ञान मन्त्र, मनन्दन और मनातन में अपने चरण-चमनों की सेवा करने हुए एवं थोड़ा घात पर प्रतीति ब्रह्मा-ची को उन देवताओं ने नमस्कार दिया ॥ ४५ ॥

द्वितीय अध्याय

उपविष्टास्ततो देवा ब्रह्मणो वचनात्पुर ।
 वल्लेदोषाद्धर्महानि कथयामासुरादरात् ॥ १ ॥
 देवानां तद्वचः श्रुत्वा ब्रह्मा तानाह दृ-क्षितान् ।
 प्रसादयित्वा त विष्णुं साधयिष्याम्यभीप्सितम् ॥ २ ॥
 इति देवैः परिकृतः गत्वा गोलोकवासिनम् ।
 स्तुत्वा प्राह पुरो ब्रह्मा देवानां हृदयेप्सितम् ॥ ३ ॥

मूनजी बोले—हे मुनीश्वरो ! यहाँ जाकर वे सभी देवता ब्रह्मानी की आज्ञा से उनके समक्ष बैठ गये । फिर उन्होंने कलि के दोषों में जो परम की हानि हुई थी, उनका सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ॥ १ ॥ दुःखित हृदय वाले देवताओं के बचन सुनकर ब्रह्मानी बोले—मैं भगवान् विष्णु की आराधना करके तुम्हारा सब मनोरथ मिट करता हूँ ॥२॥ यह कर ब्रह्मानी ने देवताओं को साध लिया और गोलोक निवासी भगवान् श्री हरि की सेवा में जा पहुँचे । वहाँ उन्होंने श्रुति की ओर फिर देवताओं की वापसता निवेदन की ॥३॥

तच्छ्रुत्वा पुण्डरीकाक्षो ब्रह्माणमिदमब्रवीत् ॥
 शम्भले विष्णुयज्ञसो गृहे प्राहृभंवाभ्यहम् ।
 सुमत्यांमातरि विभो । पत्नीयां त्वन्नदेशतः ॥ ४ ॥
 चतुर्भिर्भ्रातृभिर्देव । करिष्यामि कलिक्षयम् ।
 भवन्तो वाग्ववा देवाः स्वग्निनावतरिष्यथ ॥ ५ ॥
 इयं मम प्रिया लक्ष्मी, निहले संभविष्यति ।
 वृद्धद्वयस्य भूपस्य कौटुहां एमनेहृगा ।
 भार्याया मम भार्य- चानाम्नी जनिष्यति ॥ ६ ॥

सरिमृदा गिरयो लोकाः सस्थाणुजङ्गमा ।

सहर्षा ऋषयो देवा जाते विष्णो जगत्पते ॥ १२ ॥

बभूवुः सर्वमस्वानामानन्दा विविधाश्रयाः ।

नृत्यन्ति पितरो हृष्टास्तुष्टा देवा जगुर्घरा ॥ १३ ॥

चक्रुर्विधानि गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ १४ ॥

द्वादश्या शुक्लपक्षस्य माघवे भामि माघव ।

जात ददशतु. पुत्रं पितरो हृष्टमानसौ ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीहरि विष्णुयज्ञ के द्वारा उनकी पत्नी के गर्भ में पविष्ट होकर भ्रूण रच्य हुए ॥११॥ यह जानकर कि विष्णु पृथिवी पर था गये हैं, सभी भरिता, समुद्र पर्वत, स्थावर जगत् प्राणी, ऋषि-सम्प और देवगण आदि सभी प्रमत्त हो उठे ॥१२॥ तथा सभी जीव विभिन्न प्रकार से हर्ष प्रकट करने लगे, पितर नाचने लगे और देवता प्रा के गुणगान में तत्पार हुए ॥१३॥ गन्धर्व बाजे बजाने और अप्सरायें नृत्य करने लगी ॥१४॥ वैशाख शुक्ला द्वादशी के दिन भगवान् ने अवतार लिया । उनकी प्रकट होने हुए देखकर माता-पिता पुनर्जित हो उठे ॥१५॥

घातृमाना महापाठी नाभिच्छेयो तदम्बिका ।

गद्गोदकालेदमोक्षा सावित्री मार्जनोद्यता ॥ १६ ॥

तस्य विष्णोरनन्तस्य वसुधाऽद्यात्पयमुघाम् ।

मातृका माङ्गल्यवच कृष्णजन्मदिने तथा ॥ १७ ॥

ब्रह्मा तदुपघार्यन् स्वान्गं प्राह मेवकम् ।

याही तं मृत्तिकागारं गत्या विष्णु प्रबोधय ॥ १८ ॥

चतुर्भुजमिदं रूपं देवानामपि द्रुमंभम् ।

त्यक्त्वा मान्पवद्रूपं कुरुनाथ । विचारितम् ॥ १९ ॥

इति ब्रह्मवचा श्रुत्वा एवतः सुरभिः मूलम् ।

उगीत. प्राह तस्मा ब्रह्मणो वचनादृत्तः ॥ २० ॥

नरवाह के प्रकट होने पर महामरुटी घायी हुई, अम्बिका ने
माल घेइत किया, गङ्गादेवी ने अपने बल से नन्दवेद को हटाया और
छादियो ने नरवाह के शरीर का मार्जन किया ॥१६॥

ब्रह्मन्वन्त के लाने ही अन्त भयवाह के अस्तार लेने पर
बनुवरा ने बुन्दबुवा की धारा प्रवाहित कर दी, नारदाओं ने नयना-
धार किया ॥१७॥ गन्धर्व राज के नरवाह के अस्तित्व होने का
सनाधार जानकर इन्द्रादी ने वायु को आज्ञा दी कि तुम मूर्धिकावार
में आकर भयवाह से इत इतार करो ॥१८॥ कि बादमे बनुवरा स्वर्ण
का दर्जन को देवताओं के लिए भी हुनस है, मनः हे नाह । इन
बनुवरा का ही छोड़कर ननुवरा बन बसादे ॥१९॥ कुशीतल, सुभद्र,
सुतन्दित्र व सु ने यह वचन सुनकर शून्यनि से मूर्धिकावार में आकर
भयवाह से निवेदन किया । २०॥

तच्छ्रुत्वा वृन्दगीवाक्षलात्पलाद्दिदृशुर्बोम्भवन् ।
नदा नन्वितर्गो हृष्ट्वा विस्मयापन्नमानना ॥ २१ ॥
अनन्तकारवन्तश्च मनाने तन्व नायया ।
नवल्लु शम्भलप्राने मोलवा औषादायजः ।
मङ्गलाचारवहूना पापज्ञानविर्वाञ्जना ॥ २२ ॥
सुभनिम्न कुनतन्वा विष्णु जिष्णु वनतनिम्न ।
पुण्ड्राना विप्रमृच्यानाहृषाद्गवा शतम् ॥ २३ ॥
हरे, बन्धारावृदिष्णुयसा शुद्धेन नेतना ।
मानम्पुंदिदिनिरसं घस्तन्नामकरसो रतः ॥ २४ ॥
नद राम कृपो ध्यानां द्रीर्गिर्निष्प्रशरोरिष्णुः ।
समाधाना हरि द्रष्टु दानरत्ननुपागतम् ॥ २५ ॥

इन्द्रादी का गंडेन शान्त होने पर नरवाह ने अरुण मरुट
की सुत्राओं से पुन दवा किया । यह सीता देवहर माता-पिता विष्णु
गद रहे ॥२१॥ वनु भी आज के संदित हूँ माता-पिता ने मरुट कि

धर्म से ही हमने अपने पुत्र को चार मुखा देखा था । फिर उस शम्भुन
प्राप्त में सभी पाप-ताप नष्ट होकर नित्य नवीन मंगलाचार होने
लगे ॥२२॥ भगवान् को पुत्र हार में प्राप्त करके पूर्णकामा मुमति ने
ब्राह्मणों को एक सौ गोय दान की ॥२३॥ पवित्र हृदय वाले विष्णु-
पत्नी ने अपने पुत्र के मंगल की कामना से ऋक्, यजु और सामवेदी
ब्राह्मणों का नामकरण के लिए निवृत्त किया ॥२४॥ भगवान् के सिंगु-
रु का दर्शन करने के लिए परशुराम, कृपाचार्य, वेदभ्यास और द्रोणा-
चार्यजी के पुत्र प्रसवत्यामा भिक्षुक वेग में वहाँ भाये ॥२५॥

तानागतान्समालोचय चतुर सूर्यसन्निभान् ।

हृष्टरोमा द्विजवर पूजयाश्चक्र ईश्वरान् ॥ २६ ॥

पूजितास्तं स्वासनेषु सविष्टाः त्वमुच्चाश्रयाः ।

ह्रिं क्रोडगत तस्य ददृशुः सर्वमूर्तये ॥ २७ ॥

तयानक नराकार विष्णु नत्वा मुनीश्वराः ।

कल्कि कल्किविनाशार्यमाविभूत १९दुर्बुधाः ॥ २८ ॥

नामाकुर्वन्स्ततस्तस्य कल्किरित्यभिविश्रुतम् ।

कृत्वा सस्कारकर्माणि यपुस्ते हृष्टमानसाः ॥ २९ ॥

ततः स बबुधे तयः सुमत्या परिपालितः ।

कालेनाल्पेन कत्तारि शुक्लपक्षे यथा शशी ॥ ३० ॥

सूर्य के समान तेजस्वी उन ईश्वर स्वरूप प्राणनुकों को देखकर
द्विजवर विष्णुपति ने उनका पूजन किया ॥२६॥ भले प्रकार मुपूजित
हए वे मुनिगण श्रेष्ठ प्राणियों पर सुमपूर्वक विराजे, तब उन्होंने अपने
पिता की गोद में बैठे हुए भगवान् के दर्शन किए ॥२७॥ उन ज्ञानी
मुनीश्वरों ने मनुष्य रूप में सिंगु स्वरूप भगवान् को तमस्कार किया
और दद्व उन्होंने जान लिया कि कल्किज के विनाशार्थ भगवान् श्री
कल्कि का अवतार हुआ है ॥२८॥ फिर उनका सम्कार करने हुए
उनका कल्कि नाम रखकर प्रमन्न मन से वे मुनीश्वर चले गये ॥२९॥
फिर कत्तारि भगवान् माता मुमति के द्वारा भले प्रकार जातित-पतित

होते हुए मुनलपदा के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होने लगे ॥३०॥

फलैर्ज्यैष्ठाश्रय दूरा कश्चि प्राज्ञ सुमन्त्रका ।
 पितृगातृप्रियकरा गुरुविप्रप्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥
 कङ्केरशा पुरो जाता माधवो धम्मंततपरा ।
 गार्ग्यभर्ग्यविशालाद्या ज्ञातयन्तदनुष्ठता ॥ ३२ ॥
 विशाग्ययूष भृगाल पाणितारतापर्वज्जिता ।
 द्राह्मणा कर्त्तृमालोवघ परा प्रीतिमुपागता ॥ ३३ ॥
 ततो विष्णुयशा पुत्र धीर सर्वगुणोत्करम् ।
 कल्कि कमलपत्राङ्ग श्रोवाच पठनाटनम् ॥ ३४ ॥
 तात ते ब्रह्मसस्यार यज्ञगूत्रमनुत्तमम् ।
 सावित्री याचयिष्यामि ततो वेदान्पाटिष्यति ॥ ३५ ॥

भगवाद् कल्कि के उत्पन्न होने से पहले माता-पिता को प्रिय, गुण-शाहमण का हित करने वाले इनके तीन भाई और उत्पन्न हो चुके थे । उनके नाम कवि, प्राज्ञ और सुमन्त्रक थे । भगवाद् के ही वश से उनकी जानि में, उनके अनुगामी, साधु स्वभाव वाले एव धार्मिक प्रवृत्ति वाले गार्ग्य, भर्ग्य और विशाग्य आदि भगवाद् से पहिले ही उत्पन्न हो चुके थे ॥३१-३३॥ विशाग्ययूष-नरेश द्वारा परिपालित यह सभी शाहमण भगवाद् का दर्शन करके सम्पूर्ण वाद-जाप में छुटकर भस्वत पड़ित हुए ॥३३॥ फिर अपने कमन्दमन एव सर्वगुण सम्पन्न पुत्र को पध्यन करने के योग्य बन वाला हुमा देखकर विरगुणक उनसे बोले ॥३४॥ हे पुत्र ! मैं तुम्हारा श्रेष्ठ रहम सम्भार, उपनयन और सावित्री का धरण कराऊँगा, फिर तुम वेदाध्ययन करना ॥३५॥

को वेद. वा न सावित्री केन सूत्रेण समृता ।
 द्राह्मणा विदिता सोऽ तत्तस्य म्य तात माम् ॥ ३६ ॥
 वेदा ह्येवाह सावित्री वेदमाता प्रतिष्ठिता ।

त्रिगुणश्च त्रिवृतमूत्रेण त्रेण विद्या प्रतिष्ठिता ॥ ३७ ॥
 दशमर्जे सस्कृता ये ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
 तत्र वेदाश्च लोकानां त्रयाणामिह पोषकाः ॥ ३८ ॥
 यज्ञाध्ययन दानादि तपःस्वाध्याय मयम ।
 प्रीणयन्ति हरिं भक्त्या वेद तन्त्र विधानतः ॥ ३९ ॥
 तस्माद्यथोपनयन कर्मणोऽहं द्विजै मह ।
 सम्पूज्यं बान्धवप्रवजनंस्त्वामिच्छामि शुभे दिने ॥ ४० ॥

पिता के वचन गुनकर बल्कि भगवाद् ने पूछा—वेद क्या है ।
 सावित्री क्या है । विम मूत्र से संस्कारित पुरुष ब्राह्मण सजक होना
 है ? हे नात ! यह सब गुणें बनाइये ॥३७॥ पिता बोले—वेद भगवाद्
 विष्णु की वाली है, सावित्री ही प्रतिष्ठा एव वेद-माना है । त्रिगुण-मूत्र
 को त्रिवृतानार करके पारण करने पर ब्राह्मण नाम में प्रतिष्ठित
 होता है ॥३७॥ तीनों नोपों के पोषक एव दशमर्ज द्वारा सम्पूज्य ब्रह्म-
 वादी जो ब्राह्मण हैं, उन्हीं के पास वेद निवास करते हैं ॥३८॥ यही
 दश सम्पत्तय वाले विप्र वेद, तन्त्र और ज्ञानादि में विधान में यज्ञ,
 ध्यायन, दान, तप, स्वाध्याय, मयम आदि के सहित भक्ति करते हुए
 भगवाद् को प्रणमन करते हैं ॥३९॥ इसी लिए ब्राह्मणों, वापसों आदि
 के सहित किसी शुभ दिन में तुम्हारा उपनयन संस्कार करना चाहता
 हूँ ॥४०॥

के च ते दश मस्कारा ब्राह्मणेषु प्रतिष्ठिता ।
 ब्राह्मणा केन वा विष्णुमर्चयन्ति विधानतः ॥ ४१ ॥
 ब्रह्मण्या ब्राह्मणप्राप्तो मर्भाधानादिसंस्कृतः ।
 मन्व्याश्रयेण सावित्री-पूजा-जप-परायणः ॥ ४२ ॥
 तपस्वो सत्यवाग्धीरो धर्मात्मा प्राप्तिं नमृतिम् ।
 विष्वचं नमिदं ज्ञात्वा मदानन्दमयी द्विजः ॥ ४३ ॥
 कुत्रास्ते म द्विजो येन तारयत्यन्विल जगत् ।
 सन्मार्गेण हरिप्रीणन्कामदोग्धा जगन्नये ॥ ४४ ॥

कतिन भगवान् बोले—ब्राह्मण के लिए निश्चित रिये ये वे दम-सस्कार कौन-कौन से है? किस विधान से ब्राह्मण भगवान् विष्णु की भजना रिया करते है? ॥४१॥ विष्णुकृत बोले—हे पुत्र ! ब्राह्मण के द्वारा ब्राह्मणों में गर्भाधान सस्कार आदि से संस्कृत, शिवालय मध्या एव मावित्री की पूजा और जप से परायण, तपस्वी, सत्ववक्ता, और धर्मात्मा ब्राह्मण भगवान् विष्णु की भजना विधि को भले प्रकार जानकर मानन्द में निमग्न रहता हुआ सर्वैव इस सृष्टि क रक्षक होता है ॥४२-४३॥ भगवान् ने कहा—हे तत ! जो ब्राह्मण सम्पूर्ण विश्व का उद्धार, साधुमार्ग-परायण, भगवान् विष्णु की उपासना द्वारा प्रसन्न करने वाला और तीनों लोकों की कामना पूर्ण करने वाला है, वह ब्राह्मण कहाँ है? ॥४४॥

कलिना बलिना धर्म घातिना द्विज पातिना ।

निराधुता धर्मरता गता वपन्तिराक्षरमु ॥ ४५ ॥

ये स्वल्पतपसो विप्रा स्थिता कलियुगान्तरे ।

शिखोदरभृतोऽधर्मनिरता विरक्त क्रियाः ॥ ४६ ॥

पापसारा दुराचारास्तेजोहीना कलाविह ।

आत्मानं रक्षितुं नैव शक्ता गूढस्य सेवका ॥ ४७ ॥

इति जनकवचो निशम्य कल्किः कनिकुन्वनाशमनोऽभिलाषजन्मा
द्विजनिजवचनेस्तदोपनीतो गुरुकुलवासमुदास साधुनाथ ॥ ४८ ॥

पिता बोले—धर्मघाती और ब्राह्मणों के हितव महाबली बलि के द्वारा पीड़ित हुये विप्र गण धन्य देव को चले गये ॥४५॥ स्वल्प तप वाले जो ब्राह्मण इन बलिकाल में यही स्थित रहे, ये सब शिखो-दर धर्मो होकर धर्म और कर्म से विरक्त हो गये ॥४६॥ पाप मुक्त, दुराचारी एव तेज-रहित ब्राह्मण इस बलिकाल में घात-रथा में प्रसन्न एव गूढों के सेवन बन्द गये हैं ॥४७॥ पिता के यह वचन सुन कर कल्कि भगवान् ने बलि को नष्ट करने का निश्चय रिया । ब्राह्मणों में घानी वाली द्वारा उनका जपनयन सस्कार रिया । और तब भगवान् कल्कि गुरुकुल में निवास हेतु गये ॥४८॥

तृतीय अध्याय

ततो वस्तु गुरुकुले गान्तं कल्कि निरोक्ष्य सः ।
 महेन्द्रमिस्थितो रामः समानीयाश्रमं प्रभुः ॥१॥
 प्राह त्वो पाठयिष्यामि गुरुं सा विद्धि घमंतः ।
 भृगु वंश समुत्पन्नं जामदग्न्यं महाप्रभुम् ॥२॥
 वेद वेदाङ्गं तत्त्वज्ञं घनुषेद विशारदम् ।
 कृत्वा निक्षयिष्या पृथिवीं दत्त्वा विप्राय दक्षिणाम् ॥३॥
 महेन्द्राद्रौ तपस्तप्तुं मागतोऽहृद्विजात्मज ।
 त्वं पठान् निज वेदं यच्चान्यच्छास्त्रमुत्तमम् ॥४॥
 इति तद्वचः श्रुत्य संप्रहृष्टतनूकह ।
 कल्किः पुरो नमस्कृत्य वेदाधीशो ततोऽभवत् ॥५॥

सूतजी बोले—मगवान् कल्कि को गुरुकुल पास के लिए जाते देख कर महेन्द्र पर्वत निवासी परशुराम उन्हें अपना आश्रम में ले गये ॥१॥ वही पहुँच कर परशुराम ने उनसे कहा—मैं भृगु वंश में उत्पन्न, महर्षि जामदग्नि का पुत्र, वेद-वेदांग के तत्त्व की जानने वाला, घनुषेद-विद्या-विशारद परशुराम हूँ ॥२॥ मैंने इस पृथिवी को क्षय-विहीन करके श्राद्धियों को दक्षिण स्वरूप दे सकी थी । अब तुम मुझे धर्म पूर्वक गुरु मन्नो, मैं तुमको सिखा दूँगा । हे द्विजात्मज ! मैं इस महेन्द्र पर्वत पर तपस्या करने के लिए आया हूँ, तुम यहाँ अपना वेदाध्ययन करो तथा अन्य को भी कोई साध्य पढ़ना चाहो, उसे पढ़ो ॥३-४॥ यह सुन कर भगवान् कल्कि ने आनन्द से सङ्गद् होकर परशुराम को प्रणाम किया और फिर वेदाध्ययन करने लगे ॥५॥

साङ्ग चतुषष्टिकलां घनुर्वेदादिह्यञ्जयत् ।
 समधीरस्य जामदग्न्यात्कल्किः प्राह कृताञ्जलिः ॥६॥
 दक्षिणा प्राथम्यं विभो ! या देव तव सन्निधौ ।
 ययामे सर्वसिद्धिः स्याद्या स्यात्स्य तोषकारिणी ॥७॥
 ग्रहणा प्राथितो भूमन् ! कलिनिग्रहकारणात् ।
 विष्णुः सर्वाश्रयं पूर्णः स जात सम्मले भवान् ॥८॥
 मतो विद्या शिवादेश्च लम्बा वेदमयं शुक्रम् ।
 सिंहले च प्रिया पद्या घमान्सस्थापयिष्यसि । ६।

अब भगवान् कल्कि चौड कागर्षी घोर सम्पूर्णं घनुर्वेद
 का ज्ञान प्राप्त कर चुके तब त होने हाथ छोड़ कर वाशुगाम से कहा —
 ॥६॥ हे विभो ! जिस दक्षिणा के देने से मुझे सर्वसिद्धि की प्राप्ति होगी
 घोर जिस दक्षिणा की प्राप्ति में घोर तनुष्ट हो सकेंगे, वह दक्षिणा
 मुझे बनाने की कृपा करिये ॥७॥ परशुराम बोले— हे भूमन् ! कलिहन्त
 का नाश करने के लिए ब्रह्माभी ने जिन भगवान् श्री हरि से निवेदन
 किया था, वे ही घाव भगवान् विष्णु सम्मले प्राय से पारतन्त्रित हुए हैं ॥८॥
 घोर मुझसे विद्या भगवान् शक्र से प्राप्त घोर वेदमयं शुक्र तथा सिंहल
 देव से घनशी परती पद्या की प्राप्ति करके भ्रूवण्डन पर धर्म की
 स्थापना करेंगे ॥६॥

सतो दिग्विजयेभूपान् धर्महीनान् कलिभ्रियान् ।
 निगृह्य षोढान् देवापि मन्त्रव स्यापयिष्यसि ॥१०॥
 धयमेतन्नु तनुष्टा साधुद्वयैः सदाक्षिणाः ।
 यो दानं तदः कर्म परिध्यामो यपोचितम् ॥११॥
 दृश्येत्तद्वचनं श्रुत्या नमस्कृत्य मुनिं गुरुम् ।
 विन्वोदकेदवरं देव गत्वा तुष्टाय शङ्करम् ॥१२॥
 पूजयित्वा यथाभ्यायं शिष्यं शान्त महेश्वरम् ।
 प्रस्तुतुष्यन्तुलोचं च ध्यायात् प्राह हृदिस्मितम् ॥१३॥

फिर विविध ढंग धर्म-विहीन और बलिधिय राजाओं और
 बौद्धों का महार कर्मह और देवापि की प्रतिष्ठित करने । तुम्हारा
 यह साधुत्व ही मुझसे सहाय करने वाली बलिष्ठा होगी, क्योंकि तब
 तुम स्व, वज्र, दान, ध्यान, आदि सभी कर्म करने प्रचार से कर सकोगे । १०-
 ११। यह सुन कर और सुदूर परशुरामजी का नमस्कार करके बहिन
 प्रयाग विश्वोदकेवर महाराज के मन्दिर में गये और उन्हें सन्तुष्ट कान
 मने । १२। हृदय में स्थित उक्त साधुतोष अन्त रक्ष्य शिवजी का तन्हीन
 विविध वृत्त किया और प्रणाम तथा ध्यान के पश्चात् निवेदन
 किया । १३।

गौरीनाथ विद्वनाथ सार्वभूतावास वासुकीकवचमुपमम् ।
 उग्रस पञ्चास्वादिवेवं पुनाण वन्दे सार्वनन्दसन्दोहदलम् ।
 योगाधीश्व कामनाश कर्नाल गङ्गासङ्गाकिलघमर्द्धानमीशम् ।
 षटाङ्गुटाटोपरिस्थितमाव महाबाल चन्द्रमाम नमामि ॥
 दमस्तान्धभूतबेतालसङ्घानाशर्म्भ सङ्घमूलाविमिश्र ।
 ध्यशायुषा वाह्यो लाकनाशे यस्य क्रोधोद्भूतलोकोऽनमेति ।
 यो भूतादि पञ्चमूर्तिसिद्धिषु तन्मायारमा काय धर्मस्वभाव
 प्रहृष्येद् प्राप्य लोवरवसीशो प्रह्लादन्दो रमते स नमामि ॥
 स्थितो विष्णुः सर्वत्रिप्युः गुणात्मा लोकात् साधून् धर्ममेतून्
 विभक्ति दह्याहाशे शोऽमिमाती गुणात्मा शब्दाऽङ्गैस्त्वपेश
 नमामि । यज्ञस्या वायवो यान्ति लोके ष्वसत्याग्नि सविता
 यातिऽप्यन् । शोतानु सेनारके सप्रहृश्च प्रवर्तते त परेश
 प्रवष्टे । यस्यादवासात् सर्वघात्रो घरिधो देवो वर्धत्वम्बु काल -
 प्रमाता । मेरुमध्ये भुवनात्ताञ्च भर्ता तमीशानविश्वरूप
 नमामि । १४-२०।

कलिकी ने कहा—हे गौरीपते ! हे विश्वेश्वर ! हे अरुणामत-
 पालक ! हे सर्वभूतालय ! हे वासुकी नाथ वा कवचमुपम पराण करने

वाते प्रभो ! हे विनेष ! हे पंचवदन ! हे पुराण पुत्र ! हे सचन घातक-
 रथ घातिशेव ! घातको नमस्कार है । १४। हे योगाधीश्वर ! घाप काश-
 टव का नाज करने वाले, कराल दशन, पंचतरण से समुज्वल मूंडा, कामे,
 जटाजूट टोप युक्त, पण्डित भाव वाले महाबास है । हे चन्द्रभात !
 घातको नमस्कार है । १५। हे प्रभो ! घात भूत वेदाओ के गृहीत स्वराज
 से विवाग करते हैं । घात घपनी भवानक भुजाओ से विविध प्रकार
 क दाशवाम धारण करते हैं । घनय जान से यह समस्त विद्वान् घाप की
 हा घोषानम से भक्षीभूत हो जाता है । १६। घात ही भूतादि तन्माया
 का एव भूत एव कल-कर्म-म्यामीनुवार सृष्टि रचना करते और घत
 क घनय करक औपश्व की प्रस होकर ब्रह्मानन्द से रमण करते हैं,
 ऐसे घापको मेरा नमस्कार है । १७। घाप ही सुरारमा विश्व के घातकार्य
 विष्णु स्वरूप केकर घर्म नेतु स्वरूप साधुओ की रक्षा करते हैं । घाप ही
 दाशदि घपयो के द्वारा तपुतु रूप ब्रह्माओ के प्रस रूप होते हैं । ऐसे
 घाप पञ्चेश्वर की नमस्कार है । १८। घाप की चक्रा से, वायु बहुत,
 घाति प्रकलित होना, गुरु प्रकलित होता और सा तपु के सहित
 घद्रमा उदित होना है । एते घातको मे घारण लेता है । १९। घिन
 की घाता से पृथिवी विद्वान् की धारण किये है और मेघ तपव पर घपां
 करते हैं तथा ओ मर सोरो क भरण करने वाले हैं, ऐसे घात ईषा
 एव विरव्या भगवान् शर की नमस्कार करता है । २०।

घति कल्किस्तय श्रुत्या शिवः सर्वात्मदर्शनः

माधात् प्राह हनन्तोऽप्ययं नो महितो व्रत । २१।

मत्स्यैः सम्पृश्य ह्यतेन भमस्त्वाययय मुदा ।

समाह वरप प्रेष्ठ । वर यत्तेऽमिहाधितम् । २२।

स्वया कृतमिद स्तोत्रं मे पठन्ति जना भुवि ।

तेषां गर्वायंमिद्धि स्वादिह सोके पश्य च । २३।

विशयो पाप्नुयाद्विद्यां यर्मावीं धर्ममाप्नुयात् ।

शामानवाप्नुयात् कामी पटनाच्छ्रवणादपि । २४।

एवं पाण्डुमिदं चाश्व कामगं बहुरूपिणम् ।

शुकमेतच्च सर्वज्ञं मया दत्तं गृह्णाण भो ॥२२॥

अगवात् कल्कि का स्तोत्र सुत्र कर सर्वाश्वा भयवान् शकर
 पार्वती सहैत साभान् एव मे प्रकट हृये-उन्मत्ति मानन्तिम होकर
 भगवान् कल्कि क देह पर कर गयी करते हुए शीघ्र मुसकराते हुए
 कथा-ह प्रेक्ष । अपना इच्छित वर मांगो ॥२१॥ २२॥ तुम्हारे द्वारा रचित
 इस स्तोत्र का का मू-मण्डल मे जो नी कोई पाठ करण, उसकी बहुतो-
 शिक प्रीति फारकोकिह उसी कामनाएँ पूर्ण होती ॥२३॥ इस स्तोत्र के
 करने मुनन मे विद्यार्थी का विद्या, पर्यायी को धर्म और अन्य छात्रता
 वाले को उसकी उसी कामना की प्राप्ति होती है ॥२४॥ हे कल्कि । मैं
 तुम्हें यह शीघ्रगामी, अनेक रूप धारी, बहुत प्रसन्न पुत्र सर्वज्ञ मुझ
 प्रदान करण हूँ, इसे ग्रहण करो ॥२५॥

सर्वं नास्त्रास्त्रविद्वान् सर्वं वेदाथरायणम् ।

अयिन मवभूवाना त्वा वदिष्यन्ति मानवा ॥२६॥

रत्नसह करालञ्च करवालं महाप्रभम् ।

गृह्णाण गुरुमारामा, पृथिव्या भारसाधनम् ॥२७॥

इति तद्वच आश्रुय नमस्कृत्य महेश्वरम् ।

दम्पत्यशामननम् सुरगेषु त्वरान्वितम् ॥२८॥

पितर भार भ्रातृन् नमस्कृत्य यथाविधि ।

सर्वं सद्गुण्यमाप्तं जामदग्न्यस्य भाषितम् ॥२९॥

शिवस्य वरदानञ्च कथयित्वा शुभा, कथा ।

कल्कि परमलेखस्वो क्षात्रिन्योऽयवदन्मुदा ।

हे कल्कि । मनुष्यो मे तुम सर्वं क्षात्रज्ञ, सर्वं वरदान
 विद्यासह, सर्व वेदों में पाठ्यारी एव सर्व दूतों में बिजगी रुहे
 घामोरे ॥२६॥ यह रत्नसह नाभक महा करान, मण्डल चमकती हुई,
 मण्डल धारी और पृथिवी के मार को संभालने वाली तन्वतर ग्रहण

करी १२७) भगवान् महेश्वर के बचन सुन कर कल्कि ने उन्हें प्रणाम किया और चक्र पर सारंग होकर द्रुतगति से शवल ग्राम में आ पहुँचे- १२८। वहाँ पहुँच कर उन्होंने अपने पिता माता, भ्राता मादि को विधिवत् नमस्कार कर परशुगम जी के कहे हुए सब धर्म उन्हें सुनाये १२९। फिर शिवजी द्वारा प्राप्त हुए वरदान की शर्तों को धीरे धीरे ज्ञाति वालों के मध्य स्थित होकर प्रत्येक हृदय से भोग्य क्या कहने लगे : १०।

गार्ग्यमर्ग्यविशालाद्यास्तस्त्रुत्वा नन्दिता स्थिता ।

कथोपकथन जात शम्भलग्रामवासिनाम् । ३१।

विशालयूपभूपालः श्रुत्वा तेषाञ्च भाषितम् ।

प्रादुर्भाव हरेर्मने कल्पिनिप्रह्वारकम् । ३२।

साहिष्यत्या निजपुरे यागदानतपोयतान् ।

प्राह्मणान् दानिषान् वंशान् सुदानवि हरेः प्रियान् । ३३।

म्यधमनिरतान् दृष्ट्वा धर्मिष्ठोऽमूनृपः स्वयम् ।

प्रजापाल दृढ मना प्रादुर्भावात् प्रियः पतेः । ३४।

मधमं वश्यास्तान् दृष्ट्वा जनान् धर्मकियापरात् ।

लोभातृतादयो जग्मुस्तद्देशाद्दु खिता भयम् । ३५।

उनके द्वारा बतलित क्या गुन कर गार्ग्य, मर्ग्य और विशाल आदि धारण्य प्रगत हुए । क्या शम्भल ग्राम में परापर कही जाती हुई धर्म प्रचारित हो गई । ३१। तबसे काम के लोभों से ही यह धर्म विशालयूपराज ने सुनी और उन्होंने जान लिया कि भगवान् कल्कि ने कवि का निग्रह करने के लिए पृथिवी पर अवतार ले लिया है । ३२। उसी साहिष्यमती नपरी से वज्र, दान, तपस्या और व्रतादि करने वाले सभी ब्राह्मण, दानिय, क्षत्रिय और गृह भगवान के शक्ति प्राप्त हुए । ३३। समाधि भगवान् के अवतार लेने पर सभी धर्म धरने-धरने धर्म में तत्पर हुए तथा रामों भी प्रजापाल, पतिव्रत रासा, धर्मिक हुए । ३४। उस समय के निवासियों को धर्म में तत्पर देख कर लोभ,

प्रसन्न मोर भयमं के बंशत्र भय से दुःखित होकर वहाँ से पलायन कर गये ।३५।

जैत्रं सुरगमासह्य खड्गञ्च विमलप्रभम् ।

दक्षितः सशरं चापं गृहीत्वागात् पुराद्वहिः ।३६।

विशाखपूपभूपालः प्रायात् साधुजनप्रियः ।

कल्किं द्रष्टुं हरेरंशमाविर्मतञ्च शम्भले ।३७।

कविं प्राज्ञं मुमनञ्च पुरस्कृत्य महाप्रभुम् ।

गार्ग्य-भर्ग्यं विशालंश्च ज्ञातिभिः परिवारितम् ।३८।

विशाखपूपो ददृशे चन्द्र मारागणैरिव ।

पुराद्वहिं सुरैर्यद्वन्द्विन्द्रमुञ्चे ध्रुवः स्थितम् ।३९।

विशाखपूपोऽचनतः सप्रहृष्टतनूरुहः ।

कल्केरालोकनात् सद्यः पूर्णात्मिना वैष्णवोऽभवत् ।४०।

भगवान् कल्कि तीक्ष्ण मलशर, धनुष मोर श्रेष्ठ बाणों को धारण कर शिव-प्रदत्त भद्रव पर धारण होकर नगरी से बाहर पन दिये ।३६। संत जनों से स्नेह करने वाले विशाखपूप नरेज शंभल नाम में प्रवर्तित भगवान् के दर्शनार्थ उपस्थित हुए ।३७। उन समय अत्यन्त प्रभाव वाले कवि प्राज्ञ, मुमंत्र और गार्ग्य विशालादि से घिरे हुए तथा तारापण सहित चन्द्रमा मोर देवनागों सहित उन्चैश्रवा के समान ध्रुव पर चढ़े कल्कि भगवान् को विशाखपूप नरेज ने नगर के बाहर निकलते देखा ।३८-३९। कल्कि भगवान् को देखते ही रोवाचित हुए राजा कुच्छे हर पूर्ण वैष्णवत्व को प्राप्त होगया ।४०।

सह राजा वसन् कल्किः घर्मांभाह पुरोदितान् ।

प्राह्मणसप्रियविशामाश्रमाणां समासतः ।४१।

मर्मांगान् कलिविभ्रटानिति मञ्जन्मसङ्गतान् !

राजसूयाश्रमेधाम्यां सा यत्स्व समाहितः ।४२।

धयमेव परो लोको घर्मेष्वाहं सनातनः ।

कालस्वभावसुस्काराः कर्मानुगतयो मम ।४३।

सोमसूर्वकुले धातौ देवापिमदसशकौ ।

स्थापयित्वा कृत्स्नपुण कृत्वा यास्यामि सद्मतिम् । ४४।

इति तद्वचन श्रुत्वा राजा कल्कि हरि प्रभुम् ।

प्रशाम्य प्राह सद्धर्मान् वंद्यायान् मनसोऽन्वितान् । ४५।

इति नृपवचन निशाम्य कल्पि-कल्पिकुलनाशनवासनावतारः ।

निजजनपरिपट्टिनोदकारीमधुरवचोभिराह साधुर्मान् । ४६म।

राजा से पार्श्वनाथ करते हुए भगवान् कल्कि ने दाहण दाहिण
 वैश्य समा आथमादि के धर्मों का उल्लिखित रूप से वर्णन किया
 । ४१। कल्कि बोले - हमारे जो धर्म कवि ने प्राप्त पाप के द्वारा प्राप्त
 होगये थे, वे हमारे अवतरित होनेपर धर्म धर्म पर आ गये हैं । हे
 राजन् । मुझ राजसूय का अवशेष ब्रह्म करते हुए मेरी धारापना
 करो । ४२। मैं ही परमेश हूँ, अनात्म धर्म में ही हूँ, काल, स्वभाव और
 सरकार सभी मेरे धर्म के अनुगत रहते हैं । ४३। मैं अन्धवंश और सूर्यवंश
 में जन्मा उत्पन्न देवापि और मरु नामक राजाओं को स्थापित करने
 तथा इन युग की अनुगत रूप करके नृपति को प्राप्त हुआ । ४४। यह
 सुनकर विदालरूप भरेण ने भगवान् कल्कि को प्रणाम किया और उनसे
 वैश्याव धर्म का प्रणय करने का अनुग्रह किया । ४५। राजा की कामना
 सुन कर कल्पिकुल का नाश करने की इच्छा से भूमण्डल पर अवतरित
 भगवान् कल्कि अपने परिव्रजो और अनुयायियों के हृदयों को धान्तिष्ठ
 करने वाली विष्टियाँ ने साधु धर्म की स्थापना करने लगे । ४६।

चतुर्थ-अध्याय ।

सतः कल्कि सभा मध्ये राजामानो रविर्यथा ।
 धर्मापे त नृप धर्म-मयो धर्मान् द्विज प्रियान् ।१।
 कालेन ब्रह्मणो नाशे प्रलये मयि सङ्गताः ।
 अहमेवासमेवाप्ये नान्यत् कार्यमिदं मम ।२।
 प्रसुप्तलोकतन्वस्य ईतहीनस्य चात्मनः ।
 महानिशाप्ते रन्तु मे समृद्भूतो विराट् प्रभुः ।३।
 सहस्रसोर्षा पुरुषा सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
 तदङ्गजोऽभवद्ब्रह्मा वेदवक्रो महाप्रभुः ।४।

सूतजी बोले पुनीश्वरो ! उस समय समा के मध्य में भगवान् कल्कि सूर्य के समान विशाखान होकर विशाखपुत्र नरेग के प्रति धर्म-प्रसाद रहने लगे ।१। कल्कि बोले—कालान्तर में जब यह ब्रह्माण्ड नाश की प्राप्ति होगा तब प्रलय होने पर मुझ में विभीत हो जायगा । सृष्टि से पूर्व मैं ही विद्यमान था, अन्य कुछ भी नहीं था । इस सम्पूर्ण जगत् का कारण मैं ही हूँ ।२। सम्पूर्ण विश्व की प्रसृष्टि और ईतहीना-ग्निष्वा महा रात्रि का घटन होने पर मैं सर्वशक्ति सम्पन्न विराट्भूति रूप में आविर्भूत होता हूँ ।३। यह विराट्भूति सहस्र वस्तुका, सहस्र नेत्र और सहस्र परस्र वाली हुई, उसी भूति के भाग से ब्रह्मजी उत्पन्न हुए ।४।

जीवोपाधेमंमांशाच्च प्रष्टव्या मायया स्वया ।

प्रहोपाधिः स सर्वतो मम वाग्येदशासितः ।५।

तमर्जं जीव जातानि कालमायां प्रयोगतः ।
 देश मन्वादयो लोका न प्रजावतथ. प्रभु. १७।
 गुणिन्या मायायांशा मे नानोपायो तसजरे ।
 सवायव इमे साका देवा सम्पारुजङ्गमा. १७।
 मयाप्रः मायया मृष्टा यतो मन्वाविशन् लपे ।
 एवधिषा द्राह्मणा ये मच्छरीरा मदात्मिका. १८।
 मामुद्धरन्ति भुवने यज्ञाध्ययनसत्क्रियाः ।
 मा प्रसेगन्ति क्षयन्ति तपादानक्रियास्त्रिह ॥६॥
 स्मरन्त्वामोदयन्त्यव नान्ये देवादयस्तथा ।
 द्राह्मणा येदयक्तागे वेदा मे मूनयः परा ॥१०॥

यज्ञ उपाधि पात्रे मर्जं गुण के मेरी वेद शापी के सामानुत्तार
 मरी माग प्रकृति की शक्ति, काल मोर क्षय के मन्विधलु मे हा जीवो-
 पशरी प्राणि को प्रकट किया । एव प्रकार मनु मादि प्रजापतिषो के
 मर्दिन देवता प्रकट हुए। १७-१८। मेरे माग मे त्रिगुणात्मिका माया कोक
 प्रजापती उपाधि धारण करते हत मोर ये देवता एव म्वावर जगम
 मुदि प्रकट करते है । १७। माया मृष्टि वा रक्षियता मेरा मग मन् मे मुक्त
 न ही लप हो जाता है । एगी प्रकार द्राह्मण मेरे ही धारम स्वरूप एव
 प्रह है । १८। यगोकि द्राह्मण यज्ञ वेदाध्ययन यादि खेद पाषो के द्वारा
 मेरा उद्धार तपा मर यात्रादि द्वारा मेरी सेवा करते है । १६। वेदवन्ध
 प्रारम्भ त्रिष प्रकार स्वरूप द्वारा मुझे प्रमन्न करते है, उन प्रकार
 देवतादि धन कोई भी मुझे प्रमन्न नहीं करते, यगोकि वर ही मेरा
 पाल म्नि है । १०॥

तस्मादिमे द्राह्मणु नाम ते पुण्ड्रिचमज्जना ।
 जगन्निमे चराराणि तन्मोदे द्राह्मणो वर ॥११॥
 तैनाह तावमभ्यामि शुद्धक्षेत्रगुणाधमः ।
 ततो जगन्मथ पूरे मा ऐक्यैर्जिवाश्रया. ॥१२॥

विप्रस्य लक्षणं ब्रूहि स्वङ्कतिः का च तत्कृता ।
 यतस्तवानुग्रहेण वाग्वाणाः ब्राह्मणाः कृताः ।१३।
 वेदा मामाश्वर प्रहरव्यक्तं व्यक्तिमत्परम् ।
 ते वेदा ब्राह्मणामुक्ते नानाधर्मैः प्रकाशिताः ।१४।
 यो धर्मो ब्राह्मणानी हि स भक्तिर्मम पुष्कला ।
 तदाह तोषितः श्रोश स भवामि यूगे-यूगे ।१५।

ब्राह्मण द्वाय वेशध्वपन मे तीनो लोकों के निवासो पुष्टि को प्राप्त हो रहे हैं, पाणों का मेरे देह को खेच ब्राह्मण ही पुष्ट करने हैं ।१३। इसमें सुख उत्तमगुण का प्राप्ति हुआ मैं ब्राह्मणों को मैं नमस्कार करता हूँ, तब ब्राह्मण भी मुझे विश्वमय तगऊ कर कर ही मनी सेवा करते हैं ।१४। विशालयूप नरेश ने कहा—हे प्रभो ! मान मेरे प्रति ब्राह्मणों के भयानु कहिये । ये धारणी भक्ति किम प्रकार करते हैं, त्रिधर्मों को करके वे प्रापके प्रभुवृद्ध से ब्राह्मण स्वरूप हो जाते हैं ।१५। कृत्क बोले—हे राजन् ! अत्यन्त एव वेद ही मेरे ईश्वर हैं । ब्राह्मण के मुख से यह वेद विभिन्न धर्मों का प्रकाश करते हैं ।१६। ब्राह्मणों का धर्मधरण मेरे प्रति भक्ति रूप में प्रकट है । उनकी कृती भक्ति से तत्पुष्ट होकर मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ ।१७।

उद्ध्वन्तु विद्वत् सूत्र सध्वानिमित्त शतैः ।
 तन्तुप्रथमधोवृत्तं यज्ञ सूत्रं धिदुवुंघा ।१६।
 त्रिगुणं तद्ग्रन्थियुक्तं वेदप्रवरसमितम् ।
 शिरोधरात् नाभिमध्यात् पृच्छाद्धं परिमाणकम् ।१७।
 यजुर्विदां नाभिमित्त सामगानामयं विधिः ।
 धामन्कन्धेन विघ्न यज्ञ सूत्रं यत्प्रदम् ।१८।
 मृद्मन्मन्मन्दनाद्यं स्तु धारयेत् तिलक द्विजम् ।
 भाते त्रिपुण्ड्रं कर्माङ्गं केस पर्यन्तमुत्तलम् ।१९।
 पुण्ड्रमंगुलिमानन्तु त्रिपुण्ड्रं तत् त्रिधा कृतम् ।
 ब्रह्मविष्णु शिवावाप्त दर्शनात् पापनाशनम् ।२०।

शान्तिसे वा रहना है कि ब्राह्मण की व्यवस्था नारी के द्वारा
 मूत्र को निवृत्त करे तथा उस निवृत्त मूत्र को पुनः तिवृत्त करे यहाँ मन्त्र
 मूत्र है । १६१) वेद प्रवर युक्त उस मूत्र से गठि मगावे । यजुर्वेदी ब्राह्मण
 को यही यज्ञोपवीत कड से नाभि तक तथा पृश्न के माथे भाग तक
 धारण करे । सामवेदी ब्राह्मण को नाभि तक धारण करना बाह्य ।
 यज्ञोपवीत बाँधे कंधे पर धारण करना म वन का देने वाला होता है-
 १७०-१८१) द्विज की कृतिता मन्त्र और शब्दनादि का निरुक्त लगाना
 बाह्यमें । मानक पर वेद वर्तत उज्वल त्रिपुरेण सगाना बाह्यमें । १८१)
 पुरुष का प्रमाण एक अगुत और त्रिपुरेण इमस त्रिगुना होता है ।
 त्रिपुरेण में ब्रह्मा, विष्णु और शिव निवास करते हैं । यह शिव का
 ही पाप का नाश करने में समर्थ है । १९०।

ब्राह्मणानां करे स्वर्गा वाचो वेदा करे हरः ।
 गाय सोर्षानि रागञ्च नाडीषु प्रकृतिस्त्रिवृत् । १९१
 गावित्रो षष्ठकुङ्कुरा हृदयं ब्रह्म सहितम् ।
 तेषां स्तनान्तरं घर्मं पृच्छोऽधर्मं प्रकीर्तितं । १९२।
 भू देवा ब्राह्मणा राजन् । पूज्या बन्धा सदुक्तिभिः ।
 अनुराश्रम्यकुण्डला मम घर्मं प्रयत्तकाः । १९३।
 यानाञ्चापि ज्ञानवृद्धान्तपोवृद्धा मम प्रियाः ।
 तेषां वचं पालयितुमवमारा कृत्वा मयाः । १९४।
 महाभाष्य ब्राह्मणानां सर्वपापप्रणाशनम् ।
 षड्विंशतिहरं अथवा मुच्यते सर्वतो भवात् । १९५।

ब्राह्मणों के हाथों में स्वर्ग और नववान् विष्णु निवास करते
 हैं बाँधों में वेद देह में नीच और राग तथा नाड़ी में त्रिगुणशिव का प्रतीति
 है । १९१। ब्राह्मणों के हाथों में गावित्री, हृदय में ब्रह्म वज्रमन्त्र के
 पाप में घर्म एवं पृच्छ देव में अधर्म का निवास रहता है । १९२। हे
 राजन् । बाँधों धारणों के घर्म को जानने वाले, मेरे घर्म में उपवर्तक—

देवता ब्राह्मण प्रेक्षकवर्गों के द्वारा बन्दीय हैं । १२३। ज्ञानवृद्ध और ब्राह्मणों के पातकों के प्रति भी अत्यन्त प्रेम करता और उनके बचन पालनार्थ ही प्रवृत्तार धारण करता है । १२४। सभी पार्श्वों का नाशक, कवि भक्त के दोषों का हरण करने वाला ब्राह्मणों के महाशाय रूपी चमिष भी युवन से महा सब धन नष्ट हो जाते हैं । १२५।

इति कल्हिकवचः श्रुत्वा कलिदापविनाशनम् ।

प्रसाम्य न मुद्धमना प्रथमो वैष्णवाप्रणोः । १२६।

गते राजानि मन्त्रमार्या शिवदत्तयुक्तो युधः ।

चरित्वा कल्हिकमुक्तं श्रुत्वा तं पुरतः स्थित ६७।

तं शुकं प्राह कल्हिकस्तु तस्मिन् स्तुतिपाठकम् ।

स्वामिन मन्त्रना कस्मात् देशात् किं क्षादित ततः । १२७।

शृणु नाथ । वचामह्यं कौमुद्यासमन्वितम् ।

अहं तत्रैव त्रयमेतन्मध्ये निश्चिन यत्र ह । १२८।

यथा वृत्तं द्वेषं गतं तत्रिचयं शिवणप्रियम् ।

बृहद्रथस्य नृपतेः कन्यायाश्चरित्कामृगम् । १२९।

कविगुण के दोषों को नष्ट करने वाले प्रतापशु कल्हिक के वचन सुनकर परिच हृष्य वैष्णव प्रेक्षक राजा उन्हें बलुभक्त करते चला गया । १२६। राजा के चले जाने पर शिव दत्त ज्ञानी शुक पक्षी के मन्त्र धारण से शीघ्र मनसा कल्हिक के मन्त्र श्रुति करके चला हुआ । उनके शोक-पाठ को सुन कर कल्हिक भागान लीते—'युव किय' से क्या रहे हो ? मुझे क्या बना भोजन दिया ? शुक बोला—हे नाथ ! आप मुझे कौमुद्या का ही मुनिये । मैं समुद्र के पक्षी शिवन द्वीप में गया था । १२७। उर द्वीप में घटित हुआ। युवन में वह पक्षी है । राजा बृहद्रथ को कन्या का परिच समुद्र के पक्षी प्रेक्षक है । १२८।

कौमुद्यामिहं ज्ञाताया जगतां पापनाशनम् ।

घटितं सिद्धौ द्वेषे चानुबन्धनायुते । १२९।

प्रामाद-दुर्म्य-सदन-पुर-गति-विराजिते ।
 रत्न-रत्नाटक-कुट्यादि-स्यलंताभिभूषिते ॥३२॥
 श्रीभिरत्तमवेशाभिः पद्मिनीभिः समापृते ।
 गरुडिभ्यो सारसैर्हंसैश्चातुल्यजलापृते ॥३३॥
 भृङ्ग रङ्ग प्रसङ्गाद्यैः पद्मैः कल्याणकुन्दकैः ।
 नाना-वृजलताजाल-वनोपवन-मसिहते ॥३४॥
 देवो बृहद्रथो राजा महावज्रवराक्रमः ।
 तस्य पद्यावती बन्दा घन्या रेजे यमस्त्रियतो ॥३५॥

इस पद्या के बानी गौमुदी के गर्भ से उत्पन्न किया है । इसका
 अग्रिम अंश में बाद भाग है । उस द्वीप में बानी बर्तों के समुद्रों का
 निवास है ॥३२॥ भवन, घटावो, गृह, मूल नगर में बर्तों का राजा गुणो-
 भित है । उसका भवन रत्न, रत्नाटक, मणि तथा स्वर्ण आदि भी पद्मी-
 बर्तों से विभूषित हो रहा है ॥३३॥ यहाँ पद्मिनी प्रभृति विविध श्रेष्ठ
 वस्तुओं से सुशोभित रहती है । गरुडों से गरुड और हंस आदि पक्षी
 निवास करते हैं ॥३३॥ यह द्वीप विभिन्न प्रकार की पद्मलताओं के
 जालों से सुशोभित है । उपवनों में बन्दा, कुट्ट आदि के वृक्षों पर छोटे
 गुंजार करते हैं ॥३४॥ बर्तों का राजा बृहद्रथ महावज्र और वराक्रमी है ।
 उसको पद्यावती नाम की बन्दा भी अत्यन्त यमस्त्रियतो है ॥३५॥

भुवने दुर्लभा लोकेऽस्तिस्य परवर्णिनी ।
 काम मोह करो चारु चरिता विप्र निर्मिता ॥३६॥
 शिव से आपरा गोरो यथा पूजया सुगममता ।
 सगौमि बन्धकाभिश्च जप ध्यान करायता ॥३७॥
 ज्ञात्वा ताञ्च हरेस्तेनधमी समुन्भूतां कराङ्गप्राम् ।
 हनः प्रादुरभूत्याधात्पार्यस्या सह हृषितः ॥३८॥
 गा तमालोक्ष्य परदं शिव गौमी सुमन्वितम् ।
 सञ्चितापोमुगी निञ्चन्नीवाण पुरतः शिवता ॥३९॥

हरस्तामाह तुभगे ! तव नारायण. पति. ।

पाणि प्रहीष्यति मुदा नान्यो योग्यो नृपात्मजः ।४०।

श्रेष्ठ मुख वाली, सुन्दर चरित्रवाली, कामदेश को भी मोहित करने वाली उस कन्या की समानता समार में कोई नहीं कर सकता ।३६।
 जिस प्रकार विरिञ्चा भगवान शंकर की सेवा परायण है, उसी प्रकार पूज-
 नौदा पद्मवती भवनी सखियों के साथ जय ध्वान-नारायण रहती है ।
 ।३७। भगवान विष्णु की प्रिया नक्षत्री जो को पद्मावती के रूप में उत्पन्न
 हुई बादकर पार्वती की के साथ भगवान शंकर वहाँ प्यारे । देवा वरदाता
 शिवजी को पार्वती जी के महिन प्राये देख कर उस कन्या ने तबत्रा से
 फिर भीवा कर लिया और अशक्त लड़ी रही ।३६। तब शिवजी बोले—

हे तुभगे ! तुम्हारे पति भगवान नारायण ही तुम्हारा पाणि ग्रहण करेंगे ।

किसी अन्य कोई शकृष्ण तुम्हारे योग्य नहीं है ।४०।

कामभावेन भुवने ये त्वा पश्यन्ति मानवाः ।

तेनैव बधना नार्थो भविष्यत्यपि तत्क्षणात् ।४१।

दक्षानुरास्तथा नागा गन्धर्वाश्चारणादयः ।

त्वया रन्तु तथाकाले भावयन्ति किल स्त्रियः ।४२।

विना नारायण देव त्वत्पाणिग्रहणादिनम् ।

गृहं याहि तपस्वरु वा भागेश्वरतनुत्तमम् ।४३।

सा क्षीमये हरेः पतिरु कमले विमल कुक्ष ।

इति दत्त्वा वर सोमस्तथैवान्तदंशे ह.र ।४४।

हरवरमिति सा निशम्य पद्मा समुचितमात्मनोरय प्रकाशम् ।

विकसितवदना प्रणम्य सोमं निजजन कालयमाविदेश रामा

नृसुनोक के वाली श्री मनुष्य तुम्हारी ओर काम भाव से दृष्टि
 पा करे, वे तत्काल घननी प्राणु के अनुकूल स्त्रीत्व भाव को प्राप्त हो
 आवेंगे ।४१। देवता, दैत्य, नाग, गण्डर्व चारण्य प्रादि में भी जो कोई
 तुम पर कुट्टे आवें, वे भी स्त्रीत्व को उनी समय प्राप्त होंगे ।४२।

भगवान नारायण के अंतर्गत जो कोई भी सुम्न्याग पाखिवाहक करना चाहेगा, वह ऐसी ही दत्ता को प्राप्त होगा । अब तुम तम्बवा को छोड़-कर भोग के योग्य दत्तना सब बनानो और करने पर को प्रार्थान करो । ४३। हे कमते ! तुम हरि की पत्नी हो, हर प्रचार का शोध त्याग कर मन को स्वयं करो । इन प्रचार पर प्रदान करके निवृत्ती अन्तर्धान होगये । ४४। भगवान शंकर से मनोवाञ्छित वरदान प्राप्त करके अशुभ सुय हृदय दत्ता निवृत्ती का प्रस्थान करके धरन पितृ-कुल को गई । ४५।

—❀—

पंचम अध्याय

गने बहुनिधे कामे पथा वीक्ष्य ब्रह्मद्वयः ।
 निरुद्ध वीरना कृती विस्मित पापशङ्कया । १।
 बीमूदी प्राह महिषी पद्मोद्गाहेऽत्र क नृपम् ।
 वरविष्यामि मुञ्चते । कृपाशील समन्वितम् । २।
 गा समाह पति देवो निवेन प्रतिभाषितम् ।
 विष्णुभ्यः अनिरिति भविष्यति न सद्यः । ३।
 इति तस्यावन श्रुत्या राजा प्राह वदेतिताम् ।
 विष्णुः सर्वे मुदायागः पाणिमस्यां सहीभ्यनि । ४।
 न मे भाग्योदयः कश्चित् ये न जामातर हरिम् ।
 वरविष्यामि कव्यायै वेदयस्या मुनेपथा । ५।
 इमां स्वयं वरा पदूषी पद्मामिव महोदधे ।
 मयनेऽनुरदेवानां तथा विष्णुग्रंहीष्यति । ६।

पुराण की ये वृत्ता—वृत्ता समय अतीत होने पर अब पुरी की

राजावृहद्रथ ने अपने यौवनावस्था के लक्षणों से युक्त देखा तब वह पाप की गळा से चिन्ता करते लगा ।१। तब राजा ने अपनी रानी कौमुदी के प्रति कहा कि हे सुभगे ! तुम मुझे रराधर्षा दो कि भवती प्रिय पुत्री के विवाहार्थ किन शीलगुण सम्पन्न एवं श्रेष्ठ कुनोत्पन्न राजा की आमन्त्रित किया जाय ? ।२। यह सुन कर रानी कौमुदी ने राजा को भगवान् शककर के पवन स्मरण कराते हुए कहा कि इसके पति भगवान् श्री हरि ही होंगे, इसमें संशय नहीं है ।३। इसके यह पवन सुनकर राजा वृहद्रथ ने रानी से पूछा कि हे प्रिये ! यह तो बताओ कि भगवान् विष्णु कितने समय में इनका परिग्रहण कर लेंगे ।४। हे प्रिये ! अभी तो हमारा ऐसा भाग्योदय नहीं हुआ ज न पड़ता कि जिससे प्रसाव से वेदवती के समान मैं भी स्वर्धर में भगवान् श्री हरि को अपने जन्मात्ता के रूप में प्राप्त कर सकूँ ।५। देवताओं और दैत्यों के द्वारा मथन किये जाते समुद्र में उत्पन्न हुई पद्मासना पद्मा के समान मेरी इस पद्मा को स्वयं-धर में भगवान् श्री हरि वरण करलें ।६।

इति भूपगणान्भूय ममाहूय पुरस्कृतान् ।
गुणशीलवर्योरुप दिद्याद्रविण सवृत्तान् ।७।
स्वयंवरार्थं पद्मायाः सिंहले बहुमङ्गले ।
विचार्य कारयामास स्थान भूपनिवेशनम् ।८।
तथायाता नृपाः सर्वे विवाहं कृतं निश्चयाः ।
निज संघैः परिवृताः स्वयंरत्न विभूषिताः ।९।
रथान्जानश्ववरान्समाहृत्वा महावताः ।
श्वेतच्छत्रकृतच्छत्र्याः श्वेतचामर बीजिताः ।१०।
शस्त्रास्त्रतेजसा दीप्ता देवाः सन्द्राइवामवन ।
रुचिराश्वः सुकर्मा च मदिराक्षो वृडाशुगः ।११।
कृष्णसारः पारदश्च जीमूतः क्रूरमर्दन ।
काशः वृशाम्बुवंशुमान् कङ्कः कथन सञ्जयी ।१२।
गुरमित्रः प्रमायां च विजृम्भ सञ्जयोऽक्षमः ।

एते चान्ये च बहवः ममायाता महाबलाः । १३ ।

ऐना सोवते हुए राजा वृहद्रथ ने, अपनी पत्नी के स्वयंवर के विविध गुलवान, दीसवान, ऊषवान, विश्व एवं महार् ऐश्वर्य वाले युवावस्था से परिपूर्ण राजाओं को सम्मान सहित आमंत्रित किया । ७। इन प्रकार उन निहत्न देश में पद्मा के स्वयंवर का उत्सव मनाया जाने लगा बहुत प्रहार के मगस होने लगे और राजाओं के निवास धाँद के विस्मयन अभिन्नत रिये जाने लगे । ८। विवाद की इच्छा से सुवर्ण, मलि-गर्वादि से विभूषित हुए राजागण देश विषण से अपनी सेनाओं के अति बहाँ जाने लगे । ९। वे सभी यत्नान् राजागण रथ, दशव, गज धादि विविध वाहनो पर सवार होकर वहाँ पाये । उनके ऊपर खेत पत्र लवाये और धवर हुआये जाते थे । १०। उम समय शक्रादि से ईडीपमान के गर राजागण ऐष शोभा पाने लगे उँत देशवासो के सम्मान से अद्भुत सुगोभित होते है । रचिराश्व, सुकर्मा, मधिरादा, दृढाशुभ, वृष्ण-मार, पारद, जोमूह कुरम्भन, वाज, बुद्धाम्बु, बहुमान, कक, वपन, मन्त्र, गुरुमित्र, प्रभासी, विब्रूम्य मञ्जय, प्रथम धादि अनेक महा-पराक्रमी वरेजगण वहाँ एकत्र होगये । ११-१३।

विविनुन्ते रङ्गगता स्वस्वस्थानेषु पूजिताः ।

वायनाश्वसहस्रहृष्टास्त्रिभ्य मात्थश्वराधराः । १४।

नानामोगसुयोद्विभवा कामरामा रत्तिप्रदाः ।

नानानोभव सिंहलेना स्या कन्या धरवर्णिनीम् । १५।

गौरी चन्द्रनता स्याता तारहारविभूषिताम् ।

मलिमुक्ताशवालैश्च सर्वाङ्गाविकृतां शुभाम् । १६।

ति माया मोदकनती कि वा कामप्रिया भुवि ।

न्यलावण्यमप्यपन्था न चान्यमिह दृष्टवान् । १७।

स्वर्गे क्षिती वा पाशानिष्कम्ह सर्वदगो यदि ।

पद्मदासोपाणशोणी मयोभिः परिवारिताम् । १८।

ये राजागण विविध प्रकार के वस्त्रभूषण, माला आदि से विभूषित होकर रथभूमि में आकर सादर सम्मानित होते हुए सुखपूर्वक अपने-अपने स्थान पर बैठ गये । १५४ विभिन्न प्रकार के भोगों और ऐश्वर्य से सम्पन्न, रमणीय, चरित्र वाले एवं सब को प्रसन्न करने के स्त्रमार वाले राजाओं को देखकर सिद्धमेश बृहद्रथ ने अपनी वरयस्त्रिणी कन्या को स्वयंवर में बुलाया । १५५ गौरी, चन्द्रावता, वशमा मणि-मोती बत्नों आदि से सब प्रकार विभूषित, अत्यन्त सुन्दर हार को धारण किये हुए वह पद्मावती सोहमयी माया अथवा कामदेव की साक्षात् पत्नी ही अच-रित हुई प्रतीत होने लगी । मैं स्वर्ग, मर्त्यलोक, पाताल सभी लोकों में ही गमन करता हूँ । परन्तु ऐसी रूप लावण्य वाली कोई अन्य कन्या मैंने कही भी नहीं देखी । उस कन्या के पीछे दासियाँ चब रही थी तथा उनके चारों ओर सखियाँ थी । १६-१८।

दौदारिकैर्वप्रहस्तैः शासितान्तः पुराद्वहिः ।

पुरोवन्दिगणाकीर्णा प्रापयामास वा शनः । १६।

नूपुरं किङ्किणोमिश्रं कवण्ठी जनमोहिनीम् ।

स्वागतानां नृपाणाञ्च कुल शील गुणान्वहन । २०।

शध्वन्ती हसगमना रत्नमालाकरमहा ।

रश्मिरापाङ्गमङ्गलैः प्रेक्षन्ती लोलकुण्डला । २१।

नृत्यकुस्तलसापान गण्ड मण्डल मडिता ।

किञ्चित्स्मेरोल्लसद्दृक्दशतद्योतदीपिता । २२।

वेदीमध्याह्ण क्षौद्रवहना कोकिलस्वना ।

रूप लावण्य पर्येन क्लृप्तानामा जगत्रयम् । २३।

समापतां तां प्रसमोक्ष्य भूपाः समोहिनो काम विमूढ चित्ताः ।

पेतुः क्षितौ विस्मृतवस्त्रशस्त्राः रथाश्चमत्तद्विपवाहुनास्ते । २४।

नगर के बाहर दौदारिकगण हाथों में बेल लिए हुए धन्तापुर के शासन में संलग्न थे । समाप्यन्त के पानसे भाग में बदीगण सजे थे । उस रण भूमि में राजकुमारों पत्नी मदमति से प्रविष्ट हुई । १६। नूपुर और

किङ्कणी से लोको को मोहने वाली भ्रमण करती हुई घोर भावत वरेजो के कुम्भ, मुष्ण, पीन आदि का दर्शन प्रदण करती हुई बहू हंसवनि वाली राजान्वा ह्राप से रत्नधाना लिए हुए धरने चक्रन धरणी से घोषा की वाली हुई घोर कटाक्षपूर्वक सब को देखती हुई बहती जा रही थी । वह द्वितते हुए बुराइत वाली, बेसम्बन्ध की भवसता से युक्त, सुन्दर प्रीति वाली, विकसित मुख से मद मुग्धपराती हुई, जिसके दाँतो की पवित्रता धरक रही थी- सान रग के रेशमी वात्र धारण किये हुए, कोकिला जंमे बसत हरा वाली जिसके हृष सायहृष से लीनो लोक मोहित हो रहे थे, उन मनमोहिनी सुदुमारी राज रन्धा को रणभूमि में घूमती हुई देव-का कामदेव के बसोबुध हुए राधाणण ऐसे बिहरन चित्त होमये कि उनसे सस्वास्त्र घोर वस्त्रादि सभी सुम्-सुम् हर पृथिवी पर गिरने लगे । १६२४]

तन्मया स्मरशोभ निरीक्षणेन स्थियो बभूवुः कगनीयस्त्रयाः ।
 बहूश्रिनम्बहनमारनत्रा मुमध्यगास्तस्मृतिजातरूपाः । १२५ ।
 विलासहाम व्यसनानिविधा कान्तानन. शोणसरोजनेत्राः ।
 स्त्रीहामात्मानमवेक्ष्य भ्रूपास्तामन्वगच्छन्निशदानुवृत्वा । १२६ ।
 प्रहृ बटस्य परिघडितात्मा पद्माविवाहोत्सवदत्तनाकुलः ।
 तस्यः बबोऽग्तहृदि दु सितामा, योनु स्थित स्त्रीस्थमितेषु तेषु ।
 जाहोहि कल्के कपलाविलाप धृत विचित्र जगतामघोश ।
 गते विद्याहोत्सवमङ्गले सा शिव धरण्य हृदये दिधाय । १२७ ।
 तान्दृष्ट्वा नृपती राजाश्वरधिभिरव्यथतान्मत्तिव गतान् ।
 स्त्रीभायेन समन्विहाननुगनान्पद्मो वितोषयान्तिके ।
 दोना ह्यवनविभूषणा विलसितो पादागुलं. वामिनी ॥
 ईश कतुं निजनायमीश्वरवचमन्म्य हरिसाञ्जमरत् । १२८ ।

रान से विमोहित हुए उन राजाघो से जंमेही उन राजरन्धा को वाचनामय ननों से देगा, वंसे ही वे त्रिग रूप पर सामाहित हुए थे, वंसे

षष्ठ अध्याय

ततः सा विस्मिन्नमुखी पद्मा निजजनं वृता ।
 हरिं पतिं चिन्तयन्तो प्रोवाच विमला स्थिताम् ॥१॥
 विमले किं कृतं घाशं ललाटे लिखनं मम ।
 दशनादपि लोकानां पुत्रा स्थोभायकारकम् ॥२॥
 ममापि मन्दभाग्यया पापिण्या शिवमेव नम् ।
 विफलत्वमनुप्राप्तं वीजमुक्तं यद्योपरि ॥३॥
 हरिर्लक्ष्मीपतिः सर्वजगतामधिपः प्रभुः ।
 मत्कृतेऽप्यभिलाषं किं करिष्यति जगत्पतिः ॥४॥
 यदि शम्भोर्वचो मिथ्या यदि विष्णुर्न मां स्मरेत् ।
 तदाहृज्जनने देहं त्यज्यामि करिभाविता ॥५॥

ब्रह्मदेव जी बोले—तदनन्तर विस्मित मुझ दासी पद्मा अपनी
 सहस्रियों के मध्य स्थित हुई, भगवान् विष्णु को पतिरूप में विचार करती
 हुई, अपने निम्न स्थित विमला नाम की सहस्री से कहने लगी ॥१॥
 पद्मा बोली—हे विमले ! क्या प्रह्लाद ने मेरे भाग्य में यही लिखा दिया
 है कि जो पुत्र मुझे देसे, वह सुरन्त रक्षीत्य को प्राप्त हो जाय ॥२॥ हे
 एमी ! जैसे मरुभूमि में बोया गया बीज निष्फल होता है, वैसे ही मुझ
 प्रभाषिणी एवं पापिणी द्वारा भगवान् उक्त की, की गई उपासना व्यर्थ
 हो गई ॥३॥ भगवान् रमापति विष्णु सम्पूर्ण विश्व के अधीश्वर और प्रभु
 हैं, मैं उन्हें पति रूप में प्राप्त करने की कामना क्यों तो क्या वे मुझे स्वी-
 कार करेंगे ? ॥४॥ यदि भगवान् प्रभु का कथन मिथ्या हो गया और
 भगवान् विष्णु ने मेरी कामना नहीं की तो मैं उन्हीं भगवान् की हरि
 का ध्यान करती हुई अपने देह को धरि नष्ट में डाल कर भस्म कर
 दूंगी ॥५॥

त्वगः समुद्रपारेण स्नात्वा पीत्वामृतं पय ।
 योजपूरफलाहारो ययौ नाजजिनिवेशमम् ।१६।
 तत्र कम्प्यापुर यत्वावृक्षे नागेश्वरे वसन् ।
 पद्मालोक्य तां प्राह मुको मानुष भाषया ।१७।

प्रथम ही पद्मा मेरी पत्नी घोर में उठका पनि है । विधाता ने ही यह सयोग नियत किया है घोर यह काम तुम्हारी सम्पत्तिका मे ही सम्पन्न होना है । ११। तुम सर्वज्ञ हो, नियम घोर काल के भी ज्ञाता हो । तुम अपने वचनामृत से समझा कर घोर मेरे द्वारा ग्रहण किये जाने का आश्वासन देकर वहाँ लौट आओ । १२। कल्किजी का ऐसा आदेश पाकर मुदित हुए शुक्र ने उ हैं प्रणाम किया घोर जीघ्रतापूर्वक सिंहल-देश को प्रस्थान किया । १३। मार्ग में, समुद्र के पार जाकर शुक्र ने स्नान करके उन घमृतोपम अंस का पान घोर बिजोरे के कनको भक्षण किया घोर फिर राजशवन में प्रविष्ट होपया । १४। यह अन्तःपुर में पहुच कर राजन्या के निवास स्थान पर जाकर मागकेशर के एक वृक्ष पर शयन कर घोर पद्मा को देख कर अनुष्ण की भाषा में उगते बोना । १५।

कुमल ते वरारोहे । रूप यौवन शालिनी ।
 त्वा लोलनयना मन्ये लक्ष्मी रूपमियापराम् ।१६।
 पद्मानना पद्मगन्धा पद्मनेत्रा कराम्बुजे ।
 कमल कालकली त्वां लक्षयामि परां श्रियम् ।१७।
 किं शशा सर्वजगता रूपलावण्यसम्पदाम् ।
 निमित्तासि वरारोहे । जीवानां मोहकारिणि ! ।१८।
 इति भाषितमाकर्ण्य कीरस्यामितमद्भुतम् ।
 हसन्ती प्राह सा देवी त पद्मा पद्ममालिनी ।१९।
 पत्स्य कस्मादागतोऽसि कथं मां शुकरूपचक्र ।
 देवी वा दानवी वा त्वमागतोऽसि दयापरः ।२०।

के लक्षण कदा भीम मुख से परे एवं ननस्त्रिनो के दर्शनाय ही चढ़ी या
 पड़ना है । २२। तुमने हारभासाप, छविपोरा सत घोरे छापरणको रथाप
 रथा है । तुमको इस गिपति से होकर होत-हूदो हूषा में तुम्हारी
 कोरित जोगी पधुर बागी में तुम्हारे समस्त रहने कारण मानना चाइया
 है । २३। तुम्हारे, घोरे और जिह्वा के सब भाग ते मितृव प्रथम
 र्वित्तरी जिसके बागो को तुम्हारे पद छाप उसकी कथाया या प्रभाव
 कहां तक कहा जा सकता है ? । २४। तुम्हारे समय मिरम के पुणो को
 कभीयस्य भी क्या है ? तथा चन्द्रकान्ति भी क्या पदनु है ? कानोजव
 जिस दसु सभी बीषुद का धरुंन करते है, वह चान्द्र को तुम्हारी
 क्या लक्ष्य करेगा ? । २५।

तिलकामरुमिथं लोलकुण्डलमण्डितम् । २६।

लोनेदानोल्लसद्गुणैश्च पश्यताम् स पुनर्भवं । २७।

सुहृद्वसमुते । स्वाधि वद मामिति यत्कृते ।

एव क्षीणान्वितं तन् सधामि ह्य विदा ।

जनकप्रतिभा यद्वत् पावुचिर्मखिनोहृता । २८।

कि रूपेण बुलेनापि घनेनाभिजनेन वा ।

संदे निष्कलतामेति यत्पदेवमरुदक्षिणम् । २९।

शुभु कीर समाख्यान यदि वा विदितं तप ।

नात्य-पौमण्ड कपोते हरसेवा करोम्यहम् । ३०।

तुम्हारे तिलक, चमक ते घुल पदम कुण्डलो के मण्डित तथा
 पवन नेत्रों के सुधोवित सुन्दर मुख का दर्शन करने वाले को
 पुनर्भवं धारण रही करता होता । २६-२७। है दृष्टव्युते । अपने मान-
 निक दु म वा बरगा मुझे बताओ + हे माधवि ! तुम्हारी देह विना
 गोक के ही, एव ते क्षीण दिग्दर्श दे रही है । जैसे मेम के कारण पवन
 को पहिवा मेंही हो जाती है, वैसे ही तुम्हारा देह भी मसीन होपवा
 है । २८। तथा ने कहा—पद पयवा सचर कृम के तापन होने से ही

करा प्रयोजन सिद्ध होता है, यद्यन् देव की प्रतिष्ठा ही तो यह सभी निष्पन्न है । २२० हे रीर । यदि तुम्हें हवा का कृता-तमात्त न हो तो सुनो—
मेरे यश की बात को । विद्योत्तर प्रवक्ष्यामि भगवान् उकर की आराधना
की को । २०।

तैत्तिरीयसंहितायां तुष्टो मूत्रा महेद्वारः ।
 वर वरश्च पदं । त्वमित्याह प्रियया सह ॥३१॥
 यजत्रयेधोमुखीमये स्थिता मा धीक्ष्य उरुङ्कुर ।
 प्राह ते मयिहा स्वामी हरिर्नारायण प्रभु ॥३२॥
 देवो वा दानवो वाग्यो गणधर्षो वा त्वेक्षणात् ।
 कामेन मतस्तां नारी भविष्यन्ति न ममय ॥३३॥
 इति दत्त्वा पर सोम प्राह विष्णुश्चन्द्र भया ।
 तस्याह ते पवइपामि समाहितमना मृगु ॥३४॥
 एतां सन्ध्यां नृपा पूर्वमाहुना ये स्वयम्बरे ।
 पित्रा धर्माधिना दृष्ट्वा रक्षां मा धीरतान्दिताम् ॥३५॥

परे द्वारा विष गये सब पुत्रन से प्रकृत हुए शिवजी ने पार्श्वीजी
 के महिमत प्रकट होकर मुझसे कहा कि हे पदो ! वर पागो । ३१। फिर
 मृगु ने यजत्रा पूर्वक मिर मृगादि देव का लहोने कहा कि तुम्हारे प्रति
 भगवान् नारायण होवे । ३२। देवता, दानव गणधर्ष यशवा का सोई को
 हो, यदि तुम्हें काम-भाव से देखेता तो तुम्हें सो रूप हो जायगा, इससे
 म-देह नहीं है । ३३। यह वर देन के पश्चात् शिवजी ने भगवान् विष्णु
 की को पुत्रन विधि बताया थी, यह कहती हूँ, समाहित भिन्न के सुनो । ३४।
 यह शिवजी की कृतियाँ हैं, सभी प्रकृति न जाये । मेरे पिता ने मेरी
 योषमायाया देस कर धर्म की रक्षा के निमित्त इन सब राजाओं का मेरे
 स्वयम्बर के कृपाया या । ३५।

स्वात्मनास्ते सुतापीना विवाहकृतनिरयय ।

सुधानो गुणवन्तश्चरुपद्मविणुसम्भवा । ३६।

स्वयंवरगती मा ते विलोक्य रुधिरप्रमाम् ।
 रत्नमालाथितकरा निपेतु काममोहिता ॥३७॥
 तत उरुवाय भ्रान्ता सप्रेक्ष्य स्त्रीत्वमारमन् ।
 स्तनभार नसम्बन्धेन गुह्येण परिणामिता ॥३८॥
 ह्यिषा भिक्षा च शम्भूणा मित्राणामतिदु खदम् ।
 स्त्रीभाव मनसा ध्यान्वा सामेवानगता शुक ।
 पारिचर्या हररता सख्य सवगुणाम्बिता ।
 मया राम तपोध्यात पूजा, कुम्भाम्बित सम्मता ॥३९॥
 तदुदितमिति मनिशम्भ्य कीर ध्वरासूख निजमानसप्रकाशम् ।
 समुचितवचनैः प्रतोक्ष्य पद्मा मुरहरयजन पुन प्रचरटे ॥४०॥

यह सभी युवावस्था वाले, रूप, गुण एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न थे ।
 यह सभी मेरे साथ विवाह करने की इच्छा से घाकर स्वयंवर-मण्डल में
 गुणपूर्वक बैठ गये ॥३६॥ मुझ सु दर प्रभा वाली को हाथ में रत्नमाला
 लेकर स्वयंवर-मण्डल में घूमनी दसकर यह सभी काम मोहित राजागण
 पृथिवी पर गिर गये ॥३७॥ फिर जब सचिन होकर उठे तो घबरे की
 स्त्रीत्व के सभी लक्षणों से युक्त मर्त्यान् स्त्री रूप में थाया ॥३८॥ तब तो
 यह घबरे की स्त्री हुआ जान कर बड़े दुःखी हुए और तबु मित्वा दि की
 मन्त्रा छोड़ कर मेरे ही साथ चल पड़े ॥३९॥ जब यह सर्वगुण सम्पन्न
 वाली स्त्री राजागण मेरी सखी होकर मेरे साथ ही भगवान् विष्णुका तप,
 ध्यान एवं पूजन करते हैं ॥४०॥ वाली इच्छा के अनुकूल, मुझे मे गुण-
 दायक इस वार्ता को सुन कर तुम ने समुचित वाली से पदा की प्रसन्न
 किया और फिर भवशान् विष्णु के पूजन के प्रसङ्ग में प्रसन्न किया ॥४१॥

कृत्वा यथोक्ततर्पणं पूर्वाह्ने स्नानकृच्छुचिः ।
 पश्चात्प्रयाणो पादौ च स्पृष्ट्वाप स्वासने वसेत् ॥६॥
 प्राणो मुखे, सवनात्मा माङ्गल्यास प्रकल्पयेत् ।
 भूतशुद्धि ततोऽप्येव स्यात्तन् विधिवच्चरेत् ॥७॥
 तत्र केशदकृत्यादिभ्यासेन तन्मयो भवेत् ।
 आत्मानं नन्मयं ध्यात्वा हृदिस्य स्वामने न्यसेत् ॥८॥
 पादाध्यावमनीयाद्यं स्नानवाप्तो विभूषणैः ।
 यद्योच्यते, यपूज्य मूलमग्नेः देसिकः ॥९॥
 ध्यायेत्तदापदकेशान्त हृदयाम्बुजमध्यगम् ।
 प्रमन्नवदनं देव प्रक्ताभोष्टफनरश्म् ॥१०॥

प्राण काय स्नानादि विचरमं से निवृत्त हो। र हाथ-पाशो का
 प्रशासन कर जन स्थानं करक प्रपने घामन पर बैठ जाय ॥६॥ फिर
 सवनात्मा होकर पूर्वाभिमुख हो घोर माङ्गल्यास भूतशुद्धि तथा विदिवत्
 धर्म स्यात्तन् वरे ॥७॥ फिर केशव कृत्यादि न्यास युक्त होकर हृदय मे
 विष्णु का ध्यान करना। हृदय, उन्हें कल्पित घातन पर प्रतिष्ठित करे ॥८॥
 फिर पाद, सर्व, घाममनीय, स्नानाय जन, प्रक्ताभूषण घाति भेंट करे
 घोर यद्योच्यते देसिक मूलमग्न मे पूजन करे ॥९॥ तदुपरान्त भक्तो मो
 हन्तिव फलदायक, हृदयाम्बुज मे रमण क ने वासे, प्रमन्न मुग्न प्रशासन
 विष्णु का चरणमयो के, वसि पर्यन्त ध्यान करे ॥१०॥

यापेन सिद्धिर्विदुर्ध परिभाष्यमानं लक्ष्म्यान्वय
 तुनमिवाश्विनभक्तभुङ्गम् । प्रांतं ज्जगत्तनसराङ्ग-
 लिपदविषय गङ्गारस हरिपदाम्बुजमाश्रयेऽहम् ॥११॥
 गुणकर्मणो रपयय हृदयान् हर्मानिचत्पुत्रपुरसुत
 पदपदममृन्नम् । श्रीशाम्बराश्च नयितासतयलक्षणा-
 कं श्वराप्रियत्रवनयञ्च हरेः स्मरामि ॥१२॥
 मये मुक्तं गननीयं शिववृद्धे साभास्यशरणा-
 मणिरुपनिचनुमद्ये । सारक्तपादतलमदनयो-

अभाने लोचैर्क्षणोत्सवकरे च हरे स्मरामि । १३
 ते जानुनी मण्डपहेर्मजसूमसङ्गाङ्गोत्सवावृत्त-
 द्विद्वसने विविधे । सञ्चल्यतत्रमुखनिबनसुमगीत
 बिस्तारितारमपशती च हरे स्मरामि । १४

विधायो कटि विधिकृतात्सगनोद्धर्तुमि जीवाण्ड-
 कोपनसुमङ्गदुकूलमध्याम् । मानागुणप्रकृतिपी-
 तविविधवस्त्राध्यायेन्निबद्धवसनी सुगच्छुभ्याम् । १५

ध्यान के पदवाच्य 'ॐ नमो नागदेव्याय स्वाहा' यह शीघ्र इस
 स्थापना का उद्धारण कर -योग के द्वारा सिद्ध हुए आभोजन जिनके
 ध्यान में मग्न रह रहते हैं, या मन्त्री के साक्षर हैं, जिनके मनगण
 मृदु स्त्री नुबसी का मग्न मेहनत करते हैं, जिनके मोहित वर्ण कमलो-
 पम तदवृत्त धर्मविविध से परावृत्त निकल रहा है, उन समय जैसे
 शरयो वायु माध्याय को शरयु वेना है । ११। जिनके धरयो के विभू
 विह मन्त्रिमान युक्त नुरुर हय के क्वचत जैसा धार करते हैं, जिन शरयो
 के धीताम्बर का शीघ्र उदनी हुई ध्यत्रा बंता भयता है, जिन शरयो के
 सर्वात्म जिनके नामक कथा साभित है, उन समय के समान परलाम्बुओं
 का मैं स्मरण करण है । १२। शरय के शरय भूपण के धीमका के
 सर्वा की प्रभा के समुत्तम जिन शरयो के मध्य में शरय की परलाम्-
 बण के समान मान को सुभाभित है, जिन शरयो के नीचे मान
 परलाम्बु है । एक विश्व-भोजन के परलाम्बु रूप शरयो की
 शरयो का मैं स्मरण करता है । १३। शरयो के द्वारा शरय जिनके
 शरयो के शरय के शरय पर विभिन्न रंगों से मुक्त बल्लो
 की विद्युत् शरयो से विद्युत् शरयो की उन शरयो का स्मरण
 करता है । १४। शरय, मान शीघ्र शरयो की साधकता को कटि शरयो
 को कटि शरयो से सुशोभित रहती है, शरय की शीघ्र पर शरयो
 की उन कटि का मैं ध्यान करता है । १५।

शातोदरं भगवत्स्त्रिधलिप्रकाशभावस्त्वनाभि-
 विकनद्विधिजन्मपद्मम् । नाडीनदीगणरसोत्व-
 सितन्त्रसिन्धु ध्वावेण्डकोपनिलय सनुलोमरेखम् । १५
 वक्षः पयोधितनयाकुङ्कुमेन धारेण कौस्तु-
 भप्रणुप्रभया विभातम् । श्रीयत्सलक्ष्म हरि च-
 न्दनजप्रसूममालोचित भगवत् सुभग स्मरामि । १७

जो उदर त्रिदानी से सुशोभित है, जिस उदर के नाभि कमल से पद्मांगी उत्पन्न हुए हैं, जिस उदर में नाडी नदी सरिताओं के रूप में सप्त रूप समुद्र तरंगित हो रहा है, पद्माण्ड के काश्यप रूप जिस उदर में लोभ रेखाएं सुशोभित हैं, भगवाद् के इस उदर का मैं स्मरण करता हूँ । १५। जिस हृदय में समुद्रवा लक्ष्मी के वक्षस्पल भी वेसर लगी हुई हैं, जो हृदय कठहार घोर कौस्तुभ मणि से बनकर रहा है, जो हृदय श्रीवास के चिह्न में युक्त है और जिस पर हरिचन्दन फूलों की माला विभूषित है वन प्रसु-हृदय का मैं स्मरण करता हूँ । १७।

बाहू गुणेनन्दनी वलयाङ्गदादिशोभास्पदौ दुग्धि
 दंष्ट्रविनाशदशौ । तौ दक्षिणौ भगवत्तदन गदामु-
 नाभितैजोजितौ सुललितौ मनसा स्मरामि । १८
 यामी भुजां मुखनिषोर्धृतपद्मदायी व्यामी करीन्द्रकर
 वग्मनिभूपणादयो । रक्ताङ्गनिपुचपशुम्बिमजानु
 मण्यौ पद्मालयाप्यिकगौ रुचिगौ स्मरामि । १९
 पण्ड मृणालममलं मुग्धपद्मजस्य लेखाध्रयेणवन
 मागिरुप्या निवहतम् । किंवा मृत्तिसममन्त्रकस
 त्यवम्य वृन्ते चिर भगवत् सुभग स्मरामि । २०

जिन दो श्रेष्ठ भुजाओं में वलय वर्णक आदि सुन्दर आभूषण सुशो-
 भित हैं, जो भुजाओं पर लक्ष्मी दात्री का महारत्न चुली है, जिन भुजाओं
 की प्रकाश के समान गदा और चक्र आदि वस्त्रों का लेख भी लक्षण है, मैं

सदभीषो के हृदय की प्रफुल्लित करने वाले हैं, हरि के उन मृदुलि-वशो का भी स्मरण करता है । २२। जिनमें मकराकार कुण्डल शोभा पाते हुए दिवामौं और माकाशको प्रकाशित करते हैं, जो मप्रमाण में चषल घनको के पत्रों से कुछ सङ्घुषित हुए प्रतीत होते हैं, जो मणिमय किरीट के तीर पर स्थित हैं, भगवान के उन कानों का भी स्मरण करता हू । २३। जिस सजाट में सुगन्धित मद्सुत गीरोचन तिनक नेत्रों में मंथी भाव प्रकट करता है जो सजाट रूपी पद्मकाम मणिमय मुकुट से दीप्तिमान् है, उस नेत्रों को घानाद देने वाले हरि के सजाट का भी स्मरण करता है । २४।

श्रीवासुदेवचिह्नुर कुटिल निषद्धम् नानासुगन्धिकुसुमैः
स्वजनादरेण । दीर्घं रमाहृदयगाशमने धुनत
व्यायेऽम्बुवाहकषिर हृदयाब्जमण्ये । २४

मेघाकार सोमसूर्यप्रकाश सुध्रन्नस चक्रचार्यक
मानम् । मोक्षातीत पुण्डरीकायतास विद्युच्च्वल-
अनाश्रयेऽह त्वपूर्वम् । २५।

दीन हीन सेवया वेदवत्त्वा पास्तर्पः पूरित मे
दरीरम् । लाभाकान्त लोकमोहाधिविद्ध कृपा
दृष्ट्या पाहि मा वासुदेव । २६

जिन कुटिल नेत्रों में सुगन्धित पुष्प गुंथ कर स्वच्छनों ने देली बताई गया। जिन चषल नेत्रों के दर्शन से सदभीषो का मन प्राप्त होता है, उन नील नेत्र जैसे दीर्घ एवं मनोहर नेत्रों का भी हृदय में ध्यान करता है । २५। मेघवर्ण वाले चन्द्रमा और सूर्य के समान प्रकाशित, इन्द्र-धनुष क समान भीह वाले, विद्युत् जैसे समुज्ज्वल वस्त्र धारण करने वाले, मोक्षा-तीत, पुण्डरीकायता भववान् विद्युत् भी में तरण लेता है । २६। मैं धरव-न्न दीन, वेदोपन सेवा से हीन और पाप-नार मुक्त देह वाला हूँ । मैं मोक्ष, लोक, मोह और मानविक व्यथा से अल्पित हूँ । हे वासुदेव ! अपनी कृपा दृष्टि द्वारा मेरी रक्षा कीजिये । २७।

ये भवपाद्या ध्यावमानां मनोशा व्यक्लि यिच्छन्तिः

दोदशस्तीकपुण्यैः । स्तुत्वा नत्वा पृथगिह्या विधिज्ञाः
 शुद्धा मुक्ता ब्रह्मसौख्यं प्रयान्ति ।२८।
 पद्मोत्तिमिदं पुण्यं शिवेन परिमापितम् ।
 धर्म्यं शशस्यमापुष्य स्वार्थं स्वस्वयनं वरम् ।२९।
 पठन्ति ये महाभागास्ते मुच्यन्तेऽहमोऽक्षिमात्
 धर्म्मार्थं काममोक्षाया परत्रैह फलप्रवम् ।३०।

इस विधि को शानकर को बहुत ही मज्जि भाव से मगवाह विष्णु के हृदय रूप का ध्यान करने दोदश स्तीक कर्षी पुण्यों में स्तुति और नमन करके पूजा करते हैं, वह शुद्ध और मुक्त होकर ब्रह्मानन्द को प्राप्त होते हैं । २८। शिवोक्त यह स्तोत्र, जिसे पद्या ने कहा है, पाचण्ड पुस्तक-मय है तथा मन, मन, ध्यायुष्य, स्वार्थ धर्म मगल का देने वाता है । २९। यह स्तोत्र इक्ष्वाक और परशुराम में धर्म, धर्म, वरम्, मोक्ष रूप चारों पदार्थों का दाता है । इसका पाठ करते बाने महानाय पुण्य सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं ।

द्वितीयांश—

प्रथम अध्याय

इति पद्मावध. श्रुत्वा कीरो धीर सता मतः
कल्किदूत सप्तोमध्ये स्थिता पद्मामयाव्रवीत् ।१।
वद पद्मे साङ्गपूजा हरेरदमुतकम्मंण ।
यामास्याप विद्यानेन चरामि भुवनत्रयम् ।२।
एव पादादि केशान्तं घ्यात्वा त जगदीश्वरम् ।
पूर्णात्मा देशिको मूल मन्त्र जपति मन्त्रवित् ।३।
जपादनन्तर दण्ड-प्रणति मतिमाञ्चरेत् ।
विष्वक्सेनादि कानान्तु दत्त्वा विष्णुनिषेदितम् ।४।
सप्त उद्धास्य हृदये स्नापयेन्मनसा सह ।
नृत्यगायन्हरेर्नाम त पश्यन्सर्वत. स्पितम् ।५।

मूठ जी बोले—पद्मा के बचन सुन कर सत्य मत वाले धीर एव
कल्कि-दूत एक ने सप्तियों के मध्य बँठी हुई पद्मा से कहा ।१। हे पद्मे !
अर्भुत कर्म वाले भगवान विष्णु की पूजा का सांगोपांग पालन करो ।
क्योंकि मैं उसका विधिगन् धनुष्यान करके तीनों लोकों में विचरण
करता ।२। पद्मा बोली—इन प्रकार चरणों से भेग पर्यन्त भगवान
विष्णु का ध्यान करके मन के शता को मूल मन्त्र वा जप करना
चाहिए ।३। मन के परचाप भगवान् को दण्डवत् प्रणाम करे । फिर
विष्वक्सेन आदि को पाठ, अर्घ्य नैवेद्य आदि समर्पित करके भगवान् को
निवेदन विधि मये ध्यान को चारुत कर विष्णु का स्मरण करता हुआ
नृत्य-गायन घोर हरिनाम का कीर्तन करे ।४-५।

तत शेषं मस्तुवेन कृत्वा नैवेद्यभुजमवेत् ।
 इत्येतत्कथितु कीर । कमलानाथसेवनम् ।६।
 सकामनां कामपूरणकामामृतापकम् ।
 श्रोत्रानन्दकर देव-गणध्वज-नर-हृदियम् ।७।
 मयीगिस्तु श्रुतमाद्यि भगवद्भक्तितक्षणात् ।
 स्वल्पपादात्पापिनो मे कीरस्य भूवि मुक्तिदम् ।८।
 किन्तु त्वा काञ्चनमयी प्रतिमा रत्नभूषिताम् ।
 सजीवानिब पदयामि दुलभा कृपिणी त्रियम् ।९।
 नान्यां पश्यामि महेशो रूयशोलेपुशंस्तव ।
 नान्यो योग्यो गुणो मर्ता भुवनेऽपि न दृश्यते ।१०।

फिर भगवान् का निर्वाण शेष मस्तुक्त वर पारण करे और नैवेद्य
 चला करे । हे मुक्त ! कमलानाथ की सेवा का यह विधान मैंने तुमसे
 कहा दिया ।६। इस प्रकार ही पूजा में भगवता वानो की कामना पूर्ण
 होनी और आपना न करने वाने को शोच मिलता है । यह क्या देवता,
 अथवा और मनुष्य सभी के धर्मों को धामन्द देने वानो है ।७। मुक्त
 बोला—हे साध्वी ! तुमने मुक्त पापिन छोले को भी शोच देने वानी प्रति-
 मन्ति की विधि कही है, उसे तुम्हारे कृपा से मैंने सभी प्रकार सुना है
 ८। किन्तु मैं तुम्हें रत्नमयकारों म विभूषिता, स्वर्णमयी प्रतिमा के समान
 तोनों सोकों से दुर्लभ सत्साम् मठकी रूप में दण्ड रहा हूँ ।९।
 सगर में तुम्हारे समान रूप और और सुलभयी अन्य नानी मुझे दिखाई
 नहीं देती तथा तुम्हारे योग्य कोई अन्य गुणवात् मर्ता भी मुझे शोक में
 दिखाई नहीं देता ।१०।

किन्तु पारे समुद्रस्य परमाश्चर्यस्वरथान् ।
 गुणवानिभर-साक्षारकञ्चिद्विद्वेज्जिमानुष ।११।
 न हि पातुकृत मन्थे शरीर सर्वं सौममम् ।
 यस्य श्रीवामुदेवस्य नान्तर ध्यानयोगतः ।१२।

त्वया घ्यात तु यद्रूप विष्णोरमिन्नतेजसः ।
 तत्साक्षात्कृतमित्येव न सन्न कियदन्तरम् ॥१३॥
 ब्रूहि तन्मम किं कुत्र जातः कीर परावरम् ।
 जानामि तत्कृतं कर्म विस्तरेणाप्रवर्षय ॥१४॥
 वृक्षादागरुद्र पूजां ते करोमि विविधोधिहाम् ।
 ब्रोजपूग्फराहारं कुरु साधु पयः पित ॥१५॥

सिन्दु, इन्द्र के उक्त पार एक परम घातचर्मण्य रूप वामा,
 गुणी, धर्मोत्तिक एक साक्षात् ईश्वर स्वरूप भद्रुव मुझे दिखाई दिया
 है ॥१३॥ उमता तब मोन्दर्मण्य देह ब्रह्मा द्वारा रचित प्रतीत नहीं होगा ।
 ध्यान-योग से देखें तो उक्तमे और भगवान् वासुदेव मे कुछ भी अन्तर
 नहीं मिलेगा ॥१३॥ हे वर्ये ! तुम भगवान् विष्णु के जित अमित तेजस्य
 स्वरूप का ध्यान करती हो, उक्त रूप मे और उम मनुष्य के रूप मे कोई
 अन्तर दिखाई नहीं देगा ॥१३॥ वर्यो ने कहा—हे मुक ! तुमने अभी
 क्या कहा है ? उक्त बात को पुन कहो । उम्होने घबत्तार लिवा है ? यदि
 तुम उक्तवा पूर्ण पृथग्गत जानते हो तो मुझे विस्तार पूर्वक सुनाओ ॥१४॥
 तुम वृक्ष से उतर आओ, मैं विविध तुम्हारा सत्कार करूँगी । तुम
 बीजपूर फलों का अन्नण और दुग्ध का पान करो ॥१५॥

तय ब्रजुग पधरागादहणमुग्जवसम् ।
 रत्नसप्तद्वितमहं करोमि मनसः, प्रियम् ॥१६॥
 बन्धरं सूर्यकाशेन मलिनं स्वर्णचट्टिना ।
 करोम्याद्यदादनं चारु-मुक्ताभिः पशति यव ॥१७॥
 पत्तनं कुरुमेनागं सौरभेणातिविप्रितम् ।
 करोमि तपनानन्ददायकं रूपमोदगम् ॥१८॥
 पुच्छमच्छमणिप्रात-पर्वरेणातिवन्दितम् ।
 पादयोर्नूपुरसाय-नापिनं रत्नां करोम्यहम् ॥१९॥
 त्वामृतं जपाप्रातरपक्तापि दापि मामिह ।

सखीभिः सगोटाभिस्ते किं करिष्यामि तद्वद ।२०।

मैं तुम्हारी खोंब को पदरागमणि घोर गलों से बलिष्ठ बना कर चन्दे मनोमोहक भद्रसु वरों की घोर दीक्षितव्यो करा दूँगी ।१६। तुम्हारे कठ से सुपेक्षान्त मणि लटित स्वर्ण पट्टिका बाँध कर दोनों पक्षों की माटियों से उवाङ्कोगे ।१७। तुम्हारे पक्ष घोर चरों को कृकृम से चर्चित करके ऐसा सुशोभित करूँगी कि सद्य तुम्हें देखते ही अत्यन्त मान-न्दित हो जाय ।१८। तुम्हारी पूँछ को स्वर्ण मणि से घुँव दूँगी, जिससे तुम्हारे चमत् पर गुन्दन पसं। छन्द सुनाई देवा । तुम्हारे पाँवों से नूतन बाँध दूँगी, जिनसे भुवधुर ध्वनि निकलेगी ।१९। तुम्हारा कया-मृत मुनकर हो मेरे मन की शपथ। मिट पई । मुझे पता लो कि मुझे क्या काम का है ? मणियों के सहित मैं तुम्हारे परिचर्या करूँगी ।२०।

इति पद्मावच श्रुत्वा तदन्तिकमुपागतः ।

कोरो घोषः प्रमत्तात्मा प्रवक्तुमुवचकमे ।२१।

ब्रह्मणा प्राचिंत, श्रीशो महाकारुणिको बभौ ।

शमते विष्णुपदातो गृहे धम-रिरक्षिषु ।२२।

चतुर्भिर्भृमिर्जाति गायत्री, परिवारितः ।

कृतोपनयनो वेदमधीरय राममन्त्रिषी ।२३।

घनुर्वेदश्च गान्धर्वे शिवाददधममि मुकम्

कवचश्च यर लब्धः शम्भन पुनराभतः ।२४।

विप्रावमूपमृपाल प्राप्य शिक्षाविशेषः ।

धर्मानारुषाय महिमान् अष्टमीं निगकरोत् ।२५।

पदा के बचन मुन कर हृषिष्ठ हृषा मुक पदा क पात जा पहुँचा घोर श्रेष्ठ प्रसंग करने गया ।२१। मुक बोला-यववाशु अरयोपति ने दमं हस्त्यावन-हेतु प्रज्ञाश्री द्वारा प्रायना परत पर अमल शत्रु निवासी विष्णुपदा के यहाँ अवतार लिया है ।२२। वे चार भाई अपने गोन एर परिवार बाहों के साथ स्थित हैं, जनयत हस्तार होत

के बाद उन्होंने परशुरामजी से वेद की शिक्षा प्राप्त की ।२३। फिर उन्होंने षण्णवेद की शिक्षा भी और त्रिष्वजी से धार, प्रति, शुक, श्वन और वरदान पाकर सम्पन्न राम से अपने घर लौटे ।२४। फिर उम कल्कि भगवान् ने विनास्यु राजा ने भेंट की, तब उन्होंने अपने वरदान द्वारा राजा की प्रथममुक्त संभारों का निराकरण किया ।२५।

इति पश्चा तदास्यान निशम्य मुदितानना ।

प्रस्थापयामास शुक कल्केरानयनादृता ।२६।

भूयषित्वा स्वशास्त्रंस्तमुवाच कृताञ्जलिः ।२७।

निवेदित तु जानासि किमन्यस्क्रयणाम्यहम् ।

स्त्रीभावमयभीतात्मा यदि गायाति स प्रभुः ।२८।

तथापि मे कमदोपात्तं प्रणानि कथयिष्यसि ।

शिवेन यो वरो दत्तः स मे ज्ञापोऽभवति ।२९।

पुंसा मर्दनैनापि स्त्रीभावं वमतः शुक ।

श्रुत्वेति पश्यामामन्त्रव प्रणम्य च पुनः पुनः ।३०।

इस प्रसंग को सुन कर पद्मा बड़ी प्रसन्न हुई और उसने कल्कि भगवान् की आदरपूर्वक वहाँ निवासाने उद्देश्य से शुक की सेवा ।२६। पद्मा ने शुक को स्वर्ण एवं रत्नों से सुसज्जित किया और हाथ जोर कर कहने लगी ।२७। पद्मा बोली—मैं जो कुछ निवेदन करना चाहती हूँ उसे तुम मझे प्रसार जानते हो, तो फिर कथित क्या कहूँ ? मैं लो स्वभाव-वत्त मयचीन हो रही हूँ । यदि उभु यहाँ न थाबे तो तुम मेरी ओर से प्रणाम करके मेरे कर्म-दोष के विषय में उन्हें बताना और कहना कि मुझे त्रिष्वजी से जो वर प्राप्त हुआ है वह इन समय ज्ञान के समान हो रहा है । त्रिष्वजी के वरदान के अनुसार जो पुरुष मेरी ओर काम-वास्य से देखता है, बड़ी नापी हो जाता है । पद्मा की यह बात सुन कर शुक ने उसे आश्चर्य प्रणाम किया ।२८-३०।

उद्धोय प्रथमो कोरः सस्मल कल्किपात्तितम् ।

तमामरं समाकष्यं कल्किः परपुरख्यम् ॥ ११ ॥

छोटे कृत्वा त ददश स्वणुरत्नविभूषितम् ।

सानन्द परमानन्ददायक प्राहु त तदा ॥ १२ ॥

कल्किः परमतेजस्वी परस्मिन्नमल शुक्रम् ।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२

॥ १४ ॥

कृशोपितः कुतो लब्ध मणि काञ्चनमूपलम् ।

अर्हनिश त्वन्मिलन वाञ्छित मम संवत् ॥ १५ ॥

फिर वह शुक उठ कर कल्किजी द्वारा रचित जमल नाम के गण सन्तान विवेना कल्किजी ने उसे माया देकर कर शुक को गोद में लेकर उसे स्वर्ण रत्नों से मढ़िन देवा तो अरपन्त हाँपित होते हुए बोले ॥११-१२॥ अत्यन्त तेजस्वी कल्किजी ने शुक का गस्कार करते हुए उसे दुःख-वान कराया और उससे सब प्रसन्न पूछा—हे शुक ! तुम इस समय किस देश में धारण हो ? वहाँ तुमने कौन-सी पदमूत्र बल्गु देवी है ? ॥१३॥ १४॥ तुम कहाँ से ? किसके द्वारा मणियों और स्वर्ण से विभूषित किये गये ? रात दिन मैं तुमसे मिलने के लिए उत्सुक रहा हूँ ॥१५॥

तवानानोकनेनापि क्षण मे युगश्चक्रेत् ॥ १६ ॥

इति कल्केर्षेण श्रुत्वा पुण्ड्रित्व शुको भृशम् ।

कथयामास पद्मायाः कथा पूर्वोचिता यथा ॥१७॥

सवादमात्मनस्वरूपा निरालङ्कार धारणाम् ।

सर्वं तद्दृश्यामास तस्याः प्रणतिपूर्वकम् ॥ १८ ॥

श्रुत्वेति वचन कल्किः शुकैः उचिता मुदा ।

जगाम स्वरितोऽश्वेन शिवदस्तेन तन्मना ॥ १९ ॥

हे शुक ! मैं अब तुम्हें नहीं देखता, तब मेरा एक क्षण भी युग के समान व्यतीत होता है ॥१६॥ कल्किजी यह बात सुनकर शक ने हेतु धारम्भार प्रणाम कर यथा की पूर्व कथित कथा को कह

मुनादा ।३०। फिर पचा के साथ जो संवाद हुआ वह तथा गवली-
मलियों की उन्नति में पादि मंत्र वृत्तान्त दिवस होकर शुक्र ने उन्हे
सुना दिया ।३१। कलिओ ने जैसे ही यह वृत्तान्त सुना, वैसे ही प्रमत्त
होते हुए वे शिवदत्त पद पर घट कर शुक्र के साथ चल दिव्ये ।३२।

समुद्रारममल सिंहल जनसङ्घनम् ।

नानादिमानवहुल मास्वरं माणिक्यज्वनम् ॥ ३० ॥

प्रासादनदनाश्रेषु पदाकातोः साकुलम् ।

श्रेणोसभापणादृत्त-पुरगोपुरमण्डितम् ॥ ४१ ॥

पुरस्थो-यशिनो-वधगन्धामोद-द्विरेफिणोम् ।

पुरी कारुमतो तत्र ददर्श पुरत स्थिताम् ॥ ४२ ॥

मराल-जाल मञ्जवाल-विलोल-कमलान्तराम् ।

रुमीलताव्यमानालिकलिताकुलित सरः ॥ ४३ ॥

अलकुषकुटदास्युह-नावित हस्तसारसं ।

ददर्श स्वच्छपयसां लहरीलोलवीजितम् । ४४ ॥

धमते-धमते समुद्र पार पहुँच कर उ-होने लखण्ड जल से घिरे
हुए, विभिन्न विमानों से युक्त, मलियों और स्वर्ण से समकते हुए,
कृत्वाविनायो और यदनों के समस्त पनासों और लोरणों से सजे हुए
गजामकर बाते, दुजानों और गोनुरादि से समन्वित, रचिनो तारिणो क
पदमप से इषिन संदराते हुए धमर मसूह से युक्त बास्वनी सिंहल पुरी
को देगा ।४०-४३। जहाँ जमानों से हग-समूह विभोज कर रहे हैं,
कमलों पर धमर गुंजार रहे हैं, अलकुषकुट, दास्युह, हव, सारस पादि
कमल कर रहे हैं तथा जल की लोल लहरी के साथ लटपारी बसु
प्रवाहित है ।४३-४४।

वर्नं कदम्बकृत्तान-शालताला अने सरै ।

कपित्पादमत्पयजू-रवीजपूरकरजर्षं ॥ ४५ ॥

पुत्रासपनसंनारिणः अन्नं शिशुषं ।

समुन्नैरिषे लेशच नानायुषां दय शोभितम् ।

वनं वदसं दक्षिणं फलपुष्पसायुतम् ॥ ४१ ॥

दृष्ट्वा ह्यद्भुतं शुकं मुनिरस्यः कल्किं पुराणैः वने
प्राह प्रीतिकारं वचोऽयं सरसि स्नातव्यमित्यादृतः ।

तच्छ्रुत्वा विनयान्वितं प्रभुमर्तया भोजितं पद्मनाभम्

तदभ्यन्देशमिह प्रशंशामधुना यत्वा स कोरोऽयदहम् ॥ ४३ ॥

वनं कदम्ब, कुन्दाम, छात्र, काष्ठ, माघ, केसर, कंष, धर्मदाय,
समूर, बीकान, करज, पुन्नाग, पन्स, नारदी, पद्म, शिखरा, शमुक,
गारियम आदि विविध प्रकार के वृक्षों से सुशोभित और फल, पुष्प,
पत्रादि से परिपूर्ण वह स्थान ही कल्किजी ने देखा । ४५-४६। यह सब
देखते हुए पुरी के नमोपस्थ वच के पहुँच कर मुस्किष्ठ देह हुए कल्किजी
ने आदर सहित शुक से कहा—'इस हरीवर में स्नान करने की इच्छा
है' । उह मुनिकर शुक ने विनय पूर्वक कहा—'सन्तान, सब वै यो पद्मा के
निवाह स्थान पर जाओ है' । यह सब वन शुक श्रुत्वा के पास गया और
उत्तम कल्कि भगवान् के पागपन का प्रहण कह दिया । ४७।

द्वितीय अध्याय

कल्कि सरोवरगम्यात्ते जलाहरणःवर्तन्ति ।

स्वच्छस्फटिकमोपाने प्रवासाच्चित्तवेदिके । १।

सरोजसौरभव्यञ्जभ्रमद्भ्रमरनादिते ।

कदम्बरानुपप्राति वारितादित्यदर्शने । २।

समुवासात्तने विश्वे मदस्वेनावज्जारित ।

कल्किः प्रस्थापयामास शुक्र पद्मा प्रथमुदा । ३।

स नागेदवरमध्यस्थः शुक्रो गत्वा ददर्श साधु ।

हृद्यंस्यां विनितोत्तमायितो ससौभङ्गनाम् त । ४॥

निदशासुषातपापेन म्नायती वदनाम्बुजम् ।

उत्क्षिपन्तो ससौद्वन्द्वकमनचन्द्रनोक्षितम् ॥५॥

सूत्रको बोले—कल्किजी ने घाब से उठ कर सरोवर के मधीन जाने उन सादे के रंग में प्रवातो से मुक्त, बयल की सुगंध से रसदिन, भ्रमर समूह द्वारा निवारित, उज्ज्वल स्फटिक परि निर्मित मोमन पर स्थित एव कदम्ब के दृशो की लकीन पत्तियों से सज्जे करी हुई सुवं हिरणों से घाबदिन बहुरी पर बैठ कर उन्हींने शुक्र को पद्मा के निवास स्थान पर भेडा । १-३। वहाँ पहुँच कर बहु सुफ नाग-केसर के वृक्ष पर या बैठ घोर उमने घटारी के ऊपर पत्तों की ताज बनाकर तमन करते बामी पद्मा की लपियों के सहित ? ता । ४। उन समय उल्ला बाबु ने गद से मधीन मुन हुई पद्मा सली द्वारा प्ररत

इत्यार गायामु शिबिकामाच्छय परिदारिता ।
 मन्त्रोभिश्चारुवेरामिभूर्त्वा स्वान्न पुराद्दहि ।
 प्रथमो स्वरित् द्रष्टु भेष्यो मदुपति यथा ॥११॥
 जना पुमांस पयि ये पुरस्था प्रदु बु, स्त्रीस्व-
 न्मयाद्दिगन्तरम् । शृङ्गाटके वा विषणि स्थिता
 ये निजाङ्गणस्थायितपुष्पकाम्प्या, ॥१४॥
 निशारिता ता शिबिका बहन्त्य ताम्योऽनिमता
 वलपत्तराश्च । पद्मा शुक्रोक्त्या तदुपर्युपस्था
 जगाम ताभि परिशारिताभि ॥१५॥

इस प्रकार बरहस्पति सन्तुष्ट होने पर पद्मा घातन हेतु ही
 यह उपदेश मुख के मध्य मुख, नेत्र के मध्यनेत्र काके उन घातन पूर्वक
 देनेसे मारी ॥१०॥ उसकी घात नाशिका मण्डिका है—विमला, मानिनी,
 लोला, बगवा कामर-इला, विसामिनी, पादमती और कन्दुदा । उन
 मण्डिको सहित अन्त-शरीर के लिए तैयार होकर पद्मा उनसे बोली कि
 यह मण्डिकों से तैयार शरीर पर तैयार ॥११-१२॥ यह कह कर
 पद्मा पालकी पर घातक होकर मण्डिको सहित घातक पुर से चल पड़ी ।
 शृङ्गा के दर्शनार्थ जाती हुई रक्षेयणी के ममान ही कठिक भगवान् के
 दर्शन के लिए पद्मा ने भी घोषणा पूर्वक प्रस्थान किया ॥१३॥
 पद्मा विष मार्ग में आ रही थी, उस मार्ग में स्थित पुरुष उसे देखने ही
 बड़ी स्त्री न बन जाय इस घातक से इधर-उधर आने लगे । उन आने
 जाने की वलिये इन्हें निराश्रय रहने के लिए पूएव बंधों का अनुश्रवण
 करने लगी ॥१४॥ इस प्रकार मार्ग की दूरियों से रहित देव कर शक्ति-
 मयी शिबिका शम्भुकी को स्वच्छन्दता से कहन करने लगी - शुरु के बधना-
 नुसार वापकी पर चढ़ी हुई पद्मा की घेर कर उसकी मण्डिकों को तैयार
 चल रही थी ॥१५॥

शरीरान्न मारननमनादिष्टं प्रफुञ्जपद्मोद्भवरेतुवामितम् ।

वेदविवाहाणु मुषाकरामसाः शृङ्गातोनामुदयाजोमनाः ॥१६॥

तासां मुखामोदमदान्वभृङ्गा विहाय पद्मानि
मुक्षारविन्दे । स्रग्ता सुगन्धाधिकमाभनव्य
निवारिताश्चापि न तत्त्वमुन्ते ॥७॥

ह्यामोपहासैः सप्तप्रकाशैर्वाद्यैश्च नृत्यैश्च जले
विहारैः । कन्यर्हस्ता जलयोचनास्तद्विकर्ष
तामिवनिताभिरुन्त्वं ॥८॥

मा कामान्ना मनसा युक्तोक्ति विविच्य पद्मा
सञ्चिभिः समेता । जनात्मदुःखाय महाहृत्पुत्रा
सगाम निद्रिष्टकदम्बपण्डम् ॥९॥

सुप्ते शयान मण्डिबेष्टिकायन करिक पुरस्तादांनसू-
व्यवर्चंमम् । महामण्डिपानविभूषणांचित्त शुभन सऽर्
तमुदेषतेसम् ॥१०॥

जिह्वे तारव, हंस आदि के श्पुत्र जितार शीत पदप श्पुत्र के
मुक्कपिठ सरोवर के पक्ष से स्नान करने सह च इरावती जिह्वी कुमुदनी
मुक्क पद्मा की घाता से विचारण करते मयी । उनके श्पुत्र की कमल-
पत्र से मत्त हुए प्रसर उनके मुक्की पर गुं जा रने लगे । मियो द्वारा
उडाये जाने पर भी वे प्रसर उन पद्मपत्राओं के मुक्क से छुटत ही
नहीं थे ॥७-१०॥ सप्तमय हाम-परिहास, बाद्य, नृत्य तथा परम्पर द्वारा
पकडे हुए विविध प्रकार का जलविहार करती हुई पद्मा उ सञ्चियों के
मत्त की शीत सञ्चियों से पद्मा के मन की बुर मिया ॥८॥ जिह्वे सकाम
माय वाली पद्मा मुक्क के कपर्णों का स्मरण करके सञ्चियों महिज जल से
बाहर निकली शीत वस्त्राभूषणों से विभूषित हुकर उस बनाये हुए
पद्मा श्पुत्र के हृय के नीचे गई ॥९॥ वहाँ उगने मलिमव पद्म-
तरे पर महासिंघों से विभूषित, सूर्य के श्रेय से भी अधिक तेजोमय
कल्पितो की मुक्क के मंडित मुक्कपूर्वक शयन करते देखा ॥१०॥

तमासनील कमलापति प्रमु पीताम्बर चारुसरोजलोचनम् ।

माशानुवाहं पृषुषीतवक्षस धीवरससशरीरसूक्तान्तिरामितम्

तदद्भुतस्त्रमयेदयं पद्मा सस्तम्भिनाविस्मृतमहिक्रयार्था
 सुप्तं तु भवोपयितुं प्रवृत्तं निवारयामाविशङ्कितारणा । २३
 कदाचिदेषोर्भतिलोऽतिस्त्रयो मद्दर्शनात्स्वभोरवमुपशि
 साक्षात् । तदात्र हि मे भविता भवस्य वरेण सावप्रति-
 मेन ताके । २३।

चराचरारमा जगतामघोशप्रबोधितस्तद्गृह्य विविच्य ।
 दर्शा पद्मा प्रिवस्त्रशोभा यथा रमा धामघुमूदनाये । २४।
 सवीर्य मायामिव माहिनी ता जपाद् कामाकुनित्तं स
 कालिकः । मन्त्रोभिरोक्षा समुपागता ता वटादाविक्षेपवि-
 नामिनाम्यम् । २४।

उन्होंने देखा कि तमाम जैसे नीलवर्ण वाले, शीशाखरधारी,
 बसवर्जम नेत्र वाले, सखी मुद्रायो, विनाम वक्ष और धीवस्त मे
 बिन्दन हृदय वाले, बोलमुख मौल की कान्ति मे प्रकाशित भवदान् वहि
 विगात्रयान है । २३। उम मद्भुत रूप को देखकर पद्मा ऐसी स्तम्भित
 हुई कि उनका परहार भी करना नूल गई और उनसे जग के परमाण
 उन्हें अज्ञाना उपनि नहीं मयमा । २३। उमन सोचा कि वही यह महा-
 यनी घातक रूपवान् पुरुष मुझे देगकर खो न बन जाय ? यदि ऐसा
 हो गया तो निवभो का वरदान यही भी अभिजाप हो जायगा । २४।
 फिर पद्मा के प्राणरिक्त अविप्राय का जान कर परावर के घातका
 एवं विश्वेश्वर वहि मगदान जाय पड़े । उन्होंने देखा कि महवीची के
 समाने मद्भुत रूपवती पद्मा मायके मदी है । २४। मन्त्रियो क महिन
 घाई हुई, घमक देसना हुई पद्मा को देखकर उत मांहु को उरभन
 करने वाली पद्मा मे वहि श्री महाव-भाव पूर्वक बोले । २४।

इहीहि मुग्धापनमन्वु भाग्यात्सतापवन्ने कुञ्जाय मे स्वाय ।
 तवानेन्दुः विस कामपूरतापापनोदाय मुग्धाय काम्यो । २५।

तृतीय अध्याय

मा पद्माती हीर मत्वा प्रेमगद्गदभाषिणी ।
 तृष्टाव द्रोहिता देशो करुणावर्णालयम् ॥१॥
 प्रसोद जगता नाथ । घर्मन् । रमापते । ।
 विदितोऽसि विशुद्धात्मन् । वसगा प्राहि मा प्रभो ! ॥२॥
 पन्याह कृतपुण्याह तपोदानजपव्रतो ।
 त्वां प्रतोष्य दुरारार्थ्य लब्ध तव पदाम्बुजम् ॥३॥
 याज्ञा कुत पदाम्बोजे तव सत्पृश्य शोभनम् ।
 भवन यामि राजानमास्यातु स्वागत तव ॥४॥
 इति पद्मा रूपसद्मा गत्वा स्वपितर नृपम् ।
 वाधागमनम् बल्केविध्वोरगस्य दौत्यके ॥५॥

दूतजी बोले—प्रेम से गद्गद् होकर भावण करने वाली पद्मा ने बलिब्रह्मों को भगवान् विष्णु के रूप में जान कर उनकी स्तुति की ॥१॥ हे जगदीश्वर ! हे घर्मन् ! हे सद्गोत्रते ! मैं आपकी जान गई हूँ । घर पार मुझ परलुपना की वधा कीजिए ॥२॥ मैं धार्य हो गई प्रभो ! जो अपने पृथ्वरुषों घर्षान् तप, दान, उप वीर दनादि से महिष धारणी धारयना करके अपने दुःशाप्य परलुपनों को प्राप्त कर ली ॥३॥ घर पार मुझे याज्ञा हैं कि मैं आपके पदाम्बुजों का स्पर्श करके अपने घर जाऊँ वीर महाराज से धारने धारमन की बात सूचित करूँ ॥४॥ यह कह कर धेष्ट रूप वाली पद्मा ने अपने पिता राजा

वृहस्प के पास बाकर भगवान करिह के आगमन का वृत्तान्त निवेदन किया ॥५॥

सखीमुखेन पद्माया पाणिग्रहणकाम्यया ।
 हरेणमनन्ध्रुत्वा सहस्रोऽम्बुद्वृहद्वय ॥६॥
 प्रोषसा शाल्मोश्च पायं सुमङ्गलं ।
 वायनाण्डवगोरोश्च पूज्योऽननपाणिभि ॥७॥
 ब्रह्मामानपितु कर्त्तिके सार्द्धं त्रिजगन्ने प्रभुः ।
 मण्डपित्वा कामनी पनाकास्वर्गीतोरणे ॥८॥
 ततो जनाद्ययाम्यास यत्वा विष्णु मण्डपसुतम् ।
 मणिवेदिकयासीन भुवनंरगति पतिम् ॥९॥
 प्रनाथनोपरि यथा क्षामन्ते हर्षोराधहोः ।
 विद्युदिन्द्रायुगादौनि तथैव भूपणान्युत ॥१०॥

राजा वृहस्प ने यथा का मनी के मुख से यथा के पाणिग्रहण की कथना से अथवा का आगमन सुन कर हरे शक्त किया ॥६॥ फिर उसने पुराहित, ब्राह्मण, परिकारीयन, मित्र, बन्धु आदि का साथ लेकर मगन पीत, वाद्य, नृत्य आदि करते हुए कर्त्तिक अथवा नक्षत्र को जाने के लिए प्रस्थान किया । वर्षण के तीरछ घोर पलाकादि से बहु काचमयी नगरी अथवा शोभा पाते लगी ॥७-८॥ राजा वृहस्प ने अथासम पर पहुँच कर देखा कि विष्णुमण्ड के पुत्र कर्त्तिकी मणिमय वेदी पर स्थित है ॥९॥ वंश धनधार सेव पर विबधी यथा हस्त-अक्षय आदि अरुन्ध दोषा पाते हैं, वैसे ही कर्त्तिकी के कृष्णाग पर भूपण समकथं है ॥१०॥

सरीरे पीतवानाप्रयोगभासा विन्दुपितम् ।
 रूपलावण्यसदने भद्रनोऽहमनाशने ॥११॥
 दर्शानुरता राजा अपशोसगुणाकरम् ।
 साधुः सपुनरु. श्रीवां रुष्ट्या साधु समच्छंभु ॥१२॥
 शान्तापीथरमेतन्मे तवागमनमोश्वर । ।

यथा मान्धातुपुत्रस्य यदुनायेन कानने । १३।
 इत्युक्त्वा तं पूजयित्वा समानीय निजाश्रमे ।
 हर्म्यप्रासादसबाधे स्थापयित्वा ददौ सुताम् । १४।
 पद्मा पद्म पलाशाक्षी पद्मनेत्राय पद्मनीम् ।
 पद्मजादेशतः पद्माभावादाद्यथाऋमम् । १५।

उन रूप-मावृत्त के घर, कामदेव के उद्यम को नष्ट करने वाले देह के घयनाथ में पीनाम्बर धारण किये हुए तथा रूप, शील और गुण की शान सद्भीरति कल्किजी को देख कर अध्युक्त पुनरित देह के महान राजा ने उनका विधि पूर्वक पूजन किया । १३-१४। राजा बोला— हे ईश्वर ! जैसे यदुनाथ वन में जङ्गल मान्धाता के पुत्र तो मिले थे, वैसे ही माय ज्ञानदोषगर्भ का घायमन मेरे लिए हुआ है । १५। यह कह कर कल्किजी का पूजन करके राजा उन्हें घपने भवन में ले जाये और सुमन्त्रिन गृह में टिका कर उन्हें घपनी कन्या का दान कर दिया । १६। पद्मोरग्न ब्रह्माजी के घादेकानुभर पद्मनाम एव पद्मलोपन मण्डानु कल्कि को पद्म-पत्र जैसे नेत्र बाधो पद्मिनी उगतक पद्मा का यथाविधि दान किया । १७ ।

कल्किसंख्यया त्रियां भार्यां सिंहेले साधुसकृतः ।
 समुवास विशेषज्ञः समीक्ष्य द्वीपमुत्तमम् । १६।
 राज्ञातः स्त्रीरश्मापन्नाः पद्मायाः सखिता गताः ।
 द्रष्टुं रामोयुम्ह्यरिता, कटिक विष्णुं जगत्प्रतिम् १७।
 ताः श्विनयोऽपि समालोषय सप्तृष्यचरणाम्बुजम् ।
 पुनः पृथ्व्य समापन्ना रेपात्नानात्तदाशया । १८।
 पद्माकल्को गोरशृण्णो द्विपरोतान्तरामुभौ ।
 वह्निःशृटो नीलपीन-वामोघ्याजेन पश्यतु । १९।
 दृष्ट्वा प्रभायं बलकेस्तु राज्ञातः परमाहुतम् ।
 प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टुयुः क्षरणापिनः । २०।

पारसी प्रिय पत्नी को प्राप्त कर साधुओं से सहज हुए कल्पिनी
 सिद्धम हीन को प्रेष्ठ रमान दक्ष कर कुछ दिनों तक यही रहे । १६। वा
 राजा स्वोत्त को प्राप्त होकर पद्या की छात्री बन गये थे, वे सभी भगवान्
 बलि के अर्पणार्थ यही स्थिति हुए । १७। वे सभी स्त्रीय को प्राप्त हुए
 राजापण भगवान् के ज्ञान प्राप्त कर उनके चरण स्पर्श करके हुए उनकी
 छात्रा से देवा तवी पर पहुँचे और ज्ञान करते ही पुण्यत्व को प्राप्त हो
 गये । १८। पद्या और बलि और तथा कृष्ण धर्मे वाले हैं । दोनों विपरीत
 बलों के सम्मिश्रण से पद्या के नीचाम्बर और कलि के पीताम्बर द्वारा
 एक ब्रह्म बर्ण प्रकाशित हुआ और परस्पर सम्मिश्रित दिखाई देने लगा
 । १९। कल्पिनी का प्रथम प्रकृत पञ्चम दक्ष कर सभी राजापण
 उनके चरण को प्राप्त होकर भक्तिपूर्वक प्रणाम और स्तुति करने
 लगे । २०।

जय जय निजमायया कल्पिनीशेपकल्पनापरिणाम ।

जलाप्नुतनाशकयथापकरणमाकल्पय मनुमानिशम्य पूरितमवि-
 जनाविजनाविभूतमहामोक्षशरीर । त्व दिव्यकृतधम्मसेतुसर-
 दाणकृतावतार । २१।

पुनरिहदितिज-यन परिलीङ्घत-वासव-मूढनादृत जितत्रिभुवन
 पराक्रम-हिरयाक्षनिघन पृथिव्युद्धरणमकल्प-मिनिवेशेन भृश
 कोलापहार पाहिन । २२।

पुनरिह अक्षि मयनादृत-देवदानवगण-मन्द-। घिलानयनव्या-
 कुसिताना माहाय्येनादृतचित्त- पर्वतोद्धरणामृतप्रसन्नरचना
 वतार कूर्माकार प्रसोद पनेश । त्व दाननृपाणाम् । २३।

हे प्रभो ! आपकी जय है । पारसी ही ब्रह्मना-घरित से सार
 विविध प्रकार से कल्पित हुआ है । अब तीनों लोग प्रथम से स्त्री हो गये,
 अब आपने उनसूत्र स्वयं से प्रकट हुए थे । आपने ही धर्म-हेतु के सर-
 दाण हेतु महावीर (मत्स्य) वह पाण्डु किया था । २१। अब अनुज-सूत्र

से हठ पराजित होने लगे और त्रैलोक्य-विजयी हिरण्यकशिपु हठ से मान में लहर हुआ, तब जाने ही धाराहृष्य धारण कर उषसा धरार कर डाला । ऐसे धार हुआगे रक्षा कीजिये । २२३। अब देखा और श्रेष्ठ होनों ही दिन कर मरुह-मन्दन में लभ्यत हूँ, तब नडागधन धर्म की टिकाये की सम्पदा संपन्न हूँ । नमः सत्य धारने कूर्माक्षर धारण कर धरनी पीठ पर मन्दागधन की टिका लिये । धारणा वह कूर्माक्षर देखागे की पृथ-पथ बनाने के विदे ही हुआ पा । हे परेत ! धार ही हम तीन भागों की रक्षा कीजिये । २२३।

पुनरिह विभुवनवपिनो महाबन्धराक्रमन्त्र हिरण्यकशिपोर-
शिट्ठाना देववराणा मयभाताना कन्धागाय शित्तिनुवषधप्रे-
त्यश्च ह्यणो वरदानादवधन्व न शस्त्राम्भगात्रि दिवास्वर्गम-
स्वगतानवने देवान्धवश्चक्रिन्मनरनागेरिवि विचिन्त्य नर-
हरिरुनेश नासाधनिन्नाह दष्टवन्तच्छुद्र स्यक्तानुं कृत
वानसि । २२४।

पुनारह विभुवनवपिनो वनेः सत्र शकानुजो बहुवामनोदीत्यत्र
माहनाय शिवश्रुमियाश्चाच्छनेन । वरवकापस्तदुत्कृष्ट-बल-
सत्सर्ग-विकृद्धमनाऽभिनापम्भश्च भूति बलेशीवारिकस्वमद्भो-
कृणमुषन दानफलम् । २२५।

पुनरिह हैहयादिनृमालामभिवचनराक्रमणां नानामशोत्त-
द्विपमर्षादावाभवा निघनाय भृनुवशाओ जामशान्यः पितृहो-
मधेनुहरणधनुःसन्धुवशात्रियमहृश्वो निःशत्रियाः पृथिवी कु-
णवानमि परशुरामावतारः । २२६।

दिए अब त्रैलोक्य विजयी, महाबन्धी और पराशरी दिश्टवन्-
वपि देखागे का कर्णोदन बनने लया, तब धारने मयपीठ देखागे के
गणार्थे नमः श्रेष्ठाय का महार चरु का निशचय लिये । इत्यागे के
वर से दैत्य, दैवता पशुके, शिखर, मय, सन्धात्य, शिव, शक्ति, स्वय,

विष्णु प्राप्त कर घन-मन करने और राखण द्वारा मोक्ष का हटाए करने पर आपने धानर सेना को साथ लेकर कुछ सहित राखण को मार डाला । १२७। फिर धान वदुद्रुव जगदि-मवस्तु धनुदेवकी के पुत्र का श्रीकृष्ण हुए और अनेक देव-दानवी को मार कर तीनों लोकों को धान-सुख दिया । इसविषे सभी इतना घातक उर श्रीकृष्ण का के घए कसभी की सेवा में तारत हुए । उगी बात में आपने ही वपुषद्वयी का भी धन-तार धारण किया था । १२८। फिर आपने कृष्ण द्वारा निश्चय वेद-धर्म में अनेक बाधाएँ देव कर मिथ्या प्रपच को नष्ट करने के निमित्त एव प्राकृतिक विषय की अस्मानना न करने के उद्देश्य में बुद्ध का अन्तार दिया । १२९।

अधुना कलिफुलनाजावतारो योद्धात्तडम्ब्लेच्छादीनाञ्चवे-
दधम्मवेतुपरिधानताय कृतावतारः कलिकल्पेत्साहसात् स्त्री-
त्यनिरयादुद्दुष्टमघाननि नवानुकम्पां किमिह कथयामः । १३०।
पर ते प्रह्लादीनामत्रिदित्तादिनासायत्तरण

इय न कामा वासाकुंजनममृगतृष्णाममनसाम् ।

मुद्रात्राप्य मुष्मत्तरण जनज्ञानाकृतमिद

कृपापाशवारः प्रमुदितदृशाश्वासम निजान् । १३१।

एव धान कलिकुन को नष्ट करने तथा योद्धा पापविशेषों और अनेकों पर शासन करने के विषे कलि अन्तार लेकर वेद धर्म को सेतु भी गथा कर रहे हैं । आपने ही स्त्रीएँ को नष्ट में हमारा उदाहर दिया है । इस धानकी बुद्ध कृपा का वर्जन किस प्रकार करें ? १३०। प्रह्लादि देवता भी धारकी भीमा का शत्रुने में समर्थ नहीं हैं । धानका अन्तार विषयक कोई कायना नहीं रहनी । इस स्त्री के देवने ही काम-काय के द्वारा अज्ञान पर मृगलृणा में मन्त्र हृदय धर्म विषयी प्राणियों के विषे धारने उदात्तुओं का वर्जन दुःखाय था । हे अन्तार कृपा पाप सभी ! इस अन्तारविषी की धान धान तब बार अन्तार कृपा बटाए करते हमें धाःदापन दीजिये । १३१।

सोऽप्यनन्तो मुनिवरः शीर्षपादो बृहद्ब्रह्मः ॥६॥
 कल्केदर्शनतो मुक्तिमाकलय्यागतस्त्वरत्न ।
 समागत्य पुनः प्राह किं करिष्यामि कुत्र वा ।
 यास्यामीति यवः श्रुत्वा कल्किः प्राह हस्तमुनिम् ॥७॥
 कृतं दृष्टं त्वमां शातं सर्वं याच्छनिवर्त्मकम् ।
 महृष्टमकृतञ्चेति श्रुत्वा हृष्टमना मुनिः ॥८॥
 गमनायोचत तं तु दृष्ट्वा नृपगणास्ततः ।
 कल्किं कमलपत्राक्षं प्रोचुर्विस्मितचेतसः ॥९॥

(यह गुन कर कल्कि जी ने प्रपन्न मुनि का स्मरण किया) यह
 जान कर महानदनी एव दीर्घ काल से शीर्ष में निवास करने वाले मुनि-
 वर प्रपन्न, कल्किजी के दर्शन से अपनी मुक्ति हमेशा समझ कर पीछे ही
 वहाँ पर उपस्थित हुए । उन्होंने भगवान् कल्कि के दल वाक्य पूछा—
 मुझे क्या करना है ? कहाँ जाना है ? यह गुन कर कल्कि जी हँस कर
 मुनि से बोले ॥६॥ हे मुने ! आपने मेरे सब किये हुए कर्म देखे हैं । महृष्ट
 को कोई पाट नहीं लपटा और कर्म के बिना फल भी नहीं मिल सकता ।
 यह गुन कर मुनि को प्रपन्नता हुई ॥८॥ और फिर जब मुनि वहाँ से
 जाने लगे, तब उन्हें देख कर आश्चर्य घटित हुए राजावण कल्किजी से
 बोले ॥९॥

किमनेनादि कथितश्रवणं वा किमुतसमुत्त ।
 गर्वं तच्छ्रोत्रुमिच्छामः कपोपान्यनं दूयोः ॥१०॥
 नृगणां तदनं श्रुत्वा तानाह मयूसूदनः ।
 पृच्छतामु मुनिं पाम्भ कपोपक्यनादृता ॥११॥
 इतिरुस्केर्वचो भूयः श्रुत्वा ते नृपसत्तमाः ।
 पन्नन्तमातुः प्रणुताः भस्नरारतशीर्षवः ॥१२॥
 मुने । किमप कपन कल्किना पमंवर्मणा ।
 दुर्बोधः वेन वा ब्राह्मस्तत्त्वं यणं व न प्रमो । ॥१३॥

मुझे इस प्रकार का सम्पन्न हुआ देख कर मेरे माता-पिता को
 बड़ा दुःख हुआ । मेरी साकृति निम्ना बोध थी । यह देख कर दुःख, शोक
 और मय से व्याकुल हुए विवाही शिव वन में जाकर धूप, दीप, गंध
 आदि से विधिवत् पूजन करके शिवजी की स्तुति करने लगे । ११६ । १७।
 उन्होंने कहा—हे शिव ! हे शान्त स्वरूप ! प्रायः सब लोको के नाथ
 और भूर्त्तों को धारण स्वामि है । आपके कण्ठ से कामुकी मातृ और बट
 ज्ञान से वन तरण सुशोभित है । प्रायः प्रातः भङ्गर के दाता शिव को मैं
 प्रणाम करता हूँ । ११८। कल्याण के दाता भगवान् पाकर इस स्तौत्र से
 सम्पन्न होकर वृषभाक्ष होकर प्रकट हुए और उन्होंने मेरे पिता को वर
 मागने की आज्ञा दी । ११९। तब मेरे पिता विद्वान् मुनि ने उनसे कहा—हे
 नाथ ! मेरा पुत्र दुःसावहीन है, हमसे मैं अत्यन्त दुःखी हूँ । तब शिवजी ने
 ईश्वर मेरे पुत्र्याय युक्त होने का वर दिया और पार्वतीजी ने भी उनकी
 आज्ञा का अनुमोदन किया । १२०।

मम प॒त्न्ये वर सञ्चया पितायात॑ पुनर्गृ॒हम् ।

प॒श्य मां समा॑लोचय सहर्षः प्रियया सह । १२१।

ततः प॒वयसी॑ तौ तु पित॒रो द्वादशाब्दके ।

विवाह॑ मे कारयिष्या वन्युभिर्मु॑हमापनुः । १२२।

यज्ञरातमु॑ता पत्नी॑ मामिनी ह्यशालिनीम् ।

प्राञ्च्य॑ह परितुष्टात्मा गृह्ण॑स्य, स्त्रीवशी॑ऽभयम् । १२३।

ततः कतिपये॑ काले पित॒रो मे मृ॑तो नृपाः ।

पार॑सीकिकवाप्या॑न्ति सु॒दुर्भिक्षा॑न्निर्वा॒णैर्वृ॑तः । १२४।

तयोः कृ॑त्या विपानेन भोजयित्वा द्विजा॑न्वहन् ।

वि॒त्रो वि॒षो गत॑न्तोऽहं विष्णु॑सेवापरोऽभयम् । १२५।

मेरे पुत्र्य होने का वर प्राप्त कर विवाही घर मोट प्राये और
 तब मुझे पुनःप्राप्त हुए देख कर पारा के सहित ने बड़े सम्पन्न हुए । १२१।
 फिर जब मैं बारह वर्ष का होया, तब उन्होंने वन्यु-व्यापको सहित
 मोह मनाते हुए मेरा विवाह कर दिया । १२२। यज्ञरात को पुत्री को

अपनी भार्या के रूप में प्राप्त करके मैं बड़ा सन्तुष्ट हुआ और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करके तब प्रत्यन्त रूपवती एवं माननी स्त्री के यशोमूत हो गया । २३। फिर कुछ काल बीतने पर मेरे माता-पिता मर गये तब मैंने अपने सुहृदों और ब्राह्मणों के साथ उनका परलोक संस्कार किया । २४। माता-पिता का मृतक संस्कार करके मैंने अनेक ब्राह्मणों को भोजन कराया । फिर उनके विरह से दुःखी होकर मैंने भगवत् विष्णु को पाराधना की । २५।

नुष्टी हरिर्मे भगवाञ्छप पूजादिकर्मभिः ।
 स्वप्ने मामाह मायेय स्नेहमोहविनिर्मिता । २६।
 अथ पितेष मातेति ममताकुलचेतसान् ।
 शोकदुःसंभयोद्भवज्वरामृत्युवधाविका । २७।
 अत्वेति वचन विप्रोः प्रतिवादाद्यमुच्चतम ।
 मामालक्ष्यन्तहितः स विनिद्रोऽह्वयम् । २८।
 सविस्मयः सभाय्योऽह् त्यक्त्वा ता पुरिकां पुरोम्
 पुरुषोत्तमस्य श्रीविष्णोरातवञ्चागमं नृणाः ! । २९।
 तत्रैव दक्षिणे पाद्वे निर्मायाश्रममुत्तमम् ।
 सभाय्यैः सानुगानात्यः करोमि हरिसेवनम् । ३०।

मेरे अप, पूजन आदि कर्म में प्रमत्न हुए भगवान् विष्णु ने एक दिन स्वप्न में मुझसे कहा कि स्नेह, मोह आदि सब मेरी ही माया है । २६। यह मेरे विना है, यह मेरी माता है' ऐसी ममता जिनके चित्त को व्याकुल करती हो तो समझ लो कि इन शोक, दुःख, भय, इष्टेय, वृद्धावस्था और मृत्यु आदि के क्लेश रूप का कारण मेरी माया ही है । २७। भगवान् की वली सुन कर मैं जैसे ही प्रतिवादा करने की हुआ, वैसे ही वे प्रसन्न हो गये और मेरी नींद टूट गई । २८। हे राजाजी ! फिर मैं विस्मय में भर कर पुरिका नामक डब पुरी को छोड़ कर अपनी पत्नी के सहित पुरुषोत्तम संज्ञक विष्णुधाम में जा पहुँचा । २९। सब पुरुषोत्तम धाम के

दक्षिण भाग में श्रेष्ठ धातुम बनाकर मैं कानी पत्नी पोर धनुष विषों के
गहिन हृदि-सेवा में तत्पर हो गया ॥३०॥

मायासदृशनाकीट् क्षी हृदिमद्मनि मस्थितः ।
 ज्ञानानुपेक्ष्यपनाम निस्तयच्छमनापहम् ॥३१॥
 मय कृते द्वादशारे द्वादश्यां पारणादिने ।
 म्नानुवाग- मसद्रेह्य बन्धुनि, गहिनो मन ॥३२॥
 तत्र मान जन्निघो लहृगोत्तानगपुत्रे ।
 ममृथानुमनवन मां प्रतुदन्ति जनेवरा ॥३३॥
 निमज्जना मज्जनेन अवाकृषा कृतपेनमम् ।
 जलहृन्तोषमित्तनदनिमःक्ष्मसचेनमम् ॥३४॥
 जलधेदक्षिण कूले पतित पवनगितम् ।
 मा तत्र पतित दृष्ट्या वृद्धनर्मा द्विजात्तम ॥३५॥
 मन्ध्यामुताम्य मपृण स्वपुर मा ममानयत् ।
 ग वृद्धनर्मा धर्माभा पुत्रदार्यनान्वितः ।
 कृश्यादमगानु मां तत्र पुत्रवर्यपानवत् ॥३६॥

जगत्पुत्र के उम पाप से रहना हुआ प्रभु माया का दर्शन करने
 की वाचना गी में हुआ, तावक तथा त्रय पूर्वक वम वा मय दूर करने
 वाले जगत्पुत्र विष्णु का ध्यान करने लगा ॥३१॥ इस प्रकार द्वादश वर्ष
 की थी ॥ एक दिन द्वादशी का पारण था, तब ही ज्ञान जाने के
 दिशा में जाने वापुषी गहिन मसृ के लठ पर पहुँचा ॥३२॥ जंग ही
 गोना पनाया, जैसे ही मैं मसृट को मवदर तरगगति से दशाहृत ही
 गया । मुझसे बहुत ही लक्षि मही रही । तभी अवधम भीव मुझे लक्षिण
 करने लगे ॥३३॥ मैं कभी उद्वेगता था, कभी दुःखता, इमसेपेरा विना रहा
 दशाहृत हुआ । तब ही लक्षों के लीहों के निमित्त धर्म हुआ मैं धर्म
 ही गया ॥३४॥ फिर मैं वापु की शिवांग से बना हुआ मसृट के दक्षिण
 दिशा में पर मय गया । मुझे अनेक धाना में पहा देन पर मसृट लक्षि

नामक एक ब्राह्मण सम्प्रदायसे निवृत्त हो कर मुझे अपने घर ले गये । स्त्री वृथादि से युक्त, धनवान् एव यमार्त्मा बृद्ध शर्मा मुझे स्वस्थ करके पुत्र के समान पालने लगे ॥३५-३६॥

अहन्तु तत्र दीनात्मा दिग्देशाभिज्ञ एव न ।
 दम्पती तौ स्वपितरौ भत्वा तत्रावसं नृपाः ।३७।
 स मां विज्ञाय बहुधा वेदधर्मोऽबनुष्ठितम् ।
 प्रददोस्वां दुहितरं विवाहे विनयान्वितः ।३८।
 लब्ध्वा चामीकराकारा रूपणीसगुणान्विता ।
 नाम्ना चारुमती तत्र मानिनी विस्मितोऽभवम् ।३९।
 तथाह पश्चिष्टात्मा तानाभोगसुखान्वितः ।
 जनयित्स्व पञ्चपुत्रान्समदेनावृतोऽभवम् ॥४०॥

हे राजाधो ! उस स्थान पर रहते हुए मुझे दिशा घोर देश का भी ज्ञान न रहा, इसलिये दुःखित हृदय से उन ब्राह्मण दम्पति को ही अपना माता-पिता मानता हुआ, वहीं रहने लगा । ३७। उन ब्राह्मण ने मुझे सब प्रकार से वेद-धर्म का अनुष्ठानता जान कर विनय पूर्वक अपनी कन्या का हाथ कर दिया । ३८। उस लड़की स्वर्ण अंग्रे यर्ण वाली, रूप, शील और गुण से युक्त कन्या का नाम चारुमती था । उस मानिनी की सार्ध रूप ने प्राप्त का मैं विस्मय में पड़ गया । ३९। चारुमती ने मुझे सेवा द्वारा सदा सतुष्ट रखा और मैं उसके साथ विभिन्न प्रकार के सुखों का उभोग करने लगा । उससे मेरे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए और निरन्तर मेरे सुख की वृद्धि होने लगी । ४०।

जयश्च विजयश्चैव कमलो विमलस्तथा ।
 बुध इत्यादयः पंच विदितास्तनया मम ।४१।
 न्स्वजनैर्वेन्दुभिः पृथैर्जनैर्नानाविधैरहम् ।
 यिदितः पूजितो लोके देवैरिन्द्रो यथा दिवि ।४२।
 बुधस्य ज्येष्ठपुत्रस्य विधाहार्यं समुद्यतम् ।

दृष्ट्वा द्विजवरस्तुष्टो घर्मसारे निर्जा सुताम् ।४३।

दिरगु. कर्माणि वेदज्ञश्चकाराम्पुदयान्यपि ।

वाद्यं गीतंश्च नृत्यंश्च स्त्रीगणैः स्वर्णभूपतैः ।४४।

घट्टं च पुत्राम्पुदये पितृदेवधितर्पणम् ।

कर्तुं स मुद्रवेलायां प्रविष्टः पद्मादरात् ।४५।

मेरे वाँव पुत्र जब, विषय, कमल, विमल, घोर बुध शयादि नामों से जाने गये ।४३। मैं स्वर्णों घोर पुत्री से मुक्त तथा विविध प्रकार के धनों का स्वामी होकर इ इ के समान पूजनीय तथा प्रसिद्ध होगया ।४४। जब मैंने अपने जेष्ठ पुत्र बुध का विवाह करने का विचार किया तब घर्मशास्त्र नामक एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या देने की इच्छा प्रकट की । फिर लगने अपनी कन्या का वैवाहिक सम्कार करने के लिए वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुला कर साम्पुदयादि कर्म को पूरा कराया । उस समय गणान्भुवणों से विभूषित स्त्रियों वाद्य, गीत घोर नृत्य कर रही थी- ।४३-४४। तब मैं भी पुत्र के सम्पद की अभिलाषा करके विषय, देवता घोर श्रुषियों का तर्पण करने के लिए समुद्र के किनारे गया ।४५।

वेतासोवापिततनुजलादुरधाय सत्वरः ।

क्षीरे सधोन्स्नानसन्ध्या-परान्वीट्याहमुन्मनाः ।४६।

सद्यः समभय भूया । द्वादश्यां पारणाहृतान् ।

पुरुषोत्तमसखासांनिध्यं मेवार्थमुद्यतान् ॥४७॥

तेषां मामद्यत्. कृत्वा तद्रूपवयसा निधिम् ।

विस्मया विष्टमनस दृष्ट्वा ॥ मामद्यत् उज्रनाः ।४८।

धनन्त ! विष्णु मत्कार्षस जने किं दृष्टयानिह ।

स्यते या व्यसमनस सक्षयामः कथं हव ।४६।

पारणं कुरु तद्गृहि स्वयंया विस्मयमात्मनः ।

तानदृशमह नैव विञ्चितदृष्ट्युत्त जनाः ।४७।

कामात्मा तामृपण्योर्माया सन्दर्शनादृतः ।

तथा हरेर्माययाहं मूढो व्याकुलितेन्द्रियः ॥११॥

जब मैं स्नान — तपस्यादि से निवृत्त होकर जल से तिरछ कर तट की ओर बना, तभी देखता हूँ कि मेरे पहिने के सभी बंधु बांधव सन्ध्यादि कर्म कर रहे हैं। यह देख कर मेरा मन उद्विग्न हो उठा ॥१६॥ हे राधाशो ! पुष्पोत्तम धाम में रहने वाले उन शाह्याणों को भगवान् विष्णु की सेवा एवं दादली के पारख में तस्कर देख कर मैं चकित हुआ ॥१७॥ मेरे रूप पीर वय में पहिले से कुछ भी परिवर्तन न हुआ देख कर और मुझे विस्मयपूर्वक बनने को देखता देख कर उन्होंने कहा ॥१८॥ हे धनन्त ! तुम विष्णु-भक्त हो। क्या तुमने ब्रह्म भयवा; स्वप्न में कही कुछ ऐसा दृश्य देखा है, जिससे इतने व्यग्रचित्त दिखाई दे रहे हो। ॥१९॥ यदि कुछ देखा हो तो ब्रह्मसे और विरमय को छोड़ कर पारण करो। यह सुन कर मैंने कहा— मैंने कही कुछ भी नहीं देखा-सुना। परन्तु मैं काय से मोहित होकर दुर्बल हृदय हो गया हूँ। मैं भगवान् श्रीहरि की भावा से ही विभूत पीर व्याकुल इन्द्रिय वाला हो रहा हूँ ॥२०-२१॥

त शर्मं वेद्मि कुत्रापि स्नेहमोहवशां गतः ।

प्रात्मनो विस्मृतिरियं को वेद विदितां तु ताम् ॥२२॥

इति भाट्ट्या घनागान्-पुत्रोद्वाहानुरक्तधीः ।

धनरजोऽहं दोनमना न जाने स्वल्पसम्मितम् ॥२३॥

मां बोध्य मानिनो भाट्ट्या विवशं मूढवस्थितम् ।

कन्दमती किमहोऽकस्मादालयन्ती ममान्तिके ॥२४॥

इह तां बोध्य तास्तत्र स्मृत्वा कातरमानसम् ।

हसोऽप्येको बोधयितुमागतो मां सर्दुक्तिभिः ॥२५॥

घोरो विदितसर्वायंः पूर्णः परमधर्मवित् ॥२६॥

सूर्यकार तत्त्वसार प्रदातु दान्त शुद्ध लोकलोकलपि-

पणम् । ममाग्रे त पूजयित्वा मदङ्गाः पप्रच्छन्ते मच्छ्रमध्या-

नकामाः ॥२७॥

मैं स्नेह और मोह के बन्धो मूढ होकर घातविष्णुति को प्राप्ता हुआ हूँ, परन्तु इस बात को कौन जानता है ? १५२। इस प्रकार मैं भार्या, धन के महार और पुत्र के विवाहादि से पराश्रित धनुरक्त शोक और दुःख से पुञ्ज हो गया। मैं सोचने लगा कि मैं धनगत कौन हूँ ? परन्तु कुछ भी नहीं सम्झ पाया । सभी विषय स्थान के समान लगने लगे १५३। सभी मेरी मानिनी पत्नी मुझे उस विषय और मूढ के समान व्यवस्था से देख कर मेरे पास आकर रोती हुई चिस्नाने लगी कि हा, यह क्या हुआ । १५४। वही धपती पूर्व भार्या को इस प्रकार देखा कर और फिर उन स्त्री-पुरुषों का स्मरण करके परबन्ध बाहर हृदय तथा समस्त हो उठा । सभी एक और, सर्वज्ञानी, पूर्ण धनगत सूर्य के समान तेजस्वी, सशोमुखी, सैन्य मूढ तथा समार-शोक का नाश करने में समर्थ परमहंस मुझे ज्ञान देने के निमित्त वहाँ पधारे । सभी मेरे बापवों ने उनका पूजन किया और मेरे कल्याण का उपाय पूछने लगे १५५-१७।

पंचम अध्याय

उपविष्टे तदा हसे भिक्षां कृत्वा ययोविताम् ।
 ततः प्राहुरनन्तस्य शरीररोग्यकाम्थया ।१।
 हसस्तेषां मतं ज्ञात्वा प्राह मां पुरतः स्थितम् ।
 तव चाक्षमती भार्या पुत्रः पंच बुधादयः ।२।
 धनरत्नन्वित सद्मा सम्बाध सौख्यसकुलम् ।
 त्यक्त्वा कदागतोऽग्नीह पुत्रोद्वाहदिने न तु ।३।
 समुद्रतोरसन्चारः पुराद्धम्मंजनादृतः ।
 निमन्थ मामिहायातः शोकसविग्नमानसः ।४।
 स्वह्य सप्तृतिवर्षीयस्तत्र दृष्टो मया प्रभो ! ।
 त्रिशद्वर्षीयवत्कस्मादिति मे संभ्रमो महान् ।५।

सूनाजी बोले — यथोचित भिक्षा प्राप्त करके परमहंस जब
 विश्रान्तवान हुए, तब बुधशोरन शीर्ष के निशानिर्शे ने लवने पूछा कि
 धन-रत्न का शरीर रोग-रहित कब होगा ? ।१। परमहंस उनके प्रश्न का
 तत्पर्य जान कर और मुझे धरने सवज्ञ स्थित देव कर बोले — हे
 मन्त ! तुम अपनी पत्नी चाक्षमती, बुधादि पार्ष्णी पुत्र धन-रत्नादि से
 युक्त भवन आदि को त्याग कर यहाँ कब आये ? क्या आज तुम्हारे
 पुत्र का दिवाह-दिन है ? ।२-३। मैं आज भी तुम्हें इस समुद्र तट पर
 घूमते देखता हूँ । वहाँ के सभी धार्मिक व्यक्ति तुम्हारा आदर करते हैं ।
 मैं भी आज निमन्त्रित हूँ । परन्तु तुम यहाँ आकर शोक से सन्तप्त होरहे
 दिखाने देते हो ।४। हे प्रभो ! वहाँ तो तुम सत्तर वर्ष के बृद्ध थे, परन्तु

यहाँ तीस वर्ष के बुरक कैसे दिखाई दे रहे हैं ? १५।

इय भार्या सहाया ते न तन्नालोकिता क्वचिद् ।

सह या क्व कुतस्तस्मात्त्वथ वा काशितः ॥६।

स एव वा न द्यापि त्व नाह वा भिक्षुरेव सः ।

प्रावयोऽरह स योगदेन्द्रजात इवाभवत् ॥७।

त्व गृहस्थः स्वधम्मंता भिक्षुकोऽह परात्मकः ।

प्रावयोऽरिह स्रवःसो वातयोन्मत्तयोरिव !८।

तस्मादीदम्य मायेव त्रिजन्मोहकारिणी ।

ज्ञानाप्राप्याद्वैतलभ्या मन्येहमिति भा द्विज ! ॥९।

तुम्हारे इन महाविषा भार्या को मैंने बहुत कभी भी नहीं देखा । मैं भी यह नहीं जानता कि मैं इस स्थान पर कहीं से घोर किस प्रकार का क्या ? तथा तुम्हें यहाँ कौन साया है ? ॥६॥ क्या तुम वही प्रजापति हो या घोर कोई हो ? मैं भी वही भिक्षुक हूँ या कोई अन्य हूँ ? यही मेरा तुम्हारा मिलन जो इन्द्रजात के समान ही प्रतीत होता है ॥७॥ तुम अन्तः परम का वास्तव करने वाले गृहस्थ हो और मैं परमार्थ चिन्तक भिक्षुक । यहाँ हम तुम दोनों का पारस्परिक संबंध एक बालक और उन्मत्त के संबंध के समान निरर्थक है ॥८॥ हे द्विज ! हमने मैं समझता हूँ कि यह भगवान् को प्रेम रूप जोड़ने का माया है । इस माया का रहस्य साधारण ज्ञान से नहीं, पर्यन्त बुद्धि से ही समझा जा सकता है ॥९॥

इति भिक्षु समाश्राय्य यदन्वेषाह विस्मितः ।

माहं गेय ! महाभाग ! भविष्य कथयामि ते ॥१०।

प्रतये या त्वया दृष्टा पुरपस्योऽदाम्भसि ।

सा माया मोहत्रनिषा वन्द्यानें यस्मिन्ना यथा ॥११।

ततोऽप्य रत्नमन्थाया मोहनोत्तमधरो

ययेदमगिन सोऽममृत्वा धरुपयाम्भितम् ॥१२।

सये सोनें त्रिजगति शक्तान्मावर्तां गतः ।

निदरायो निरासोके सिगृशुरमथत् परः ॥१३।

गावो यथा नस्ति प्रोक्ता दुर्णवद्धाः सगा इव ।१६।

ता मायां नुराणमन्त्रां ये त्रितीर्षन्ति मुनीवराः ! ।

लवन्ती वासनामत्रां स एषाद्यदितो भुवि ।१७।

यहंकार में प्रथम त्रिगुणात्मक प्रवचनकाय प्रकट हुआ । पंचदशमात्र से प्रवचनहोम हुआ । इस प्रकार प्रकृति में पुरुष के अधिष्ठान करने से ही सृष्टि का उदय होना है ।१६। फिर देवा, दानव, मनुष्य तथा आशान्ज जीव प्रदीप्त होने से अग्नि सेने जाने और मरणाशयी प्राणी हैं, वे सब लवन्त होते हैं ।१७। ईश्वर की पाश के बल में पड़े रहने से सभी जीव सांसारिक कार्यों में विलस रहे जाने हैं तथा अवन बद्धार का अमान नहीं कर पाते ।१८। अहो, यह पाश कैसी बलवती है, जिसके बल में ब्रह्मादि देवता भी नाथे हुए बंज और डोरी से बांधे हुए पक्षी के समान नाथने लगते हैं ।१९। जो मुनिवर इस प्रकार के कामना कवी नरु की उत्पत्ति-त्री नुराणमी माया से मुक्त होने का उपाय करते हैं, उन्हीं ज्ञानियों का जन्म साधक समझो ।२०।

मार्कण्डेयो वसिष्ठश्च वामदेवादयोऽपरे ।

श्रुत्वा नुरुवचो भूय विमाहुः श्रयणादृताः ।२१।

नदानोऽत्मनश्चनमिति श्रुत्वा नुराणमम् ।

किं वा प्राहृग्हो मून ! भविष्यन्निह वर्णय ।२२।

इति सद्ब्रुव प्राप्सुस्य मूनः परहृरय स पुनः ।

कथयामास कस्तस्म्येत मोरमोहविषाणकम् ।२३।

तमानन्तो भूयगणैः पृष्ट श्राहृ कृतादरः ।

तपसा मोहनिघनमिन्द्रियाणाञ्च निग्रहम् ।२४।

घनोऽश्चनमामाद्य तन कृश विघानतः ।

नेन्द्रियाणां न मनसो निग्रहोऽभूत्कदाचन ।२५।

दीनक बोले— हे ब्रह्मन् ! मार्कण्डेय, वसिष्ठ, वामदेव तथा आशान्ज मुनिवों ने परमहंस के बचन सुन कर क्या कहा था ? तथा अग्न के १७ उपदेशों को सुनने जाने पाशाओं ने आशु के मुँह से पशा

हे अशुभ ! हृदय दिशा, वात, प्रवेजा, पश्चिम, पश्चिम, पश्चिम, पश्चिम, उरग्रे, धीर
मित्र देवता हैं । ३०।

इन्द्रियाणी वचं देवात्तव श्रेहे प्रतिष्ठिता ।

नव्यान्नाकाण्डनभिन्नाचारमान्नुमिहगर्हन्ति । ३१।

न श्रयो हि तवानन् ! मनोनिग्रहकर्मणि ।

क्षेत्रे भेदनेऽस्माक निम्नमर्णा मरिष्यमि । ३२।

अन्यानां वधिराणां च विरुन्नेन्द्रियजीविनाम् ।

वनेऽपि दिव्यव्यग्र मानस लक्षयामहे । ३३।

जोवत्स्यापि गृहस्पस्य देहो गेह मनोजुगः ।

बुद्धिर्माया तदनुगा वयमिःश्वपारय । ३४।

कर्मायत्तस्य जोवस्य मनो वन्धविमुक्तिवृत् ।

समारयति सुखस्य ब्रह्मणो यम्य मायया । ३५।

हृदय इन्द्रियों के अधिष्ठित हृदयण तुम्हारे देह में स्थित है ।

हृदयों तथापि वे दिव्य-विन्न कर्तव्य कर्षणा अनुष्ठित हैं । ३१। इस प्रकार

मन को वचन कानों के प्रत्यक्ष से तुम्हारा वचन ही होगा । इन्द्रियों

के क्षेत्र-भेदन से नमोत्पन्न अहंता ही आत्मा ही तुम्हारे मृत्यु ही आत्मा

। ३२। अन्ते, बहरे अथवा विरुन्नेन्द्रियों वाले जीव भी निर्जन वन में

वाम करने हुए विदशमक्त शिखाई देने हैं । ३३। जोव हवी गृहस्प का पर

पट देह ही है तथा मन ही अनुगत बुद्धि ही इनको माया है । इन

प्रकार हम सबी सह बुद्धि करी माया के ही अनुगत रहने हैं । ३४।

मभी जीव करने कर्म के वचन से हैं । जोश धीर बधन या वास्तव मन है ।

अनु-माया वा अनुगत हृदय मन ही हम से मुक्त अणुओं को धरधर में

कामना रहना है । ३५।

तत्तमान्मनोनिग्रहाद्यं विष्णुमक्ति समाचरा ।

गुणमोक्षप्रदा नित्य दाहिरा सर्ववमंशाम् । ३६।

द्वैतार्थप्रदानेन न्योहा हरिमक्तिवा ।

रिषकस्या जीवकोष-विनाशान्ते महामते । ३७।

मुनिवर धनञ्जय के इन वचनों को सुन कर राजापो ने भी उनके ही समान
 यज्ञादि का अनुष्ठान किया और पद्मा सहित भगवान् कल्कि का पूजन
 करके निर्वाण-पदभी को प्राप्त हुए । ४२। युद्ध बीमा—धनञ्जय की इन
 कथा के पढ़ने से अज्ञान रूपी अंधकार दूर होता तथा मर-पाप से छुट-
 कारा होकर सत्कार-वचन से मोक्ष की प्राप्ति होती है । ४३। जो अर्थात्
 पुण्य विष्णु की सेवा अत्यन्त रह कर भी वासना अन्तित अवसिन्धु में गीने
 सगान रहते हैं, वे इस प्रसंग के द्वारा अभेद-ज्ञान स्वरूप अत्यन्तित हुई
 मोक्षरूप अन्तार को प्राप्त करके, हरि-मूर्ति रूपी दुर्ग के आश्रय में विपण
 हो काम, क्रोध, मोह, मद और मात्सर्य रूप अनेक छ मोक्षरूपों पर
 विषय प्राप्त कर लेते हैं । ४४।

पयंपरि तापघ्नवात्तापमनोहरान् ।६।

नानावनलतोद्यानसरोवापीगुणोभितः ।

सम्मलश्यामवस्करकेपंभेन्द्रस्यामरावती ।७।

कल्किस्तु विह्वलाद्दोषाद्बहिः सेनागणंवृतं ।

स्यसत्वा कास्मती कूले पापधेरकरोस्थितम् ।८।

मृहद्वस्तु कौमुद्या सहितं स्नेहकातरः ।

पद्मया सहितापार्ष्णं पद्मनाथाय विष्णवे ।९।

दशो गजानामयुत सप्त मूल्यञ्च धाजिनाम् ।

रथानाञ्च द्विमाह्वय दामीना द्वे सत्ता मुदा ।१०।

दत्त्वा दासामि रत्नानि भक्तिस्नेहाश्रुनोषणः ।

तयोर्मुंशालोकनेन नाशवत्किददीरितुम् ।११।

हय, गिरु, गरुड आदि की साकृति में युक्त घनेक प्रकार के गृह बनाये गये । घनेक घरनों में कई-कई मजिन बनाई गईं और गर्भों का तार ज्ञान करने के लिए मनोहर वा प्रपन्न विविध शिबे गये ।६। विविध प्रकार के वन, सजायीं से युक्त उद्यान, सरोवर और वायदो आदि में समन्वित होने के कारण वह सम्मन क्षाम समरावती के समान घोषा पाने लगा ।७। इतर मनवान कल्कि सेना के सहित विह्वल हीन की का- मनी मगी से निहवन कर मयुद तट पर आये ।८। घनेकी रानी कौमुदी के नाव गवा मृहद्व स्नेह म कातर हो गया और रगने पद्मया सहित पद्मनाथ को दश हजार हाथी, एक लाख घोड़े, दो हजार गध, दो गो दासियां और विविध प्रकार के वाय-गनादि वस्त्र सहित शिबे और दासियों में स्नेह के आश्रु मर कर घनेकी पुत्री और जासना की घनक देखने लगे ।९-११।

महाविष्णुदम्नो तो प्रस्थाप्य पुनरागतौ ।

पूजितौ कल्किनघाम्ना निरुकादमनी पुरीम् ।१२।

कल्किन्मु अमपेरमो विनाश पतना पथे ।

पारं त्रिगभिषु दृष्ट्वा अम्युक स्तम्भिताऽपवत् ।१३।

जनसम्पन्नमयासौव्य कल्कि, सवत्सवाहन ।

प्रययौ पद्मनां गजेरुगि श्रीनिकेतन, ।१४।

गत्वा पारं धुक प्राह दाहि मे शम्भुसालयम् ।१५।

किर गदा कृद्व्य ने अपनी पुत्री धीर कामाश का पूजन कर उन्हें विदा दिये धीर स्वयं अपनी काहवनी नगरी में बीट गया ।१२। फिर कल्कि ने सेना के महिन समुद्र के त्रय में स्नान किया धीर तभी वहाँ एक शू गान उस शक्तिन हुए जन पर होता हुआ पार चला गया ।१६। जब कल्कि को वस को इस प्रकार स्तमित हुआ देखा ता वे अपनी सेना धीर बाहुनादि के महिन समुद्र के त्रय पर चलते हुए पार हो गए ।१७। मरु के पार पहुँच कर उन्होंने धुक के प्रति कहा—हू तुम्हें । तुम सम्भुम ग्राम स्थित मेरे धर पर आना ।१८।

विद्वकर्मकृत यद् देवराजाश्रया बहु ।

सद्मन् मन्वाचममल मत्पिपार्थ सुजांजनम् ।१६।

तथापि पित्रोऽदितां स्वमित् शू या यदोचितम् ।

यदगाङ्ग । विवाहादि सर्वं वषन्तु त्वमहति ।१७।

पञ्चाशामि इतरत्वंकंस्त्वमाधौ दाहि शम्भुम् ।१८।

कृत्स्नैर्बधनमाकर्ष्य कोशे धीरःस्ततो यधौ ।

प्राजागमाधौ सर्वतः शम्भुस्य सुरपूजितम् ।१९।

सप्तदशेवनविस्तोरीं चातुर्धर्ष्यजनाकुलम् ।

सूर्योऽग्निपृथ्वीकाश पृसादयतनोमितम् ।२०।

देवराज इष्ट की प्राता से मेरा प्रिय करने के लिए वहाँ विद्व-
कर्म ने अपनेको छोड़ा सम्भुम यवनो का निर्वाण किया है ।१६। तुम
वहाँ आकर मेरे दाता-दिया धीर आति बन्धुओं को मेरा कुशल समाचार
देना विवाहादि का प्रदण उन्हें बताना ।१७। तुम धार्ये-धार्ये सम्भुम ग्राम
पहुँचो, मैं भी सेना सहित पीछे पीछे जा रहा हूँ ।१८। कल्कि को वधन
सुन कर वह धीर धुक यात्राग मार्ग से होकर हुआ शीघ्र ही सम्भुम ग्राम

में जा पहुँचा । ११६। सात घोड़न विस्तार वाले उस सम्मल घाम में
चारों बगों निवास करते हैं । वही सुय किरणों के समान चमकमाते हुए
सँहते प्रासाद सुनोमित है । १२०।

सर्वेभुंसुखद रम्यं सम्मल विह्वलोज्ज्वलत् । १२१।

गृहाद्गृहान्तर दृष्ट्वा पामादिनि चाम्बरम् ।

यनाद्वयनातर तत्र वृक्षाद्वृक्षान्तर प्रजन् । १२२।

सुकः स दिग्गुणशतः सदन मुदितोऽप्यजत् ।

त गत्वा रुचिरालापं कथयित्वा प्रिया कथाः । १२३।

बल्केरागमने प्राह मिहलात्पद्मया सह । १२४।

तनस्त्वरनिशगुणशा समानार्थप्रजाजनान् ।

विद्यास्यसूयमूपात् कथयामास हृषितः । १२५।

सब ऋषियों में समान सुय देने वाले सुरक्षित सम्भव घाम को
देखते ही विह्वल हुए सब ने उसमें प्रवेश किया । यह वहाँ एक घर में
दुनरे में, प्रासाद के प्रांगे से आवाज में, एक उद्यान से अन्य उद्यान में
तथा एक वृक्ष से दुनरे वृक्ष पर विचरने लगा । १२१-१२२ इस प्रकार हृषि-
विह्वल नुक दिग्गुणशरी के घर में जाकर घरनी सपुत्र बाली में उन्ही
गम्भीर शिव क्या सुनाने लगा । १२३। तथा १२४। के सृष्टि यवदात् कहिक
के आगमन का समाचार सुनाया । १२५। यह सुनते ही विष्णुपति हृषि में
पुनरित हो उठे पीट उन्हीने विद्यास्यसूय-नरेत् प्रादि राशियों घोर
प्रवाजनों को बहुत सब समाचार सुना दिया । १२५।

स राष्ट्र मात्स्यामात् पुर-धामादि मण्डितम् ।

स्वर्णकुम्भं सदम्भोभिः पूरितं स्वन्दनोत्थितः । १२६।

कालागुरुमुग्न्याद्यैर्द्रोपलाजोद्गराद्यतैः ।

कुमुभैः सुकुमारैश्च रम्भा-भूग-कन्यान्वितः ।

सुगुणैः सम्मलपापौ विबुधाना मनोहर । १२७।

त कहिक, प्राविशद्भीम-तेनायल-विषहाण ।

काशिनो-नयमानन्दमन्दिरांग कृपानिधि । १२५।

पद्मया सहित पित्रो पदयो. प्रकृतोऽपत्तत् ।

सुमतिमुद्रिता पृथ स्तुषा शर्कं शचीमिव ।

दृष्टो त्वमगवत्या पूर्णकामा दिहि सती ॥१२६॥

इस विनामदूर-नरेश ने चन्दन युक्त बल की स्वर्णकनका में भरवा कर नगर छोड़ ग्राम में सबसे छिबनास कराया ॥१२६॥ उस समय वह सफरल ग्राम दीपमान, पुष्पो, शरक खादि सुवर्षित इच्छो, कदली, पुंणीकष, मधीन विसनय, धसत तथा शम्बून खादि से समन्वित होकर इशताप्रो की पुरो के गजन मनोरु दिमाई बेने सवा ॥१२७॥ इमी समय पर शिवयो के देवो को शानन्द देने वाले बगवान् कल्कि अपनी सेवा खादि के सहित ग्राम मे प्रविष्ट हुए ॥१२८॥ मगरान् कल्कि ने पद्मया के सहित अपने भाला विष्णु के चरणो में प्रक्षाम विषा । जैसे इष्ट छोड़ दानी को प्रणाम करते दस कर दिशि का शानन्द हुआ वा, जैसे हो सुमति भा अपने पुत्र छोड़ पुत्रवधू को देव कर पुर्ण मनोरथ एव प्राप्त हयित हुई ॥१२९॥

सुभसलग्राम नगरो पत्ताका ध्वज शानिनी ।

भवरोधसुजघना प्रासादविपुलस्तनी ।

मदूरशुभका हस-सघहारमनोहरा ॥३०॥

पटवासोद्योतपूमवमना कोकिलस्वना ।

सहासगोपुरमुखो वामनेत्रा धर्यागना ।

कल्कि पति गुणवतो प्राप्य रेजे तमीश्वरम् ॥३१॥

स रेमे पद्मया तत्र वर्षपूगानजाधय ।

दाम्मले विह्वलाकार कल्कि. वस्कविनाशन. ॥३२॥

कवे. पत्नी कामकना सुपुये परभेडिनी ।

वृहत्कीर्तिवृहद्ब्राह्म महाबल पराक्रमो ॥३३॥

पु न य तन्मतिर्माया तस्या पुत्री धमूवतु ।

यज्ञविज्ञो सर्वलोकपूजितो विजितेन्द्रियो ॥३४॥
 सुमन्त्रकस्तु मालिन्या जनयामास सासनम् ।
 वेगवान्शुभ्य साधूनां ह्यभेताचुरकारको ॥३५॥

सम्भव राम नामक वह नगरी ध्वजा पताका से युक्त उन्नत
 माशरी बाली, मयूर, हमादि से सुसोभिता, सुगन्ध-धूम-धतना कोकिल
 के समान सपुष्पासव युक्त तथा बालिनी के समान सर्व प्रकार राशो हुई
 थी । यह कल्किजी की पति रूप से प्राप्त कर परशु-त गोधासयो हो गई
 ।३०-३१। ये अश्वत्था, सर्वाश्रय रूप एव बलि-विनागरु कल्किजी अनेक
 वर्ष तक सम्भव से रह कर पद्मा के साथ बिहार करते रहे ।३२। तद-
 नन्तर कवि की परती कामवसा ने दो पुत्र उत्पन्न किये जिनके नाम
 वृष्टागोविं और वृष्टबाहु हुए । यह दोनों अश्वत्था बली और पशुक्रमी के
 १५ भाग की माया सुपति ने जितेन्द्रिय और सर्वज्ञक पूजित यज्ञ और
 बिज्ञ नामक दो पुत्र उत्पन्न किये ।३४। सुपति की पत्नी मालिनी ने
 सासन और वेगवान् नामक दो पुत्रों को जन्म दिया । यह दोनों साधुबली
 का उपहार करने वाले हुए ।३५।

सद्वीर्य कल्किरश्च पद्मयाया जयो विजय एव च ।

द्वौ पुत्रौ जनयामास लोकरुमातो महाबली ॥३६॥

एतौ परितृप्तोऽपार्यैः सर्वसम्पन्नापन्नितौ ।

याजिमेषविधानार्थं मुद्यत पितर प्रभुः ॥३७॥

समीक्ष्य कल्किं प्रोवाच रितामहृनिषेश्वररः ।

दिशां पासान्विजिरयाह घनान्य-हृत इत्युत ।३८॥

कारविध्याम्यास्वमेघं यामि दिग्भिर्जघदाय भो । ॥३९॥

इति प्रणम्य तं श्रोत्वा कल्किं पटपुरञ्जयः ।

सैनागणैः परितृप्तः प्रययौ कीर्णट पुरम् ॥४०॥

कल्किजी की पत्नी पद्मा ने अश्व, श्वमेघ नामक दो पुत्र प्रपन्न
 किये । यह दोनों महाबली तीनों बली में प्रसिद्ध हुए ।३६। एक प्रकार
 जनता परितार पुत्रवान् और सर्व देवसेवक गण न हो गया । फिर कल्कि

जी ने अपने पिता को प्रथमोप यज्ञ के अनुष्ठान में ब्रह्माची के समान तारा देकर कहा — हे पिताजी ! मैं दिक्पालों को चोल कर बन एकर करूँगा, जिससे आपका प्रथमोप यज्ञ सम्पन्न होगा । अब मैं दिग्विजय के लिए प्रस्थान करता हूँ । ३७-३९। शत्रु पुर पर विजय प्राप्त करने आये कल्किजी ने यह कह कर प्रमन्नतापूर्वक अपने पिता को प्रणाम किया और सेना को साथ लेकर शीकटपुर की ओर चल दिये । ४०।

बुद्धालय सुविपुर्न वेदधर्मवहिकृतम् ।

शिवुदेवार्चनाहीन परलोकविलोपकम् । ४१।

देहात्मावाद्भवतु कुलजातिविवर्जितम् ।

घनं श्रोभिर्भक्ष्यभोज्यं स्वपराभेददर्शितम् । ४२।

नानाजनै ररिवृत्त पानभोजनतत्परं । ४३।

श्रुत्वा जितो निजगणं कल्केरागमन ऋषा ।

अक्षीहिशीम्या सहितः सवन्धु पुराद्बहिः । ४४।

गजपतुर्गणै र्ममाचिता भू कनक विभूषणमूपितं वराङ्गैः ।

घत शतरथिभिर्भृतास्त्रशस्त्रैः । ध्वजपटराजि-

निवारितात्पर्वमौ सा ॥ ४५ ॥

अपन्न विचार वाला शीकटपुर बीड़ों का निराम स्वार था । वहाँ रहने वाले व्यक्ति वैदिक धर्म तथा देवता और पितरा के प्रथम में हीन और परलोक के न मानने वाले थे । ४१। यह सोच देहात्मवादी, कुल धर्म और जाति धर्म के न मानने वाले तथा घन, स्त्री और मीन-वादि के प्रभेद देखने वाले थे । ४२। काम एव भोजन में ही व्यस्त रहने वाले विविध प्रकार के अनुष्ठा में ही यह नगर परिपुष्ट था । ४३। वहाँ के प्रतिपति बिन म जब युद्ध के परिणाम से सना रहित कल्किजी का प्राप-सन सुना तो यह प्रतीकारार्थ दो अक्षीहिणी सेना को लेकर नगर से बाहर आया । ४४। अमर्य हाथी, रथ, अन्न स्वरा के वाद्ययंत्रों से भूषित घोड़ रथी और अस्त्रधारि वीरों से पृथिवी ढक गई । सेनाओं के हथकों से धूप भी बरू गई । ४५।

द्वितीयांश—

सप्तम अध्याय

ततो विध्युः सर्वाजिष्णुः कल्किः कल्कविनाशनः ।

कालयामाम ता सेनां कलिमीमिव केसरी ॥१॥

सेनागनां ता रतिसगरक्षती रक्ताक्तवस्त्रां

विद्युत्तोष्मण्याम् । पलायती चारुविकीर्णवेशा

विद्युजती प्राह स कल्किनायकः ॥२॥

रे बौद्धा । मा पलायस्व निवर्तंश्च रणाङ्गणे ।

पृथ्व्यै पीरथ साधु दशमंश्च पुनर्मम ॥३॥

जिनो हीनवत्त कोपात्कल्केराकर्ष्य तद्वच ।

प्रतियोद्द्यु वृषारूढः सङ्गचर्मघरो यथो ॥४॥

नाना प्रहरणोपेतो नानापुष्पविज्ञः रद

धन्विना युयुधे घीरी देवानां विस्मयावहः ॥५॥

सुरभी बोले — जैसे विद्यु हृदयों पर घातमल्ल करता है, वैसे ही पाप का नाश करने वाले तथा सब विजेता कलिभी ने उसकी सेना पर घातमल्ल कर दिया ॥१॥ युद्ध तबिल श्रेयो वस्त्रों का धारण करने वाली विद्युत् तट समन्ता, विकीर्ण वेशा प्रभाव करने लगी अर्थात् हाताहार करनी हुई, रति युद्ध में घातन शारी के समान भावने वाली उस सेना में कलिभी ने कहा ॥२॥ घने बौद्धों । तुम इस युद्ध स्थल में मग भावो । पावो, मोट पावो घोर अज्ञाना योग्य शिवाये में वीर्य म हटो ॥३॥ कलि भी बाण मुक्त कर कम से हीन हुआ जिन शोच पूर्वक अर्थ की समचार नेकर युद्ध करने के विद्यु उनके समल पाया ॥४॥ विविध प्रकार के गुणों में विचारद जिन कलिभी ने गुण करने लगा । उनका रणबाणुषं देण कर देवता भी आश्चर्य करते लगे ॥५॥

शूलेन तुरगं विद्धा कर्तिकं दारणेन मोहयन् ।
 क्रोडीकृत्य द्रुतं भूमेर्नाशकत्तोलना इतः ॥१॥
 जितो विश्वाम्भरः ज्ञात्वा क्रोधाकूलितलोचनः
 चिच्छेदास्य तनुशाय कल्केः क्षस्त्रञ्च दासवत् ॥७॥
 विशाखमूर्षोऽपि हृष्या निहस्य गदया जितम् ।
 मूर्च्छितं कल्किनागाय लीलया रथमारुहत् ॥८॥
 मध्यसप्तमस्तथा कल्किः सेवकोत्साहदायकः ।
 समुत्पत्य रथालस्य नृपस्य जितमाययौ ॥९॥
 शून्यप्यथो विहायत्री महासत्त्वस्तुरङ्गम
 ग्निगोभ्रं मणोः पादविशेषहृत्तर्नमुं ह ॥१०॥
 दण्डाघातं, सटाक्षोर्षोबोद्धसेतागणान्तरैः ।
 निजघान रिपूः क्रोधाच्छून्यशोष्य सहस्रवश ॥११॥

उसने अपना धूल से भस्व को बिड़ कर दिया तथा बाण से कल्किजी को समोड़ित कर एक से मरने लडा, बरन्तु उने सकनता नही मिली ॥६॥ जित से कल्कि को विचरंनर का ज्ञान मिया और क्रोध पूर्वक नशो से उ-हो कवी के समान देवता हुमा, उसने उनके दास्यान्ध और शत्रु को क्षिप्त-भिन कर दिया ॥७॥ यह देव कर विशाखमूप-नरेज न अपनी पदा से जित को घाहत कर दिया और मोला पूर्वक मूर्च्छित हुए कल्किजी को मेहर रथ पर चढ मये ॥८॥ जब उहो चेत हुमा, तब वे मत्तो को जामाह देने वाले कल्किजी राजा के रथ से उतर कर जित के सामने पहुँचे ॥९॥ कल्किजी का मन्व भी धूम की वेदना को धून कर बुद्धभूमि से दूर पडा और धूमता हुमा पदाघात, दन्ताघात, रेशघात आदि के द्वारा थोड सेवा के हुवागो पोरों को क्षोषपूर्वक मान्य तथा ॥१०-११॥

निश्वासवातं बड्डीय केविद्दोषान्त्रेभ्यतन् ।

हृत्प्राणवरमश्रुदापाः पतिता रणमूर्द्धनि ॥१२॥

गर्भो जघ्नु. पट्टिशतं भर्ष्यं फोटिशतापुत्रम् ।
 विशालास्तु सहस्राणा पचाविश रणे त्वरन् ।१३।
 प्रयुते द्वे जघानाजो पुत्राभ्या सहितः कवि ।
 दशलक्षं तथा प्राज्ञ पञ्चलक्षं सुमन्त्रक ।१४।
 जिनं प्राह हंसकल्किस्तिष्ठाष्टाघ्रे ममदुर्मते ! ।
 देव मां विद्धि सर्वत्र शुभाशुभफलप्रदम् ।१५।

पञ्च के भयकर दशात से उठ कर कोई-कोई वीर तो घन्प हीरो
 से खाकर गिर गये तथा कुछ वीर पञ्च, छठव एक रथादि से टक्कर गा
 कर कुछ स्वयं में ही घरातायो हो गये ।१३। गर्भ ने अपने अनुगामियों
 को साथ लेकर बीड़ों की छद्म हथार सेना का संहार कर दिया । गर्भ
 और उसकी सेना ने दस हजार सेना मार दी तथा विशाल
 और उसकी सेना ने पचबोस हजार सेना नष्ट कर टासी ।१४। कवि और
 उसके दोनों पुत्रों ने बीस सहस्र सैनिक मार डाले । प्राज्ञ ने दस लाख
 और सुमन्त्र ने पाँच लाख सेना का संहार कर दिया ।१५। फिर जिन
 को घायल देग कर कल्किने ने हंस कर उनसे कहा-घरे दुर्मते ! भाव
 कर न जा । तू मुझे बहुत त्वर्य एव सभी शुभाशुभ फलों का देने वाला
 समझ कर मेरे नामने घा ।१५।

मद्वाणुजालमिन्नाङ्गो नि.सङ्गो यास्वसि क्षयम् ।
 न मायस्वस्य तावत्य वन्पूना तलित मुत्तम् ।१६।
 बल्केरितोरित भ्रुत्वा जिनं प्राह हंसबली ।
 दय त्वदस्य दास्ये ते वधोऽयमुररीरुत ।
 प्रत्यक्षवादिनो योदा यय यूय वृषाश्रमाः ।१७।
 यदि वा देशस्वगत्य तथाप्यग्रे स्थिता वनम् ।
 यदि भेतामि वाणोर्ध्वमदा योद्धः किमत्र ते ।१८।
 सोपालम्भं तदा म्यात तयोषाम्तु स्थिरो भव ।
 इति श्रीपाद्मपुराण. कल्कि धोरे. समाप्तोत् ।१६।

ऊपर से बीज होने पर भी अन्न उत्पन्न नहीं होगा तथा अयोधिय को दिया दूध दान निष्फल हो जाता है, यद्यपि साधुओं का अलिप्त चाहने वालों को हरि-अविन फलवती नहीं होती, जैसे ही 'बिन' के सभी अन्न निष्फलता को प्राप्त हो गये ।२२। फिर कल्किजी ने उद्यम कर कृपण पर पड़े हुए बिन के बग पर हू लिए तथा दोनों ही वृषिबी अयोध्या के अन्न-विना के समान वृद्ध में गुंथ गये ।२३। घरती पर गिरे हुए बिन ने भी अपने एक हाथ में कल्किजी के बग और दूसरे से हाथ पकड़ रीते थे ।२४। फिर जैसे सागूर और श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध हुआ था, उन्हीं प्रकार दोनों वृषिबी ने उड़ कर परस्पर कंग और हाथ पकड़ कर निरन्तर उन्हीं प्रकार मटने लगे, जैसे ही महाबली शीघ्र परस्पर में युद्ध करत है ।२५।

तत यन्की महायोगी पदाघातेन तत्कटिम् ।

विभज्य पातयाभास ताल मत्तगच्छ। यथा ।२६।

बिन निपतित दृष्ट्वा बोद्धा हाहेति पक्रुद्युः ।

फलतः सनागणा त्रिमा जह्युनिहताख्यः ।२७।

बिन निपतिते भ्राता तस्यः शुद्धोदनो बली ।

पदाचारौ गदापाणि कल्कि हन्तुं द्रुत ययौ ।२८।

कथिस्तु त वाणवपी परिवार्य समन्वत ।

जगज्ज परधोरधनो गजमावृष्य सिह्यत् ।२९।

गदाह्वन तमालाक्य पति स धर्मवित्कवि ।

पदानिमा गदापाण्यस्नयो शुद्धोदनाप्रत ।३०।

जैसे परमेश्वर गजराज राम के वृक्ष को उतार कर बगनासी कर देता है, जैसे ही कल्किजी ने पदाघात करके बिन को बग पर तोड़ कर उभे पानों पर गिरा दिया ।२६। हे बिनो ! उन्हीं परमात्मियों द्वारा देण कर बीज सेना हाहाकार कर उठी तथा साधु का महार हुआ देण कर कल्कि मना हरिन हा गद ।२७। बिन का युद्ध स्वयं में गिरा देता ही उभरा भाई बनवान् शुद्धोदन तथा अक्षर कल्किजी को मारने के निर

पँदल ही उन पर झपटा ।२८। हाथो पर सवार शत्रु-नाशक कवि ने
शुद्धोदन को घालो से ढक दिया और सिंहवत् गर्जन करने लगे ।२९।
धर्मविद् कवि ने शुद्धोदन को गदा लिए पँदल ही मुड़ करते देखा तो वह
भी पँदल ही उसके सामने जा गटे ।३०।

स तु शुद्धोदनस्तेन युयुधे भीमविक्रमः ।
गजः प्रतिगजैनेव दन्ताभ्यां सादाबुभौ ।३१।
युयुधाते महावीरो गदायुद्ध विशारदो ।
कृतप्रतिकृतौ मत्तो नदन्तो भैरवानृवान् ।३२।
कविस्तु गद्या गुण्या शुद्धोदनगदां नदन् ।
करादपास्याशु तया स्वया बध्नस्यताडयत् ।३३।
गदाघातेन निह्नतो वीरः शुद्धोदनो भुवि ।
पतित्वा सहसोत्थाय तं जघ्ने गद्या पुनः ।३४।
सतगदितेन तेनापि शिरसा स्तम्भितः कविः ।
न पपात स्थितस्तत्र स्याणुवद्विह्वलेन्द्रियः ।३५।

जैसे हाथी शत्रु के हाथी से दाँतो के द्वारा मुड़ करता है, वैसे
ही गदाघातो कवि और महापराक्रमी शुद्धोदन ददा-युद्ध में गत हो गए ।
मुड़-मल्ल दोनों वीर भयकर शब्द करते हुए परस्पर गदाघातो को रोक्ने
लगे ।३१-३२। फिर सिंहनाद करते हुए कवि ने अपने गदाघात द्वारा
शुद्धोदन की गदा तिराशी और फिर तुरन्त ही उसके हृदय पर पदाघात
किया ।३३। पदाघात को प्राप्त हुआ शुद्धोदन तुरन्त ही पृथिवी पर
पटा तथा पुनः सहसा उठ कर उसने कवि पर गदाघात किया ।३४ गदा
लगने से कवि दिक्लेन्द्रिय और मूर्छित के समान गड़े हो गये, परन्तु
पृथिवी पर गिरे नहीं ।३५।

शुद्धोदनस्तमालोक्य महासारं रथायुतं ।
प्रावृत्त तरसा माया-देवीमानेतुमायवी ।३६।
यस्या दर्शनमात्रेण देवानुरनरादयः ।

निःसारा प्रतिमाकारा भवन्ति भुवनाश्रया ।३७।
 बोद्धा शौद्धोदनाश्रये कृत्वा तामयत्त-पुन ।
 योद्घु ममागता म्लेच्छकोटिलक्षशतैर्वृताः ।३८।
 सिहध्वजांस्त्यतरथा केरु-काक-गण्णावृताम् ।
 सर्वास्त्रसम्पन्नजनी पद्भुवर्गपरिसेविताम् ।।६।
 नानास्य स बलवती त्रिगुणव्यवित्तलिताम् ।
 माया निरादय पुरत कल्किसेना समापतत् ।४०।

तब सुदोहन न कवि को आश्रय पराक्रमी घोर रथ-सेना से
 समान दस कट कर माया देवी घाह्वानाय सुरभ्र ही बही से
 प्रस्थान विषय ।३६। जिस माया देवी का दर्शन करत ही देवता, देव,
 मनुष्य आदि सभी साधारण जीव तेरहीन घोर प्रतिभा के समान
 निरपेक्ष हो जाते हैं, उन्ही को साथ लेकर सुदोहन आदि बौद्धगण अपने
 करोड़ो म्लेच्छ बौरी के सहित गणायन में पहुँचे ।३७-३८। सिहध्वजा
 वाले रथ पर माया देवी आसन्न हुई घोर उठने अनेक प्रकार के अस्त्र
 प्रकट किये । बोधू घोर शृणाल उस माया देवी को सब घोर से घेरे हुए
 थे तथा काय, शीघ्र, मोक्ष, मोह, मद घोर सगर—सह सहस्रों उन्ही
 मश कर रहे थे ।३९। यह अनेक प्रकार के कव-साधन में समर्थ, सम-
 पन्न, त्रिगुणव्यवित्त माया देवी जैसे ही कल्किसेना के समक्ष पहुँची,
 पम ही उम दग कर कल्कि-सेना घोरुता का प्राप्त हो गई ।४०।

निःसारा प्रतिमाकाराः समस्ता शस्त्रपाणयः ।४१।
 कल्किग्नानानोन्व निजान्भ्रातृमातृमुह्यजनान् ।
 मापया जापया जौर्णान्निभुरातीतदयतः ।४२।
 तामामोषय यगरोहा धीम् ॥ हरिरीश्वरः ।
 या त्रियेव समालोष्य प्रविष्टा तस्य विप्रहे ॥४३॥
 तामदावःश्व से बोद्धा मानर कनिषा कराः ।
 एरदुः मपनी दीना होददधवतपोपताः ॥४४॥

या तथा विरोध के अन्तर्गत में विविध प्रकार की अथो हुई बलिदानों का प्रवृत्त
 रही थी । ४८८। कामधेयों के तपस्यों को अन्तर्गत देने वाले रत्न के तदन
 रूप बलिदानों का समय अनुपपन्न को विहित करने के उद्देश्य में उनकी
 शोच ब्रह्मण करने लगे । ४८९। भक्तजन करने भगवान् कल्किओं के शरण-
 गच्छियों का दर्शन करने उत्तमविध हो उठे और धर्म-विन्दक ब्रह्मण
 मय में बलिदान लगे । ४९०।

अहो मुनिभ्यो मे यागाहुर्विज्ञाना ॥ ४९१ ॥

सुवर्णमिलनद्वय शत्रुनाशनवपु समरवर्जितानाम्

साधुसत्कारकाश । स्वजनदुरितहर्ता जीवजातस्य

भर्ता रचयतु कुशलं च कामपूराश्रितार ॥ ४९२ ॥

उह देव कर आनाम में स्थित देवता रहने लगे कि सब सुद-
 धुवि रूपों अन्तर्गत में स्थित अग्नि में पुन आहुति दानी जाने की है
 । ४९१। जो अन्तर्गतों में सुगच्छित सेनाओं को दृष्टी करके शत्रुओं को
 नष्ट करने वाले शोभापुत्रक अनाम में तत्पर साधुओं के महान-वर्ता,
 शत्रुओं को दुरोगों का विनाश एक सब बलिदानों का प्रवृत्त करने वाले है,
 वे सन्तो की अन्तर्गतों में पुन करने वाले भगवान् कल्किओं का प्रवृत्त
 बलिदान करे । ४९२।

॥ द्वितीय अङ्क समाप्त ॥

रक्तपात से मोहित भी रही यह धनी, त्रिमये वंश तिवार जैसे लगने
सगे घोर वाश्व ऋषी यह धार में प्रवाहित होने लगे ।१५।

घनुस्तरङ्गा दुष्यारा गजरोधः प्रवाहिणी ।
शिर क्रुर्मा रमत्तरि, पणिमोनासुगापगा ।६।
प्रवृत्ता तत्र बहुधा हर्षवन्तो मनस्विनाम् ।
दुन्दुभेयरवा फेस्तकुतानन्ददायिनो ।७।
गजेमंजा नरेन्दरवा सरंरष्टा रथे रवा ।
निपेतुर्वासाभिन्नाङ्गा श्विनवाहृष्टघ्नधरा ।८।
भस्मना गुष्ठिनमुगा रवनरस्या निषारता ।
विकीर्णरेशा परितो ताभ्य सुन्दासिनो यदा ।९।
वप्या वर्षाप पतामन्त वाचन्त्यन्ध जल पुन, ।
कल्किसेनासुगक्षुण्णा म्लेच्छा नो धर्म लेभिरे ।१०।

जग मोहित रही से घनुप तरंग के समान उदमने सघ, हाथी
एक नदी से गेतु ते समान मवत पे, पटे हुए घीज बगुछो से समान,
रथ नाइ के समान घोर बटे हुए हाथ मदनो के समान दिगाई देते पे
।६। मोहित नदी ब तिवारे गीदहो घोर वाश्व पक्षियों भी हर्ष स्वनि
दु दुनि भी ध्वनि जैसे लगती था । उगे दग कर मनार्थी मोप हवित हो
वट ।७। युद्ध रीज प हाथी मव र हाथी मशर न, दरबारोही मशवागोही
म, ऊँट बाया ऊँट बासे न, रथ रही से भिडा हुआ था । उक्त मन्थ
कातो म बट-बट कर हाथ, पवि सौर मस्मन परती पर गिर रहते पे
।८। बट्टन न धीमे न भवभीक होकर गेदर मदन धारण कर, भस्म रमा
ना तथा विकीर्ण वंश द्वारर मग्यामी बन कर गीत वाच पर भी पना-
वन कर मव ।९। कोई-कोई विक्रम हुआ भागा, कोई उच मीपना रहा ।
दुख प्रसार कश्चि सना के पाणो भी धार से कोई स्तेप्य घोर मगुमम
न रहा ।।१०।

स्त्रीणां मेव पुपुस्मृता कथा श्रुत्वा महामतिः ।
 कल्किः समृद्धिं प्रायास्वसत्यै सन्तुष्टो रयः । १८।
 ता समातोक्त्य पद्मेशः सर्वशस्त्रास्त्रधारिणीः ।
 नानाबाहनसाह्या कृतध्यूहा उवाच सः । १९।
 रे स्त्रियः शृणुतास्माक वचनं पथ्यमुत्तमम् ।
 स्त्रिया युद्धेनै किं पु सा व्यवहारोऽत्र विद्यते । २०।

वे श्रेष्ठ स्त्रियों अपने पतिवो को बाणों में विद्ये हुए तथा व्या-
 कृत्य देण कर उ हें पीछे हटाती हुई हथियार लेकर कल्कि सेना से युद्ध
 करने लगी । १८। उन स्त्रियों को युद्ध में लगाने देण कर कल्कि-सेना
 प्राशनर्व में पड़ गई और अपने कल्किरी के समस्त बाकर उन्हें सब
 युष्मान् मूर्खिन किंग । १९। युद्ध की इच्छा वाली उन स्त्रियों का युद्ध
 करना मुन कर शक्य नृक कल्किरी गळ पर पड़ कर सेना और अनुपरी
 व महिन रणभूमि में पड़ने । २०। अनेक तन्त्राश्री वे सुवर्षिण, अनेक
 प्रकार के बाहुनो पर पडा हुई, धूइ रखना करक युद्ध में पत्थर उन
 स्त्रियों का इत कर कल्किरी बोने । २१। कल्किरी ने कहा—हे स्त्रियो !
 मैं तुम्हारे हितार्थ धेष्ट वचन रहता हूँ, वह मुनो । स्त्रियों को युद्धों के
 माय युद्ध नहीं करना चाहिए । २०।

एति कल्केव च श्रुत्वा प्राहस्य प्राहुराहता ।
 अस्माकं त्वं पत्नीन् हनि तेन तेषां ययं विभो ! ।
 एतु गतानामम्भ्राणि करण्येवागतान्बुध । २१।
 गन्तव्यं चित्तं यन्नुर्ध्वान्-गुण्यं शोभर-यष्टयः ।
 ता प्राहृ गुप्ता मूर्ता, कातरस्वरविभूषणाः । २२।
 यासां पापं यय नाप्यो हितार्थमः स्वजेतगा ।
 तनारमा गर्भमयं शान्तं कृतनिश्चया । २३।
 तस्योत्तमात्मना नाप्यः । यथाप्यो यदनुज्ञया ।
 यदृष्टा नास्मिन्नादिभेदेन विदित्ता वयम् । २४।

रूप-गन्ध-रस-स्पर्श-शब्दाद्या भूतपञ्चकाः ।

चरन्ति यदधिष्ठानात्सोऽप्य कल्किः परात्मकः ।२१।

कल्किनी के वचन सुन कर श्लेच्छ-पत्नियों हंस पड़ी । उन्होंने कहा—हे विभी ! जब तुम्हारे द्वारा हमारे पति ही नाश को प्राप्त हो गये, तब हम भी नष्ट हो चुकी । यह कह कर ये नारियाँ कल्किनी की मारने को तत्पर हुईं । उन्होंने जो प्रश्न छोड़ने चाहे, वे प्रश्न उनके हाथों में ही रुके रह गये ।२१। खड्ग, शक्ति, धनुष-बाण, मूल, तीमर, अष्टि आदि शस्त्रास्त्रों के स्वर्ण-सज्जित देवता साक्षात् प्रकट हो कर उन श्लेच्छ-पत्नियों के प्रति बोले ।२२। देव रूपी भस्त्रों ने कहा—हे नारियो । हम जिस तेज के द्वारा जीवों का सहार करते रहते हैं, वह तेज हमें जिनसे प्राप्त हुआ है, वह सर्वमय ईश्वर यही है, यद्दु समझ लो ।२३। हे स्थियो ! हम इन्हीं परमात्मा की प्रेरणा प्राप्त कर गतिशील होते हैं तथा इनके द्वारा ही हम नाम-रूप को पाकर जाने जाते हैं ।२४। रूप, गन्ध, रस, स्पर्श तथा शब्दादि पञ्चगुण के आश्रय रूप पञ्चभूत जिनके अधिष्ठान से धारण-ग्रहण कार्य में अद्यत रहते हैं, यह कल्किनी वही ईश्वर है ।२५।

काल स्वभाव-संस्कार-नामाद्या प्रकृतिः परा ।

यस्यैक्षया सृजत्वण्ड महाहङ्कारादिकान् ।२६।

य-मायया जगद्यात्रा सगस्तित्वन्तसृजिता ।

य एवाद्यः स एवान्ते तस्यायः सोऽप्यमोश्वरः ।२७।

सप्तो पतिर्नै भार्याहमस्मि पुत्राप्तवान्धवाः ।

स्वप्नोपमास्तु तन्निष्ठा विविधाश्चन्द्रजालवत् ।२८।

स्नेहमोनिबन्धानां याहायातदृशा मतम् ।

न कल्किसेविनां रागद्वेषविद्वेषकारिणाम् ।२९।

कुतः कालः कुतो मृत्यु क्व यमः क्वास्तिदेवताः

स एव कल्किर्भगवान्नायया बहुलीकृतः ।३०।

इ-ही की प्राप्ति से काल, स्वभाव, कालार तथा राजा प्रादि की व्यभिचर्यता परा प्रकृति, महत्त्व और महत्त्व प्रादि को उत्पन्न करने में समर्थ होती है । ३६। गण, शिवनि और प्रथमात्मक यह सम्पूर्ण विश्व शिवकी माया ही है, यह वही सर्वके प्रादि-रूप ईश्वर है । इनके द्वारा ही शीतल व सुमानुष का प्रवर्धन होता है । ३७। यह मेरा पति है और मैं इसकी भार्या हूँ, यह मेरा पुत्र यथा वाच्य है । ऐश स्वप्न यथा इन्द्राक्ष व नमान विषय प्रकार के व्यवहार की उत्पत्ति इ-ही के द्वारा होती है । ३८। इन्द्र और माहादि के कर्मों से बड़े रह कर जो प्राणी इन विषय के प्राप्त करने में रहे प्राते हैं यथा ज्ञा राय, देव एवं विदे-प्रादि व वाच्य रहने वाच्य जीव तथा भगवान् कर्मों की सेवा में समर्थ न रहने वाले हैं, वही इन जन्मों की सर्वकार हैं । ३९। ज्ञान क्या है प्राणा ? मृत्यु कही में उत्पन्न हुई ? क्या तथा देवगण कौन हैं ? यह शक्ति और अनिरक्त कर्म काई नहीं है, वही प्रपती माया के द्वारा प्रकृत हो गए हैं । ४०।

न सम्प्राप्ति यय नार्य सप्रहृष्या न च सचचित् ।

सम्प्र प्रहृत् भेदाः स्वमविवेक परात्मन । ३१।

कल्पिदामस्यापि यय ह्यनु नाही कयोऽनुत्तम् ।

हृदिप्यामो देवप्रवते प्रहृत्वादाय यथा ह्यस्मि । ३२।

प्रत्यक्षात्ता यन धृत्वा शिवया विशिष्टमानसा ।

राहृत्वाहृत्विनिमुं सत्त्वं कल्पिक नरत्त ययु । ३३।

ता समानाव पदपता प्रकृता शान्तिष्ठया ।

श्रीवाच प्रहृत्तुं मति-याय कल्पमानानम् । ३४।

हे शिवो ! हम ज्ञान नहीं हैं, हम किसी पर प्राधान्य करने में भी समर्थ नहीं हैं । यही परमात्मा स्वयं ज्ञान है और यही प्राधान्य करने की शक्ति में समर्थ है । इसमें जो भेद प्रतीत होता है, वह सब इसकी प्राप्ति ही है । ३१। देवराज ब्रह्मण्य की प्राप्ति पर जब भगवान् विष्णु

विष्णु त्रिविध रूप हुए थे, उन समय रूप जैसे उन पर प्राधान्य करने में समय नहीं हो सके थे, वैसे ही इन कल्किजी और उनके सेवकों पर भी प्राधान्य करने में पूर्णतया समय है । ३२। अर्धों के यह स्वर सुनकर स्थिरां घट-पत विम्बित हुई और तब वे स्नेह और मोह में मुक्त होकर कल्किजी की शरण में पहुँचीं । ३३। भगवान् कल्कि मत्स्य-नारियों का हाननिष्ठता से भिन्न देखकर उनके प्रति पापों का नाश करने का भाव-योग होने हुए कहने लगे । ३४।

कर्मयोगश्चात्मनिष्ठ ज्ञानयोग भिदाग्रयम् ।

नैषकर्म्यलक्षणं नासा कथयामास माधव' ३५।

ता श्रियम् कल्कि मृदिनं ज्ञानेन विवितेन्द्रिया ।

भवत्या परमवापुन्नात्वोगिना दुर्लभं पदम् । ३६।

दाया मोक्षं स्नेच्छर्षोद्धृदिदाराणां कुम्भा मुद

गैरथ भीमकर्मा । हस्तः शौडान् स्नेच्छ सघाञ्ज

कल्किस्तेषां ज्योतिः स्यान्नापुर्णं रेखे । ३७।

येऽप्युदन्ति वदन्ति शौद्धमिधम स्नेच्छक्षय सादराल्लोका-

शोकहर मदा शुभकर भक्तिप्रद माधवे ।

तेषामेव पुनर जन्ममरणं सर्वार्थतम्पत्कर

माया मोहविनाशनं प्रतिदिनं स सारलापच्छिदम् । ३८।

उदन्तर उन्नीने उन नारियों को कर्मयोग, भाग्यनिष्ठात्मक ज्ञान-योग, सेवाभाव, निष्कर्मत्व व सख्यता आदि का प्रसंग सुनाया । ३५। इन प्रकार जब वे स्नेच्छ रषणियाँ कल्कि-प्रवृत्त ज्ञानोपदेश में लगे होकर शौद्धता का दर्शन करके, भक्ति करती हुई, योगियों की भी दुर्लभ मोक्ष पद को प्राप्त हो गईं । ३६। इन प्रकार उन भीमकर्मा कल्किजी और मुदई शौद्ध और स्नेच्छों का संहार कर दिया, और उनकी रिश्वों को मोक्षपद प्रदान करके मरे हुए स्नेच्छों और शौद्धों को ज्योतिर्भव स्थान में स्थित कर बिनाशग्राम हुए । ३७। जो वे शौद्धों के निरसन एवं स्नेच्छों के शील होने की कथा को सुनें, वे सभी शौद्धों से मुक्त होकर स्वर्गात्मा को प्राप्त होंगे । भगवान् के प्रति उनके हृदय में भक्ति का उषा होना और वे जन्म-मरण के चक्र से छूट जाँशें । इन कथा के सुनने से सर्व ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है और माया मोह का विनाश होता है, तथा सकार के नाश का उदर उपदेश करने में समर्थ होता है । ३८। —ॐ—

द्वितीय अध्याय

ततो बोद्धान् म्लेच्छगणान्विजित्य सह संनिकं ।

घनान्यदाय रत्नानि कीकटात्पुनरग्रजत् ॥१॥

कृत्वि परमहेजम्बी घर्माणा परिरक्षक ।

चक्रनीयं समागत्य स्नान विधिवदाचरत् ॥२॥

भ्रातृभिर्नारिपानामैदहृमि स्वजनैर्वृत ।

समाधानान्मुनी स्नत्र दृष्टो दीनमानसान् ॥३॥

समुद्मियागतास्त पश्याहि जगत्पते ।

इत्युक्तवन्तो बहुधा ये नानाह हरि पर ॥४॥

द्यात्स्वित्पादिकानल्पवायान्धोरजटाघरान् ।

विनयायनन कनिकरननानाह कृपणान्मयात् ॥५॥

सुत्रज्ञो बोले—ए मुनिवो ! बोरो घोर अलेखो पर विजय प्राप्त करी भगवान् कृत्वि पत्र रत्नादि लेकर सेवा के सहित उम कीरट्ठगे म पत्र दिव ॥१॥ फिर वे पाप लेखनी तब घर्मवान् कृत्विओ अजभीयं से पशुने घोर वरं उन्होने विधिपूर्वक स्नान किया ॥२॥ तदनन्तर वे घरने बन्धु-बान्धवों के साथ मोक्षवाप के समान मुनीभिन् होते हुए वही निशान करने लगे । कृत्वि समघोरसम्भ उ लोने दीवता पूर्वक पात्रे हुए कृत्वि मुनिवों को दया ॥३॥ वे समभीय मुनिवण् कृत्विओ की घरण मे पट्टेन कर बोले—हे जगत्पते ! हमारी रक्षा करो, रक्षा करो । हम पर भगवान् भीहरि बोले ॥४॥ उ-होने घन देह वाले द्विन वाजाभूषण घोर अश धारण करने वाले दामतिष्पादि मुनिवो मे विनय घोर कृपा पूर्वक करा ॥५॥

सेनागणैः परिश्रतो जगाम हिमवद्गिरिम् ।११।

उपत्यका समासाद्य निशामैर्वा निनाय सः :

प्रातजिगमिषुः सैन्धेदंष्ट्रे क्षीरनिम्नगाम् ।१२।

दायेन्दुषयत्ताकारां फेनिसां बृहती द्रुतम् ।

चलन्ती योक्षयते सर्वे स्तम्भिता विस्मयान्विता ।१३।

सेनागणगजाश्वादिरयपोषं समावृतः ।

कलिस्तु भगवास्तत्र ज्ञातार्थोऽपि मुनोद्वरान् ।१४।

पप्रच्छ का नदी चेद कथं दुग्धवहा भवत् ।

ते बह्वेस्तु यत् श्रुत्वा मुनयः प्राहुरा दरात् ॥१५॥

इसके यह पक्ष मुनवर दानु-नगरी को विजय करने जाते भगवान् कलि अपनी गता के मद्दति हिमालय की पार चले ।११। यही पहुँच कर उन्होंने एक रात्रि निशाम दिया घोर शान्तमान होने ही, जैस ही सना के गति जाने चलने लगे, वेस ही बहू एक दूध की नदी दिखाई दी ।१२। यह नदी दाया तथा बाया के समान चल थी, यह दीर्घाकार यानी फेनिस नदी वेगपूर्वक बह रही थी । सेना के सभी लोग उन दूध की नदी का देखकर आश्चर्य से चकित हो गये ।१३। यद्यपि भगवान् कलि उन नदी के विषय में सब कुछ जानते थे, फिर भी गज, घोड़े, श्व तथा पक्षि मंत्रियों से पूछ करि जो न उन मुनिरों से पूछा — 'किस नदी का नाम क्या है ? इससे यह दुग्ध किस प्रकार बहाहित है ?' यह मुनवर के मुनिगण आश्चर्यचकित बोले ।१४-१५।

शृणु बह्वे पद्मयाया प्रमथ हिमवद्गिरी ।

समायाता वृषोदर्याः स्तनप्रम्वयनादिहि ।१६।

षट्कलात्तन्केभ्यःश्वा पयो वास्पति वेगितम् ।

हीनमारा तटाजारा भविष्यति महामते ।१७।

इति श्रुत्वा मुनीनाम्नु यषन मंत्रिकैः सह ।

यद्गो विगम्या राशरया सानादेका शिव्य नदी ।१८।

वे मुनिदण्ड उम मार्ग का दर्शन करने लगे थे। राक्षसी के स्थान को आती थी। यहाँ पहुँच कर उन्होंने उम मेराकार राक्षसी को गिरि शिखर पर घबने पुन की स्तन-गान कराते हुए देखा ॥२१॥ इन के हाथी उमकी वसव-वायु के बनेटे साहर दूर जा गिरते हैं तथा उनके बानों के छेदों में मिट्टी पड़े सो रहे हैं ॥२२॥ उनके रोम छिन्नी को बिरि-गुहा समझ कर घबने पुन पीरों में युक्त हरिण मल भी उनमें पुन कर गये रहे हैं ॥२३॥ बड़ी गहूँ कर स्वाम के भद्र ने कले हुए हैं तथा लीन के नवान स्थित हैं। पर्वत की चोटी पर घबने पर्वत के समान स्थित उम राक्षसी का देश कर ह्य बुद्धि एवं भवभीत तथा लम्पाम्ब स्वाम कर आने की उद्यम घबने संनिकी में भयबाद् बहिष्कृत बाने ॥ २४-२५ ॥

गिरिदुर्गवन्निहदुग कृत्वा तिष्ठान्तु मामकाः ।
 गजाद्वरघयोघा ये समायान्तु मया सह ॥२६॥
 एह स्वल्पेन सैन्येन दास्यस्याः समुग शनैः ।
 प्रहसुं वाणामन्धोहैः गङ्गानतिमन्दपथैः ॥२७॥
 इन्द्रुकाम्पाप्य पदचासान्वाणुंस्ता समहनद्वली ।
 मा क्रुधोरथाय महता गतद् परमाद्भुतम् ॥२८॥
 तेन नादेन महता दिव्यस्तादृशभ्रवञ्जप्रताः
 निपेनु मैत्रिका मयं मूर्च्छिता परणातने ॥२९॥
 मा रथाश्च गजादघाति विवृतास्मा भदानका ।
 जपाम प्रदयामयाने, समानीय गुघोदरी ॥ ३०॥

उद्धेन कहा — इन पर्वतीय, दुर्ग में अग्नि दुर्ग बना कर तुम सब यही टहने तथा गजाद्वर, अश्वद्वर और रथी और हमारे साथ जाते रहें ॥ २६ ॥ मैं स्वल्प सेना को साथ लेकर आऊँ, तपस्वी और क्रमों के द्वारा प्रहार करने के लिए घबने हीना हूँ ॥२७॥ वह बहुत बुरा रथी भी ने मेरा को तो पीछे छोड़ कर जाने कई बुरा राक्षसी पर आत्यों के प्रहार करने लगे । यह देग कर राक्षसी ने भी

तेन गङ्गेन महता दादय निमित्तं चण्डुभिः ।
 वनिभिर्भातृभिर्वहिवृतः मत्प्रशास्त्रपाणिभिः ॥३६॥
 सहिवंभूय सर्वेण कल्किः कल्कविनाशनः ।
 महन्नाथो मया वृत्रकृष्णि दम्भोलिनेमिना ॥३७॥
 यानिरध्राद्गजस्त्रयस्तुरगादवाभयनन्वहः ।
 नासिक्वाकशुंषिवरान्कडीव तस्या विनिर्गताः ॥३८॥
 ने निर्गतास्ततस्तस्या संनिक्वा रुघिरोक्षिताः ।
 ता विम्बधुनिक्षिपन्तो वरसा चरसो वरो ॥३९॥
 ममार सा भिन्नदेहा भिन्नबुधिशिरोधरा ।
 नादयन्ती दिशो द्यौ म चूरायन्तो प पर्यतान् ॥४०॥

जैसे देवराज इन्द्र वृत्रासुर को कुशिल को पपने बन्धने के भेद कर
 लट्टक पाद से, वैसे ही सर्वेश्वर एतं पापों का नाश करने वाले कल्कि-
 जो न पपने वृद्ध तमवार से राक्षसों को दक्षिण कुशिल घोर दाया
 घोर पपने दायादाय पायी पापको के महिज बाहर निकल पाये ॥ ३६-
 ३७ ॥ बहूत से गज, घन रथ घोर पैदल उनके चपे मार्ग से घोर
 बहूत से उनके जानी तथा नासिका दिशे से होकर बाहर जा गये ॥ ३८॥
 फिर ये रक्त से भोजे हुए घोर गज राक्षसों के देह से बाहर निकल कर,
 को हाथ-पैर बमली देण कर बाली द्वारा उनका वेधन करने लगे
 ॥३९॥ अब उनमें बरत मत्प्रश तथा चन्वाभय मय दिन्व-भिन्व होने
 लगे जब उनके घोर चीन्वार से दशो दिश'ए' दूरे चली । फिर वह
 धर्मों पर फिर वह उड़े गूँ गूर करती हुई गृधु को मत्प्र हुई ॥४०॥

कश्चिद्वीर्यं तथा सीदय मानरं वापरोऽभवत् ।
 म विदग्धं मृषां पायन्मेनामध्ये निरासुधः ॥४१॥
 गजमातापुत्रो यथोवाक्षिराक्षिभिभूयत् ।
 महामपहृणोऽणोपः केमरीमुदिशान्नुत्तिः ॥४२॥
 ममर्द कल्किमेना सां मानुष्यंमनवपित् ।
 म कश्चि रसं प्राणमभ्य रामरसा क्षिपानया ॥४३॥

राज्य की ओर पर अथवा सेवा सहित निवास किया ॥४६॥ अथवा परिश्रमों के सहित रहिबारी में वह रात्रि बड़ी बित्ताई की ओर प्रातःकाल उठने पर मया स्नान के निमित्त जाते हुए मुनिगण उनके दर्शनार्थ जाते हुए दिखाई दिये ॥४७॥ ये हरिद्वार में गंगानद के समीप स्थित विण्डवक वन में अथवा सेवा के सहित निवास करने लगे । एक दिन, जब के कनिष्क-राजिनी भगवती आत्मी की स्तोंषों के द्वारा स्तुति कर रहे थे, तभी मुनिगण उनके दर्शनार्थ वहाँ आये और विविध वाक्यों से पुनः स्तौत्र करने लगे ॥ ४८ ॥

घोर पगवाद् ही मानता है ॥ ३ ॥ फिर वामदेव, घनि, बभ्रुवर्ध, वापव, भृगु, पराधर, नारद, षडशरवामा, कृपाचार्य, त्रिन, दुर्वाता, देवम, वरुव, देव प्रमिति घोर घ तिरा घादि यह सब तथा घन्यान्व धेष्ट वर घाने मुनिगण चन्द्र मूर्धन्य मे उरान्न, महा वीर्यवान एव तपोनिष्ठ राजा घर घोर देवादि उरको नामने देव कर, जैसे प्रसन्न मनने देवनाम्नो ने महोदधि के तीर वर भगवान् विष्णु ने कहा था, वैसे ही पागो का नाश करने घाने बभ्रुवर्ध के प्रति बोले ॥४७७॥

जघानोपजघन्नाथ ! विदित्तागिलमानस ! ।

गृष्टिस्थितिलवाघ्यन्न ! परमात्मन्प्रतीद नः ॥४७८॥

कामकर्मगुणावाप्त प्रक्षारिननिजक्रिय ! ।

दृष्ट्यान्नुनपादाच्च ! पद्यानाप प्रसोद नः ॥४७९॥

इति तेषा वच श्रुत्वा कल्कि प्राह जगरत्सि !

कावेतो भवतामघ्रे महामत्स्यो सवस्विनो ॥४८०॥

कथममागतो स्तुत्वा गत्वा मुदितमानसो ।

का या स्तुतिस्तु जाहाव्या युवयोर्नामिनो घ के ॥४८१॥

तयोर्मह प्रमुदितः शृत्वाऽनिपुटः शृत्वा ।

घादाद्युवाच विनयो निजघनानुशोत्तनम् ॥४८२॥

मुनिघो न कहा— हे सब विनयो जघनीय ! हे सम्पूर्ण विश्व क शोषो के घट-घट के जाला ! हे गृष्टि स्थिति घोर प्रमद के रक्षामिद ! हे परमात्मदेव ! प्रसन्न होखे ॥४७८॥ हे पदवा के पने ! काम, कर्म घोर गुण के घार ही घाधन है । इत्यादि देवना भी घारके ही बरलार-किन्हीं की दुःख विना करते हैं । घार हम पर प्रसन्न होखे ॥ ४७९ ॥ मुनिघो के यह बचन सुन कर बभ्रुवर्धो के उरमे कहा— हे मुनिघो ! घारके घाने यह घटाद् बम मग्दन् एव तपसो वीर्य है ? ॥४८०॥ घनाम्नो की स्तुति करके घावन्न प्रसन्न हुएव ते यह घही बसो वघारे है ? यह किस कारण भवतनी जान्दूषी की स्तुति के समे है ? इनके नाम बजा-जगा है ? ॥४८१॥ तब के शोको यह देवादि प्रसन्न हुएवो हाथ

एतुपरांस्वस्मृतोऽभूत्पुधासन्तःसुतोऽप्ययत् ।
 मोदासन्तःसुतो धीमानश्मन्वस्तस्मृतो वत् ॥२०॥
 मूत्रपास्ता दशरथस्तेस्माद्देडविडस्तान् ।
 रात्रा विश्वसहस्वस्मात्सटवाङ्गो दीधरातृकः ॥२१॥
 ततो रघुरजस्तस्मात्सुतो दशरथःकृवी ।
 तस्माद्रामो हरि साक्षादाविभूतो जगत्पतिः ॥२२॥

यद्युमान के पुत्र दिलीप दिलीप के दशम प्रतिष्ठ पुत्र मनीष्य
 हुए । वही मगधतो आह्वनो का पुत्र पर लखे थे रूरी किए गया
 उनके नाम से मनीष्यो कहलमई । पापर चरणो के उत्पन्न होने के
 कारण ही बली इन गया जो भी स्तुति प्रभाव तथा पूजन करने के
 लिये रहा है ॥२०॥ मनीष्य का पुत्र नाम हुआ । नाम का महादधी
 विन्दुदीप्य और विन्दुदीप्य का पुत्र पादुपादु हुआ ॥२१॥ मधुपादु का
 पुत्र श्युष्य हुआ । श्युष्य का मुदाय, मुदाय का लीलास घोष
 गीतान का पुत्र मयावी पदक हुआ ॥२० पदक के मूलक और
 मुपय का दशरथ हुआ । दशरथ का एडविट, और एडविट का विश्वसह,
 विश्वसह का सटवांग और सटवांग का पुत्र दीधरातृक हुआ था ॥२१॥
 दीधरातृक का पुत्र रघु हुए, रघु के अथ और अथ के दशरथ हुए । वही
 दशरथ के पुत्र राम का नाम आसीदर विष्णु से प्रकृत विद्या ॥२२॥

रामायणारम्भाद्यैश्च कल्पि परमहृदितः ।
 गद शशु विष्णुरेणु श्रीरामचरित्नि मर ॥२३॥
 मंजापते इम पत्त कः रामचरित्नि मूको ।
 दोष, गदशरदर्शनवि लानामिना मयेत् ॥२४॥
 स्यादि सेतुयो मेरुनि यत्तुमामि लवाशया ।
 रामचर चरित्नि पुष्य पापतापत्रमोषम् ॥२५॥
 यत्रादिविषुष्यविषोऽत्रनि यत्तुभिरर्त्तं कृते
 रथेयामुदादतो जगति यानुमानक्षयः ।
 विष्णु कृतिश्च तावदक्षरक्षरक्षयो यो यत्रा-
 दन्तोपनिनामपरो जयनि चारकोपहरभः ॥२६॥

रामावतार का प्रसंग जाने पर भगवान् कल्कि अत्यन्त हर्षित हुए और उन्होंने मरु से कहा कि राम चरित्र का विस्तार सहित बर्णन करिये ॥२३॥ मरु बोले-सौतापति श्रीराम के कर्मों का बर्णन करने में समर्थ हस्त पृथिवी पर कौन है ? क्योंकि सहस्रवदन दोष भी उनका यज्ञ बर्णन करने के समर्थ नहीं है । फिर भी मैं आपकी आज्ञा के कारण भगवान् श्रीराम का पाप-हाप नाशक चरित्र को अपनी बुद्धि से अनुसंधार कहना हूँ ॥२४-२५॥ पुराकाल की बात है—ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा राक्षसों के विनाशार्थं प्रार्थना किये जाने पर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के रूप में सौतापति भगवान् रामचन्द्र जो ने सूर्यवश में अवतार लिया था । अपने शिशु-काल में ही उन्होंने निश्वाशिन जी के यज्ञ में विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसों का वनपुष्क संहार किया था ॥२६॥

मुनेरनुसहानुजी निखिलशस्त्रविद्यातिगो ।
 यथावतिवनप्रभो जनकराजराजत्समाम् ॥२७॥
 विधाय जनमोहनशू तिमतीव कामद्रूहः ।
 प्रचण्डकरचण्डिमा भवनभजने जन्मनः ॥
 तमः प्रतिमतेजस दशरथात्मज सानुज
 मुनेरनु यथा विधेः शशिवदादिदेव परम् ।
 निशोक्य जनको मुदा क्षितिसुतापति समते
 निजोचितपरुक्षम मनसि भत्संयन्नाययो ॥२८॥
 स भूपपरिपूजितो जनकजेक्षितैरचित्त-
 करालकठिनं धनु करसोपहे सहितम् ।
 विभज्य बलदृढ जय रघूवद्देहसुब्रह्मनि
 विजगतोपसु पारविधाय रामो बभौ ॥२९॥
 ततो जनकभूपतिदंशरथात्मजेभ्यो ददौ
 चतस्र सपतीमुंश वरचतुर्म्य उद्वाहने ।
 स्वलङ्घतनिजात्मजाः पथि ततो बल मार्गव-

स्रवार उररोनिज रघुपत्नी महोद्य त्यजन् ॥३०॥

बिनकी महिमा से कामना पूर्ति जाने समार में दुर्नेश्वर की प्राप्ति नहीं होती । वे महाबली, प्रभानुक्त तथा गजानन दस्य विद्या-विहारद भवधान श्रीराम समार को मोहित करने कासा रूप धारण विधे हुए, महामण्य घोर मुनिघो से सहित जन्क की रात्र सभा में गये ॥३०॥ महाबली के पीछे सुसोभिष अन्तमा के समान तेज वाले श्री राम अपने भाई महामण्य के सहित मुनिघर विद्यामित्र के पीछे बैठ गये । तब घादि दस अशोकर का दस कर जनक सोचने लगे कि यह सीता का साथ खोले पर है । तब उन्होंने अपने द्वारा विधे हुए प्रण की बढावता दस कर अपनी भावना की घोर फिर श्री राम के समीप गये ॥३१॥ तब रामा जनक से घादर प्रति कर तथा सीता जी के कटाक्ष म प्रेम-पुञ्जित होकर श्री राम ने उन घोर यदुष को द्वारा में उठाया घोर अपने दो टूटे कर दिये । तब श्रीराम दस्यन् शोभा की प्राप्त हुए और इनके अद-धोष में तीनों लोक उवात हो गये ॥३२॥

नत स्वपुरमागतो दशरथस्तु सीतापति
 नृप मन्विदसुगुप्तो निर्वाविचित्रनिहासने ।
 विद्यानुपममन्त्रप्रभ परिजनं क्रियाकारिभिः
 समुद्यतमात्र तथा द्रुतमवारमस्ककथी ॥३१॥
 ताता गुम्निदेगसो जनकराजकन्यापुतः
 प्रयाणमकरोरगुधीर्षदनुनः सुमित्रागुनः
 वन निजगण त्यजन्मुहृष्टे पसप्रादरात्
 विमृग्य नृपनाञ्जन रघुपतिजटाघोरभृन् ॥३२॥

तब रामा जनक न घानो बारो कथा—श्रीठा, उमिषा, मातकी घोर धुनिरीति तब प्रचार में अयहन करके दशरथ जी का बारो पुत्र राम, महामण्य, भगत, तगुन्त की समस्त दान कर दी । दिवाह के पदवान् जब यह सब व्योषवा कर्णो के निष् कोट रहे थे, तब मायों के परतुरावती विने घोर उग्रीही धीरावही अन्तरा घराह दस

दियाने का निष्कम प्रयत्न किया ॥३०॥ फिर महाशय शरदने प्रयोष्या
 रहें कर अपने मन्त्रियों के परामर्श से भीतापति राव को प्रयोष्या के
 राज्य निहसन पर धर्मिक ज्ञान का विचार किया । धर्मिक के
 लिए सम्पूर्ण सामग्री एकत्र होकर वह पूर्ण तैयारी हो गई, तब श्रीराम
 का धर्मिक करने में तत्पर राजा दशरथ का केंद्री ने वरदान माँव का
 गोक दिया ॥ ३१ ॥ तब महाशय की आज्ञा मुन कर जनक पुत्र
 और मुनिव । पुत्र-महाराज महिन श्रीराम वन में गये । माँव अपने हुए
 पूरकमियों का दाने बन कर छोड़ दिया । तथा गृह के पर से जाकर
 राजकीय सम्भारों का धरिवाण कर जटाधन्क-त धारण कर
 निवा ॥३२॥

प्रियानुजयुनस्त्वो मुनिमतो बने पृथित,
 स पञ्चर्षिकारथमे भरतमासुर मगतम् ।
 वि वार्थ मरण पितु समवधार्य दुस्वानुर-
 स्तपोधनगतोऽवसद्रघुगतिस्ततम्हा समा ॥३१॥
 दयावन्हादरा विपमताम्बेघानुरा-
 ममोदय वरुपिणी प्रहसती मती सुन्दरीम् ।
 निशाश्रममोहती जनकजापतिर्नकमणा-
 ररुनातकरवासना समरुतीकुम्भ तत् ॥३२॥
 मसाप्य पथि दानव खरदरे शनैर्नाशिमन्
 चनुद्दामहृत्क समहन्धर सानुगम् ।
 दयाननवशानुग कतकचासुधन्मुग
 प्रियाप्रियकरो बने समपयीदमतादाशरम् ॥३३॥

नीला श्री और महाराज की के माँव मुनिवैत शरी को राम
 पूजा-नन्वन होकर विविध से वनों निवास करने लगे । इनके
 वन्धुग कलता पूर्वक आयते वही पाये । उनसे विना भा वरण
 मुन कर श्रीराम को रक्षा हुआ और महाराज की को मरणा कर
 मोटा दिया और तपोवन में रहने लगे ॥३३॥ फिर वरदामु से विद

सुन्दर रूप बानी, हास्यवचना, वर की कामना करती हुई रावण की बहिन मूर्च्छला को माने देव वर लक्षण जी को लाने दिया, जिनके अनुसार महमण जी न लौंछण तुमवार से उग राक्षसी का रूप धर कर दिया ॥३५॥ फिर उम्होने मार्ग में एक दानव का मार कर, सोःह हजार गेना के अधिपति एक रावण के अनुगामी राक्षसण को मना सहित नष्ट कर दिया । फिर सीता श्री की दृष्टि से स्वर्ण-मृग करी राक्षस का मार डाला ॥३५॥

ततो दशमुरग्रपरम्तमभियोक्ष्य राम र्ग्या
 यजन्मनुजदभणु जनकजा जहाराधमे ।
 सप्तो ग्नुवति प्रिया दलकृटीरसस्यापिता
 न पादश्च तु विमूर्च्छितो सह विनप्य मोक्षेति ताम् ॥३६॥
 घने निजगणाधमे नमन्ते जले पल्वले
 विचित्र्य वनित्त गग पवि ददर्त शीघ्रविश्राम् ।
 जटाबुधपनात्तनो दशमृगाहता जानकी
 विवच्य घृनघान्मृत पितरि वहिष्टृत्य प्रभु ॥३७॥
 प्रियादिग्रहवानगानुजपुरसरो राषयो
 धनुर्धरधरो हरिचल नवालापिनम् ।
 ददन श्वरभाषनाद्रिजवाविगजानुज-
 प्रिय पवननन्दने परिरणुन हिन प्रेषितम् ॥३८॥

रिा राम महमण का नवा हृषा दत्त वर रावण ने उन्को पाथम से घापी मोक्षार्थ का हरण कर लिया । तदनंतर श्रीराम ने वही पाकर उस गीता को न दया, तब वे 'हा गीते' 'हा गीते' आदि लाक मुक्त पापी से विचार करते हुए मूर्च्छा को प्राप्त हो गये ॥ ३६ ॥ रिा वे शूद्रियों के पाथम, पर्वतो की पुत्रा, जल घोर स्वत आदि विविध स्वानो से गीताओ को इतन मने । घने धरने पर उन्को माग से बट-मु वरा मिया । उमने उन्के गीता हरण का समाचार प्राप्त हुआ । उन्को के मरने पर उन्कोने घरने रिता के उमान उल्ला

कर शतको दे महिह लक्षकुशो आ वृत्ते और रावण के पुर की प्राप्ति
 प्रादि को अर्होने मष्ट कर दाया ॥४१॥

लक्षोऽनुलक्षुतो भुवि प्रवलपण्डकोदण्डभृत्
 शरं गगतरै कृपा मजरथाऽग्रहमाकुल ।
 करालकरवालने प्रवलकालजिह्वापती
 निहस्प वरगाधनाप्रपनिर्वर्षो सानुमः ॥४२॥

उपान घनपोषणानुगतशोरमृक् प्रादाने ।
 ममार्थवचनवानर्गमिर्महोरहोऽग्रशरं,
 अमन्तरतादर्नजनकजाया नामितान् ।
 निजन्ममराटं नानतिवला-दशाम्यानुमान्
 नना द्वादशैश्वराऽगुमगुनक्षमाजादयः ॥४३॥

समोऽतिरत्नधमणाग्रदनामशशु रणे
 प्रहस्य विरटादिजानति निजावगन्तुमान्
 निवृम्भ मकराक्षरानिश्चिन्तयन् पार्श्वे कृपा ॥४४॥

जि मष्टमण के महिह धोराम के दायाल कर बायो की
 दाया विदा धोर मष्ट मष्ट तथा रथादि के मृत्त होकर लीक्षण दाया
 धोर विरगाम धमि म पान गजसो का नाम करते कराल दाया की
 शिष्ट के मष्ट भाग के ममान मपन अनुमानियो महिह शीमा नाम मने
 ॥४२॥ जि सुशोच, परमवृत्त अनुमान, मर, मोम, मगद और अम-
 व न प्रादि नाम दायायो बायो के मृत्त धोर पंचम निवाए उपाट
 कर उरत प्रहारा देर-नु महाबनी रावण के उन मेषकी को, को
 मीठाको दे दाया के पति र हो मरे न ममान हो रहे दे, मष्ट कर दिना
 ॥४३॥ महाबनी मष्टमण के दायाल धोर मष्ट जाने शरं विरवायो
 शामयो के पार्श्वे न इन्द्रिय मपनाद को दाया दाया । जि घोष
 पुंज बायोने निवृम्भ, मकराक्ष और विरटादि नामक शर्पा निजावयो
 का भी महार कर दिना ॥४४॥

समर्प्यं रघुपुङ्गवे निजपुरी यमो हृषितः ॥४८॥
 पुरन्दरकथादरः सपदि तत्र रथा पतिम् ।
 विभीषणममीदणु समकरोत्ततो राघवः ॥४९॥
 हगोश्वरगणावृतोज्वनिमुतापुत सानुजा
 रथे शिवसखैरिते मुदिमले लसत्युत्पके ।
 मुनोश्वरगणाच्चिवतो रघुपतिस्त्वयोध्यां यमो
 विवच्य मुमिवाच्छ्रुत्त गुहगृहेऽनिसरथ स्मरन् ॥५०॥

फिर इन्द्र को प्रस्त करने वाला राघव जानकी जी के क्रोध से डबात एव धीराम के सन्धानल से दृग् होकर परानाथो हो गया । राघव को मृत्यु हो जाने पर बानर धेष्ट हनुमान जानकीजी को मुक्त करके माये घोर उन्हें धीराम की समर्पित कर दिया । फिर प्रसन्नचित्त से अपने स्थान को गये ॥४८॥ फिर देवराज के कहने से धीराम ने राघव के भाई विभीषण को राक्षसों के राज्य पर समर्पित किया ॥४९॥ फिर अगशान् रामचन्द्र जी बानर प्रादि तथा सीताजी घोर लक्ष्मण की साथ लेकर अत्यन्त मुनीभित्त पुष्पक वाणि पर चढ़ कर अयोध्या नगरी के लिए चले । मार्ग में चलते हुए जब मध्य रात में पहुँचे तब उन्हें अपने मुनिवेश घोर गुह के गुह तथा उसकी मिनती का स्मरण हुआ । सभी मुनियों ने उनके समीप आकर उनका पूजन किया ॥ ५० ॥

ततो निजगणावृतो भरतमातुर सान्द्रवदन्
 स्वमातृगणावावयतः पितृनिजासने भूपति ।
 वसिष्ठमुनिपुङ्गवं कृतानिज्यामिपेको विभुः
 समस्त जनपालकः सुरपतिर्यथा सवमो ॥५१॥
 नरा बहुघनाकरा द्विजवरास्तपस्तस्वराः
 स्वधर्मकृतनिभ्रया स्वजनसङ्गता निर्भया ।
 यनाः सुबहुवर्षिणो वसुमती तदा हृषिता
 भवत्पतिवत्से नृपे रघुपतावभूरस्यजगत् ॥५२॥

ततो रघुपतिस्तु ता मुत्तयुतां एदग्ती पुरो
जगाद् दहने पुन प्रविश शोधनायात्वनः ।
इतीरितमवेक्ष्य सा रघुपते. पदाब्जे नत्ता
विदश जनोयुता मणिमण्डो ज्वल भूतलम् ॥१६॥

फिर किसी बारण वन श्रीराम को घाना हृदय बन्दोर करना
परा घोर उद्योग जानकीजी को पाठस्थान का वन में पहुँचा दिया । तब
महर्षि वाल्मीकि अपने द्वारा रचिन रामायण का स्मरण करके दुःखित
भित्त होते हुए जानकीजी का अपने पाथम धे लिया साथे ॥१५॥
फिर जानकीजी के वृक्ष घोर सब नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । इन दोनों
राज पुत्रों ने श्रीराम के सर्वोप पदुष कर उनका पक्ष गाथा । फिर महर्षि
वाल्मीकि ने अनभिदित पत्र देव-पूजिता जानकीजी को इन दोनों पुत्रों
के सहित श्रीराम को समर्पित कर दिया ॥१६॥ दोनों पुत्रों के सहित
शोनी हुई जानकीजी को अपने सामने लक्ष्मी देख कर श्रीराम उतते बोले—
गीते ! तुम अपनी बुद्धि के निर्वे पुन, अग्नि-प्रवेश करो । उनके बह
वचन सुन कर जानकीजी ने उनके परलोकविन्दो से प्रणाम किया बादर
अपनी माता पृथिवी के साथ पाताल में प्रविष्ट हो गई ॥१६॥

निरीक्ष्य रघुनायको जनकजाप्रयाण स्मरन्
वनिष्ठपुरुषोयतोऽनुजमुक्तोऽगमस्व पदम् ।
पुर स्थितजनस्वकं पशुभिरीश्वर सस्पृशन्
मुदा मरुपुजीवन रघवरं परोतो विभुः ॥१७॥
ये शृण्वन्ति रघूद्धहस्य चरित कर्णामृत सादरात्
ससाराण्वशोपणश्च पठन्ताममोदय मोघदम् ।
रोगाणामिह शान्तये धनजनस्वर्गादिसम्पत्तये
वशानामपि वृद्धये प्रनवति श्लोक. परेश प्रभुः ॥१८॥

जानकीजी की इस प्रकार पाताल में गई देख कर रामचन्द्र भी
उनका स्मरण करते हुए अपने पुत्र बलिष्ठ, अनुनायक तथा परिजनो

घोरे वपुषो क साध मरयु लट पर गये घोरे प्रगल्भ हृदय से जन का
 स्वर्गे करके शिव विमान म घाकट होकर ~~घबरा मोह-म-म~~ ॥१७॥
 कातो के चिए समृद्ध के गमान इग गम परितामृत हो रा पाठ
 महिम मुनेये उन भी मर्के मावम् श्रीराव-हृरा क दूर ही राषया ।
 ॥१८॥ नष्ट होये, यज्ञ-उद्धि, पन-जन भी समृद्धि होर स्वय रूप ००००
 की प्राप्ति होती । या इनका पाठ करने, उनका चित्त बहु मंगल-मानक
 पुण्य द्वारा बरदान प्राप्त होया श्री-रथ परम पुण्यार्थ की प्राप्ति
 होगी ॥१८॥



चतुर्थ अध्याय

रामात्कुशोऽमूर्दतिषिऽस्ततोऽभृन्निषयाग्रम् ।
 तस्माद्भूत्पुण्डरीकः क्षेमघन्वाऽभवत्तत ॥१॥
 देवानीकस्ततो हीनः परिपात्रोऽय हीनत ।
 घनाहकस्ततोऽनश्च रजनाभस्ततोऽभवत् ॥२॥
 सगराद्विधृतस्तस्माद्धिरण्यनामसङ्घितः ।
 तत पुष्याद्भ्रुवस्तस्मात्स्वन्दनोऽप्या नववर्णकः ॥३॥
 तस्माच्छ्रीघ्रोऽभवत्पुत्रः प्रिता मेऽनुत्तविक्रमः ।
 तस्मान्मरु मा कऽपीह बुधञ्चारि तुमित्रकम् ॥४॥
 कलापग्राममासाद्य विद्धि सत्तापसि स्थितम् ।
 तत्रावतार विज्ञाय व्यासार्त्तसत्यवतीसुतात् ।
 प्रतोक्ष्य काल लक्षाब्द कले प्राप्तम्वान्तिकम् ।
 जन्मबोध घसा राशेर्नाशन धर्मशासनम् ।
 वशःकोतिकर्तुं सर्वकामपूरं परात्मनः ॥६॥

उनुश्रीराम के पुत्र कुश हुए । कुश के प्रतिषि, प्रतिषि क
 निदघ, निदघ के नभ, नभ के पुण्डरीक और पुण्डरीक के पुत्र क्षेमघन्वा
 हुए ॥१॥ क्षेमघन्वा के पुत्र देवानीक, देवानीक के हीन, हीन के परि-
 पात्र, परिपात्र के रमाहक, रमाहक के घर्क और घर्क के पुत्र रजनाभ
 हुए ॥ २॥ रजनाभ के सगरा, सगरा के विधृत, विधृत के हिरण्यनाम,
 हिरण्यनाम के पुष्य, पुष्य भ्रुव, के भ्रुव के स्वन्दन और स्वन्दन के पुत्र

अग्निवर्णं इत् ॥३॥ अग्निवर्ण के पुत्र लोभ हुए, वे अत्यन्त विक्रम वाले ही मेरे पिता थे । मैं उन्हीं लोभ का पुत्र मरूँ । कुछ लोभ मुझे पुत्र पौर हुत्त मुक्ति लहे है ॥४॥ पर तब ही कनक दास से निवान करण हुआ मरणा के रण का । मरगरी मृत्यु शान्ती शः पुत्र ने मुझे मारक घडनाए का प्रथम ज्ञान हुआ पौरः तब मैं लनि पुः की एक माय नव तक शोभा करने परशाः पायः मयी उः लः हुआ है । पौरः क धान परमात्मा का मायी व माय होने व कपीडा कः का पातः का माय हा जाता है तथा एवं तब ही वृद्धे पौरः मयी कानः का की पुत्रि होती है ॥५-६॥

अ नम्यवान्द्वयवच सूर्यवनातमुद्भव ।
 द्विनाय काऽनर धीमाश्विहापुदरलदास ॥७॥
 इति कलिकवच, ध्रुववा देवापिसंपुराक्षराम् ।
 धाम्नि विनयसम्य प्रवक्तुमुपचक्रम ॥८॥
 प्रत्ययान्तं नामिन्दमात्तवानुवृत्तुरानन ।
 तदापत्तनमादये अग्रद्वन्द्वमात्तना बुध ॥९॥
 तस्मात्पुत्रत्वा अन्ते मयातिनद्विपस्तत
 द्वैश्यान्त्या यथातिस्तु वदु तुवसुभय च ॥१०॥
 शक्तिप्राप्तौ त ॥ २ ॥ सुखं तु पूषन्व वराते ।
 जननामासं भूनादिभूतानां च सिसृक्षवा ॥११॥
 पुराश्रवणे वपस्तस्मात्प्रवित्वातमवततु ।
 प्रवीरस्तस्मिन्सुखे तस्मात्तथावदोऽभवत् ॥१२॥
 तद्वत्तथा च अमणिसुतदोऽमूरुमुकटाक्षणि ।
 वृहत्क्षत्रादभूद्वस्ती यदाम्ना हस्तिनापुरम् ॥१३॥

कलिक बोले—तुम्हारे वंशवधो सुन्दर मैं यह जल मय कि तुम सूर्यवध म उरगन हुए हैं । वस्तु तुम्हारे माय वदु मयापुत्रो क लक्ष्मणों से मम न एवं योनात् पूषन दूनरे लीन है ? ॥७॥ यह सुन कर दशदि व विना तुम्हें मरु के शत्रु से निवेशन किया । वे बोले—

मान दोनो परम परमेश्वर राजा है । इस समय प्राय मेरे आदेश को मान कर राज प्रहण कर अथवा परिदान्त करो । १२२-१२३।

मरो ह्याग्नियेषामि निजयोध्यापुत्रेऽनुना ।

हृत्वा म्लेच्छानर्षनिष्ठान्प्रशभूरविहिनकान् । १२४।

देवापे तत्र राज्ञे ह्या हस्तिनापुरगतने ।।

प्रभियक्ष्यामि राज्ञे हृत्वा पुत्रकसवानुरो । १२५।

मथुरायामह स्थित्वा हरिष्यामि तु या भयम् ।

सन्धाकर्णानुष्टमुत्तान कञ्जान्विनोदरान् । १२६।

हृत्वा कृत युग कृत्वा पालक्षिष्याम्यह प्रजाः ।

तदोवेश्य ग्रन स्वकंवा समाहृत्य रथोत्तमम् । १२७।

युधा शस्यास्त्रमुजलो सेनागणमोरच्छरी ।

भूत्वा महारथो लोक मया नह चरिष्यथः । १२८।

ह मरो । मर में प्रजापति का पीछन करने वाले, जीव-हितक प्राणियों म्लेच्छों का संहार करने वाले प्राणियों प्रवर्गी राजधानी पयोत्वा में प्रभियक्षित करेगा । १२४। हे देवापे । हे राजपते । युद्ध क्षेत्र में पुत्रकसो को मार कर मैं प्राणियों राजधानी हस्तिनापुर को राज्य पर प्राणियों प्रभियक्षित करेगा । १२५। मैं मथुरा नगरी में निवास करना हुआ तुम्हारे भय का नष्ट करेगा तथा सन्धाकर्ण, उष्ट्रमुत्त घोर एकजघ प्रादि को मार कर सत्युग को स्थापना घोर प्रजा को रक्षा करेगा । तुम सभी इस उपमन्वी वृक्ष का रक्षण करो घोर भेड़ रथ पर आरोहण करो । १२६-२७। तुम सभी शाश्वत विद्या में पारंगत एवं महारथी हो, प्रहृत्वादे प्राय ही विचारण करो । १२८।

विज्ञास्यन्पभूपालस्तथा भिनयान्विताम् ।

विवाहे रक्षिरावाङ्गी सुन्दरी रथा प्रशस्यति । १२९।

साधो भूपाल लोकाना स्वस्तये कुह मे धनः ।

रक्षिराश्वसुता शास्ता देवाने रवं समुद्रह । १३०।

इत्यादिवाप्तकथा. कल्के श्रुत्वा तो मृनिमि. सह ।

विस्मयाविष्टहृदयो मेनाते हरिमोषवरम् । १३१।

इति षष्ठ्यध्यायस्य समाप्तस्तुतमनिषो ।

रथो ज्ञानमणिप्रातघटितो वामनो पुरः ।

समायातो ज्वलद्विद्वेषान्प्राप्तो परिवारितो ॥३२॥

ददनुस्ते सदी मध्ये विश्वमम्मंथिनिमित्तो ।

भूपा मुनिगणा सन्या महर्षा किमिनीरिता ॥३३॥

हे मने ! विद्यापद्वय नरेण सप्तमो पश्य शोभयन्त तथा

रविगणो जन्मा यो तुन्दे शिवाह देवः । यत्र तुम समाप्त का

कल्याण करने के उद्देश्य से मरे स्वामी का वाचन करे ।

हे देवाये ! तुम भी रविगणव ही ज्ञान यन्त्री गुरुओं के विद्या

कर सो ॥३०॥ कश्चिज्जी के यह पादरासन युक्त दधन मुर पर मुनिर्षा

के गहिरु देवायि प्रथम विमिन्न दृग्यौ किं सादेह लोह कर दद

विद्यात करन सो कि कश्चि ही गगनात् विद्युत् एवं गाधार् ईश्वर है

॥३१॥ कश्चिज्जी के जंम ही यह सभददद वचन कहूँ जैसे ही साक्षात्

मार्ग से स्वच्छः पूर्वक वचने जाने करनेक रस्न टि से निमित्त दो गध

भवनीर्ण हुए । सूर्य के समान तैदास्य तन रथा में तज्जगत् दिव्य

सत्प्राप्त्य मरे हुए थे ॥३२॥ तब समय उगमिषण सभी मुनिगण और

राजापण विश्वकर्मा द्वारा निमित्त रथो को उतारे हुए दग कर यह कथा

—'यह कथा' कहत हुए विश्वव एक एवं प्रकट करने सके ॥३३॥

युधामादित्यमोमेन्द्रशमशैश्वरणाङ्गुली ।

राजानो लोकरक्षार्यमाविभंतो विदग्ध्यमो ॥३४॥

कालिकाच्छादितकरी मय सङ्गादिहोदितो ।

युता रथावाहृता एकदस्त समानया ॥३५॥

एव वदति विश्वेषे पद्मनाथे एनातने ।

देवा चवपुंः कुसुमेस्तुन्दुनुमुनयोऽग्रत ॥३६॥

गङ्गावारिवरिविलन्नशिरोमृत्तिवरागवान् ।

शर्मः पर्वतजासङ्गतिवस्तवतो बबौ ॥३७॥

पश्यायातः प्रमुञ्चिततनुस्तध्वचामोकरामो

धर्म्मार्जामः सुरचिरदटाकोरभृद्दण्डहस्तः ।

लोहातीतो निज्जननुमरुत्तादिताऽऽमर्ममघ-

स्तेजोरादिःमनकसदृशो मस्करो पुष्कराक्षः ॥३५॥

तभी कल्किजी ने कहा — यह सभी को विदित है कि तुम दोनों राजवत्स में विश्व-रक्षा और पृथिवी के वासनाय उत्तरन्त हुए हो । सुम्हारी उत्पत्ति सूर्य, चन्द्र, धूम और कुबेर के संघ में हुई है ॥३५॥ अब तक तुम धरत रूप तो दिखाये रहे हो । परन्तु अब, अब यहाँ मेरे पास आये हो तो मेरी आज्ञा न इन्द्र इरा भेजे गये इन रथों पर आरुढ़ हो जाओ ॥३६॥ अश्वापत्नी कल्किजी के द्वारा उक्त बधन बंधे जाने पर आगत से देवताओं ने पुष्पवृष्टि और मुनियों ने स्तुति की ॥३६॥ मन्द वायु प्रवाहित होने लगा । गिरगी के जटा बानस उन्मुक्त पाण्डवों के मितलन में विभूति भीग गई । मः परत ने उन विभूति के कण कभी परागों को उठा कर पार्वती के सगो में लगाते हुए कल्याण गुण का प्राप्ति की ॥३७॥ तभी सनक मुनि के समान अरयन्त तेजस्वी, धर्म भवन रूप सुरचिर जटाओं को धारण किये और हाव में दण्ड लिये एक ब्रह्मचारी बहूँ आये । उन्नी देव कान्ति तप्त स्पर्श के समान धमधमा रहो पी । महोदर बक्ष्यगरी उन कनक गोचर शिब महापुङ्गव के मुख पर सशय भाव परिलक्षित हो रहा था । उनके तेजोमय शरीर का स्पर्श होने ही असार के सम्पूर्ण पाशों का क्षय हो रहा था ॥३८॥

पंचम अध्याय

अथ कल्किः शपालोत्तय मदमाम्पतिभिः सह ।
 ममुरवाय वन्दे त वाधाव्याधमनादिभिः ॥१॥
 वृद्ध सयैश्वर्यं तं भिक्षुं मर्त्यायमममस्त्रुतम् ।
 पप्रच्छ को गवानस्य मय भाग्यादिहागतः ॥२॥
 श्रापयो मानवा लोके लोकानां पारशोच्छ्रया ।
 धरन्ति सर्वमुद्दूदं पूर्णां विगतबलमया ॥३॥
 ग्रहं कृतयुगं शीतं तवादेशकर परम् ।
 तवाविर्भावविभवमोक्षणायमिहागतम् ॥४॥
 निरशायिर्भवान्कालं लोपाधित्तमुपागतः ।
 क्षणदण्डलक्षणाङ्गं मयि यथा रचितं स्वया ॥५॥
 पद्माहोरात्रमामन्तुं सवत्सन्मुपादय ।
 तवेतया धरन्त्येने मनश्च भक्तुर्देहा ॥६॥

मुक शीत—उक्त ब्रह्मचारी को देखते ही भाग्यर करके ने
 अपने समासरो के सहित उठ कर पाछ, धर्मों को प्राचयन प्रावि ने
 उक्त पूजन किया ॥१॥ सभी पापनों के द्वारा नमस्कार योग्य उन
 भिक्षु ब्रह्मचारी को प्राङ्ग पूर्वक बैठा कर कलि-कली ने पदक दिया—
 भाव को है ? हमारे कोपार से ही पायका यहाँ प्रगणन हुआ है ॥२॥
 पापों से परे रहने वाले जो उन्मुख्य सब के मुद्दूद है, वे लोक-कल्याण
 ही पृथिवी पर विचारण किये करते हैं ॥३॥ भिक्षु ने कहा—हू श्रीरते !
 मैं आपका भाग्यकारी उद्भुत हूँ । आपसे परकार का प्रत्यक्ष प्रभाव
 देखने के निमित्त ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ ॥४॥ या निदरति एव

साक्षात् बाल स्वरूप है । परन्तु धाम, रत्न घोर सवादि ष गो रे द्वारा इन समय रचाधि सहित हो गए हैं । यह सम्पूर्ण विश्व प्राणी ही माया में प्ररट हुआ है । १। सावरी ही गता का अनुभव करते हुए यह पशु, दिवस, रात्रि, मास, ऋतु सवस्तर, युगादि काल एवं चोदशो मनु-यह सभी नियमित रूप में विचरते करते हैं । ६।

स्वायम्भुवस्तु प्रथमस्तत स्वारोचिषो मनुः ।

तृतीय उत्तमस्ताम्बतुर्थस्तामसः स्मृतः । ७।

पञ्चमो रेवत षष्ठश्चाधुप परिशीलितः ।

वैवस्वत गमसो वै ततः सावर्णिगृपः । ८।

नवमो दशसावणिग्रं हासावणिवस्ततः ।

दशमो धर्मसावणिरैकादशः स उच्यते । ९।

रुद्रसावणिवस्ततः मनुर्वै द्वादश स्मृतः ।

त्रयोदशमनुर्वै दसावणिलोकविभूतः । १०।

चतुर्दशेन्द्रसावणिरैते देव विभूतयः ।

यान्त्वाद्यान्ति प्रकाशन्ते नामरूपादिभेदतः ११।

द्वादशान्दसहस्रेण देवाताञ्च चतुर्गुणम् ।

चत्वारि त्रीणि द्वे चैक सहस्रगणित मतम् । १२।

ताश्चछत्ताति चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव हि ।

सन्ध्याक्रमेण तेषान्तु सन्ध्याशोऽपि त्रयाविधः । १३।

पशुले मनु स्वायम्भुव, दूसरे स्वारोचिष, तीसरे उत्तम, चौथे तामस, पाँचवे रेवत छठवे चाधुप, सातवें वैवस्वत, आठवें सावर्णिग, नवें दशसावणि, दसवें सहसावणि, ग्यारहवें धर्म सावणि, बारहवें रुद्र सावणि, तेरहवें देव सावणि घोर चोदहवें इन्द्र सावणि-यह चोदशों मनु प्राणियों की विभूति रूप है । यह सब अपने-अपने नाम रूपादि के भेद से चलते हुए प्रकाशित होते हैं । ७-११। बारह हजार दिव्य वर्षों की एक चतुर्गुणी होती है, जिसके अनुहार चार हजार दिव्य वर्षों का चापुग, तीन हजार दिव्य वर्षों का त्रेता, दो हजार दिव्य वर्षों का द्वापर

घोर एक प्रकार दिव्य वर्षों का कनिष्ठ होना है । १३। इन चारों युगों का सम्मिश्रण (संधिभाव) क्रमशः चार सौ, तीन सौ, दो सौ, घोर एक सौ वर्ष का होता है । इन चारों युगों की योग मन्वन्त का क्रम भी इसी प्रकार गणना साहित्ये । १३।

एकसप्ततिक त्रय युग भूद्वन्ते मनुभुवि ।
 मनुनामपि सर्वेषामेव परिणतिर्भवेत् ।
 त्रिवा प्रजापतेस्त्वत्सु निजा सा परिकीर्तिता । १४
 ब्रह्मोरायश्च पदान्ते मासगवत्सगर्त्तवः ।
 सद्गुणयिक्त कालो ब्रह्मणा जन्ममृत्युञ्ज ॥ १५।
 शतस्यत्सर ब्रह्मा लय प्राप्नोति हि रश्मि ।
 तस्मान्ते स्वप्नानिमघ्नादुत्थित नृजति प्रभु । १६।
 तत्र कुनयुगान्तेऽहं काल सदम्भ गानकम् ।
 कुतकृत्या प्रजा मम तन्नाम्ना मां कुत विदु । १७।
 इति तद्वच आश्रुत्व कल्किर्नजजनावृतः ।
 प्रहर्षमनुल लब्धा श्रुत्वा तद्वचनामृतम् । १८।
 मध्विद्वेषामुनालक्ष्य युगस्थाहृ जताग्निह्वान् ।
 योद्दधु काम कलेः पुम्भा हृष्टो विजयते प्रभु । १९।
 गजस्यतुरगान्तरांश्च योधात्कनकविचित्रविभूषणा-
 चित्ताङ्गात् । घृतविविधकराभ्यन्मधुगान्मुद्गिनिपु-
 णान्गणवध्वमानमध्वम् । २०।

प्रत्येक मनु एकद्वन्द्व-व्युत्पत्ती तब पूर्ववर्ती को घोरने है । इसी प्रकार सब मनु बनचते रहते हैं । सोऽहरे मनु जिये समय तब पूर्ववर्ती का मीन करते है, उतना समय ब्रह्मा का एक दिवस होता है । इतने ही परिमाण को ब्रह्मा को एक रात्रि होती । १४। इसी प्रकार दिवस-रात्रि, पक्ष, मास, समस्वार घोर श्रुतु आदि की उपाधि से ब्रह्माजी को जन्म-मृत्यु मारि वा विधात होता है । १५। ब्रह्मा अपनी सो वर्षों को प्रायु पूर्ण होने पर सब दरम में सब हो जाते है । फिर

जब प्रलय काल बोन जाता है तब धातके नाभि-कमल में उनका पुन, उदभव होता है । १६। मैं उक्त काल का अज्ञ रूप ही कृतयुग हूँ । मेरे द्वारा अष्ट धर्म पाना जाता है । मेरे द्वारा सम्पूर्ण प्रजा धर्म का प्रगुष्टान करते हुए धन्य हो जाती है इसी लिए जमीवन मुझे कृतयुग कहते हैं । १७। सत्ययुग के इस प्रकार के बधनों को सुन कर आपने जनों के सहित बलिजी परम हृदित हुए । १८। कलियुग के नाश में समर्थ बलिजी ने सत्ययुग को धाता देव कर बलियुग के शासन में स्थित विद्यमान नामक मयरी में युद्ध करने की इच्छा करते हुए आपने अनुमानियों से बोले । १९। हाथी पर घासट होकर युद्ध करने वाले, इश्व घोर रथ पर चढ़ कर युद्ध करने वाले तथा पक्षि सैनिक जो देह पर अद्भुत स्वर्णभूषण और शस्त्रास्त्रों के धारण करने वाले हैं, ऐसे युद्ध-कुशल घोड़ों को मारना करो । २०।

षष्ठ अध्याय

इति तौ मरुदेवायो यत्वा कल्केर्षचं पूरः ।
 कृतोद्वाही रथान्दोः मनावाही महाभुजी । १।
 मानायुधधरैः सैन्धवैः सृष्टो गुरमानिवी ।
 ब्रह्मगोषाड्गुलिप्राणो दक्षितो बद्धहस्तको । २।
 काण्ड्यायसशिरस्त्राणो धनुर्द्धं गधुन्धरी ।
 प्रजोहिणोभिः पडभिस्तु कम्पयन्तो भुव भरते । ३।
 विश्वायूपपुपस्तु गजसक्षं ममचृतं ।
 अश्वं सप्तज्ञानियुतं रथे समसहस्रकं । ४।
 पदानिभिद्विनक्षत्रं सप्तद्वं धृतं कामुंके ।
 वातोद्धतास्रगण्डोणैः नवंत परिवारित । ५।
 रुधिराश्रसहस्राणां पञ्चाशद्भिर्महारथैः ।
 गर्जंश्शयतंमस्तनंवलक्षं वृंहो वमी । ६।

सुतजी बोले—कल्किजी की माता से यह और देवापि ने विवाह कर विधा और वे दोनों महाबाहु दिव्य रथों पर सारुद हुए वहाँ पर पहुँचे । १। अपने महाबाहो होने का परिमाण अपने वापि से दासों को अपने देह को गुरसित किये हुए और स मुलियों से बाल्य धारण किये हुए थे । अस्त्रशस्त्री से अने प्रकार सुसज्जित रथ वीरों के साथ प्राणिलक्ष बना ही । २। वे अपने शिरो पर काण्ड्यं धनुं का विररवाण्य धारण किये थे तथा सर्व ज्येष्ठ धनुष बाणों से सज्जित अपनी द्वा प्रजो-

द्विती सेना में पृथिवी को कम्पित कर रहे थे ।३। विशालसूत्र-नरेश भी
 दशमी एक लाख हाथी, एक बरौह घोड़े और सात हजार रथों में
 सम्पन्न सेना के साथ थे ।४। उनके साथ दो लाख वैदिक सैनिक धनुष
 बाणों से मुनविभ्रत थे । बाणों के भोग में उनके सके घोर दुरूप हिन
 रहे थे ।५। इनके पालरिक्त पचास हजार माल वणों के अश्व, दस हजार
 सदसस गज एक अश्वों मत्तारथों तथा नौ लाख पशुनि थे ।६।

सर्लोहिनीभिर्दंशभि बलिष परपुरञ्जय ।

समावृत्तस्वगा देवरेवमिन्द्रा दिवि स्वराट् ।७।

भ्रातृपुत्रनुहृद्भिश्च मुदित सैनिकवृत्त ।

ययौ दिग्विजयाकाङ्क्षा जगतामोदवर प्रभुः ।८।

काले तस्मिन्निद्वजो भूत्वा घम्मं परिजनं सह ।

समाजागत कनिना बनिनापि निराकृत । ९।

शून्य प्रमादभय मुख मुदमुप स्वयम् ।

योभमर्थं तनोऽर्धं स्मृति क्षेम प्रतिश्रवम् ।१०।

नरनारायणो चोभौ हरेरशौ सपञ्चनो ।

घर्मन्स्वेतान्पमादाय पुत्रान्स्त्रोश्चायतस्वरन् ।११।

श्रद्धा भैषी दया शान्तिर्युष्टि युष्टि क्रियोद्यति-

वृद्धिर्मेवा तिनिष्ठा च ह्योमूर्तिघम्मपातका ।१२।

एनास्तेन सहायता निजबन्धुगणैः सह ।

कल्किमालोकित तत्र निजकार्यं निवेदितुम् ।१३।

अशु पुरो के विदेना कल्किजी स्वर्ग में सुतोभिन सुवर्गिन द्द
 ने सचान दस अशोहिणी सेना के साथ पारन्त सोभा की प्राप्त हुए ।७।
 दस प्रकार भार, पुत्र, सुहृद और सैन्य-समूह में सम्पन्न होकर जगदी-
 चर कल्किजी ने दिग्विजय की इच्छा से अस्थान विवा ।८। सभी कतिमुप
 के द्वारा निवृत्त किया हुआ घम आह्वण देना में वहां उपस्थित हुआ
 ।९। शून्य, प्रमाद, घम, सुग प्रगल्भता, घोष, धर्म, अर्थ, स्मृति,
 क्षेम और प्रति, य नामक उसके सेवक साथ थे ।१०। भगवान् विष्णु

के स ए रूप उपोत्तिष्ठ नः नारायण नो तथा अपने स्त्री पुत्रादि को साय वेदर धर्म की प्रथा पूर्वक वही था क्या । १११। यज्ञ, मैत्री, दया, पारित, मुष्टि, पुष्टे, क्रिया, उन्नति, युद्ध, मेधा, शिक्षा, ह्य सादि धर्म की रक्षा में तत्पर यह मने साकार रूप में अपने बावो से युक्त होकर कर्तव्यों के दर्शनार्थ शीर स्वर्गार्थ विवेकभाव बड़ा उपस्थित हुए । ११२-१३।

कतिकद्विज समाम्नात पुत्रयिन्वा ययागिनि ।

प्रोवाच विनयापन्न कन्त्व कम्मादिहायत । ११४।

श्रीभि पुत्रं च सहित क्षीणपुण्य इव सह ।

कस्य वा त्रिययाद्वात्तस्तनत्वं वेद तावत् । ११५।

पुत्रा त्रिययाच्च से दीना क्षीणस्यश्चमपीहया ।

वैष्णवा साधवो यद्वासावप्येष्ट निरम्कन । ११६।

कुरुकरिति बच थुन्वा धर्मं, धर्मं निज स्मरन् ।

प्रोवाच कम्बानावमनायम्बलिकाम् । ११७।

पूर्वं श्रीभिनिज्जखने कुनाञ्जलिपुटेहृग्निम् ।

स्तुत्वा नम्वा पुत्रयिन्वा मुद्दिन त दयापरम् । ११८।

शृणु कल्के समाश्रयत प्रयोऽद्य यज्ञान्पिता ।

तव बल स्थलाऽमानः कामद मवदेहिनाम् । ११९।

अपणात् परितः न ब्राह्मण ॥ देवते ही विनय पूर्वक इस विनय से उनका पुत्रन क्रिया शीर होने-साथ कोन है ? वही से चागमन हुआ ? । ११४। शीर पूर्व मनुष्य क क्षमात धार्य धारण श्री पुत्रादि क सहित किन गण्य से यज्ञ साय है यह सब मुझे यथाथ रूप में बतलाइए । ११५। बेश वैष्णव साधु वास्तव्य से पराजित हो जाते हैं, नीच ही धार्य धारण-श्रीर्य में क्षीर हीरर श्री पुत्रादि के सहित परश्वर कातर कबो हार रहते हैं ? । ११६। अत्यन्त कातर शीर धारण रूप से धारण हुआ धर्म उद्धार-वधि कतिकभी क बचन सुन कर अपने कन्शुकार्य विवेकन करने लया । ११७। अपने अपने अनुवाचिणों के सहित हाथ जोड़े शीर धारण-धाम

सदा दद्यान्त प्रभु वा पूजन कर प्रणाम और स्तुति करने लगा । ११।
धर्म बोवा—हे प्रभो ! मैं घबरा दृता-न निवेशन करता हूँ, हे मुनिये !
मैं द्रष्टृ-पत्न्य धर्म प्राप्त के वक्ष स्पल तो तत्प-न हुआ है । मेरे द्वारा
नभी प्राणियों के कार्यों की गिडि होती है । ११।

देवानामप्रणीहंभ्यकव्याना कामधुनिवभुः ।

तवाज्ञया चराम्येव साधुकीर्तिर्लोकदन्वहम् । १२०।

सोऽहं कालेन शलिना बालनापि निराहुव ।

नकृत्ताम्बोजशरै सर्वैरावासयाक्षिता । १२१।

अधुना तेऽपिनाधार । पादमूलमुगानता ।

यथा सत्वारकालाग्निमतसा साधवोऽद्दिता । १२२।

इति वाग्भिरपूर्वामिर्धम्मस्य परितोऽपत ।

कल्किः कल्कहूर श्रीमानाह सहर्षवच्छ्रुतैः । १२३।

धम्म कृतायुष पश्य भव चन्द्रानुवशजम् ।

मा जानामि यथा जात धातुषाणितविग्रहम् । १२४।

कोटाकौशोद्धदसनमिति मत्वा मुनी भव ।

अर्धंणवानामन्येषा तवापद्रवकारिणाम् ।

जिधामुर्मानि संजामिश्चर गा त्वं निविभदः । १२५।

देवकार्यो मे प्रथम कृत्वा योग्य मे वहास भव हृष्य-कश्य के

स त वा आशिकारी हूँ । मैं वहा फल प्रदान करके साधु-धन वा प्रकीर्ण
पूर्ण करता हूँ । आपकी आज्ञा से मैं सर्व साधुओं का कार्य सिद्ध करता
हुआ प्रवृत्त हूँ । १२०। इन समय शक, कम्बोज, शरर आदि कलिपुत्र के
घातन में रहते हैं । कालक्रम के धारण में उन समयवान् कलि से ही
हारा हुआ है । १२१। हे शलितधार ! इन समय साधुजन विश्वम्भो
कानामि से सतत रूप पीडित हैं । हमी लिए मैं आपके चरणों की
धारण में उचित हुआ है । १२२। धर्म के इन प्रवृत्त बन्धों को मुन कर
पाप हारी बन्धों को सब के लिए द्रष्टृ-पत्न्य करने वाले घबरा रहते हूँ
। १२३। उन्होंने कहा—हे प्रभो ! दूर देखो, माया वा घातन हो चुका

सारथि, धनि प्राप्तन रूप प्राथम्यं हुषा । इमं प्रकार धर्म रूप नायक
क्रियानुष्ठान हयो महायज्ञ से सम्बन्धित होकर बस दिशा । ३१ ।

यज्ञदानतप. पाश्र्वर्मैश्च नियमं वृत्तः ।

खशकाम्बोजकाग्स्वर्वाग्स्वराग्वर्वरापि । ३२ ।

जेतु कल्किर्ययो यत्र कलेरावासमीप्सितम् ।

भूतवासबलोपेत सारमेयधराकुलम् ॥ ३३ ॥

गोमासपूतिगन्याद्व्य काकोत्सुरशिवावृतम् ।

श्रीणा दुर्द्यूतकलहवियादव्यसनाश्रयम् । ३४ ।

घोर जगद्भयकर कामिनोस्वामिन गृहम् ।

कलिः शूरवोद्यमं कल्के. पुश्रीयवृत क्रुधा । ३५ ।

पुराद्विंशसनात्प्रायारप्रैचक्राक्षरयोपरि :

धर्म. कलि समालोक्य ऋषिभि परिवारितः । ३६ ।

मुद्युधे तेन सहसा कल्किवाक्यप्रचोदित, ।

ऋतेन दम्भः सप्रामे प्रसादी लोभमाह्वयत् । ३७ ।

इस प्रकार यज्ञ, दान, तप, यम, नियम आदि से सम्बन्धित हुए
भगवान् कल्कि यज्ञ, कम्बोज, शबर तथा चर्बर आदि म्लेच्छों की विजय
कामना से कलि के आवास वाले स्थान में पहुँचे । वहाँ भूमी का दृढ
आवास होने से उस स्थान में सब घोर स्थान भूँदते थे । ३२-३३ ।
इस स्थान में गो मास की दुर्घटना घट रही थी । शीघ्रो घोर उल्लूकी में
पूर्ण तथा दूत वा आश्रय एवं द्विषो के विवाद लयी क्लेश इवमे तथा
हुमा था । ३४ । सत्तार के लिए भयब्रह्म यह नगरी भय कर प्रतीत होती
थी । यहाँ के पुरुष द्विषो की आशा के अनुवर्ती थे । वहाँ का प्रथोभवर
कल्कि जी का प्रकलण सुन कर अपने पुत्र-पौत्रादि के सहित उल्लू की
भ्रजा वाले रूप पर आशङ्क होकर विजयनगरी से बाहर भागा । उस
कलि को देख कर भगवान् कल्कि की आशानुसार ऋषियों के सहित
धर्म से उसके साथ संशाम प्रारम्भ किया । इस से श्रुत शीघ्र लोभ से
प्रसाद भिड़ गया । ३५-३७ ।

शुम्भः परिवृतो मृत्युञ्जितावेक्य योपनात् । ४५।

ताम्पा स मृगुधे कल्किः सेनागणसमन्वितः ।

शुमानां कल्किर्सेव्यानां समरस्तुमुलोऽभवत् । ४६।

हृदिपित्तवृंहिते दन्तशब्देष्टद्वारनादितः ।

दूरोत्क्रुष्टैर्बाहुवेणैः सशब्दस्तलताडनं । ४७।

सपूरिता दिशः सर्वा लोका नो शर्म लेभिरे ।

देवाश्च भयसशस्ता द्विवि व्यवस्तपया ययुः । ४८।

पापदंष्ट्रं खड्गशक्त्युच्छिन्नसूतं दाघातं वाणपातं च घोरैः ।

युद्धे दूराश्चिन्तयन्वाह्वानमध्या पेतु सत्ये शतश कोटिशश्च

देवो मे प्रेष्ट यह शोभा भर्तुः घोर युद्ध मे प्रवीण, परदात

बली घोर देवताओं को समझौत करने में समर्थ थे । इन दोनों का रूप

एक सा था । ४५। यह दोनों दिग्बिजयी, यज्ञ जैसे बडोर शरीर वाले थे ।

दोनों मिल कर मृत्यु की भी युद्ध में जीत लेने में समर्थ थे । अपनी

बलवती सेना के सहित यह दोनों कदा धारण कर पैदल ही युद्ध में

उत्तर हुए । ४६। इन कौक विकोक से साथ कल्कि जी का घोर सग्राम

ही रहा था । उनकी सेना के समुद्र घोर चढ़कर युद्ध कर रहे थे । ४६।

घड़ों का हीतना, हाथियों की बिघाट तथा दण्डों का शब्द, धनुषों की

टकार, तीरों के भुजाघात आदि से भयप्रद भीषण शब्द होने लगे

। ४७। उस शब्द से दशो दिशाएँ भूँच उठी । कोई भी जीव मग्न-रहित

नहीं था । देवता भी हर वे कारण गगन पण्डित से उल्टे-सीधे मार्गों

से भागने लगे । ४८। पाश, दण्ड, खड्ग, शक्ति, धनुष, मदा तथा भयकर

वालों के सायात से करोड़ों मृगों के हाव, पैर, कटि आदि विभिन्न

धम कट-कट कर गिर रहे थे, जिनसे युद्ध भूमि प्राण्यारित होने लगी

थी । ४९।

करने हुआ के घग र रूप से सार-हीन होना हुआ करने यह मे जा पहुँचा । १४। उपर प्रस ह द्वारा पदाघात को प्राप्त हुए लोच का दार बट गया । कृत्तो से मुक्त उसका रथ शिवन भिन हो गया । तब यह उसे छोड़ कर रवन बमन करता हुआ रण क्षेत्र से भाग लहा हुआ । १५। अभय मे मुद्र कर्ता हुआ क्रोध भी द्वार गया । उरने छ नेत्रों मे सारी छाई थी । चूको से वृषभ दुर्वध पूर्ण अपने क्षिप्र-मिन्न रथ को वही पदा छोड़ कर वह भी तिसवनपुत्री से जा चुका । १६।

भय मुखसलाघाताद्गतासु यंपतद्भुवि ।
 निरयो मुदमुष्टिभ्या पीडितो वनमाद्यथै ७।
 साधिव्याध्याद्यम सर्वे त्यक्त्वा बाहुमुपाद्रवन् ।
 नानादेशान्भयोद्विग्न कृतवाणप्रपीडिताः । ८।
 धर्म कृतेन सहितो गत्या विशसन कलेः ।
 नगर बाणदहनर्ददाह कलिना सह । ९।
 कलिर्विस्तुष्टसर्वाङ्गो मृतदारो मृतप्रज ।
 अगामको रुद्रन्दीनो वपान्तरमलक्षित । १०।
 मरुस्तु शककाभ्योजाञ्जघ्नेदिव्यास्त्रतेजसा ।
 देवापि सवराञ्जोलाःसर्वरास्तदपणानपि । ११।
 दिव्यास्त्रशस्त्रसम्पातंरदर्दयामास वीर्यवान् ।
 विशाखयूषभूपातः पुलिन्दान्पुनरुत्तानपि । १२।

सुध के सनाघात से घातित हुआ भय प्राण त्याग कर घराघाती हुआ । श्रोत्र के मुष्टि प्रहार से पीडित हुआ निरय भी तुरन्त ही वना सय को चला गया । ७। तस्युग के बाणों से घाहन हुई शारि-भ्यापि अपने बाहुनों का परिस्थाण करके उपर-उपर भाग गईं । ८। इसके पशुपान् सस्युग को पाव लेकर धर्म कलि की राजधानी विनयन से प्रविष्ट हुआ घोर उरने कलि के शरित सम्पूर्ण नगर को अपनी बाण-ग्नि से जला दिया । ९। कलि के सभी घग बल गये । उसकी सतति और पानी भी नगण को प्राप्त हुई और वह हरय रोता हुआ मर-उट कर

रहे थे १९६१ फिर उसपर विजेना महाबाहु कल्कि जी ने कोष में भर कर भस्वास्त्र के द्वारा विकोक का शिर छेदन कर दिया १९७१ महावली विकोक मृत्यु को प्राप्त हो गया था । परन्तु जैसे ही उसके भाई लोक के लसे देवा जैसे ही वह पुनर्जीवित हो गया । यह देखा कर सभी देव-गण और स्वयं कल्कि जी भी घबराये करने लगे १९८१

प्रतिकर्तुं गर्दापाणे कावस्याप्यच्छिनच्छिरः ।

मृत कोको विकोकस्य दृष्टिग्राह्यस्तमुत्थितः ॥१६॥

पुनस्तौ मिलितौ तेन युयुधाते महावली ।

कामरूपधरो वीरो वातमृत्यु इवापरो ॥२०॥

खड्गचर्मधरो कल्कि प्रहसन्तो पुनः पुनः ।

कल्कि कृषा तयोस्तद्वद्वारणेन शिरसी हते ॥२१॥

पुनर्लम्बे समालोक्य हारश्चन्तापरोऽभवत् ।

विसत्त्वस्वमयातोमय तुरगस्तावताडयत् ॥२२॥

कालिकल्पो दुराघपौ सुरमेणादितौ भृशम् ।

कल्केस्त जघ्नतुर्बाणैरमर्षिताम्रलोचनी ॥२३॥

तयोर्भुजान्तर सोऽश्व कृषा समदशद्भृशम् ।

तौ तु प्रभिन्नास्थिभुजौ विशस्ताद्भृदकामुंकीः

पुच्छ जगृहत्तु सप्तैर्गोपुच्छ बालकाविव ॥२४॥

फिर कल्कि जी ने विकोक को पुनर्जीवित करने वाले गदापाणि लोक का ही रज्ज्वेद कर दिया । इस प्रकार लोक गर गया, परन्तु जैसे ही उसे विकोक ने देखा, जैसे ही वह भी पुनर्जीवित हो गया १९६१ तब इन्द्रानुसार स्वयं पारण्य में सर्व्व महावली लोक-विकोक दोनों मिल कर कल्किजी के साथ दूसरे कात के समान पौर युद्ध करने लगे १९०१ यह खड्ग और शस्त्र कर बारम्बार कल्किजी पर घातान करने लगे । तब कल्किजी ने प्राप्त कोपित होकर उन दोनों के ही अपने-आपों में मर्दनक उठा दिये १९११ परन्तु, जब दोनों के ही मर्दनक अपने-अपने षड में स्वयं लुप्त गये, तब तो कल्कि जी को बड़ी चिन्ता हुई । फिर वे लोक-विकोक द्वारा अपने पर प्रहार होते देख कर स्वयं भी

निहित पुन, नलकारने लये ।२६। तभी ब्रह्मा जी वहाँ जाये और
 कल्किजी से हाथ जोड़ कर बोले कि हे प्रभो ! यह लोक-विकोक वास्तु-
 म्नों से मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकते ।२७। इन दोनों को एक समय में
 ही क्षणभंग मार कर इनका वध कर दीजिये । क्योंकि जब तक यह दोनों
 परस्पर एक दूसरे को देखते, तब तक इनकी मृत्यु संभव नहीं है । अतः
 भाव इसी प्रकार इनकी मानिये ।२८। ब्रह्माजीके वचन सुन कर कल्किजीने
 शस्त्रास्त्र और वाहन का परिस्थान कर दिया और दोनों दानवों के मध्य
 पहुँच कर दोनों हाथों से एक साथ उन दोनों के शरीर के समान मुष्टि-
 प्रहार किया, जिससे उनका मदनक पूर्ण हो गया ।२९। देवनागों के
 लिए भयप्रद और सब बीषों का मनिष्ट करने में तत्पर वे दोनों दानव
 मस्तकों के पूर्ण होने से दूट कर गिरते हुए पर्वत-शिखरों के समान
 धरती पर गिरिरे ।३०।

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्यं गन्धर्वाप्सरसा गणाः ।

ननृतुर्जगुप्सुष्टुबुध्च मुनयः सिद्धचारणाः ।

देवाश्च क्रुमुमासारंर्वषपुं ह्यर्षामानसाः ।३१।

दिवि दुन्दुमयो नेदुः प्रसन्नाश्चामवन्दितः ।

तयोर्वंशप्रमुदितः कविर्दशसहस्रकान् ।

सादवान्महारयान्मासादहनद्दिव्यसायकैः

प्राशः शतसहस्राणा योधाना रणभूर्धनि ।

सय निन्वे सुमन्त्रस्तु रयिना पञ्चविंशतिः ।३३।

एवमन्ये गार्गभर्ग्यं विशालाद्या गहारथान् ।

निजघ्नुः समरे क्रुद्धा निपादान्मलेच्छवर्बरान् ।३४।

एव विजित्य तान्मिष्यन्किल्किभूंपरायणैः सह ।

शय्याकर्णोश्च मस्ताटनगरज्जेतुमाययौ ।३५।

नानाभाद्यं लोकासघं वंराश्रेर्नानावस्त्रं भूंपरीभूंपिताङ्गैः

नानावहैश्चामरैर्बोज्यमानैर्गतिधोर्दुष्टुं कल्किरत्नुप्रसेनः ३६।

पह देख कर मत्स्यन्त प्राशपर्यं मे चरे गंधर्वं और अक्षरार्णै

तृतीयांश—

अष्टम अध्याय

सेनागणं परिवृत कल्किर्नारायणः प्रभुः ।
भल्लाटनगरं प्रायात्प्रङ्गं पृक्तसिन्धवाहनः ॥१॥
स भल्लाटेश्वरो योगी ज्ञास्वा विष्णु जगत्पतिम् ।
निजसेनागणैः पूर्णो योद्घुकामो हरि रयमो ॥२॥
स हर्षोत्तुलक श्रोमान्दोर्घाङ्ग कृष्णभावनः ।
शशिध्वजो महाम्तेजा गङ्गायुतबलः सुधीः ॥३॥
तस्य पत्नी महा देवी विष्णुव्रतपरायणा ।
सुशान्ता स्वामिनः प्राह कल्किना योद्घुमुद्ययम् ॥४॥
नाथ कान्त जगन्नाथ सर्वान्दर्वामिनः प्रभुम् ।
कल्कि नारायण साक्षात्कथं त्वं पृहरिष्यसि ॥५॥
सुशान्ते परमो धर्मः, पूजापतिर्विनिर्मितः ।
युद्धे पृह्वारः सर्वत्र गुरो शिष्ये हरेरिव ॥६॥

सूत जी बोले—तदनन्तर अपने भस्व पर घास्ट हुए कल्कि जी
वृष्ण धारण किये हुए, सेना के सहित भल्लाट नगर में पहुँचे ॥१॥
योगिराज भल्लाट नरेश ने कल्कि जी को साक्षात् जगदीश्वर विष्णु
जाना और वह उनके युद्ध करने के लिए सेना सहित नगर से बाहर
चले ॥२॥ उस समय वह दीर्घांग, श्रीमान्, कृष्ण भवन, महाबली एवं
महा तेजस्वी गङ्गा युति भ्रज हर्ष से पुनर्गित हो रहे थे ॥३॥ उन राजा
की पत्नी विष्णु व्रत-परायणा महादेवी सुशान्ता थी । उसने अब अपने
पति को कल्कि जी से युद्ध के लिए जाने को उद्यत देता तब वह कहने
लगी । हाँ है नाथ ! हे स्वामिन् ! कल्कि जी ही साक्षात् जगन्नाथ विष्णु

नया-स्वल्पा विनाश भीना मात्र ही सम्पत्ता चाहिये । ११०। ईश्वर के प्रवचन धारण करने पर कामादि माया बस कर दैविक गुणों का सम्निवृत्त होना भी अनिवार्य है । जब कामादि दिव्यों का पारोक्षिक होना देह धर्म ही है, तो उनके तरीक में भी वह क्यों नहीं बगल होगी ? । ११। पूर्ण ब्रह्मभाव सम्पन्न ईश्वर ब्रह्म ब्रह्मे जाने है घोर जब वह तरीक धारण कर लेते हैं सब उन्हें परोरिक्त कहते हैं । सेवक को भेद दृष्टि क सम ही। धर्मानु धर्मज्ञान की उन्नति होने पर उन्नत। अन्य सब घोर वदत भी उभी प्रसर नदत है । १२ ।

सेव्यसेवकता विष्णुर्माया सेवेति कीर्तिता ।
 द्वंताद्वं तस्य चेष्टेषा त्रिवर्गजनिका कृताम् । १३।
 भक्तोऽह कल्किना भोक्षु यामि कान्ते स्वसेनया ।
 त्व न पूजय कान्तेऽथ कमनारतिमोक्षवरम् । १४।
 कृतार्थाऽह त्वया विष्णुसेवासनिनितात्मना ।
 स्वामिनिह परनापि वंशुषो प्रयिता गति । १५।
 इति तस्या बल्लुवाग्नि प्रणनायाः शशिष्वज ।
 भक्तानां वंशुष मेने साधुनेना हृदि स्मरन् । १६।
 तामासिङ्गम प्रमुदिन, दूरं ब्रह्मिरावृत्तः।
 वदन्नाम स्मरन्त्या वंशुषोर्दधुव यो । १७।
 गत्वा तु कलिहसेनाया विद्वाव्य महती चमूम् ।
 शरणाकण्ठगणैर्वीरैः सन्दर्दं हृद्यतायुधैः । १८।

सेव्य-सेवक भाव ही सेवा है । यह कार्य विष्णु-पूजा का ही है । इस द्वै शक्ति चेत्य के द्वारा ही स ब्रह्म दुख त्रिवर्ग को प्राप्त कर लेते हैं । १३। हे काले ! यही कारण है कि मैं अपनी सेवा के महिष बलिहारी से मुक्त करने के निर प्रस्थान कर रहा हूँ । हे शिवे ! इतर तुम कमलापात्र भवनात् विष्णु का पूजन करो । १४। सुशान्ता ने कहा— हे नाथ ! मात विष्णु सेवा द्वारा उन्हीं में मोक्ष हो गये, इतने में भी धर्म ही नहीं है । इह भीक घोर परलोक में भगवान् विष्णु की सेवा के

साक्षर होकर काई भाग रहा है, कोई भीतर कर रहा है, कोई बाहर-
नाद कर रहा है, किसी पर रक्त को चार पड़ रही है, कोई एक दूसरे से
गुंथे हुए ही पृथिवी पर बिर गड़े हैं तथा काई हाथो या प्रथ के पार्श्व
घपका रथो के पदियों से ही सुबने या नहे है ।३०।

निषेत् प्रथो वीर्य फोटिफोटितहृक्षयः ।

नते सानन्दमग्नेहा सवन्तो सविरोदकम् ॥३१॥

उष्णीपहसा उच्छिन्न गवरीघोरयत्पवाः ।

करोरुमीनामरणासिकाञ्जानवाभुक्ता ३२

एष प्रवृत्ता सप्रामे मत्त सद्योऽतिदारुणा ।

सूर्यकेतुस्तु मरुणा सहितो मुपुषे वनो ॥३१॥

वानवत्स्यो दुःखाद्यो मरु वागेरवाऽवत् ।

महस्तु तत्र दशमिर्माप्रणेन्दैरयद्भुजम् ॥३२॥

मरुवाणाहृतो वीरा सूर्यकेतुरमपित ।

जगाम तुरगान्कोटगपदोद्धासेन तद्रथम् ॥३१॥

वर्णविष्ठाऽथ तेनापि तस्य वक्षस्यतद्विभम् ।

मदाधानेन तेनापि मरुभूं च्छामिवापह ॥३६॥

इस प्रकार, इस युद्ध में हजारों करोड़ वीर नाच करे प्राप्त हुए ।
एणसेन में एक ही सवे यह बनी । इस नदी के प्रवाह को देख कर
भूत-विशाषादि प्रथन्त मानन्दित हुए ।३१। इस सोहित नदी में बहती
हुई पारिभा सरोवरों में सुगोमित हन के समान प्रसीम होती थी ।
जबमें गिरे हुए हाथी ऐसे बरत से सँके टाहू हों । यह जममें नावो के
समान ठीरने सवे और कर हुए हाथ पात्र मन्द जँडे सवने सगे । जममें
विर हुए मरुम ऐसे सबत से नानों स्वर्णम रनी बसक रही हो ।३२। इस
एकार एणसेन में यह प्रथन्त शरणा सवी यदने सती । सूर्यकेतु मरु के
नाच युद्ध कर रहा था ।३३। कान के समान बिफट सूर्यकेतु क वाणो में
मरु माहत हो गये तब मरु ने भी इन बाणो से सूर्यकेतु को माहत कर
दिया । ३४। मरु के बाणों से माहत हुए सूर्यकेतु ने मरु के सभी प्रथ

मार डाले और वशपात से रथ तोड़ बना । फिर मरु के हाथ पर भीमरु गदापात किया, जिससे वह मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ॥३५-३६ ॥

मारविस्तमपोवाह रथेनाव्येन धर्मवित् ।

बृहत्केतुश्च देवापि बाणैः प्राच्छादयद्वनौ ॥३७॥

धनुर्विकृष्य तरसा नीहारेण यथा रथिम् ।

स तु बाणमय वर्ध परिवार्य निजामुधै ॥३८॥

बृहत्केतु दृढ जघ्ने कच्च पशैः शिनाशितं ।

भिन्न शूलमथानायय धनुर्गृह्य पत्तयिभि ॥३९॥

शितधारे स्वसं पुर्योगादध्वपशैरयोमुखं ।

देवापिमाशुगेज्जन्धे बृहत्केतु मसनिबम् ॥४०॥

देवापिस्तद्धनुर्दिध्य विच्छेदः निशितं शरैः ।

छिन्नघन्वा बृहत्केतु पड गपाणिजिघासया ॥४१॥

तब मरु का धर्मवित् मारवि उन्हे उठा कर मरु रथमे ले गया । उधर महाबली बृहत्केतु ने देवापि पर बाण-वर्षा की ॥३७॥ जैसे सूर्य कुहरे से प्राच्छादित हो जाता है, वैसे ही बाणों से प्राच्छादित देवापि ने तुरन्त धनुष लेकर धनु की बाण वर्षा की छपनी बाण वर्षा से काट दिया ॥३८॥ बृहत्केतु ने जान बड़े हुए बाणों से घबने सूय की भी नष्ट हुआ देख कर पुनः धनुष उठाया और रथ पर स्वर्ग जटित, गृह पत्र के गमान तथा मोड़ पुग वाले तीक्ष्ण बाण चढ़ा कर देवापि पर सैन्य संहित भीषण प्रहार किये ॥३९-४०॥ परन्तु बृहत्केतु के उन दिव्य धनुष को देवापि ने घबने तीक्ष्ण बाणों से काट दिया । तब देवापि को मारने के विषय से बृहत्केतु ने हाथ में लहट्ट पड़ण किया ॥४१॥

देवापे सारथि साध्व जन्धे सूरौ महापृथे ।

स देवापिर्धनुस्त्वपरवा तलेनाहव्य त रिपुम् ॥४२॥

भुजयोरन्तरानोप निष्पिपेय स निहृद्व ।

त द्वयस्रवर्षा निष्फान्त मूर्च्छिताः सन्तुण्दितम् ॥४३॥

नवम अध्याय

हृदि ध्यानाश्रयं रूपं कर्त्तव्यं पृथ्वा शशिध्वजम् ।

पूर्णं स्रग्धरं चारुतुरगादृढमश्रवीत् ॥१॥

धनुर्बाणधरं चारु-विभूषणवराङ्गकम् ।

पापतापविनयाशयं मुच्यते जगता परम् ॥२॥

प्राह त परमात्मानं हृदरोमा शशिध्वजम् ।

एहो हि पुण्डरीकाक्ष ! प्रहारं कुर्व मे हृदि ॥३॥

अथवात्मन् दानाभिमा तमोऽन्धे हृदि मे विश ।

निर्गुणस्य गुणधत्तवप्रदं तस्यास्त्रताडनम् ॥४॥

निष्कामस्य जयोद्योगसहायं यस्य संनिकम् ।

लोकां पश्यन्तु बुद्धे मे द्वैरथे परमात्मनः ॥५॥

परबुद्धिर्यदि दृढं प्रहर्ता विभवे स्वयि ।

निवविष्योर्भेदकृते लोकं यास्यामि समुगे ॥६॥

सूतजी ने कहा—हे शूरवीरो ! कल्किजी का हृदय मे ध्यान के योग्य, सुन्दर, स्रग्धर एवं तुरगादृढ पूर्ण स्वरूप देख कर शशिध्वज ने विचार किया । १। धनुर्बाणधारी सुन्दर चाभूषणों से विभूषित जगदीश्वर भगवान् कल्कि का अथवा तमोऽन्धे के निवारणार्थं हुआ है । २। राजा शशिध्वज ने पूजकित शरीर से परबुद्ध कल्किजी के प्रति निवेदन किया—हे पुण्डरीकाक्ष ! आशये, मेरे हृदय पर प्रहार कीजिये । ३। हे परमात्मन् ! मेरे बाणों की मार से बचने के लिए मेरे समाच्छादित हृदय से आकर छिप जाओ । जो निर्गुण होकर भी गुणों के शाशा है, जो भद्र होकर भी अस्त्र प्रहार से तत्पर है तथा जो निष्काम होकर भी विजय की इच्छा से संनिक-वशर कर रहे है मैं तन्ही

भागवान् के साथ द्वारेय पुत्र के उत्तर हो रहा है । सभी लोक इसका प्रबोधन करे ॥४-१॥ मैं प्राय विभु पर प्रहार करूँगा । परन्तु प्रहार करते समय भी यदि मैं चापको मृदा से भिन्न समझने लूँ तो शिव और विष्णु से भेद आने का जो अप्रतिशय की प्राप्ति होती है, मुझे उसी साक की प्राप्ति हो ॥६॥

इति राज्ञो वच श्रुत्वा अक्रोधं कृत्स्नवद्विभुः ।
 वारुणरताद्वपस्त्रस्य धृतायुधमरिन्दमम् ॥७॥
 शशिध्वजस्तप्रहारमण्डप्य वरामुधैः ।
 स लक्ष्म्ये धारुणवर्षेण धारामिरिव पयतम् ॥८॥
 तद्वास्तुवर्षसिद्धान्तं वलिकं पञ्चमकोपनं ।
 दिव्यं वास्त्रास्त्रसंघातंस्तपोयुग्मवर्त्मनः ॥९॥
 ब्रह्मान्धस्य च ब्रह्मान्धं वीर्यव्यस्य च पार्वते ।
 आग्नेयस्य च वाज्रैर्नयं पद्मस्य च मान्दं ॥१०॥
 एव नानाविधैरस्त्रै रत्योन्वमभिजघ्नतु ।
 लोका, मपाला सत्रस्ता युगान्तमिव मेनिरे ॥११॥
 देवा वारुणित्वशक्तः शयम-सगमाः किन ।
 ततोऽतिविक्रमोद्योतो वासुदेवशशिध्वजौ ॥१२॥
 निरस्तौ बाहुयुद्धेन युयुधाते परस्परम् ।
 पदाघातैस्तनाघातैर्मुष्टिप्रहर संस्तथा ॥१३॥

राजा के इन वचनों को सुन कर क्रोध से पूरे कनिष्ठी क्रोधित हो उठे । यह देख कर आशुवधारी एवं धरिर्मर्दन राजा शशिध्वज ने तब पर धारुण-प्रहार आरम्भ किया ॥७॥ तब राजा ने प्रपन्न उस प्रहार का विप्लव हुआ देखा तो वह पर्वत पर वर्षाशीम सेप के समान धीरे आला की वर्षा करने लगे । तब तब बाहु वर्षा से कनिष्ठी का शरीर बाहुत ही गया । तब वे अत्यन्त शीघ्र करके प्राण बड़े । इस प्रकार दोनों से धीरे मुठ होने तथा ॥९॥ ब्रह्मान्ध के द्वारा ब्रह्मान्ध काटके नय । पारिदांशु से वास्तव्यस्य, मेवास्त्र से आग्नेयस्य और वास्तव्यस्य स

गर्वाश्रय नष्ट होने लगे । १०। इस प्रकार विविध भक्ति के दिग्भास्वों के द्वारा वे दोनों भीषण प्रहाराय तन्मय थे । इनसे लौक और भोक्ताल गभी यह समझते हुए कि कहीं मात्र ही प्रलय न हो जाय, धारमन्त मयभीत हुए । ११। आत्मनि यो देव कर पुष्ट देखने के लिए गगन मण्डल में एहन हुए देखता मयभीत हो गये । दिग्भास्वों को धर्ष्य हुए देख कर कलि भी और राजा अशिश्वज दोनों बाहु धुष्ट के विविध प्रसन्न ग्वाण कर हस्य पड़े । फिर पशुपात करतवापात और मृष्टिदा-प्रहार से युद्ध होने लगा । १२-१३ ।

निपुष्टकुशलो वारो मुमुक्षुति वग्मपरम् ।

वगहोदघृमसन्धेन त तलेनाहतद्वरि । १४।

स मूर्च्छितो नृप कोपात्ममुत्थाय च तत्क्षणात् ।

मृष्टिभ्या वज्रकुलाभ्यामवम शकलिकमीडमा ।

स कलिहन्तरप्रहारेण पपात भयि मूर्च्छित ॥१५॥

पम्म कृतञ्ज तं दृष्ट्वा मूर्च्छित अणदोश्वरम् ।

समागतौ तमानेनु कथे तौ जगृहे नृप । १६॥

कलिक वसस्त्वुपादाय लब्धवर्तं प्रययौ गृहम् ।

युद्धं न नृणांमभ्येवा पुत्री दृष्ट्वा मुहुर्जयौ ॥१७॥

दोनों ही रक्षविद्या में परमत्त कुशल के और परस्पर एक दूसरे के कोषण को देखते हुए प्रसन्न हो रहे थे । मृष्टि के आरम्भ में पृथिवी का उद्धार करने के लिए वाराह अवतार ने जैसा आर किया था, कलिकभी द्वारा किये गये करतवापात से पंता ही भीषण शरद हुआ । १४। उग भाषण से राजा अशिश्वज मूर्च्छा को प्राप्त हो गए । फिर गुरगत हो लपेट होकर उन्होंने कलिकभी पर मय के समान मृष्टि प्रहार किया, जिसमें कलिकभी पचेन होकर पृथिवी पर लेट पड़े । १५। तब अगरवति कलिकभी को मूर्च्छित देख कर धर्म और तरुण बड़ी बाधक उन्हें से जले लगे । परन्तु राजा अशिश्वज ने उन दोनों को काल से दबा लिया । १६। और कलिकभी को मष्टु में उठा कर कुण कुण्य होते हुए

तृतीयांश —

दशम अध्याय

जयहरेश्वराधीशानेवित तत्र पदाम्बुज । भूरिमूपणम्
कुह ममाग्रत साधुमरुत त्वज महामते । मोहमाश्चनः ॥१॥
तत्र यजुर्जगद्रूपसम्पदा विरचित मतां मानमे सिवतम् ।
शक्तिपतेर्मनोमोहदायक कुह विचेष्टिन कामनम्बटम् ॥२॥
तत्र यज्ञो जगन्लोकनाशन मृदुक्त्यामृतप्रीतिदायकम् ।
स्मितसुषोक्षित चन्द्रबन्धुञ्ज त्वकरोत्वल लोरुमङ्गम् ॥३॥
मम पतिम्बव्य सर्वदुर्जयो यदि तवाग्रिव कर्मणाचरेत् ।
जह्नु तत्रात्मन शत्रुमुद्यत कुह कृपा न चेदोदृगोश्चरः ॥४॥
महदह्युत पञ्चमाश्रया पृष्टतिजायया निम्मितं वपु ।
तत्र निरोक्षणाहोत्रया जगत्स्वित्तिनयोदयं ब्रह्मकल्पितम् ॥५॥

सृजा ना शोनी—हे हरे ! मापही जय हो ! महामते ! मय
आप भवने इन महोच्छ्रय नाव को रक्षण कर इन्द्र से भी शक्ति,
मृन्दर माधुपयो से विभूषित तथा साधुमो के द्वारा साकारित भवने
अरणाविन्द मेरे मन्त्र कीजिये । १। अगद् ही घेष्ठ सम्पदा से विर-
चित तथा साधुमो के हृदय में विद्यमान रहने वाला मापरा यह देह
कामदेव को भी मोहित करने वाला है । मय आप हवारी कामता पूर्ण
कीजिये । २। आपके यशमान से इन्द्र के शोक नष्ट होते हैं, आपके
सुम्मान मुषा सम्पन्न चन्द्र वदन से निकली हुई मधुर वाणी सब को
प्रमत्त करती है । हे प्रभो ! मापही यह मुझ सोहबन्धुण के करने

बाना है । ३। मेरे सब कुर्वेय प्रति के द्वारा यदि प्रायश्चा कोई अपनाप
 बन रहा हो तो भी इनके प्रति शत्रु-भाव न रख कर इन पर कृपा
 करिये, अन्यथा कोई प्रायश्चो कृपामय ईश्वर नहीं कहेगा । ४। प्रायश्ची
 पत्नी प्रकृति महत्त्व, अहंकार और पवनव्याध के द्वारा देह रखती है ।
 प्रायश्चे ही निरीक्षण में लीला से ही प्रहा क्लिप्त विश्व में सृष्टि, स्थिति
 और लय का क्रम चलता है । ५।

भूविषन्मरुद्धारितेजसा राशिमि. सुरोरेन्द्रमाश्रितः ॥

त्रिगुणया म्यया मायया विभो कुरु कृपा भवत्सेवनाश्रितानाम्

तव गुणान्मय नाम पावन कलिललारह कीर्तयन्ति ये ।

मवमपक्षय लक्षणविज्ञा मृदुरहो जना समरन्ति नो ।। ७।।

तव जन्म सतां मानवद्वेन निजकुलस्य देवपालकम् ।

* कृपागुणापक धर्मपूरक कलिकुलान्तक शस्तनोतु मे ।। ८।।

मम गृहं प्रतिपुत्रनष्टक मज्जर्यैध्वंशशवामरैर्षने ।

मणिवरासनसत्कृति विना तवा पदाब्जयोः सोमयन्त्रि किम्

तत्र अगद्वेषु, सुन्दरस्मिन् सुममनिन्दित सुन्दरारवम् ।

यदि नने त्रिम बस्मृचेष्टिते परिकरोत्यहो मृत्युरस्तिमह ।। ९।।

हे देव ! पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तत्र से युक्त
 यह पञ्च सूक्ष्मरूप शरीर इन्द्रियों के आवृत्त रहते हैं । अपनी त्रिगुणा-
 शिका माया से अपने मर्तों पर कृपा कीजिये । ६। हे शमा ! प्रायश्चे नाम
 गुण-स्वीर्तेन से कल्पियुद्ध के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं । प्रायश्चा यह
 नाम पञ्च गुणों से युक्त और नवमय का नाश करने वाला है, जो
 संसार तार से पीड़ित प्राणी उच्छेद स्वराण करत है, उनका जन्म-
 मरण स्व जपन नष्ट बाण है । ७। प्रायश्चा यह अवतार वासुदेव का
 पान बर्देन, कलिकुल नाशक, देवताओं का पातक, धर्म पूरक तथा
 सत्युन का पुनः स्थापक है । प्रायश्चे इस अक्षर से दुःसाय कल्पाण हो
 १८। मेरे घर में पति, पुत्र, वीर, मय, रथ, ध्वज, धर्म, धन और
 शक्ति बहित खोष्ट प्राप्तनादि सब कुछ वर्तमान है । परन्तु प्रायश्चे

ही छोड़ कर शत्रु के मउरु में क्यों था तबे बह ? उर मुके
बताओ ॥१५॥

शत्रुपक्ष्य कथ साधु सेवन्ते मामरि मुद्रा ।

शशिध्वज, शूरमानी मूर्च्छितं हृत्ति नो कथम् ॥१६॥

पाताले दिवि भूयोवा नरनागपुंदाश्रुराः ।

नारायणस्य ते कल्ले केवा सेवा न कुर्वते ॥१७॥

यत्सेवकाना जगतां मित्राणा दर्शनादपि ।

विवर्तन्ते शत्रुभावस्तस्य साक्षात्कुतो रिपुः ॥१८॥

स्वया सादृशं मम पति शत्रुभावेन तदपने ।

याद घोवस्तदानेहु कि समयो निजाजयम् ॥१९॥

तव दासो मम स्वामी मह दासो निजा तव ।

भावयो सप्रसादाय भ्रातृयोऽपि महाशुभ ॥२०॥

मुके शत्रु ही यह शत्रु-पक्षिमा प्रमथ हःसे हुई क्यों परिवर्तन
कर रही है ? जब मैं मुक्ति हो गया था, तब हम सूर एवं माती राधा
शशिध्वज ने मेरा सहार क्या नहीं कर दिया ? ॥१६॥ रानी बानी-
पानास, स्वयं क्षयवा पृथिवी पर, नाग, सूर पीर शत्रु से ऐसा कौन
है जो भगवात् कल्लि की सेवा नहीं करता ? ॥१७॥ मवार प्रितका
सेवक भीर मित्र है तथा प्रितके दर्शन मात्र से शत्रु भाव नष्ट हो जाता
है, क्या जनका कोई प्रसन्न रूप से क्यों शत्रु हो उठता है ? ॥१८॥
मेरे पति यदि आपके पति शत्रु भाव रह कर मारने मुठ कल्ले तो क्या
बह आपके पतने पर मे इस प्रकार से साधे ? ॥१९॥ हे महाशुभ !
मेरे पति आपके पास है, समिर में भी आपकी दासो हूँ । इस प्रकार
हम पर प्रसन्न होकर ही आप स्वयं यही पचारे हूँ ॥२०॥

अह तवैतपो संकतया नामरूपानुकीर्तनात् ।

कृतार्थोऽग्नि कृतार्थोऽपि कलिसव ॥२१॥

अधुनाह कृतशुभं तव दासस्य दर्शनात् ।

स्वमाश्रयो जगत्पुञ्जसेवकभ्यास्य वेदशा ॥२२॥

दण्डय मां दण्डय विभो योद्घ्नन्वाद्गुह्यतापुषम् ।

येन कामादिरामेणस्त्वयात्मन्यपि वैरिता ॥२३॥

इति कल्किर्वचस्तेषा निगम्य हस्तितामन ।

त्वया जितोऽस्मीति नृप पुनः पुनस्त्वाच ह् ॥२४॥

ततः शशिध्वजो राज युद्धादाहूय पुत्रकान् ।

सुग्रान्ताया मति बुद्धा रमा प्रादात्सकल्कये ॥२५॥

धर्म ने कहा—हे कलि का नाश करने वाले कल्किजी ! यह राजा—रानी दम्पति प्रिय प्रकार आपकी भक्ति करते हुए आपका नाम-समीक्षण एवं स्तोत्र करते हैं, ज्ञान देना कर मैं कृतार्थ हो गया—कृतार्थ हो गया ॥२१॥ सायुग बोला—हे प्रभो ! आज आपके इस सेवक का दर्शन पाकर तो आश्चर्य ही मेरा सायुग जान व्यर्थ हो गया । इस सेवक ने अपने तेज से आपको भी अगस्पृज्यत्व और ईश्वरत्व से परिपूर्ण कर दिया ॥२२॥ राजा शशिध्वज बोले—हे ब्रह्माक्षर ! मैंने काम क्रोध आदि विषयों के बधोभूत होकर ही आप ईश्वर एवं साक्षात् अपने धारणा के प्रति श्रद्धा करके आपके देह पर अस्त्र प्रहार किया है ॥२३॥ राजा के बधन सुन कर कल्किजी ने मुसकराते हुए आम्बार कहा—हे राजन् ! आपने मुझे सब प्रकार जीत लिया है ॥२४॥ इसके पश्चात् राजा शशिध्वज ने रणभूमि से अपने पुत्रों की वाचिम बुद्धि लिया और फिर रानी सुग्रीवा की प्रेरणा से अपनी रमा नाम की कन्या कल्किजी को प्रदान कर दी ॥२५॥

तदर्थं मरुदेवापी शशिध्वजसमाहृतौ ।

विशाखधूपनूपञ्च शिवराश्वञ्च संपगात् ॥२६॥

शयाकर्णतृषेणापि भल्लाटं पुरमापदुः ।

सेनागणैरसह्यातः सा पुरी महितामवद् ॥२७॥

यज्ञाश्वरपसंवाधं पतिच्छत्ररथचवजेः ।

कल्किनापि रगायाञ्च विवाहोत्सवसम्पदाम् ॥२८॥

दृष्टुः समीपं स्वविरिता हर्षास्तत्रलवाहनाः ।

शशभेरी मृदङ्गानां शशिशाखाश्च निस्वनैः ॥२६॥

नृत्यगोतविधानं च पुरस्त्रीकृतङ्गलं ।

विवाहो रमशास्त्रकेरभूदतिसुखावहः ॥२७॥

उक्त अक्षर पर मरु, देवाधि, विशालयूपनरेत यौन रुचिराश्च

आदि सभी कर्त्तिक पक्ष के राजागत्य तद्विषय द्वारा धानत्रिय निघ्न गये । ये सब राजा गण्डाकारण को साथ लेकर ग्वाभूमि से अल्पाट नगरी में आ पहुँचे । उक्त समय असहस्र कलिङ्ग-सैन्या के पाँचों छे वत्त नगरी मदिता हो गई । २६-२७। यत्र, शश, रथ, पदाति, छत्र यौन रथ की ध्वजाएँ आदि सभी में सुमोहित विवाह मण्डप में कर्त्तिकको घोर रमा यह विशाहीतुव सम्पन्न हुआ । २८। हर्ष से प्रकृतमित हुए सभी व्यक्ति अपने दल बल और बाहुनी के सहित उक्त काम्य को देखने के लिए वहाँ आये । रावकुमारी रमा का विवाह पक्ष, भेरी, मृदग आदि वाद्यों की सुमधुर श्रुति और पुर-नारियों के श्रेष्ठ महामाधर्यों तथा नृत्य-गीतादि के सावन्द सम्पन्न हुआ । २६-३०।

नृपा नानाविधभोज्यैः पूजिता विविद्युः सभाम् ।

प्राहाणाः क्षत्रिया वीश्या शूद्राश्चापरजायः ॥३१॥

विचित्रभोगाभरणाः कर्त्तिके दृष्टुमुपादिशन् ।

तस्या सभायाः शुशुभे कल्किः कमललोचनः ॥३२॥

नक्षत्रगणमन्वस्य पूर्यः शशाधरो यथा ।

रेजे राजगणाघोशो लोकान्तर्वान्विमोदयन् ॥३३॥

रमापतिं कल्किमवेक्ष्य भूपः सभागत पद्मप्रलापतेक्षणम् ।

जामातरं शक्तिमुतेन कर्मणा विदुष्य मध्ये निरामार उतह ॥३४॥

विविध प्रकार भोज्य एवं पान पदार्थों से सकार प्राप्त करते हुए गण्डाकारण सभा में प्रविष्ट हुए । प्राहाण, क्षत्रिय, वीश्य, शूद्रादि

सभी धरुण के लोग अद्भुत पाभूपणों और विविध प्रकार की भोग—
सामग्रियों को प्राप्त करके उस सभा में सुशोभित कल्किजी के सब ओर
बैठ कर सोभा को प्राप्त होने लगे । ३१-३२। जैसे तारागण के मध्य
पूर्ण चन्द्र की अत्यन्त सोभा होती है, वैसे ही सब लोकों के मध्य में
सुशोभित राजाओं के भी स्वामी कल्किजी सब लोकों को मोहित करने
लगे । ३३। पद्म पलाश जैसे नेत्र वाले कल्किजी ने सभा में उपस्थित
राजाओं आदि के समक्ष रमा का पाणिग्रहण किया । उस समय राजा
राशिध्वज भी कल्किजी की जामाजा-भाव से देखते हुए भक्ति-युक्त हृदय
से सभा में अत्यन्त सोभा को प्राप्त हुए । ३४।

यह कल्कि धारको किस प्रकार उतार दे सके ? ॥१५॥ हे राजन् ! इस अर्थ को क्या धारने किमी से विद्या प्राप्त को दे ? धारना यह भक्ति धार से स्वाभाविक रूप से ही उत्पन्न हो गई है ? हे राजन् ! धारको इस भवद्भक्ति का कारण सुनने से हमें विज्ञान है । क्योंकि भवद्भक्ति को वह क्या मत्तार के भावधामन को नाश करने वाली है ॥१॥

स्त्रीषु सोऽथोऽस्तत्तच्छ्रुत्वा सोऽथ विक्रमा ।

वृत्तं यजन्मकर्मोऽदि स्मृति तद् वृत्तिनशाणम् ॥१६॥

पुरा युगसहस्रान्ते गृध्रोऽहं प्रतिमासमुक्त् ।

गृध्रीषु मे प्रियागण्ये वृत्तभोडो वनस्पती ॥१७॥

सचार काम सर्वं वनोपवनमकुले ।

मृतानां प्रतिमासीषं प्राणिरा वृत्ति करकी ॥१८॥

एकादा तुष्यकं कूगे तुषोभ पिशितादिनी ।

प्राधा बोधेन गृहे पुष्ट गृध्रे तत्राप्ययोजयत् ॥१९॥

त बोधय जातविघ्नम्भी धुश्या परिषोडितो ।

स्त्रोषु ही पतिनी तत्र मासलोभितचेतसो ॥२०॥

इस पर राजा अतिशय बोले—हे राजको ! हम दोनों पति-पत्नी के जो जन्म, कर्म आदि हैं तथा जिस प्रकार हम को भवद्भक्ति का स्वरूप हुआ, यह सब धार सुनिये ॥१६॥ एक महत्स सुन यहने की बात है—मैं भीष्माहारी गृध्र का घोर घेरी यह विद्या मुझान्ता घेरी पत्नी गृध्रिनी थी । हम दोनों एक विशाल वृष्ट पर जीव बना कर उसने रहते थे ॥१७॥ वन-उपवन आदि स्थानों में हमारी इच्छानुसार पधार गति थी । जब तदवय हम घरे तुर प्राणियों के दुर्बोधित पति से पदमा जीवन निर्वाह किया करने से ॥१८॥ एक दिन एक कुर ब्राह्मण ने हमें देख लिया और भीमवत्स हमें पकड़ने के लिए उसने अपने पालित गृध्र को हमारे समक्ष छोड़ दिया ॥१९॥ मैं युवा से अशक्त था, तभी मैंने उसे देखा पति के लोप से हम स्त्री-पुरुष दोनों ही तब पर झूट पडे ॥२०॥

ब्रह्मवाचा बोधय तदा हर्षादापय तुष्यकः ।

जग्राह कण्ठे तरसा वज्रं शशाङ्कं गीर्णितः ॥२१॥

शान्ना गृहीत्वा गण्डव्यां शिलायां सुनिनान्ति के ।
 मस्त्रिष्क चूर्णयामास सुव्यक्तं पिशिताशनः ॥१२॥
 चर्कङ्कितशिलागङ्गासरणादपि तत्क्षणात् ।
 ज्योतिर्मयविमानेन सद्यो भूत्वा चतुर्भुजौ ॥१३॥
 प्राप्तौ वैकुण्ठनिलयं सप्तलोकमस्कृतम् ।
 तत्र स्थित्वा युगसतं ब्रह्मणो लोकमागता ॥१४॥
 ब्रह्मलोके पञ्चमं युगानामुपमुज्य वै ।
 देवलोके कालवशाद्गतं युगसतुःसतम् ॥१५॥

व्यास ने हम दोनों को अपने ज्ञान में रेंधा हुआ देना तो वह
 प्रकृत होता हुआ घीघ्रता से हमारे पास आया और उसने हमारे ऊपर
 पकड़ लिये । तब हम भी उस पर धरती घोंवा से आघात करने लगे
 ॥१॥ तदनन्तर प्राय के लोको तब व्यास ने हम दोनों को पकड़ कर
 गदरी में स्थिति एक शिला पर पड़ाई-बधाई कर हमारे पसतकों का
 चूर्ण कर डाला ॥१२॥ गङ्गा का किनारा और चकङ्कित शिला—
 परल्ल काल में इन दोनों के आग्निव्यता के प्रभाव में हम उड़ी समय
 चतुर्भुज रूप हो गये और तेजस्वी विमान में चढ़ कर सब लोकों के
 दायां मज्जेश्वर वैकुण्ठ लोक में आ पहुँचे । वही भी युगों तक निवास
 करने के पश्चात् हमकी ब्रह्मलोक की प्राप्ति हुई ॥१३-१४॥ तब ब्रह्मलोक
 में पाँच सौ युगों तक सुप्त भोगने के पश्चात् काल के रस में पड़ कर
 देवलोक में गये और वार सौ युगों तक वहाँ सुप्त भोगते रहे ॥१५॥

ततो भुवि नृपास्त्वावद्वद्वसूनुरह स्मरन् ।
 हरेनुग्रहं लोकं शालग्रामशिलाश्रमम् ॥१६॥
 जातिस्मरत्वं गण्डव्यां किं तन्वां कथयाम्यहम् ।
 यज्जतरपशंभात्रेण महात्म्यं महद्भद्रतम् ॥१७॥
 चर्काङ्कितशिलास्पर्शमरणात्प्रेहन फलम् ।
 न जाने वासुदेवस्य सेवया किं भविष्यति ॥१८॥
 इत्यावाहृत्पुत्रासु सर्वाविह्वलचेउसौ ।

नृपन्तायगायन्तो विलुञ्जतो स्थिताविह ॥१६॥

कत्केनारायणायस्य प्रवतारः कलिध्वजः ।

पुरा विदितवीर्यस्य पृष्टो ब्रह्ममुखाच्छुन ॥२०॥

इ राधागण ! फिर अब हम इस गल्प-श्लोक में उलझन हुए हैं । परन्तु हमें ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिये कि यह स्थान और भगवान् किरण की कृपा का अभी तक स्मरण है ॥१६॥ क्योंकि गरुडकी नदी के तट पर सरण होने पर जन्मों की स्मृति कभी तट नहीं होती । यह अद्भुत आश्चर्य सह नदी के जल स्पर्श का ही है ॥१७॥ यदि उस चक्रवर्ति गिना के स्पर्श मात्र से मृत्यु के पश्चात् ऐसा सुख फल होता है, तो भगवान् वासु-देव की सेवा के फल का तो कहना ही क्या है ? ॥१८॥ यही सोचते हुए हम कभी हरि-भूवन में घपने चित्त को एकाग्र करते हैं, कभी हृण से विह्वल होकर नृत्य करने लगते हैं, कभी उदका गुण-पान करते और भक्ति भाव में मग्न हो जाते हैं ॥१६॥ यह समाचार हमें श्री ब्रह्माजी द्वारा पहिले ही मिला गया था कि कलिरुप का जय करने के लिए भगवान् नारायण का प्रसाधार होगा । इस प्रकार हम उनके पराक्रम को भले प्रकार जानते हैं ॥२०॥

इति राजसभायां स ध्यायित्वा निजा, कथा ।

ददौ राजानाममुत्तमश्याना लक्ष्मणादरात् ॥२१॥

रथानां षट्सहस्रान्यु ददौ पूरुणस्य भक्तितः ।

दाधोना युवतीनाञ्च रमानायाय षट्सतम् ॥२२॥

रथानि च महार्घाणि दत्त्वा राजा कलिध्वजः ।

मेने कृत्वाभंमात्मान स्वबन्धुर्वा-वर्धः सह ॥२३॥

समासद इतिथृत्वा पूर्वजन्मोविताः कथाः ।

विस्मयोविष्टमदसः पूरुणं तं मेनिने नृपम् ॥२४॥

कल्कि स्तुयन्तो ध्यायन्तो प्रशंसन्त जगज्जनाः ।

पुनस्तमाहूराजान लक्षणे भक्तिभक्तयोः ॥२५॥

इस प्रकार उस सभा में प्रथम पूर्व प्रसंग कह कर राजा कलि-ध्वज ने भक्ति-भाव पूर्वक कल्किजी को दस सहस्र गज, एक नाव भरव,

छः सहस्र वर्ष, इसी सुवर्ती दासिणी तथा प्रसन्न्य रत्नादि प्रदान करके
 अपने स्वयंभो और दास्यों के बहिन अपने को धर्म माना । २१-२३।
 राजा अक्षिपदस के मूल से उनके पूर्व जन्म का वृत्तांत सुन कर सभी
 सभारत आश्चर्य चकित होकर उन्हें पूर्ण सम्मान से २४। फिर वही
 उपस्थित सभी जन कलिकबी का भक्तिपूर्वक ध्यान करने लगे । फिर
 उन्होंने भक्तों के लक्षण विषयक प्रश्न राजा अक्षिपदस से किया । २५।

भक्तिशाम्यद्भगवत्, को वा भक्तो विधानवितु ।

किं करोति किमरनाति यदा वसति वक्ति किम् । २६।

एतान्दशुष राजेन्द्र । सब त्वं वेत्सि सादरात् ।

जातिस्मरत्वाङ्कारणस्य जगता पावनेच्छया । २७।

इति तेषां वचं श्रुत्वा प्रफुल्लवदना नृप ।

माधुबावंः समापन्न्य तानाह ब्रह्मणोदितम् । २८।

पुनः ब्रह्मसनामध्ये महर्षिपण्डितकुले ।

सनकोनारद प्राह भवद्भिर्मास्त्वहोदिता । २९।

तेषामनुग्रहेणाह तत्रोपित्वा श्रुत्वा कथा ।

यास्ताः सकथमानोह शृणुष्व पापनाशना । ३०।

राजातल बोले—भगवद्भक्ति क्या है ? विधान क जानन क्या
 संभव होन कहा जाता है ? भक्त का कार्य क्या है ? वह क्या खाता,
 क्या बातलाप करता और कहा रहता है ? । २६। ह राजेन्द्र । आपको
 सब कुछ विदित है, इस लिए आप कृपया पाररपूर्वक सब बात हमें
 बतायें । उनकी बात सुन कर राजा अक्षिपदस ने हर्षित मुख से उन्हें
 तापुवाच दिया । फिर ब्राह्मि स्मरण होने के कारण श्री कृष्ण खरिष द्वारा
 सभार को पवित्र करने के उद्देश्य से उन्होंने बहु सब बहुत पारम्भ
 किया, जो उन्होंने ब्रह्माजी के मुख से सुना था । २७-२८। अक्षिपदस बोले
 पुनःकाल की बात है—ब्रह्माजी की सभा के मध्य महर्षिपण्डित विराजमान
 थे, वही संसद पर जो कुछ सनकादि ने तलपरी से पूछा था, वही
 पारको बताया है । २६। उन संसद में श्री वही उपस्थित था, इसलिये

उनकी कृपा से मैंने उस सब षडय को तुना पा । हे पापनाशन उन्-
सिद्ध सज्जनो ! जो बात मैंने सुनी थी । वही रहना है, पाप तोय
मुनिये । ३०।

का भक्ति संसृतिहरा हरी लोकतमस्कृता ।
तामादौ वरुण्य मुने नारदवहिता ववम् । ३१।
मन-पञ्चानोन्द्रियाणि सयम्य परया धिया ।
गुरावपि न्यसेद्देहे लोकतन्त्रविचक्षणा । ३२।
गुरो प्रसन्ने भगवान्प्रसीदति हरिः श्रवणम् ।
प्रणवाग्निप्रियामध्ये मवण सन्निदेशतः । ३३।
स्मरेदनन्यथा बुध्या देशिक सुसमाहित ।
पादाध्याविमनीयाद्यैः स्नानयासोविभूषणैः । ३४।
पूजयित्वा वासुदेवपादपद्म समाहित ।
सर्वाङ्गसुन्दर रम्य स्मद्घृतपामाध्यनम् । ३५।

सनक ने कहा—हे मुने ! हे नारद ! किस प्रकार की हरि-भक्ति
के जन्म नहीं लेता होता तथा बोन भी भक्ति प्रशसा के योग्य है । पाप
उसी को पहलें कहिये । हम मुने के हस्तुष्ट है । ३१। नारद बोले—
षोडश के ज्ञान साधक को ध्येष्ट मुष्टि के द्वारा पाँचो ज्ञानेन्द्रिय और
छठवें मन का निग्रह करते हुए ज्ञान-धर्म पूषक गुरु के चरणों में धपना
शरीर धरुण कर देना चाहिये । ३२। क्योंकि गुरु के प्रसन्न होने पर
नगवान् श्रीहरि भी प्रसन्न होते हैं । प्रथम प्रणवाग्नि प्रिया के मध्य में
ॐ, का मनन्य हृदय में स्मरण करे । फिर पाद, चर्म, छात्रमनीव
यादि तथा स्नान और बहनाभूषणों से युक्त होकर साधवान चित्त से
नारायण के चरणारविन्दों का पूजन करे । तदनन्तर हृत्पद्म के मध्य
में प्रतिष्ठित सुरम्य और सर्वांग सुन्दर श्रीहरि के स्वरूप का चिन्तन
करे । ३३-३५।

एव ध्यात्वा चावयनोद्योन्द्रियगणैः सह ।

भात्मानमप्येद्विद्वान्हरावैकान्तभाववित् । ३६।

तमसा घोरसकलया भजन्ति द्दवर्तदृग्जना । ४४१।

सत्वाग्निगुणतोमति रजसा विषमस्पृहा ।

तमसा नरकं यान्ति संसाराद्वर्तधर्मिणा ॥४२॥

बहु विद्वान् होकर नाचता, रोसा हुआ घोर तमयतापूर्वक विचरण करता है । वह स्वयं को भुन कर भस्म-रूप में ही डुब जाना है घोर हरि के परिचय कड़ी कुण्ड नहीं जानता ॥४१॥ यही मगवान् की अशुभचरित्रों भविष्य है, इसी के प्रभाव से देवता, देव घोर मनुष्य धर्मों को सम्पूर्ण सृष्टि सद्गता पवित्रता को प्राप्त होती है ॥४२॥ निष्ठा प्रकृति अथवा ब्रह्म को सम्बन्ध ही भविष्य रूप में प्रकट होती है । यही भविष्य वेदादि में ध्वंस्त एव शिव, विष्णु घोर ब्रह्मा स्वकृषिणी है ॥४३॥ सर्वगुण के अभाव से मुक्त दृष्ट के जानने वाले मनुष्य इन्द्रिय व्यापार को इच्छा वाले होने हैं घोर जो तमोगुण से मुक्त है वे घोर कर्मों का सत्त्व क्रिया करते हैं ॥४४॥ दृष्ट ज्ञान से मुक्त जानीयन सर्वगुण के प्राप्त होने पर नियुंणता को प्राप्त होते हैं तथा रजोगुण के प्राप्त होने पर विषयो से लग जाते हैं घोर यदि तमोगुण को अधिकता होती है तो वे पुण्य नरक को प्राप्त होते हैं ॥४५॥

उच्छिद्यमवशिष्टं वा पथ्य पूतमभीषितम् ।

भक्तानां भोजनं विष्णोर्नैवेद्यं सात्त्विकं मतम् ॥४६॥

इन्द्रियप्रीतिजननं सुकक्षोणितवद्धं नम् ।

भोजनं राजसं शुद्धमापुरारोग्यवद्धं नम् ॥४७॥

अतः परं तामसानां कटुम्लोष्णविदाहिकम् ।

पूतिपयुषितं ज्ञेयं भोजनं तामसप्रियम् ॥४८॥

सात्त्विकानां बने वासो ग्रामे वासस्तु राजसः ।

तामसं घृतमद्यादिसदनं परिकीर्तितम् ॥४९॥

न दाता स हरिः किञ्चित्मवेकस्तु न वाचकः ।

तथापि परमा प्रीतिस्तयोः किमिति शाश्वतो ॥१०॥

इत्येवमगवत ईश्वरस्य विष्णोर्गुणकथनं सनतो विबुध्य भक्त्या
सविनयवचनं मुरपिवर्यं परिगुत्थेन्द्रपुर जगाम मुष्ट ॥३१॥

अगवात् का शेष बचा हुआ उच्छिष्ट (अनाह) तथा छिन्न
नयेछ ही पवित्र पद्व स्वच्छ है । भक्तों को इसी सात्विक भहार का
भोजन करना चाहिए (अर्थात् आज्ञा गामश्री अगवात् को अर्पण करके
ही अनाह रूप में भजन करनी चाहिए) । ४६) जो भोजन इन्द्रियों को
सन्तुष्ट करने वाला, शीघ्र एवं रक्त बद्धक तथा परमाप्तु के देने वाला एवं
आरोग्यप्रद है, ऐसा सूक्ष्म भोजन राजसी कहा जाता है । ४७) कष्टुवा,
मट्टा, बल्लव करने वाला, दुग्ध युक्त तथा वामी भोजन आसही मनुष्या
को प्रिय है । ४८) मनीषुणी पुरुष वन में निवास करते हैं, राजोगुणी
मनुष्य ग्राम व शीघ्र तमोगुणी छूट खेतने के मयया पद पीन के स्थान
में रहते हैं । ४९) अगवात् स्वयं अचना हाथ उठा कर किसी को कुछ
प्रदान नहीं करते, शीघ्र न सेवक ही तनसे कुछ माचना करता है । फिर
भी तनसे परस्पर सदा ही परम प्रीति रहनी है, यह कैसी विविध बात
है ? । ५०) पवित्र मन वाले सनक भक्तिपूर्वक नारदजी के द्वारा अगवात्
विष्णु का गुण-कथन सुन कर विन्मन्न वचनों से अर्धपिवर गजदत्तों की
स्तुति और तनस्कार कर देवतों को चक्ष करते । ५१।

तृतीयांश —

द्वादश अध्याय

एतद् कथितं भूषा फयनीयोरुफमंण ।
कथा भक्तस्य भयतेश्च किमन्यत्कथयाम्यहम् ।१।
त्व राजन्वैष्णवत्र्येष्ठः सर्वमस्त्वहिते रत ।
तवावेश कथं युद्धरङ्गे हिंसादिकर्मणि ॥२॥
प्रायशः साधवो लोके जीवानां हितकारिणः ।
प्राणबुद्धिघनर्वाग्भिः सर्वथा विषयात्मनाम् ॥३॥
द्वैतप्रकाशिनो वा तु प्रकृतिः कामरूपिणी
सा सूते त्रिजगत्कृत्स्न वेदाश्च त्रिगुणात्मिका ॥४॥
ते वेदास्त्रिजगद्धर्मशासना धर्मनाशना ।
भक्तिप्रवर्तका लोके कामिना विषयं पिणाम् ॥५॥
वास्त्यायनादिमुनयो मनवो वेदपारगाः ।
बहून्ति बलिमोक्षस्य वेदवाक्यानुशामिताः ॥६॥
वयं तदनुगा कर्म धर्म निष्ठा रणत्रिवाः ।
जिघामन्त जिघामासो वेदार्थकृतनिश्चयाः ॥७॥

राजा साक्षिस्वयं बोले—हे राजासो ! जिनके घताधारण कर्म फीनिन के योग्य हैं, उन मनवो घोर बलिन का महात्म्य मीने कह दिया है । पर घोर क्या कहूँ ? ।१। राजा बोले—हे राजन् ! घाप सब जीवो के कल्याण करने में तत्पर तथा वैष्णव प्रेष्ट है । फिर घाप हिंसादि दोषो से युक्त युद्ध करने में क्यों प्रवृत्त होगये थे ।२। प्रायः साधुजन

विषयात्मक जीवों का हित-साधन करने के कार्य में अपने प्राण, बुद्धि, मन तथा वाणी प्रादि सब कुछ लगा देते हैं । १३। तद्विषयव शोते— त्रिगुणोत्थिका प्रकृति ही ईश्वरत्व को प्रकृतिगत काशी है । उनका वर्ण और मीनों लालों का उत्पन्न करने वाली यह प्रकृति कामरूपिणी है । १४। तीनों शोनों में नैद ही धर्म की व्यवस्था द्वारा प्रथम का नाम करते हुए विषयात्मक कर्मियों में भी भक्ति का प्रवर्धन करते हैं । १५। वेदों के द्वारा वात्स्यायन प्रादि सुविद्वानों और मनुष्यों ने संशयो के घातन का मानते हुए पश्चात्त्वा के हेतु ब्रह्म प्रदान की थी । १६। हम भी तन्ही का अनुसरण करते वम पूर्वक मुझ में उत्पन्न होशै और बंदिह विद्या के अनुसार ही मुझ में सातताविद्या का सहार कर आपत है । १७।

प्रवध्यम्य वधे दावान्तावान्विध्यस्य रक्षणे ।

इत्याह भगवान्वास, सर्ववेदायत्तरः ॥८८॥

प्रवाचिवत्त न तश्रास्ति तदाधमं प्रवर्तेते ।

धतोऽत्र वाहिनी हत्वा भवता दुषि दुर्जयाम् ॥८९॥

धर्मं कान्ध कालिन्नु समानीपायता वयम् ।

एदा भक्तिमम मता हवामिप्रेतमोऽम् ॥९०॥

मह तदनुवक्ष्यामि वेदावाक्यानुसारतः ।

यदि विष्णु स सर्वथ तदा क हन्ति को हत ॥९१॥

हन्ता विष्णुहतो विष्णुर्बध कस्यास्ति हय चेत् ।

युद्धयज्ञादिषु वधे न वधो वेदशाशातमात् ॥९२॥

इति गायन्मि मुनयो मनवदच चतुर्दश ।

इर्म युद्धंश्च मज्ञंश्च मजामो विष्णुमोऽवरम् ॥९३॥

धतो भागवती मायामाभिन्य विधिना यज्ञन् ।

नेऽप्रसेवकभावेन मुक्तो भवति नान्यथा ॥९४॥

मह वैश्वर्य के द्वारा मन्वाद् वेद-शास्त्री का कथन है कि जो पार-धर्म्य के मारने में है वही तप-योग का धर्म का न करने में भी

है । वही इस प्रकार का घाबरण न करना धर्म है । जगता कोई प्राय-
 विषय भी नहीं है । इसीलिए मैं रणभूमि में दुर्जय सेना के वध में तत्पर
 होकर धर्म, सायुज्य और कलिकबी को यहाँ ले आया । मेरे मृत में यही
 वास्तविक भक्ति है । इस विषय में पापका अधिप्राय जो हो, वह बताइये
 १६-१०। इसके प्रतिरिक्त मैं वेद-वाणी के अनुसार ही कहता हूँ कि
 भगवान् विष्णु सर्व-व्यापी हैं । यदि यह सत्यार्थ है तो फिर कौन किसी
 को मारता है और कौन मरता है ? ११। जब मारने वाले विष्णु हैं,
 और मरने वाले भी विष्णु ही हैं, तो किसका वध हो सकता है ? फिर
 वेद की ही व्यवस्था है कि युद्ध आदि कर्मों में जो वध होना है, वह वध
 नहीं माना जाता १२। यही शान घोड़ह मनुष्यों और मुनियों ने भी
 नहीं है । हम भी इसी के अनुसार यज्ञों और युद्धों के द्वारा भगवान्
 विष्णु का पूजन किया करते हैं । १३। इस प्रकार भगवती माया के आश्रय
 में स्थित हुआ साधक विधिवत् शिष्य-शेवक भाव से भगवान् का पूजन
 करके मुक्त होता है, अन्य कोई विधि सुख-प्राप्त करने की नहीं है १४।

निर्मेभूषस्य भूपाल । गुरो शपान्पृतस्य च ।

ताहरे भोगापसने विरागः कथमुच्यताम् ॥१५॥

शिष्यशापाद्वशिष्ठस्य देहाशान्तिमृतस्य च ।

श्रूयते किञ्च मुक्ताना जन्म मन्त्रविमुक्तया ॥१६॥

अतो भगवतो माया दुर्बोन्पायिजितात्मनाम् ।

विमोहयति ससारे नानात्वोदिन्द्रजालवत् ॥१७॥

इति तेषा वचो भूयः श्रुत्वा राजा कशिष्वज

प्रोवाच वदती श्रेष्ठो भक्तिश्रवणया धिया ॥१८॥

बहूना जन्मनामन्ते तीर्थक्षेत्रादियोगतः

देवाद्भवन्तेसाधुसगस्तस्मादीश्वरदर्शनम् ॥१९॥

ततः सलोक्यताम्प्राप्य भञ्जत्पादतचैतसः ।

भ्रुत्वा भोगाननुपमाम्भक्तो भवति संसृजौ ॥२०॥

हरिरूपाः क्षेत्रतीर्थपावना धर्मतत्पराः ।

सारासारविदः सेव्यसेवका द्वातविग्रहाः ।२५।

यथावतारः कृष्णस्य तथा तस्तेविनामिह ।

एव निमेषनिमिषता लीला भक्तस्य सोचने ।२६।

मुक्तस्यापि वक्षिष्य क्षरीरभजनादरः ।

एतद्व कथितं भूषा माहात्म्य भक्तिभक्तयोः ।२६।

सद्य पापहर पुंसा हरिभक्तिविवर्धनम् ।

सर्वेन्द्रियस्यदेवानामानन्दसुखसञ्चयम् ।

शामरानादिदोषघ्न मायामोहनिवारणम् ।२७।

नानाशास्त्रपुराणवेदादिमलव्याख्यामृताम्भोनिधि

समव्याप्तिचिर त्रिलोकमुनयो व्यासादयो भायुकाः ।

कृष्णो भावमनन्मैवममल ह्यैकज्ञवन नव

लब्ध्या समृतिनाशन त्रिभुवने थोकृष्णतुल्यायते ।२८।

वे श्रीहरि के अवतार का सदा अनुकरण करने वाले होते हैं । पर्वकास में द्रव, पूजन, भक्ति आदि में तत्पर रहते हुए भी परमानन्द में विष्ट रहते हैं ।२२। वे सभी भगवत भोग फल को प्रत्यक्ष प्रकट होता देख कर मोक्ष की कामना नहीं करते और भोगों को भोगते हुए जन्म प्राप्त करके भी सदा हरिभाव को प्रकाशित करते रहते हैं ।२३। भजन-जन हरिस्वरूप और श्रेष्ठ तथा तीर्थों के पवित्र करने वाले, सार और असार के ज्ञाता, धर्मानुष्ठान में तत्पर रहते हुए सेव्य-सेवक रूप में निवास करते हैं ।२४। भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार लेने के समान ही उनके सेवक भी समय-समय पर अवतार ग्रहण करते रहते हैं । इसी लिए तो निमि का भक्तों के नेत्रों पर निमेष रूप से निवास है, इसे भगवान् की ही सीमा समझना चाहिए ।२५। गुह्य वक्षिष्ठ ने मुक्त होकर भी जो पुन देह धारण किया, वह भी इसी कारण से किया था । हे राजासो ! इस प्रकार भक्ति और भक्त का यह माहात्म्य मैंने, आपके

प्रति कहा है ।२६। इसके सुनने से ही सब पाप नष्ट हो जाते हैं, मर वे हरि-नमित की वृद्धि होती और इन्द्रियों के प्रविष्टता खेरता भी सुयो होते है । काम और रागादि सभी दोष तथा माया-मोह का नाश होता है ।२७। तीनों सोनी के ज्ञाता मुनियो ने वेद पुराण्णादि शास्त्रों के समूह रूपी छार का मञ्जन करके यह अत्यन्त पवित्र एव मगर रूप श्रीहृष्यु भक्ति को प्राप्त किया है । यह सब-वस्तु की नष्ट करने वाली है । उस मुनियो की इन प्रकार का फल पावे देस का उनको भववान श्रीहृष्यु के समान ही माना गया है ।२८।



तृतीयांश—

त्रयोदश अध्याय

इति श्रुतः समाया स कथयित्वा निजाः कथाः ।
सशिध्वञ्च प्रीतमना प्राह कल्कि कृताञ्जलिः ।१।
त्वहि नाय त्रिनोकेश एतेभूपास्त्वदाश्रयाः
मा तथा विद्धि राजन त्वस्मिन्वेशकर हरे ।२।
तपस्वप्सु यामि काम हरिदशर सुनिप्रियम् ।
एते मत्पुत्रपौत्राञ्च पालनीयास्त्वदाश्रयाः ।३।
ममापि काम जानासि पुरा जाम्भवतो यथा ।
निघन द्विविदस्यापि तदा सर्वं सुरेश्वर ।४।
इत्युक्त्वा गन्तुमुद्युक्त भार्यया सहित नृपम् ।
सञ्जयाधोमुख कल्कि प्राहुर्भूपाः किमित्युत ।५।

गुरुजी बोले—समा में उपस्थित सब जनों के समक्ष इस प्रकार
घटना वृत्तान्त कहने के उपरान्त राजा सशिध्वञ्च ने हाथ जोड़ कर कल्कि
जी से कहा ।१। राजा बोले—हे हरे ! हे त्रिनोकेश ! यह गमी राजा-
पणु चापके आश्रय में स्थित है । चाप इन सबको घोर सुभे भी अपनी
आज्ञा के पालन में तत्पर समझिये ।२। अब मैं ऋषियों के लिए प्रिय
हरिदशर के लिए तपस्या हेतु गमन करूँगा । मेरे यह पुत्र-पौत्रादि सब
आपके ही आश्रित हैं और चापके द्वारा ही प्रतिपालन करने योग्य हैं ।३।
हे सुरेश्वर ! मैं मेरे अभिप्राय को भले प्रकार जानती हूँ । अपने पूर्व
अवतार में आपने जाम्भवत और द्विविद आदि जिन वानरोंका वध किया

वा वह भी धापको स्पर्श है । १४। यह कह कर राधा शक्तिव्यव मयनी
 वली मुवागवा सहित अमथल के लिए उद्यत हुए । उस समय कल्पिनी ने
 अपना मुख मन्था ने मुझा दिया । यह देख कर राधापण उसे बालने
 की इच्छा से बोले । १५।

हे नाथ किमनेनोवा यस्तु तथा त्वमधोमुख ।

कथ तद्वृत्ति काम न कि न आधि सजयात् । १५।

अम् पृच्छत वो मूषा गुम्माक सदायच्छिदम्

क्षमिष्यन्न मदाप्राज्ञ मदभक्तिजननिषयम् । १६।

इति कल्केर्वच श्रुत्वा से मूषा प्रोक्तकारिणा ।

राजानं त पुन, प्रहृ सशयापद्यमाकता । १७।

कि त्वया कथि न राधच्छिशिवन्न महामते ।

कथ कलिकन्धद्वदिद श्रुत्वा मूषामुदधोमुख । १८।

पुरा रामायतारेण सक्षमयादिन्त्रविद्वेषम्

सक्षमजदय द्विविधो गसमन्वात्सदाकृष्णात् । १९।

राधाभी ने कहा—हे नाथ ! राधा शक्तिव्यव ने ऐसी क्या बात
 धापके वही थी, जिसे पुन कर धापने अर्थ से धापने मुख नीचा कर
 लिया था । यह हमारे प्रति कह कर हमारा मन्दहृ इन्द्र करिये । १५।
 कल्पिनी बोले—हे राजाभी ! धाप वही मन्थागत शक्तिव्यव से ही इत
 विषय में प्रसन्न करिये । कर्णिक ने राम अनी श्री मुर्धन अदम्य भक्ति
 रखने वाले है । वे ही धापक सन्नेह को नष्ट करिये । १६। यह सुनकर सभी
 राधापण सशययुक्त हृदय से राधा शक्तिव्यव में प्रसन्न करने लगे ।
 उन्होंने कहा—हे राजन् ! हे महापते ! हे महापते शक्तिव्यव ! धापने
 धपो ऐगो कीवनी बात कल्पिनी के प्रति कही थी, जिसे पुन कर से
 अशयापनस मुख वाले हो गये थे । १७-१८। शक्तिव्यव बोले—हे राजापण !
 पुरा काल वैश्य रामायतार हुआ था, तब नक्षत्रजो के द्वारा धव को
 धक्ष हुए इन्द्रजो केपनद की राक्षस नाम से मुक्ति हो गई थी । १९।

आभ्यागारे श्रुत्वा वीरवधेनैकाहिकोज्वरः ।
 मोक्षमणस्य शरीरेण प्रविष्टो मोहकारकः ।११।
 त व्याकुलमभिप्रेक्ष्य द्विविदो भिपजां वरः ।
 अशिववशेन सजात स्यापयामास लक्ष्मणम् ।१२।
 लिखित्वा रामभद्रस्य सजापश्रीमहन्द्रितः ।
 लक्ष्मण दर्शयामास ऊर्ध्वस्तिष्ठन्महाभुजः ।१३।
 लक्ष्मणो वीक्ष्य तां पत्नीं विज्वरो बलवानभूत् ।
 स ततो द्विविदं प्राह वरवरय वानरः ।१४।
 द्विविदस्तत्र श्रुत्वा लक्ष्मणं प्राह हृष्टवत्
 स्वतो मरणं प्रार्थ्यं वानरत्वाच्च मोचनम् ।१५।

उस समय अग्निदामा ने ब्राह्मण की हाथ्य करने के पाप स्वरूप
 लक्ष्मणजी के शरीर में ऐकाहिक ज्वर घुस गया, जिससे उन्हें मोहदादि
 उपद्रवों ने घेर लिया ।११। उस समय अश्विनीकुमार के वश में उत्पन्न
 हुए भिपश्वर द्विविद वानर ने लक्ष्मणजी को ज्वर की पीड़ा से व्याकुल
 देख कर एक मन्त्र बतलाया ।१२। इस मन्त्र को लिख कर भगवान्
 श्रीराम के सामने ही एक ऊँचे स्थान पर टाक कर लक्ष्मणजी
 को दिखाया गया ।१३। इस मन्त्र को देखते ही लक्ष्मणजी का ज्वर नष्ट
 हो गया और वनमें लक्ति घर गई । फिर लक्ष्मणजी ने द्विविद नामक
 उग्र वानर से कहा—हे वानर ! पाप वर माँगिये ।१४। तब द्विविद ने
 अश्वत्थ ध्वंसित होकर कहा कि मेरी मापसे ही यही प्रार्थना है कि वानर
 भाव से मुक्त होने के उपाय स्वरूप मेरा मरण मापके ही द्वारा हो ।१५।

पुनस्तु लक्ष्मणः प्राह मम जन्मान्तरे तथ ।

मोचनं भविता कोश बलरामशरीरिणः ।१६।

समुद्रस्थोत्तारे तीरे द्विविदो नाम वानरः ।

ऐकाहिक ज्वरं हन्ति लिखितं यस्तु पश्यति ।१७।

इति मन्त्राक्षरं द्वारि लिखित्वा तालपत्रके ।

यस्तु पश्यति तस्यापि नश्यत्यैकाहिकज्वरः ।१८।

इति सुम्य वर लब्ध्वा चिरायु सुम्यवानरा ।

वनरोमास्त्रभिज्ञात्मा मोक्षमापा कुशोमप्रम् । ११९

तथा क्षेत्रे सूतपुत्रो निहतो शोमहृपरा ।

यत्तरामात्रयुक्तात्मा नैमिषेऽभून्स्ववाञ्छया । १२०

तब महामण्डो ने उसे साक्षात्कृत दिया कि प्राणों जन्म के जब मैं कर्मदायकता से मुक्त होऊँगा, तब तুম मेरे शीश से मृत्यु को प्राप्त होकर धान्य भाव से मुक्त हो जाओगे । ११९ "समुद्र मन्थन के तारे द्विविधो नाम धान्यः" शब्दी यह मन्त्र है, जिसे विष्णु कृष्ण देहने पर ऐकाहिक उदर गृह्य हो जाता है । १२० इस मन्त्र को शर पर प्रवृत्त होकर । यम पर निरुद्ध कर देखा जाहिये तब ऐकाहिक उदर का नाश होना सम्भव है । १२१ मदनगुप्ती से इस प्रकार वर को प्राप्त हुआ वह द्विविध नामक धान्य स्वल्प धीरे से बहुत काश जीवित रहा धीरे धीरे ही का भवतार होने पर इनके मन्त्र ने मृत्यु को प्राप्त होकर प्रमथारिण का मुक्ति को प्राप्त हो गया । १२१ इसी प्रकार पर रती इच्छा ने मृत पुत्र नामदुपण को नैमिषारण्य में बसवती के पक्ष से ही प्राप्ति गये । १२०

जाम्बवान्स्त्र पुरा भूया वामनस्य गने हरी ।

लम्बाप्यूद्भवात्त पादस्य चक्रे प्रदर्शितं मुम् । १२१

मनोबन्धन निगोक्ष्य वामनः प्राह विहितम् ।

मत्तो वृत्तु यद काममृक्षापीय महाबल । १२२

इति त हृष्टवदनो ब्रह्मणो जाम्बवान्मुदा ।

प्राह भी चक्रमहनाम्बन मृषुर्भविष्यति । १२३

इत्युक्ते वामनः प्राहृष्टवदो बन्धनं मे तव ।

मोक्षश्चक्रेण सभिप्रश्निरसः संभविष्यति । १२४

यम कृष्णावतारे तु सूर्यमक्तस्य भवते ।

नन्वितस्तु मन्त्रयै दुर्वाद समजायते । १२५

हे शम्भो ! क्षमावतार में वामनजी ने जब शीश पर मैं ही जीनों लोभों को नाश किया, तब उनके कर्मबोध में शरीर हुए परलोक की

जाम्बवत ने प्रदक्षिण की सी ।२। उस समय उस जाम्बवत् की मन के समान द्रुत वेग जाना देख कर जामनयी अत्यन्त आश्चर्य से क्षिप्त होकर बोले—हे श्रेयाधीश ! तुम महाबली हो, सूक्ष्मे इच्छित वर मांगो ।२२। यह सुन कर हवित मन हुए ब्रह्माश रूप जाम्बवान् ने कहा कि हे शमी ! मेरी मृत्यु मागके चक्र से हो, यही वर प्रदान कीजिये ।२३। जाम्बवान् के वचन सुन कर जामनयी ने कहा—कृष्णावतार मे मेरे चक्र से तुम्हारा वार बटेगा और तुम मोक्ष को प्राप्त हो जाओगे ।२४। तदनन्तर कृष्णावतार हुआ । उस समय मैं सूर्य का मत्त सनाथिन् नामक एक राजा हुआ था । (तब एक मणि के कारण दुर्वाद उत्पन्न हो गया ।२५।

प्रसेनस्य मम भ्रातुर्वंधस्तु मणिहेतुकः ।

सिंहोत्तस्यापि मण्यर्थे वधो जाम्बवता कृतः ।२६।

दुर्वादमयभीतस्य कृष्णस्यामिततेजस ।

मण्यन्वेपणवित्तस्य श्रेष्ठेणामूद्रणो विले ।२७।

स निजेश परिशाय वच्चक्रप्रस्तवन्धनम् ।

मृक्तो बभूव सहसा कृष्ण पश्यन्सलक्ष्मणाम् ।२८।

तत्रदूर्वादितस्थान दृष्ट्वा प्रादाद्भिजात्मजाम् ।

तदा जाम्बवती कन्या शृणुस्य मणिना सह ।२९।

द्वारका पुरमागत्य सभायां मामृषां ह्वयत् ।

अहूय मह्यं प्रददौ मणि मुनिगणानिर्वृतम् ।३०।

प्रसेन नामक मेरा भ्रातृज था । उसे एक सिंह ने मणि के लिए मार डाला । फिर वह सिंह भी उसी मणि के कारण जाम्बवान् के द्वारा वध की प्राप्त हुआ ।२६। जगर कुरु के भय से क्षमित तेज वाले भगवान् श्रीकृष्ण उस मणि को छीन करने लगे, तभी एक गिरि-गुहा में जाम्बवान् के साथ उत्तरा पोट युद्ध हुआ ।२७। तभी जाम्बवान् अपने स्वामी को पहचान गया । भगवान् के चक्र से उत्तरा वार बट

गया । सकमल सहित भगवान् का दर्शन करते हुए जान्मभान् को शोध
 की प्राप्ति हुई । ३०) तब तब श्रीकृष्ण ने अपनी प्रभु की इशान्क मूर्ति
 का दर्शन करते हुए उन्हें अपनी पुत्री जान्मभती के सहित वह मणि
 भेंट कर दी । ३१) फिर श्रीकृष्ण ने द्वाका की राज सुभा में प्राकर
 पुत्रे वही बुसादा घोर मूर्खवश क द्वारा पुत्रिन वह मणि व होने मुके
 दे दी । ३०।

सोऽहं तां लज्जया तेन मणिना कन्यकां स्वकाम् ।

विवाहेन ददावन्मम सावग्याज्जगृहे मणिम् । ३१।

ता सत्यमामादाय मणि मध्यम्यं तु प्रभुः ।

द्व रकामागत्य पुनर्गन्ताह्ययमगादिमु । ३२।

गते कृष्णे मा निहृत्य शतयन्त्राग्रहीन्मणिम् ।

अनोऽहमिह गतामि पूव इन्मनि यत्कृतम् । ३३।

भिर्याभिसावतकृष्णस्व नंदाभून्मोचन मम ।

अतोऽहं कलिकल्पाय कृष्णाय परमात्मने ।

दत्ता रमा सत्यमामारुभिलो यानि सद्गतिम् । ३४।

यह देख कर मैं अत्यन्त खिन्न होया और मैंने अपनी इशान्क
 नाम की कन्या के सहित वह मणि श्रीकृष्ण को ही दे दी । इन दोनों
 के लाकर से प्राप्तित होकर उन्होंने उन्हें ग्रहण कर लिया । ३१।
 तदनन्तर श्रीकृष्ण ने मणि मेरे पास रख दी और स्वयं तदवधाना का
 साथ लेकर द्वाका से हस्तिनापुर को चले गये । ३२। श्रीकृष्ण के जाने
 जाने पर शतयन्त्रा नामक एक राजा ने मणि के निमित्त मेरा पक्ष कर
 दिया और मणि को ले लिया । इस प्रकार इन कलिकर्त्री ने अपने
 पूर्वनिर्धार में जो किया, तब तब को ही चले प्रकार जावना है । ३३।
 श्रीकृष्ण को मैंने झूठा झगंड बनाया था, इसी पाप से उन काम में मैं
 भाग्य को प्राप्त नहीं हो सका । यही कारण है कि इस जन्म में अपनी
 गमा रुभिलो सत्यमामा की कलिकल्प कृष्ण को देकर मैं सद्गति को
 प्राप्त करूँगा । ३४।

सुदर्शनास्त्रघातेन मरणं मम वाञ्छितम् ।
 मरणोऽभूदिति ज्ञात्वा रणे वाञ्छामि मोक्षनम् ।३५।
 इत्यसौ जगतामीशः कल्किः श्वशुरघातनम् ।
 श्रुत्वंवाधोमुखस्तस्यो ह्यिया धर्मभिया प्रभु ।३६।
 श्रत्याश्चर्यमपूर्वमुत्तममिदं श्रुत्वा नृपा विस्मिता
 लोका ससर्दि ह्यपिता मुनिगणाः कल्मेषुंणाकपिता ।
 आस्थान परमादरेण सुखदं धन्यं यशस्य पर
 धीमद्भूपशशिध्वजेरितवज्रो मोक्षप्रदं धामवन् ।३७।

यह ज्ञान कर कि पुद्गल ने मरने से मोक्ष की प्राप्ति सबब है, मैंने यह अभिषाया की थी कि कल्किजी के सुदर्शन अस्त्र-प्रहार से मेरा मरण हो जायगा ।३५। जगदीश्वर भगवान् कल्कि ने अपने श्वशुर का इस प्रकार मारा जाना स्मरण करके ही धर्ममय और लज्ज से अपने मुख झुका लिया था ।३६। इन अस्मत्त विस्मय युक्त, अपूर्व और अष्ट उपारधान को सुन कर राजागण विस्मित हो बैठे तथा सभी समान्तर आनन्द विभोर हुए । कल्किजी के गुणों के प्रति मुनिगण भी आश्चर्य ही रहे थे । राजा शशिध्वज के कह हुए इस उपारधान से सुनने वाला प्राणी सुखी, धन्य और यशस्वी होकर अन्त में मोक्ष की प्राप्ति करता है, उसका सभी पुनर्जन्म नहीं होता ।३७।



बन्दाएँ छाई हुई हैं । वह पुरी स्थान स्थान पर कल्पवृक्षों से सुशोभित हो रही है । वहाँ मनुष्य तो नाम को भी नहीं है । १५।

विलोक्य कल्कि प्रहसन्प्राह भूपान्क्तिमित्यहो ।

सपश्येय पुरी रम्या नराया भयदायिनी ।

नागनारोगण(कोर्ण) कि वास्यमो वदन्तिदह । ६।

इनिक्रम्यताश्चरत् रमानाय हरि प्रभुम् ।

भूपास्तदनुरूपाश्च ते वागाहातरोरिणि । ७।

विलोक्य नेमा सेनाभि प्रवेश्यु भोस्त्वमहंसि ।

त्रा विनात्ये मरिष्यन्ति विषकन्यादृशादपि । ८।

आकाशवाणोमकथ्यं कल्कि, शुक्लहापकृत् ।

यथावेक, सङ्गघरस्तुरगेण त्वरान्वितः । ९।

गत्वा तां दृष्ट्वा वीरो धीरुण धैर्य्यनाशिनोम् ।

स्मेणालक्ष्य लदमोश प्राह प्रहसितानना । १०।

वह देव कर हँसते हुए कल्किजी ने राजाजी से कहा—दे राजा वह सर्वपुरी कौसी धारवर्षमयी एव मनुष्यों के लिए अस्तमत्त भयायनी है । इसमें नागरु-यों का ही निवास है । अब कहिए कि इसमें प्रवेश करें सपत्नी नहीं ? ६। रमानाय कल्किजी और तब राजाजी भी वह निश्चय नहीं कर पाये कि क्या करना चाहिये, इनलिए अस्तमत्त चिन्तित हुये । तब आकाशवाणी सुनाई दी । ७। इस पुरी में सेना-सहित प्रविष्ट नहीं होना चाहिए । क्योंकि जैसे ही पुरी निवासियों विष-कन्याओं की दृष्टि पड़ेगी, वेसे ही नष्ट हो जायेंगे । ८। आकाशवाणी का निर्देश सुन कर कल्किजी एकही ही सङ्ग लेकर छोड़े वर चके और शुक्ल को साथ लेकर चर दिये । ९। कुछ दाने जाने पर ठ-ठे एक पार्श्व कन्या दिखाई दी, जिसे देखते ही जानी जन भी धैर्य छोड़ देते हैं । वह कन्या अपूर्व रूप वाले कल्किजी को देख कर हँसती हुई बोली । १०।

शोपालम्भ मुनिः श्रुत्वा वचनं च ममाप्रियम् ।
 शशाय मां कृष्य तत्र नेताह विपदर्शना ॥१७॥
 निक्षिप्त्वाह सर्पदुरे काञ्चना नागिनो गणे ।
 पतिहोना देवहोना चरामि विपर्वणिणे ॥१८॥
 न जाने केन तपसा भवद्दृष्टिपय गता ।
 त्यक्तशापामृताक्षिह पतिलोक व्रजाम्यतः ॥१९॥
 महो तेषामस्तु शान प्रसादो मा सतामिह ।
 पत्यु शापहृयेर्मोक्षात्तत्र पादाब्जदशनम् ॥२०॥

उन समय मैं अपने हृदय दोहन के दर्श में प्रपन्न मदीन्वत हो रही थी । वहाँ विकट शरीर वाले यक्षमुनि को देख कर मैं उन पर कटाक्ष करती हुई, उनकी हँसी उठाने लगी ॥१६॥ मेरे मुख से अपने प्रति अपमानजनक वचन सुन कर मुनि क्रोधित हो उठे और उन्होंने मुझे शो जाप दिया, उससे मैं तुरन्त विपदृष्टि को प्राप्त हो गई ॥१७॥ तब मुझे इस कावनीपुरी में नागनिषो के मध्य डाल दिया गया । तभी से मेरी दृष्टि विष की बर्षा किया करती है । इस प्रकार मैं प्राधानी पति से हीन होकर यहाँ एकाकी विचरती हूँ ॥१८॥ मुझे ज्ञात नहीं कि अपनी किन तपस्या के फल से मैं अपनी दृष्टि के सामने जा गई हूँ । आपके दर्शन से मैं आप-मुक्त होकर असृजनिणी दृष्टि से सम्बन्ध हो गई हूँ । अथ मैं अपने पति के पास बनन करती हूँ ॥१९॥ अहं । साधुओं के प्रपन्न होने की अपेक्षा त आप देना भी श्रेष्ठ है क्योंकि आप के कारण ही तो मोक्ष स्वरूप आपके चरणाम्बुज का दर्शन प्राप्त हो सका है ॥२०॥

इत्युक्त्वा सा ययौ स्वर्गं विमानेनाकंशचर्चमा ।
 कल्किस्तु तत्पुराधीश नृप चक्र महामतिम् ॥२१॥
 पमर्यस्त्रमुतो धोमान् सहस्रानाम तस्युरः ।
 सहस्रान सुतश्वसीदाजा विधृतवानसि ॥२२॥
 वृद्धनाना भूराना समूता पश्य वशजा ।

त मनु भूगणार्हं तानामुनिगर्हवृत्तं । १२३।
 धर्मोद्धवाया चाग्निपिच्छ मधुरामगमद्वरिः ।
 तस्या भूप सूर्यकेतुमिपिच्छ महाप्रभम् । १२४।

यह बड़ का यह विषयक्या पूर्व जैन तेजस्वी विमान पर यह
 का प्यव को गई । कश्चिहनी ने महापति नरक ६६ गवा की उर
 पूरी के राज्य पर अग्निपिच्छ किया । १२३। उर राजा महामति का पुत्र
 धर्मवृत्त हुआ । धर्मवृत्त का पुत्र धीशान् महान और महान का पुत्र अविन्द
 प्रसिद्ध राजा अग्नि हुआ । १२४। उरी राजा के बड़ से सृष्ट्यन राजाओं
 की उत्पत्ति हुई । भूगणार्ह मनु को धर्मोद्धवा का राज्य देकर धर्मक
 मुनिवा के महिह कश्चिहनी मधुरा पृथ्वी और चतुर्दश मन्वन्त प्रथा
 से मन्वन्त सूर्यकेतु को मधुरा के राज्य पर अग्निपिच्छ अग्निपिच्छ किया
 । १२३-१२४।

मय चक्रं ततो गत्वा देशाणि वारणावते ।
 धरिस्वत्त वृकस्यत्त माकन्द-वृ गवा ह्वयम् । १२५।
 पञ्चमेधेश्वर कुदवा हरिः शम्भलमापयी ।
 शोभन्त पांडु पुलिन्दश्च सुराष्ट्र मगधन्तथा ।
 कविप्राज्ञमुन्तेभ्य प्रददौ आहृषरत्त । १२६।
 कौकट मध्यकर्णटिप्रपोद् कलिङ्गकम् ।
 अङ्ग वङ्ग स्वर्गायेभ्य प्रददौ अगदाश्वरः । १२७।
 स्वय शम्भलमध्यस्य कङ्ककेन कलाधकान् ।
 देश विशाखयूनाय प्रादारकलिङ्ग प्रताडवान् । १२८।
 चीलश्वरकर्वादिशान्दारकारेशमप्यवान् ।
 पुष्येभ्यः प्रददौ कलिङ्ग कृतपम्भपुरस्कृतान् । १२९।

याका करते हुए कश्चिहनी ने देवाधि को राज्य देकर उर
 धरिस्वत्त, वृकस्यत्त, माकन्द, इन्द्रिकापुर और वारणावत्त-इन पाँच
 देशों का अग्निपिच्छ अग्निपिच्छ और फिर शम्भल ग्राम के लिए धर्म देकर ।

फिर आतृवासन कल्किजी ने कवि, भ्रातृ और सुमन्व को घोष्य, पौरुष, बुद्धिद और मन्व्य देवता राज्य दिया ।२५-२६। फिर जगदीश्वर कल्किजी ने अपने गौण शायको को भीष्ट, मन्व्यकण्टिक, घाग्घ, उडु कल्पि, मङ्ग और बंगालि देश प्रदान किये ।२७। फिर स्वयं सम्प्रस में पहु कर विशालसूप-नरेण को कर्क और बराल प्रदेशों का राजा बनाया ।२८। तदनन्तर उन्होंने कृतवर्म्म आदि पुत्रों को द्वारका देव के मन्व्य में स्थित घोल, बर्बर तथा बर्ध आदि प्रदेशों का राज्य प्रदान किया ।२९।

पित्रे घनानि रत्नानि ददौ परमभक्तितः ।

प्रजा समाश्वास्य हरिः सन्भक्तप्रामवासिनः ।३०।

पद्मया रमया कल्किर्गृहस्थो घृमुदे भृशम् ।

धर्मश्चतुष्पादमवल्लुतपूर्णं जगत्प्रथम् ।३१।

देवा यथोक्तफलादाश्चरन्ति भुवि सर्वतः ।

सर्वशस्या घसुमसौ हृष्टपुष्टवनावृताः ।

शाठ्याचौर्यावृत्तहीना भाषिष्याधिविबज्जिता ।३२।

विप्रा वेदविदः सुमङ्गलयुता नार्पस्तु चार्याश्रितैः ।

पूजाहोमपराः पतिव्रतपरा यागोद्यता क्षत्रियाः ।

वंशया वस्तुषु धर्मतो विनिमयैः श्रीविष्णुपूजापराः ।

शूद्रास्तु द्विजसेवनाद्धरिकयालापाः सपर्यापराः ।३३।

फिर मन्वयाद् कल्किजी अपने पिताको अत्यन्त भक्तिपूर्वक घन-रत्न आदि भेंट करके और सम्प्रस ग्राम के निवासियों को संतुष्ट करके रमा और पद्मया के साथ गृहस्थाश्रम के सुख भोगने लगे । तब तक धर्म के पारो चरणों सम्पन्न हुए लोगों लोको में सप्तयुग का भाषिर्भाव ही गया ।३०-३१। भक्तों को इच्छित फल प्रदान करते हुए देवगण सम्पूर्ण पृथिवी पर विचारण करने लगे । धरा के सब धान्यों से परिपूर्ण होने के कारण सभी प्राणी हृष्ट-पुष्ट हो गए । शाठ्य, चौर्य, भ्रतृ, भाषि,

अग्नि आदि सभी दुग्ध भूतगणन से घटकर ही गये ।३२। माहात्म्य
 वेदपाटी हुए, शिवजी प्रतिष्ठित वर्ष के पानक पूर्ण वर्षानुष्ठान से सगी ।
 सर्वत्र पूजन और होव जाने लगे । अग्नि भी यज्ञादि शुभ कर्मों में उत्पन्न
 हुए । विष्णु-पूजन में रत रहते हुए वैश्व गण भी बस्तु विनियम का
 धर्म पूर्णक, व्यापार करने लगे । शूद्रवर्ण द्विव श्रेणी परावृत्त हुए । सभी
 प्राणी भगवान् का सुख शीर्षक, व्यवस्था और उपासना में उत्पन्न रहते
 हुए जीवनवर्षा समाने लगे ।३३।



तृतीयांश—

पंचदश अध्याय

शशिध्वजो महाराज स्मृतत्वा मायां गतं कुत ।

का वा मायास्तुतिं सूत षट् तत्त्वविदा वर ।

या त्वत्कथा विष्णुकथं वक्तव्या सा विशुद्धये ।१।

शृणुष्व मुनयः सर्वे मार्कण्डेयाय पृच्छते ।

शुक प्राह विशुद्धात्मा मायास्तवमनुत्तमम् ।२।

तच्छृणुष्व प्रवक्ष्यामि यथाधीतं यथाश्रुतम् ।

सर्वकामप्रदं नृणां पापतापविनाशनम् ।६।

भस्माटनगरं त्यक्त्वा विष्णुभक्तं शशिध्वजः ।

प्रात्मसंसारमोक्षाय मायास्तवमलं जगौ ।४।

मो ह्रीकारा सत्त्वसारा विगुह्या ब्रह्मादीनां मातरं वेदबोध्याम्

तन्वीं स्वाहा भूततन्मासृकक्षां वन्दे वन्द्यां देवगन्धर्वसिद्धिः ।५।

सोमक जी बोले—हे सुतजी ! गणवती माया की स्तुति करके महाराज शशिध्वज कहाँ गये ? हे सत्त्वज्ञानियो मे धेछ ! माया की स्तुति के विषय मे बताइये । माया और विष्णु को क्या मे कोई भेद नहीं होने से पूनीत होने के उद्देश्य से उस स्तव को हमारे प्रति कहिये ।१। सूत जी न कहा—हे श्रुतियो ! मार्कण्डेयजी, के पूछने पर शुकदेव जी ने जो छेष्ट माया-स्तोत्र कहा था, यही तुम्हारे प्रति कहता है, सुनिये ।२। जिस माया-स्तव को मैंने सुना और पढ़ा है, जो सुनने से सब की कामनाएँ पूर्ण करने वाला और पाप-ताप का नाशक है, उस

स्वर्भविणी को नमस्कार है । ७। प्राणको महिमा से ही यह त्रिलोकी पञ्चभूतात्मिका रूप से प्रकाशित है । काम, दैव, कर्म, उपाधि आदि कोई भी विषयानु द्वारा निश्चित भाव प्राणके प्रकाश के बिना प्रकाशित नहीं हो सकता । ऐसी प्राण प्रमादनी को मेरा नमस्कार है । ८। प्राण ही पृथिवी में गन्ध, जल में रस, शीत में रूप, वायु में स्पर्श और आकाश में शब्द रूप से विविध रूपों में प्रतिष्ठित रहती है । प्राण जबत् में व्याप्त विश्वरूपिणी को नमस्कार है । ९। प्राण ही ब्रह्मरूपा सावित्री है, भगवान् विष्णु की लक्ष्मी, संकर की भवानी तथा देवताओं इन्द्र की पत्नी है । हे माते । सम्पूर्ण विश्व में प्राण इसी प्रकार व्याप्त हो रही है । १०।

वाल्मे वाता युवती यौवने स्ववाचं कथे या स्थविरा कालकल्पा
नावाकारं र्वागमोर्गैरुपास्या ज्ञानातोता कामरूपा विभासि । ११
वरेण्या स्व वरदा लोकसिद्ध्याः साध्वोषन्या लोकमान्या सुकन्द्या
घण्टी दुर्गा कालिका कालिहास्या, नानदेयो
रूपवेशी विभासि । १२।

तत्र परशुसरोज देवि ! देवादिवन्द्य यदि हृदयसरोजे ।

भावयन्तोह भवत श्रुतियुगकुहरे वा सश्रुत
घर्मसम्पन्नमति जगदाद्ये सर्वसिद्धयै तेषाम् । १३।

मायास्तस्यमिदं पुण्यं युगदेवेन भायितम् ।

मार्कण्डेयाद्वाप्यापि सिद्ध लेभे शशिव्रजः । १४।

कोकामुखे तपस्तप्त्वा हरिं ध्यात्वा वनान्तरे ।

मुद्गनेन निहन्ते वंकुष्ठं शरणां ययौ । १५।

प्राण शक्तिव्यवस्था में वाता, पौषणावस्था में युवती और वृद्धा-
वाया में वृद्धा रूप वाली रहती है । प्राण ही काम से कश्चिद, ज्ञानातीता
और कामरूपा है । प्राण विभिन्न रूपों में प्रकाशित होने वाली ईश्वरा
का यह और योग के दाता पूजन किया जाता है । मैं प्राणकी वन्दना
करती हूँ । ११। हे वरेण्या ! प्राण ही उपासको को वरदात्री और सिद्धि
के देने वाली है । प्राण लोकी के द्वारा माया, माध्वी, एव सब प्रकार
से बनाई है । प्राण ही श्रेष्ठ कन्या, घण्टी, दुर्गा, कालिका आदि विभिन्न

रूपों से अनेक देशों से प्रकाशित रहती हैं ।१२। ई सद्यः की प्राप्ति
 क्या देवि ! यदि कोई अपने हृदय में वेवतापी प्रादि से वन्दित पापके
 चरणाचरिन्दों का भवित भाव पूर्वक ध्यान और पापका नाम-अपराध
 करता है, तो उसे धर्म रूपी ऐश्वर्य और सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति
 होती है ।१३। यह पवित्र माया-शुद्ध सुन्दर श्री द्वारा ब्रह्मा गया वा ।
 राजा शशिध्वज ने इसे मार्कण्डेयजी से प्राप्त करके सिद्धि-लाभ किया
 ।१४। वन में स्थित कोकादुख नामक स्थान में तपस्या करते हुए राजा
 शशिध्वज सुदर्शन चक्र से निहत होकर वैकुण्ठ की बात हुए ।१५।



तृतीयांश—

षोडश अध्याय

एतद् कथितं विद्यां शशिध्वजविमोक्षणम् ।
कल्केः कथामप्रतिमा भृशवन्तु विबुधस्यमाः ।१।
वेदो धर्मं कृत्वयुग देवलोकश्चराचरा ।
हृष्टं पृष्टां मुननुष्टां कल्को राजनि चामवन् ।२।
तानादेवाश्चित्क्रेषु भूषणैर्भूषितेषु च ।
इन्द्रजानिकवद्वृत्तिरत्नका, पूजका जनाः ।३।
न सन्निमायामोहाटयां दासशुद्धा, साधुवचकाः ।
तिलकाचित्तसर्वाङ्गा कल्को राजनि कुपचित् ।४।
शम्भवे वसतस्तस्य पञ्चश रमया सह ।
प्राह विष्णुपदा पुत्र देवान्मष्टु जगद्धितान् ।५।

मूत्रबो बोले—हे ब्राह्मणो! इस प्रकार राजा शशिध्वज को मोक्ष प्राप्ति का प्रसंग मैंने सादर सुनाया । जब कल्किजी के विभिन्न पारदान को पुनः कहता हूँ, ऐसे मुनिवै ।१। जब भगवान् कल्किजी राज्य सिद्धान्त पर प्रतिष्ठित हुए, तब वेद, धर्म, सत्य, देवगण और चराचर मुक्त विश्व हृष्ट, एक समुष्ट हो गया ।२। पूर्व युग में पूजा करने वाले मनुष्य देव मुनियों को विभिन्न प्रकार के पञ्चाक्षरों से घतन करके इन्द्रजान के समान रहस्य-रहस्य किता करते थे ।३। जब यह माया मोह से घातित मायु बचक पाण्डव समाप्त हो गया । कल्किजी के

राज्य में सभी मनुष्य उर्ध्व ग में त्रिक खराने लगे । ४५ एतद् मोर रमा
के साथ जब कलिकरी सम्पन्न ग्राम में सुव पूवक निवास कर रहे थे,
उसी एक दिन उनके पिता विष्णुवशाजो ने अपने पुत्र से देवताओं की
मनुष्ट करने वाले यज्ञ का अनुष्ठान करने को कहा । ४६।

सच्युत्वा प्राह पितर कलिक परमहृषितः ।
विनयावनतो भूःश षर्म कामार्थेसिद्धये । ४६।
राजसूर्येर्षामपेयैरदवमेधमं हामरैः ।
तानाशाम् कर्मन्नेरोसे कनुर्ति हरिम् । ४७।
गयाधमुनयोर्मध्ये स्नात्वा वनमृशमादरात् ।
कृपगमवसिष्ठार्थं ध्यात्त घौम्यकृतप्रणैः ।
धवत्वाममघुच्छन्दोमन्दपालंमहात्मना । ४८।
दक्षिणाग्नि ममम्यन्त्रं ब्राह्मणान्नेश्वारगान् । ४९।
चव्यैश्रोथ्यैश्च पेयैश्च पूगशण्डुलिषावकैः ।
भोजयामास विविक्तसर्वकर्मसमृद्धिभिः । ५०।

पिता के वचन सुन कर हृषित हुए कलिकरी ने विनय पूर्वक
कहा—धर्म, धर्म मोर काम की सिद्धि के प्रयोजन से मैं कर्म कृत्य विहित
राजसूर्य, वाजपेय मोर भरतमेव दि महायज्ञों के अनुष्ठान द्वारा भगवान्
विष्णु को प्रसन्न करूँगा । ४६। फिर कलिकरी ने कृपाचार्य, परशुराम,
बसिष्ठ, व्यास, योग्य, महच्छरण धवत्वामा, मनुच्छन्द तथा मन्दपाल
आदि महात्मा महर्षियों मोर वेदज्ञानियों की यामन्त्रित कर उनका पूजन
किया । उद्वन्तर गङ्गा-मधुना के मध्य में स्थित यज्ञ म दीक्षित होकर
उन्होंने स्नान किया मोर दक्षिणा दी । ४८-४९। फिर उन्होंने मनक प्रहार
के ध्वज, धाव्य, वद, पूव, शण्डुलि मोर यावक आदि योग्य पदार्थों
के द्वारा उन ब्राह्मणों को श्रेष्ठ भोजन कराया । ५०।

यश्च बह्विहृतं वाके वक्ष्ये जलदो मष्ट् । ५१।
परिवेष्टा टि नान्कामं सन्नार्थं रतोपधत् ।

वाद्यं नृत्यंश्च गीतंश्च पितृपद्ममहोत्सवम् १२।
 कल्कि कमलपत्राक्ष प्रहर्षं प्रददौ वसु ।
 छोवालस्यविरादिभ्यः सर्वेभ्यश्च यथोचितम् १३।
 रम्भा तालघरां नन्दी हूहूगविति नृत्यति ।
 दत्त्वा दानानि पात्रेभ्योवाह्यम्ण्ये. स ईश्वरः १४।
 उवाच तीरे गगाया पितृवाक्यानुमोदितः ।
 समाया विष्णुपुत्रस. पूर्वं राजकथाः प्रियाः १५।
 कथयन्तो हसन्तश्च हर्षयन्तो द्विजा बुधाः ।
 तथागतस्तुम्बुरुहणानारदः सुरपूजितः १६।

यश वा भले प्रकार परिष्कार हुआ । अग्नि ने पाठ किया,
 वरुण ने जल प्रदान किया और वायु परोक्षने मया । एतन्नाथ कल्किजी
 ने इस प्रकार खेप्ट मन्नादि, नृत्य, वाद्य, गीतादि से उत्सव करते हुए
 सब के आनन्द की वृद्धि की । बालक, स्त्री, वृद्ध आदि सब को धन से
 यथोचित सत्कृत किया । ११-१३। रम्भादि नाचने लगी, नन्दी ताल देने
 लगे, हुई गन्धर्व ने गीत गाया, उस समय ब्राह्मणों और सत्पुरुषों को
 धन प्रदान करने के पश्चात् कल्किजी अपने पिता की अनुमति से गङ्गा-
 त पर रहने लगे । विष्णुपुत्र की विद्वत्सभा में विद्वान् विप्रगण राजाओं
 को सुतोष देने वाली बघाएँ कहने लगे । इस प्रकार जब सभी ज्ञानी-
 जन एवं द्विजजन आनन्द में निमग्न थे, सभी राजा तुम्बुरु और देवताओं
 द्वारा पूजित नारदजी वहाँ प्राये । १४-१६ ।

त पूजयानास मुदा पित्रा सह यथाविधि ।
 तो सपूज्य विष्णुपुत्रा. प्रोवाच विनयान्वितः ।
 नारद वेष्णुर्वं प्रीत्या बीणापारण महामुनिम् १७।
 भहो भाग्यमहो भाग्यं मम जन्मशतार्जितम् ।
 सबद्विधाता पूर्णतां यन्मे मोक्षाय दर्शनम् १८।
 अद्यान्मपश्च सुहृतास्तृप्ताश्च पितरः परम् ।

देवाश्च परिसन्तुष्टास्तवावेक्षणपूजनात् ।१९।
 यत्पूजायां भवेत्पूज्यो विष्णुर्गन्मम दर्शनम् ।
 पापस्य स्पर्शनाच्च किमहो साधुसङ्गतः ।२०।
 साधूना हृदय धर्मो वाचो देवाः सनातनाः ।
 कर्मक्षयाणि कर्माणि यतः साधुर्हरिः स्वयम् ।२१।

उस प्रवसर पर प्रफुल्लित हृदय वाले विष्णुपक्ष श्री ने उन दोनों का विधिवत् पूजन किया और फिर उन्होंने वीणावाणि विष्णु भक्त नारदजी से विनय पूर्वक कहा ।१७। विष्णुपक्ष बोले—मेरा अङ्गी-
 भाग्य है । तौ जन्मों से संचित पुण्य के प्रभाव से, ही भार परम पूर्ण पुरुषों के दर्शन मेरे मोक्ष के उद्देश्य से ही प्राप्त हुए हैं ।१८। मायके दर्शन और पूजन के होने से हमारे पित्रों की भी तृप्ति हो गई तथा अग्नि में दी हुई माहुत के सफल होने में देवगण भी अनुष्ट हो गए हैं ।१९। बिनके पूजन में भगवान् विष्णु का पूजन निहित है, उनके दर्शन मात्र से ही पुनर्जन्म का नाश हो जाता है । उनके स्पर्श मात्र से पापों के पुंश भी समूल मिट जाते हैं । ऐसे साधुओं का सब भी भद्रमुद् ही है ।२०। साधुओं का हृदय धर्म, वाणी सनातनदेव और कर्म ही कर्म को सीख करते हैं । इस प्रकार साधु ही साक्षात् हरि हैं ।२१।

मन्ये न भौतिको देहो वैष्णवस्य जगत्प्रभये ।
 यथावतारे कृष्णस्य सतो दुष्टदिविग्रहे ।२२।
 पृच्छामि त्वामतो ब्रह्मन्मायासंसारवारिधौ ।
 नोकाया विष्णुभवत्वात्तु कर्णवारोऽसि पारकुत् ।२३।
 केनाहं यातनागारान्निर्वाणपदमुत्तमम् ।
 सप्यामीह जगद्बन्धो कर्मणा कर्म तद्बद ।२४।
 ग्रहो बलवती माया सर्वाश्चर्यमयी शुभा
 पितर मातर विष्णुर्तेव मुञ्चति कर्हचित् ।२५।
 पूर्णो नारामणो यस्य भुतः कल्किर्जगत्पतिः

त विहाय विष्णुपदा मत्तो मुक्तिमभोऽस्ति ।२६।

बुद्धों को इष्ट देने वाला थीदृष्णाशतार जिस प्रकार भौतिक देह से मुक्त नहीं है, वैसे ही तीनों लोको में विष्णु मत्तो के शरीर भी पद्मभूत से मुक्त प्रतीत नहीं होते ।२२। हे ब्रह्मन् ! इस माया मय सत्तार सागर में भाव ही विष्णुनक्ति रूपिणी लीला के द्वारा पार कराने वाले है । इसी निधे में आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ ।२३। हे विश्वम्भो ! भाव मुझे यह बनाने की कृपा करिये कि मैं इस सत्तार ऊंची घातनगर से मुक्त होकर अष्ट निर्वाणपद को जिस कर्म के द्वारा प्राप्त कर सकता हूँ ? ।२४। नारदजी ने कहा—सहो ! यह माया कौंसी घातनर्यमयी, उजाला और चपवकी है, जिससे प्रमाथ से स्वयं जगवान् भी अपने पिता माता को मुक्त नहीं करा पाते ।२५। जिन विष्णुपदों के पृथ सासत् मगवान् आरति कल्कि है, वे मुझसे मोक्ष की कामना व्यक्त करते हैं ।२६।

विविच्येयं ब्रह्मभूतं प्राह ब्रह्मयज्ञः सुतम् ।

विविधते विष्णुपदासं यत्प्रसम्पद्विवर्द्धनम् ।२७।

देहावसाने जीवसा दृष्ट्वा देहावम्बनम् ।

मायाह कतुमिच्छन्त यन्मे तच्छृणु मोक्षदम् ।२८।

शिष्यादौ रमणी भूत्वा मायोवाच यथेच्छया ।२९।

अहं माया मया त्यक्त कथं जीवतुमिच्छसि ।३०।

नाहं जीवाम्यहं माये कायेऽस्मिन्नो विनाश्रये

महमित्यन्यथा बुद्धिविना देहं कथं भवेत् ।३१।

देहबन्धे यथास्लेपास्तथ बुद्धिं कथं त्वय ।

मायाघीनां विना चेष्टां ते कुतो पद ।३२।

ब्रह्मकुन्दन नारदजी ने यह लोष कर ब्रह्मज्ञान देने के विचार में विष्णुपदों से कहा ।२७। नारदजी बोले—अहं देह के नष्ट होने पर पुन देह का प्राप्य प्राप्त करने की जीवने कामना की तब माया ने जो कुछ कहा था, उसे सुनो । इसके सुनने से ही मोक्ष विना जाता है ।२८। उन मगवती माया ने विष्वाक्ष पर स्वेच्छा से नारी रूप धारण करके

कहा ।२९। माया बोली—मैं माया हूँ । जब मैंने तुम्हारा त्याग कर दिया है, तब तुम पुनर्जीवन प्राप्त करने की इच्छा क्यों करते हो ? ।३०। इस पर जीव ने कहा—हे माये ! मैं तो जीवन की इच्छा नहीं करता, परन्तु जीवन का मायव शरीर ही है । यह रूपी अभिमान के बिना देह धारण ही किस प्रकार संभव है ? ।३१। माया बोली देह धारण पर जो भेद ज्ञान होता है, तब तुम्हारी बुद्धि उस प्रकार की क्यों होती है ? जब चेष्टा माया के बिना सम्भव नहीं, तब माया रहित तुम्हारी चेष्टा किस प्रकार होती है ? ।३२।

मां विना प्राज्ञता माये प्रकाशविषयस्पृहा

मायया जीवति मरुत्चेष्टते हतचेतनः ।

निःसारः सारवद्भासि गजभुक्तकपित्यवत् ।३४।

मम संसर्गजाता त्व नानानामस्वरूपिणी ।

मां विनिन्दसि कि मूढे स्वीरिणी स्वामिन यथा ।३५।

ममाभावे तवाभावः प्रोक्षत्सूर्ये तमो यथा ।

मामावयं विभासि त्व रविनवघनो यथा ।३६।

लोलावीजकुक्षुलासि मम माये जगन्मये ।

नाद्यन्ते मध्यतो भासि नानात्वादिन्द्रजालवत् ।३७।

जीव ने कहा—हे माये ! तुम्हारी प्राज्ञता मेरे बिना प्रकाशित नहीं हो सकती और न फिर विषय में स्पृहा ही सम्भव है ।३१। माया बोली—जीव का जीवन धारण माया से ही हो सकता है । माया से रहित जीव हाथी द्वारा भक्षित कपिल कण के समान सागहीन होता है ।३४। जीव बोला—हे मूढ़े ! तूने हमारे ही संसर्ग ने उत्पन्न होकर नाना प्रकार के नाम और रूप धारण कर लिये हैं । स्वामी की निन्दा करने वाली स्वीरिणी नारी के समान तू हमारी निन्दा क्यों कर रही है ? ।३५। जैसे सूर्योदय होने पर घनघोर का अभाव हो जाता है, वैसे ही मेरे अभाव में तेरा भी अभाव निहित है । जैसे सूर्य को आवृत्त करता

हृदा मेघ गोमा दाता ।, बैसे हो तुम भी मुझे इत कर गोमा को प्राप्त
होती हो ।३६। हे माये ! तुम सीमा कभी बीज की मुनी के समान हो ।
घनेस्व की कारण कृपा भी तुम्हीं हो तथा सगर के प्रादि, ध-त
घोर तप में इन्द्रजाल की भांति सुशोभित होनी हो ।३७।

एव निवपय नित्यं मनोव्यापारवजिततम् ।

अभौतिकमजीवश्च शरीर वीक्ष्य सा त्यजत् ।३८।

त्यक्त्वा मा सा ददौ शपमिति लोके तवाप्रिय ।

न स्थितिभ्रवति काष्ठकुड्योपम कपञ्चन ।३९।

मा माया तव पुत्रस्य कल्केविश्रात्मनः प्रभोः ।

ता विज्ञाय ययाकाम चर मा हरिभावन ।४०।

निराशो निमग्न शान्तः सर्वभोगेषु निस्पृहः ।

विष्णो जगदिदं ज्ञात्वा विष्णुर्जगति वासकृत् ।

आत्मनास्थानमावेश्य सर्वतो विरतो भव ।४१।

एव तं विष्णुयज्ञसमामन्त्रं च मुनीश्वरौ ।

कल्किं प्रदक्षिणीकृत्य जग्मतुः कपिजात्रमम् ।४२।

इस प्रकार निवपय, मायमित्त भावार्थ घोर अभौतिक जरीन
से परे तम शरीरघारी की देख कर माया ने उमठा त्याग कर दिया
।३८। तब समय माया ने मेरा त्याग करते हुए यह क्षाप दिया कि हे
बीज । तू अप्रिय है : तू काठ की भीन के समान निश्चेष्ट एव भोक में
सकथा स्थिति-हीन हूँ ना ।३९। नारदजी बोले —हे प्रभो ! तुम्हारे पुत्र
विश्राम कल्किजी ने ही इस माया को उत्पन्न किया था । तुम उस
माया के स्व को जानते हुए भगवान् विष्णु के ध्यान में रत रहने हुए
वेच्छापूर्वक समर्पण करो ।४०। अब तुम माया घोर समता को त्याग
कर घोर मभी योगों से परे होकर शान्त चित्त हो ज धोगे, तब तुम्हें
दमक ज्ञान होगा कि यह विश्व भगवान् विष्णु के विराट् प्रभाव में
प्रतिष्ठित है तथा भगवान् विष्णु इस सक्षित जगत् में व्याप्त हैं । इस
प्रकार के ज्ञान से बीरारना घोर परमात्मा में प्रभेद मानने हुए सभी

कामनाओं से मुक्त हो जायो । ४१। इस प्रकार विष्णुयशो जी ज्ञान देकर और कल्कि जी की प्रदक्षिणा कर दोनों मुनीश्वरों ने कपिलाश्रम के लिए प्रस्थान किया । ४२।

नारदेरित्तमाकर्ष्य कल्कि सुतमनुत्तमम् ।

नारायणं जगन्नाथं वनं विष्णुयशो यमो । ४३।

गत्वा बदरिकारभ्य तपस्तपसा सुदारुणम् ।

जीवं बृहति सयोज्य पूर्यस्तत्याजप भौतिकम् । ४४।

मृतं स्वामिनमातिङ्गघ सुमतिः स्नेहविवलवा ।

विवेश दहन साध्वी सुवेशदिवि संस्तुता ॥४५॥

कल्किः श्रुत्वा मुनिमृषात्पित्रोनिर्वाणामीश्वरः ।

सवाष्पनमन स्नेहात्तयोः समकरोत्कियाम् ॥४६॥

पद्मया रमया कल्किः शम्भले सुरवाञ्छिते ।

चकार राज्य धर्मात्मा लोकवेदपुरस्कृतः । ४७।

महेन्द्रशिखराप्रामस्तीर्थपर्यटनाहतः ।

प्रायात्कल्पेर्दर्शनार्थं शम्भल तीर्थकृत् । ४८।

विष्णुयशो जी ने देवपि नारद के मुख से यह सुन कर और जान कर कि मेरे पुत्र ही भगवान् नारायण जगदीश्वर हैं, स्वयं वन के लिए प्रस्थान किया । ४३। वह वहाँ से चल कर बदरिकाश्रम पहुँचे और वहाँ चोर तप करके अपने धारमा को ब्रह्मा में समुत्कृत कर दिया तथा पद्म-भूटात्मक देह को छोड़ कर पूर्ण स्वरूप हो गए । ४४। अपने पति की मृत्यु हुई सुन कर सुमति स्नेह से विह्वल होकर अपने पति के साथ विला में प्रविष्ट हो गई । उस समय श्रेष्ठ वसत्र भूषण को धारण किये हुए देवशोक स्थित देवगण उनकी रतुति करने लगे । ४५। कल्कि जी ने मुनिगो के मुख से अपने माता-पिता का महाप्रणाल सुन कर स्नेह-जन से परिपूर्ण नेत्रों के सहित वनश्राद्धादि कर्म किया । ४६। फिर लोकाचार और धर्माचार में स्थित कल्कि जी देवताओं द्वारा कामना किये हुए शम्भल नाम से रमा और पद्मा के सहित राज्य करने लगे । ४७। तीर्था-

रत में सनातन परशुरामजी महेंद्र वर्तन के सिवर से उतरते हुए कल्कि
जी के दर्शनार्थ दम्भम नाम से पधारे । ४८।

त दृष्ट्वा महसोत्याम पद्मया रमया सह ।

कल्किः प्रहृषो विषिवत्पूजाश्रुके विधानवित् । ४९।

नानारमंगुं शुभमर्मो जायित्वा विविधिते ।

पर्यङ्कुऽनकवस्त्राटये जाययित्वा मुद ययो १०।

न भुक्तवन्त दिश्रान्त पादसवाहनगुं हम् ।

सतोष्य विनयापत्त कल्किर्मपरमहवोत् । ११।

तव प्रसादारिसद्ध मे गुरो प्रैवगिकञ्च यत् ।

सगिध्वजकेलायास्तु श्यु राम निषेदितम् । १२।

इति पत्रिवचन निश्रम्य राम निजहृश्येगिसितपुत्रलाभमिष्टम् ।

अनजपनियमर्ममोश्च कर्वा नम भवतोह मुदाह जापदान्यम् १३

उन्हें देखते ही परमा पीर रमा के सहित कल्किजी घरने सिंह-
सन से बढ बडे पीर विदि विधान सहित हविन मन से उषका पूजन
करने लगे । ४९। विभिन्न रनो से युक्त घनादि क उन्हे भोजन कराके
सुन्दर वस्त्रों से ढकी हुई अद्भुत शरणा पर उन्हे सावन कराया । ५०।
बिना समय गुरुवर परशुरामजी विश्राम कर रहे थे, तभी समय कल्किजी
उतरे खरल धारने हुए विनय पूर्वक मस्तु बाणो से कहने लगे । ५१।
हे गुरो ! आपकी कृपा से मेरे घर्म, लर्म और काम इन तीनों बर्ष की
मिद्धि हो चुकी है । इस समय रात्रा सगिध्वज की पुत्री रमा आपसे एक
निषेदन करना चाहती है, उसे सुनने की हुपा करे । ५२। वति के धवन
सुन कर हर्षित हृदय से रमा ने परशुरामजी से प्रसन्न रिधा—अप, अफ,
निधम आदि से ऐसा शौन-सा अनुष्ठान है, जिसके द्वारा मुझे दन्दिन
सुन की प्राप्ति हो सकती है ? । ५३।

तृतीयः—

सप्तदश अध्याय

आमदान्यः समाकर्ष्य रमांशो पुत्रवर्द्धिनीम् ।
 कालेतरमिभनं बुद्ध्याकारमद्भिमल्लोत्तमम् ॥१॥
 अतः तेन च रमा गुहादद्या गुमया सती ।
 सर्वभोगैः संयुक्ता बभूव स्थिरपीयना ॥२॥
 विधानं हृदि मे सूतं व्रजस्थास्य च यत्कनम्
 पुरा केन क्व च सर्वं देविमल्लोत्तममुत्तमम् ॥३॥
 गृह्युं श्रद्धान् राजपुत्रीं शर्मिष्ठाः शर्वभर्तृणीः ।
 यवगात्रा सरोजिरी सौमं हरमपश्यत् ॥४॥
 सा सखाभिः परिवृता देवयान्ता च संगता ।
 शम्भुमीरया समुत्थाय पयोधुर्दसनं व्रजत् ॥५॥

पुत्रको बोले—हे श्रुतिभो ! रमा को पुत्र ही शनिवर्द्धिनी मान
 कर और कलिहारी के शनिपाप को संपन्न कर वापुसारानी के उते
 शनिमल्लो वन का शरण लिया । १। उत उत के प्रान के शनिमल्ल
 पुत्री रमा वृजशरी, शोशय्य सम्पत्ता, सर्व भोगों से शस्त्रुत्तं एव स्थिर
 पीयन हो गई । २। श्री रजनी ने कहा—हे वृजको ! वन शनिवर्द्धिनी वन
 का विधान पौर वन मुझे बजावने पीर भाव ही यह जो कहिये कि इस
 वनमें उत्तम वृज की कहिये किन ने किया था ? ३। वृजको ने कहा—
 हे वृज ! यवने को पूछा है, कही कहना है, सुनिये । शनिवर्द्धिनी वृजशरी
 को पुत्री शनिमल्लो की । एक दिन यह सरोवर के वन में वृज कर विहार
 रात हुई तो, उसी वनमें शनिमल्लो कहिये । यवनात् सरोवर को पूर्ण देखा

।४। तत्र शर्मिष्ठा, देवयानी और अन्धान्य शर्मिष्ठा सभी भयभीत होकर सरोवर से निकल कर तट पर आ गई और अपने-अपने बस्त्रों को धारण करने लगी ।५।

तत्र युक्तस्य कन्याया वस्त्रवत्ययमात्मनः ।
 संलक्ष्य कुपिता प्राह वसग त्वन्न भिक्षुकि ।६।
 इति शानवकन्या सा दासीवि. परिवारिता ।
 तां तस्या वासना बद्ध्वा कूपे क्षिपत्वा गता गृहम् ।७।
 ता मग्ना रुदती कूपे जलार्थो नहुषात्मजः ।
 करे स्पृश्य समुद्रघृष्ट्य प्राह का त्वं यरानने ।८।
 सा शुक्रनुत्री वसुन परिधाय ह्लिया भिया ।
 शर्मिष्ठायाः कृतां सर्वं प्राह राजानमीक्षती ।९।
 ययातिस्तदभिप्राय ज्ञात्वानुव्रज्य शोभनम् ।
 आश्रास्य तां यथो गेह तस्याः परिणयाहतः ।१०।

उभो शोभना और विह्वलता के कारण वैश्वानर युक्तस्य की पुत्री देवयानी ने मूत्र से शर्मिष्ठा के वस्त्र धारण कर लिये । यह देख कर शर्मिष्ठा क्रोधित होकर बोली—घरी भिक्षुकी ! तू मेरे बस्त्रों को उतार दे ।२। इसके पश्चात् उस वैश्वानर पुत्री शर्मिष्ठा ने देवयानी को बस्त्रों से बाँध कर एक कूप में डाल दिया और शर्मिष्ठा के महिष पर चली गई ।७। कूप में गिरी हुई देवयानी रुदन करने लगी, तभी नहुष-पुत्र राजा ययाति जन पीनेकी इच्छासे उस कूप पर पहुँचे । उन्होंने देवयानी का हाथ पकड़ कर कूपसे निकला और बोले—हे यरानने ! तुम शीत हो-बहु बलाघी ।८। युक्तपुत्री देवयानी ने राजा की ओर मञ्जा और भय से दृष्टि हुए वीमला पूर्वक वस्त्र पहिने और शर्मिष्ठा ने जो कुछ क्रिया या वत सब उन्हें कह सुनाया ।९। देवयानी के अभिप्राय को ध्यान कर राजा ययाति ने उसका वात्सल्य करने की अभिलाषा प्रकट की और फिर कुछ दूर तक उसके माथ-साथ चलते हुए, उसे हर प्रकारता आश्रा-हन देकर अपने घर की चले गये ।१०।

नित्य दासीशताकीर्णा देवयानोन्तु सेवते । १८।

एकादा सा घनगता हृदतो जगद्दृश्योत्तटे ।

विश्वामित्रं मुनिं सा ता दृष्ट्वा स्त्रीभिरावृतम् । १९।

क्षतिग पुण्यगन्धाभिः सुख्याभिः सुवासितम् ।

कारयन्त व्रतं मातृषधूपदीपोपहारकं । २०।

राजसूतां क्षमिष्ठा को देते हुए शुकाचार्य ने राजा ययाति से कहा कि हे राजन् ! यदि इसे कभी अपने शयनागार में बुलाएँगे तो उसी समय वृद्ध हो जाएँगे । १९। शुकाचार्य के शर्तों से भय को प्राप्त हुए राजा ययाति ने अत्यन्त रूपवती क्षमिष्ठा को ले जाकर ऐसे स्थान में रख दिया, जहाँ पर उनकी दृष्टि भी न पड़ सके । २०। अत्यन्त ही दुःखिता, लोक भ्रम भय से व्याकुला राजपुत्री क्षमिष्ठा संकरी दासियों के साथ देवयानी की सेवा में तापर रहती थीं । २१। एक दिन वह क्षमिष्ठा आह्वनी के तीर पर बैठी हुई रो रही थी, तभी उसकी दृष्टि स्त्रियों से घिरे हुए विश्वामित्र पर पड़ी । २२। वे वही महर्षि विश्वामित्र सुगन्धित द्रव्यों से सुवासित हो रहे थे । उनके सुन्दर नारियल उनके चारों ओर घँडी हुई थीं । धूप, दीप, माला तथा अनेक प्रकार के उपहारों के द्वारा विश्वामित्र उन स्त्रियों से व्रत-अनुष्ठान करा रहे थे । २३।

निर्मायाष्ठदत्त पञ्च वेदिकायां सुचिन्हितम् ।

रत्नभापोतैश्चतुर्भिस्तु चतुष्कोणं विराजितम् । २१।

वाससा निर्मितमृहे स्वर्णपट्टं विविधिते ।

निर्गते श्लेषासुदेवं नानारत्नविधट्टितम् । २२।

पौरुषेण च सूक्तेन नानागन्धोदकैः शुभैः ।

पञ्चमृजैः पञ्चगव्यैर्वंधामन्त्रं द्विजेरितं । २३।

स्तापयित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।

स्तामदित्वा भद्रपीठे कर्णिकायां प्रपूजयेत् ।

पञ्चमृजंशुभिर्यापि षोडशैरुपचारकैः । २४।

हुई है इसके द्वारा घापके बहावण की शोभावृद्धि होती । इस श्रेष्ठ
माया को घाप ग्रहण कीजिये ।२८। हे हरे ! घापको आवृत्त करने में
कोई भी समर्थ नहीं है । घाप अपनी प्रिया सहस्री जी के सहित इय नूय-
स्वान द्वारा निर्मित सुष्ठु बहवःवर्ण को स्वीकार कीजिये ।२९। हे देव !
यह नूय प्रजापति द्वारा निर्मित हुआ है इसे घाप अपनी पत्नी रुक्मिणीजी
के सहित ग्रहण कीजिये ।३०।

नानारस्तसमायुक्त स्वर्णमुक्ताविषट्कितम्
प्रियदा मह देवेश गृहाणाभरणं मम ।३१।
दधिकोरगुडाम्नादिपूपतद्दुक्कल्पकान् ।
गृहाण रुक्मिणीनाय सनाय कुरु मा प्रभो ।३२।
कपूरगण्डुगन्धादृष्य परमानन्ददायकम् ।
पूप गृहाण वरद वैदर्भ्या प्रियदा सह ।३३।
भक्तानां गेहशक्तानां सप्तारध्वान्तानाशनम् ।
दीपमालोक्य विभो ! जगदालोकनादर ।३४।
दशामसुन्दर ! पद्माक्ष ! पीताम्बर ! चतुर्भुज ! ।
प्रपद्यं पाहि देवेश रुक्मिण्या सहित्वाच्युत ।३५।

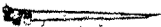
हे देवेश ! हे प्रभो ! विभिन्न प्रकार के रत्नों से युक्त एवं स्वर्ण
हात निर्मित इन मायूपलों को घाप अपनी प्रिया रुक्मिणीजी के सहित
ग्रहण कीजिये ।३१। हे रुक्मिणीनाय ! यह दधि, दुग्ध, गुष्ठ, घन, पुष्पा
सद्दु एवं शंकरादि को ग्रहण करके मुझे सनाय कीजिये ।३२। हे वरद !
परमानन्द के देने वाली इस कर्पूर और अमर युक्त गन्ध को घाप अपनी
प्रिया के सहित स्वीकार कीजिये ।३३। हे विभो ! घाप सप्त-कामी
भक्तों के पापहार को नष्ट करने वाले हैं और सादर सहित जपत् को
करने प्रणय से मासोक्ति कर रहे हैं, इस दीवक का व्यवहार करने कीजिये
।३४। हे दशामसुन्दर ! हे कमलाक्ष ! हे पीताम्बरधारी चतुर्भुज ! हे
देवेश ! घाप रुक्मिणीजी के सहित प्रसन्न होते हुए हमारी रक्षा
कीजिये ।३५।

५५
५६
५७
५८
५९

इति तस्यां वृत्तं च वा मुनि तावा मुहुः शिवा ।
 लोभ्यात् मिथुवना कृताहुतिर्याव तः । १२५।
 रात्र्युषी सुरंगा मा र्वामिना पारवन्तिताम्
 भानुमहं हे देवो इतिनासेव कर्मणा । १२६।
 यत्वा तु ता वषट्काराः कारणाश्च किमस्तिवम् ।
 पूजोपकरणं इत्यं कारणात्सुपादरात् । १२७।
 वयं कृत्वा तु शक्तिं तस्या स्वाधिनमोरवरम् ।
 त्रुत्वा बुभानुवन्तुष्टा समभूतिम्परशोवना । १२८।
 शैला चाधोऽवतितामस्यै सरमया वृत् ।
 वृत्तं कृत्वा पतिं मेमेराम राक्षसमाशनम् । १२९।

शिवो को का वरदा का करते दूर देख कर शक्ति ने मुनि को प्रणाम किया और इतने धीरे धीरे कर लेली । १२५। शक्ति ने कहा—हे देवो ! मैं माया समानो रूप सुधी हूँ । माया के जोर से छो पति बन-हीरा हूँ । वह ही किम अस्तर किया जाता है, मुझे अब ब्रह्म का मेरी रक्षा भूमि । १२६। शक्ति के वचन सुन कर उर शिवो को रवा का पाँ पीर उड़ोने कुछ पुनः शक्ति उर देख उठो मोहा पूर्वक बन गया । १२७। वह उर को करके शक्ति ने अपने निज रति से भक्त हाकर बुभली और शिव शीवका होकर वपुः हो गई । १२८। शक्ति और शरणा ने भी शक्ति शक्ति ने उर का का अनुभव किया था उरी के श्रुत-कर्म से शक्ति शक्ति-सहायक कायात् रात से शिव शक्ति को । १२९।

बृहदस्वप्नादिव हृत्वेन शीघरी दशम् ।
 पतिवृत्ता दुःखमुक्ता वमुक् शिवर शोचना । १३०।
 तथा रमा मिते पते वीरामे दृगजोदिते ।
 चासिन्वात्कलां चक्रे श्रुतं शंभुतृष्टम् । १३१।
 पट्टमूर्ध्नि करे वद्व्या भोजनिकं द्विजान् ।
 भक्त्या हृदिय शोपासतं मुमुक्षुं स्वामिका वृह । १३२।



बुभुजे पृथिवी सर्वामपूर्वा स्वप्नेवृता ।
 मा पुत्रीनुपुत्रे साध्वी मेघमालबलाहकी ॥४४॥
 देवानामुपकर्तारी यज्ञदानतपोव्रतैः ।
 महोरसाहो महावीर्यो मुमगो कलिकमम्मतो ॥४५॥
 व्रतवरमिति कृत्वा सर्वसम्पत्समृद्ध्या भवति विदि-
 तवत्सा पूजिता पूर्णं कामा । हरिचरणसरोजद्वयम-
 कर्त्यकताना व्रजति गतिमपूर्वा ब्रह्मविज्ञराम्याम् ॥४६॥

बृहदश्व की प्रेरणा से द्रौपदी ने इस व्रत की किया था और वह भी दुःसह से मुक्त होती हुई पतिपुत्र और स्थिर धारणा हो गई ॥४५॥ इसके पदवात् रमा ने परशुमन्त्री के निवेदन में वैशाख शुक्ल द्वादशी के दिन इस स्विमली व्रत का अनुष्ठान प्रारम्भ किया और चार वर्ष व्यतीत होने पर उसका समापन किया ॥४५॥ वैशाख शुक्ल द्वादशे हुए रमाने ब्राह्मणों की भोजन कराया और और्युक्त श्रेष्ठ हृदिष्याम्न का अपने स्वामी सहित आहार किया । इसके वह स्वप्नों से 'परिपूर्ण' होकर पृथिवी का अक्षरद सुख भोगने लगी । उसके मेघमाल और बलाहक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥४६॥ वे दोनों देवताओं के उपकारी, यज्ञ-दान और तपोव्रत में निरत रहने वाले, अत्यन्त उपासी, महापराक्रमी मौमा-म्बदात् तथा कनिकरी की प्राज्ञा में वसने वाले थे ॥४५॥ इस व्रत की करने वालों की सब प्रकार सुख, सम्पत्ति और समृद्धि की प्राप्ति होती है । उनकी सब कामनाएँ पूर्ण होती हैं । ब्रह्मज्ञान और हरिचरणों में श्रुति उत्पन्न होगी है, तथा वे श्रेष्ठ गति की प्राप्ति होते हैं ॥४६॥



से परिपूर्ण और रमणीय हो रहे थे । तथा सम्मत् प्राप्त सत्कार में मोक्ष के देने वासा माना जाने लगा था । १५।

सद्य कल्किः पुरस्त्रोणा नयनानन्दवद्दर्शनं ।

पद्मया रमया काम रराम जगतीपति । १६।

सुराधिपप्रदस्तेन कामगेन रयेन वै ।

नदीप्रवंतकुर्क्षुपु द्वीपेषु परया मुदा । १७।

रममा(लो) विशन्पचारमाद्याभोरमापतिः ८

पद्मामुखामोदसरोजशोषुवातोपभोगो सुविलासवात् ।

प्रभूतनीलेन्द्रमणिप्रकाशे गहाविशे प्रविवेश कल्किः १६।

पद्मा तु पद्माशतस्तरूपा रमा च पीयूषलकाविलासा ।

प्रतिप्रविष्ट गिरिपह्वरे ते नारीसहस्रकुलिते त्वगाताम् १०

पद्मा पतिं प्रेक्ष्यगुहान्निविष्टं रन्तुं मनोज्ञा प्रविवेश पश्चात्

रमावलायूषसमन्विता तस्यश्चाद्गता कल्किमहोप्रकाशा

नगर निवासिनी नारियो के नयनों की आनन्द-वृद्धि करने वाले कल्किजी पद्मा और रमा के साथ जम्बल ग्राम में निवास करते हुए विहार करने लगे । १६। वे मुदिन मन से हस हँस द्वारा दिये हुए रथ पर आरूढ़ होकर नदी, पर्वत, कुञ्ज और द्वीप में पद्मा और रमा प्रभृति नारियो के साथ विहार करते रहे । १७-१८। एक समय की बात है—पद्मा के मुख मोद के पद्म-म-ध का उपभोग करने वाले कल्किजी पर्वत की एक गुफा में प्रविष्ट हुए जो कि अनेक नीलेन्द्र मणिर्षी की आभा से प्रकाशित हो रही थी । १६। उनके साथ सहस्र सत्त्वियों के सहित पद्म और पीयूषलका जंसी विवासिनी रमा भी उस गुफा में गई । १७। अपने स्वामी कल्किजी को उस गिरिगुहा में घुसते हुए देख कर मनोहारिणी पद्मा भी उनके पीछे-पीछे गई तथा रमा ने भी विहार की इच्छा से स्त्री यूपों के सहित पीछे से प्रवेश किया । १८।

तत्रेन्द्रनीलोत्पलगह्वरान्ने कान्तामिरात्म प्रतिमानिरीशम् ।

कल्किश्च दृष्ट्वा तपसोरदाभं ततः स्वितं प्रस्तरवन्मुमोह । १९।

रमा मलीभिः प्रमदाभिरार्ता विलोकयन्ती दिक्षमाकुलाक्षी
 पद्मनि पद्मालतशोभमाना विपण्णप्रिता न वसोत्म चार्ता
 मूमौ सिद्धन्ती निजकण्ठनेन कल्कि युक्तं त कुचकुंकुमेन ।
 कस्तूरिकामिस्तु तदष्टमये निर्माय चासिद्धय ननाम भावात्
 रमा कनालापपरा स्तुवन्ती कामादिता तं हृदये तिषाये
 क्थत्वा निवासद्वाराः प्रपूज्य तस्यो विपण्णा कदलावसन्ना
 क्षणात्तथाप परोक्ष रामा कस्तूरिनिः कस्तूरिनिः अनापम् ।
 हृदोषगूढ न पुन, प्रलम्भ कामादिदेव्याह हरे प्रसीद ॥१६॥

नीलेन्द्र मणिमय उस गिरिगुहा में पहुँच कर रघु ने देखा कि
 मेघ के समान कान्ति धारि कस्तूरी अपने जैसे सुन्दर रूप वाली नारियों
 के साथ कृष्ण के मध्य बैठे हुए हैं । यह देख कर रघु आश्चर्य व्यक्त
 के साथ मोहित होकर निश्चेष्ट पावाण के समान पृथ्वी पर बैठ गई ॥१२॥
 सखियों के सहित रमा भी उस दृश्य को देख कर विस्मय से सब ओर
 देखने लगी । उस पद्मियों के समान रूप वाली नारियों को देख कर
 रघु भी कुछ और सोचिष्ठ हो ही रही थी ॥१३॥ यह अपने नेत्र के
 लक्षण से पृथिवी को देखने लगी । यह कुंकुम और कस्तूरी से नूनि
 को सुगन्धित करती हुई, उठ कर गिर गई ॥१४॥ कामवती रमा भी अपने
 हृदय में कस्तूरी का ध्यान करने लगी और हृदय पुष्पों के द्वारा उनका
 पूजन करने लगी और कुछ ही पृथ्वीकुन होकर पृथ्वी पर गिर गई ॥१५॥
 अणु भर के उपरान्त उठे हुए रमा रोने लगी और अपने हृदय को
 कस्तूरी के प्राणिमय से रहित पाकर कह लगी—हे हरे ! अशक्त हो-
 रने ॥१६॥

पद्मापि निम्बुंष्य निजाङ्गमूपाञ्जकार धूलोपटसे विलासम्
 कष्टञ्च कस्तूरिनवापि नीले कामं निष्टेनु शिवतामुपेन्य १७
 कलावतीनां कृतयारुलय दोषाना हरिरात्तयन्तु ।
 ता सादरेणात्मपति मनोज्ञा करेणोषो यूपति यदेव ।
 सौमन्दसावा विपदातनुवृत्ता मनेषु रामाः परिपूखं कामा ॥१६॥

बेभ्राजके चैत्रये सुपुष्पे सुनन्दने मन्दरकन्दरान्ते ।

रेमे स रामाभिष्टारतेजा रथेन भास्वस्त्रगमेन कल्किः २०

रमा ने भी सब धुंवार तथा श्या घोर घूत से सेट गई । उन समय उलका कातुरी युक्त नील बरों दृष्टा करूँ कामदेव को भस्म करने वाले शिवजी के हमान सगने सगा । १६७) तभी उन क्षण नेत्र दानी विसासिनी शिवाजी को दृष्टा पूर्ण करने के लिए शार्ङ्गको के वधु कल्किजी उनके मध्य में प्रकट हुए । १७) यूपपति हाथी के पाठ शिव प्रहार हृदिनिर्वा जाती है, जैसे ही कल्किजी के समीप वे सभी नारिणी हृदिनि हृदय होकर घागई । वे हृदय के सम्राट को छोड़ कर पूर्ण कामा हो गई । १६६) फिर उदार चरित्र वाले एवं तेजस्वी कल्किजी धेष्ठ गगनगामी रथ पर पद्मा, रमा आदि नारिणी के साथ भागड़ होकर पृथ्वी से परिपूर्ण वैभ्राजक, चैत्रय घोर नन्दन वन में जाकर विहार-रत हुए । २०।

ततः सरोपरं त्वरा स्त्रियो यद् बलमज्वराः ।

प्रियेण तेन कल्किना वनान्तरे विहारिणा । २१।

सरः प्रविश्य पद्मया विमोहो ह्यपया तथा ।

जल ददुर्वराङ्गनाः करेसुवो यथा गजम् । २२।

इति ह यूपनिशीला लोकनाथः स कल्किः ।

प्रियवृत्तिपरीतः पद्मया रामयाद्यः । २३।

निन्दरमणुविनोदे शिष्यैर्लोकवर्गान्

जयति विबुधभर्ता शम्भले वासुदेवः । २४।

ये शृङ्गदन्ति वदन्ति भावषतुरा ध्यायन्ति सन्दः सदा

कल्केः श्रीपुरयोत्तमस्य चरितं कणामृत्त सादरा ।

तेषां नो मुखयस्यं नुररिपोर्दस्यभिलाषं विना

संसारः परिमोचनञ्च परमानन्दासृष्टाभ्योनिधेः । २५।

फिर वे अमासक्त नारिणी विहार करने वाले कल्किजी के साथ सरोवर के तीर पर जा पहुँची । जैसे हृदिनिर्वा यूपपति हाथी के चरीर

पर जब शान्ती है, वैसे ही वे सब स्थितियाँ समुत्पन्न रूप वाली पद्मा के सहित कल्किनी के देह पर जब की वर्णा करने लगी ।२१-२२। जो कल्किनी दृष्टियों के साथ लीला करने में त्रिपुण्य तथा अपनी शिवा रमा मादि नारियों के साथ विनोद युक्त विहार करने लगी है एवं जो कल्किनी देवताओं के भी ईश्वर, मादि पुरुष और जगदीश्वर है, तब शुभ्रम धाम मिथ्याही भगवान् वासुदेव की रूप हो ।२३-२४। दृष्ट्योत्तम कल्किनी के इस जागो को समुत्पन्न के समान ज्ञेय भवने वाले भक्ति को जो कोई सादर पूर्णक सुनेगे, कीर्तन तथा ध्यान करेगा, तब वाच्य भाव की कामना वास्तु मत्पूरण के हृदय में भगवान् की प्रीति के प्रतिरिक्त अन्य किसी की प्रीति या कामना उत्पन्न नहीं होगी । वे यही समुत्पन्न करेंगे कि उत्तम मोक्ष के प्रतिरिक्त अन्य कोई परमात्म नहीं ।२५।



ऊनविंश अध्याय

ततो देवगणा सर्वे ब्रह्मणाः सहिता रथेः ।
 स्वेः स्वर्गणैः परिवृताः कल्किं द्रष्टुमुपागयुः ।११
 महर्षयः सगन्धर्वाः किन्नराश्चाप्सरोगणाः ।
 समाजगुः प्रमुदिताः शम्भलं सुरपूजितम् ।२।
 तत्र गत्वा सभामध्ये कल्किं कमललोचनम् ।
 तेजोनिधिं प्रपन्नानां जनानामभयप्रदम् ।३।
 नीलजीमूतसकाशं दीर्घशीघरव्याहुकम् ।
 किरीटेनाकंवल्लोचनं स्थिरविद्युत्प्रभेन तम् ।४।
 शोभमानं सुमणिना कुण्डलेनाभिसोभितम् ।
 सहस्रपापापविकसद्वदनं स्मितशोभितम् ।५।

सूत्रजी बोले—इनके अनन्तर एक समय सब देवता और ब्रह्मा संयुक्त होकर अपने अपने बलों के सहित रथों पर चढ़ कर कल्किजी के दर्शनार्थ आये ।१। महर्षिगण गन्धर्गण, किन्नरगण तथा अप्सरागण सभी आपत मुदिता हृदय से उस सुरपूजित संमन प्राप्त में एकत्र हुए ।२। फिर सब कल्किजी को सभा में लगे और वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि कमललोचन भगवान् कल्किजी शरणागतों को भयप्रदाता रूप से विराजमान हैं ।३। उनकी कान्ति नील मेघ समान थी, दीर्घ और सुपुष्ट भुजाएँ हैं, उनका मस्तक स्थिर विद्युत् प्रपन्न। सूर्य के समान तेजोमय त्रिशूट से सुशोभित है ।४। उनका मुख संबन्ध सूर्य के समान प्रकाश करने वाले

कुशलों से सुशोभित है उनका मुखारविन्द मधुर सुमङ्गल मीठ हर्षान्तर से अत्यंत शोभा को प्राप्त हो रहा है । १५।

चृन्पाकटासविशेषपरिद्विप्तविपक्षकम् ।

वाग्हारोहसद्वक्षप्रन्द्रकान्तमणिश्रिया । १६।

कुमुद्विनीमोदवह स्फुरच्छक्रायुषान्वरम् ।

सर्वदानन्दसन्दोहरसोल्लसितविग्रहम् । १७।

नानामणिगणोद्योतदीपित रूपमद्भुतम् ।

ददृशुर्देवगन्धि ये चान्ये समुपागता । १८।

मक्ष्या परमया युक्ता, परमानन्दविग्रहम् ।

कल्कि कमलपद्माश्च तुष्टुचुः परमादरात् । १९।

अपाशेषसकलैककक्षप्रकीर्णानिलोद्गममकीर्णह्रीश

देवेश विश्वेश भूतेश भाव । त्वानन्त धान्तःस्थसोऽङ्घ्रातरत्न

प्रभाभातपादाणिष्ठानस्तत्रवते । २०।

कणु भी उनके द्वारा कटास-विशेष से अनुग्रह को प्राप्त होते हैं ।

चक्षुष्यत पर चन्द्रकान्त मणि की कुमुद्विनी को प्रसन करने वाली उद्योति

से संयुक्त द्वार सुशोभित है, मक्ष्य इन्द्र-वनस्प के समान विविध रंगों में

शोभा को बना रहे हैं । धानन्द रस के कारण हृदय उत्तमवृद्ध हो रहा

है । १६-१७। देवता गंधर्वादि सभी आगत्युक्तोंकी कल्किनी का प्रत्येक मणियो

से सुशोभित एवं देवस्त्री रूप इस प्रकार अत्यंत अद्भुत दिखाई दिया

। १८। तब के सभी परम शक्ति शाल से भावर पूर्वक इन वाग्धारन्द विग्रह

कमल भोजन कल्किनी की स्तुति करने लगे । १९। देवताओं ने कहा—हे

देवेश ! हे विश्वेश्वर ! हे भूतेश्वर ! हे प्रभो ! आप सभी भाषा से युक्त

एवं धाम्नि हैं । आपके प्रचण्ड अग्नि रूप के विचित्र स्पर्श से भी इस

संसार मर के क्लेश-बुद्ध मरम हो जाते हैं । कान्ति की राशि से सम्पन्न

आपके शरणों से लोक प्रकाशित है । हे अनन्तेश्वर ! आपकी शप

ही । २०।

प्रकाशोक्ताशेषलोकमयान वक्षः स्यते भास्वरकभीस्तु
 श्याम मेघौघराजच्छरीरद्विजाघोशतुञ्जनन ग्राहि
 विष्णो स दाराः वय त्वां प्रसन्ना तसोपः । ११ ।

यत्स्वयनुग्रहोऽस्याक व्रज वैकुण्ठमीश्वर ।
 त्यक्त्वाशासितभूखण्ड सत्यधर्माविरोधत । १२ ।

कल्किस्तेषामिति वचः श्रुत्वा परमहृषितः ।

पापानैः परिवृतस्त्रकार गमने मतिम् । १३ ।

पुत्रानाहूय चतुरो महाबलपराक्रमान् ।

राज्ये निक्षिप्य सहस्रा धमिष्ठाप्रकृतिप्रियान् । १४ ।

तत प्रजा. ममाहूय कथयित्व निज. कथा. ।

प्राह तान्निजनिर्माण देवानामुपरोधतः । १५ ।

हे प्रभो ! पापके श्याम वर्ण वाले वल्लस्पल मे भरतन्त ज्योति सन्पन्ना कौरस्तुभमाणो सुशोभित है । उस मणि के रश्मिजाल से हीनो मोर प्रकाशित हो रहे है इसमे ऐना प्रतीत होता है जैसे मेघमाल के मध्य पूर्ण चन्द्र प्रतिष्ठित हो । हे नाथ ! हम सब विपत्ति मे पड़े हुए है और अपने नाथे, पुत्र, स्वजनादि के सहित आपकी शरण में आते है । हे प्रभो ! हम पर प्रमन्न होकर हमारे रक्षा कीजिये । ११ । हे नाथ ! जब यह पृष्ठी सत्य और धर्म से अविरोध पूर्वक शासित है । यदि आपकी हम पर कृपा है तो जब इसे त्याग कर वैकुण्ठ के लिए प्रस्थान कीजिये । १२ । देवताओं के 'धन वचनो को मुन कर कल्किजी अत्यन्त प्रमन्न हुए और ये अपने सुपान मित्रों के सहित वैकुण्ठ गमन की इच्छा करने लगे । १३ । जब उन्होंने प्रजा बरतल, महाबली एवं धार्मिक अपने धारो पुत्रों को बुला कर तुरन्त ही राज्याभिषेक कर दिया । १४ । फिर उन्होंने सम्पूर्ण प्रजा को बुला कर अपना वृत्तान्त कहते हुए उसे सूचित कर दिया कि जब हमें देवताओं के अनुरोध पर वैकुण्ठ धाम के लिए आना है । १५ ।

तच्छु त्वा तां प्रजाः सर्वा वृद्धुर्विस्महान्विताः ।

त प्राहुः प्रणता पुत्रा यथा पितरमीश्वरम् ।१६।

भो नाथ गर्बधमंश नास्मान्स्ववनुमिहाहंसि

यत्र त्वं तत्र तु वयं यामः प्रणतवत्सल ।१७।

प्रिया गृहा धनान्वयत्र पुत्रां प्राणास्तवानुगाः ।

परयेह विशोकाय ज्ञात्वा त्वा यज्ञपूष्यम् ।१८।

इति तद्वचनं श्रुत्वा सान्द्रवयित्वा सदृक्तिभिः ।

प्रययौ क्षिलन्नहृदयः पत्नीभ्या सहितो वनम् ।१९।

हिमालय मुनिगणैराकीर्णं जाम्बवीजलैः ।

पारपूर्णा देवगणैः सेवित मनसः प्रियम् ।२०।

गत्वा विष्णुः सुरगणैर्दृष्टश्चा त्चनुभुंजः ।

उपित्वा जाम्बवीतीरे सस्मारात्मानमात्मता ।२१।

यह सुनकर सम्पूर्ण प्रजा अस्मन्न निष्पन्नमे पड़कर उतर करने लगी । जैसे पुत्र पिता से विवेदन करता है वैसे वह प्रणाम करके इनसे बोली ।१६। प्रजा ने कहा—हे नाथ ! चाप सभी धर्मों के जानने वाले है । चाप प्रणतवास को हम सब का परिन्वाग नहीं करना चाहिये । हे नाथ ! हम चापके साथ चलेंगे ।१७। इस जातू मे सभी को घपना घन, सन्तान धोर धर ही अत्यन्त प्रिय है । चाप यज्ञ पुरुष सभी के दुःख धोर शोक का शमन करने मे ममर्थ है । यह जान कर हमारे प्राण भी चापका अनुपमन करने के लिए इच्छुक है ।१८। प्रजा के यह वचन सुन कर कतिरुबी ने उन्हें द्येष्ट उपदेश देकर सान्द्रवना प्रदान की धोर येऽ-वृक्त मन से अपनी दोनों पत्नियों को स.य लेकर वन के लिए चल दिये ।१९। वे तंगजल से सम्पन्न, देवताओं धोर मुनियों से उपासित हृदय की आनन्द देने वाले हिमालय पर्वत पर पहुँच कर देवताओं के मध्य विराजमान हुए धोर अनुभुंज विष्णु स्वरूप धारण करके अपने रूप का स्मरण करने लगे ।२०-२१।

पूर्णज्योतिर्मयः साक्षी परमात्मा पुरातनः ।
 वभौ सूर्यसहस्राणो तेजोराशिसमद्युतिः ।२२।
 शश्वचक्रगदापद्मशाङ्गाद्यैः समभिष्टुतः ।
 नानालङ्कुरणानाश्च समलङ्कुरणाकृतिः ।२३।
 ववृषुस्त सुरा, पुष्पं कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ।
 सुगन्धि कुसुमासारेदेवदुन्दुभिनि स्थनं ।२४।
 तुष्टुदुर्मुमुहू सर्वे लोका सस्थाणुजगमा ।
 दृष्ट्वा रूपमरूपस्य निर्दोषो वैष्णव पदम् ।२५।
 तदृष्ट्वा महदाश्चर्वपत्यु कल्केर्महात्मन ।
 रमा पद्मा च दहनं प्रदिश्य तमवापतुः ।२६।

तब वे पूर्ण ज्योतिमान् सर्वमाश्री स्वरूप,सनानन पुष्प परमात्मा
 कल्किजी सहस्रो सूर्य के समान तेज से प्रकाशित हो रहे थे ।२२। विविध
 मलकारों से युक्त वे स्वयं भी मलकार के गमान प्रकाशित हो रहे थे ।
 गदा, चक्र, पदा, पद्म और शाङ्ग यन्त्र आदि समन्वित बनका वण
 दिग्दह पूजित होने लगा ।२३। उनके वक्षस्थल पर कौस्तुभमणि सुशोभित
 थी । देवगण उन पर पुष्पवृष्टि कर रहे थे और तब और दुर्दुभिया बन
 रही थी ।२४। तब वे कल्किजी विष्णुपद में प्रविष्ट हुए, तब उन पर
 जगदीश्वर के रूप-दर्शन से सभी जीव मोह को प्राप्त हो गए ।२५। अपने
 पति कल्किजी के हत यन्त्रुत रूप को देख कर रमा और पद्मा घग्नि
 से प्रविष्ट होकर उसमें लीन हो गईं ।२६।

धर्मं कृतमुग कल्केराज्ञया पृथिवीतने ।
 नि सपत्नी सुगुह्विनी भूलोक चेरतुश्चिरम् २७।
 देवापिश्च मरु काम कल्केरादेशकारिणी ।
 प्रजाः सपालयन्ती तु भुव जुगुपतुः प्रभू ।२८।
 विशाखयूपभूपालः कल्केनिर्द्याणमीदृशम् ।
 अर्था स्वपुत्र विपद्ये नृप कृत्वा गतो वनम् ।२९।

अन्ये नृपतपो ये च कल्केविरहकपिताः ।
 तृध्यायन्तो जजन्तश्च विरक्ताः स्युर्नृपासने ।३०।
 इति कल्केरन्तस्य कथा भुवनपावनीम् ।
 कथयित्वा शुक्र. प्रायान्नरनारायणाश्रमम् ।३१।
 मार्कण्डेयद्वयो ये च मुनयः प्रशमायनाः ।
 श्रुत्वानुभावं कल्केस्ते त ध्यायन्तो जगुर्यशः ।३२।

भगवान् कल्किजी की माता के अनुभार धर्म और सत्युग भार्या-
 विहीन रह कर मुख पूर्वक भूमिजन पर चिरकाल तक विचरण करते
 रहे ।२७ देवापि और नर—यह दोनो राश कल्किजी के प्रादेशा-
 नुसार प्रजा-पालन एवं प्रियित्री के रक्षण में तत्पर हुए ।२८। भगवान्
 कल्किजी का गमन सुन कर विशावसूय-नरेश भी अपने पुत्र को राज्य
 देकर वन में चले गये ।२९। अन्यान्य राजागण भी कल्किजी के वियोग
 को सहन न कर सके । उन्होंने अपने-अपने राज्य का त्याग कर दिया
 और कल्किजी के रूप का ध्यान करते हुए उन्हीं का नाम अपने लगे
 ।३०। अनन्त प्रभु कल्किजी की इस लोक पावनी कथा का वर्णन करने
 के पश्चात् शुक्रदेवजी ने नर-नारायण को प्रस्थान किया ।३१। दान्त
 चित्त वाले मार्कण्डेय आदि मुनिपण भगवान् कल्किजी के इस महा-
 त्म्य की श्रवण कर उनका ध्यान करते हुए यशोगान में तत्पर हुए ।३२।

यस्यानुशासनाद्भूमौ नार्धमिष्ठाप्रजाजनाः ।
 नाल्नाद्युषो दरिद्राश्च न पाण्ड्या न हंजुकाः ।३३।
 नाघयो व्याधयः क्लेशा देवमृतात्मसम्भवाः ।
 निर्मस्तराः सदानन्दा बभूवुर्जीवजातयः ।३४।
 दृश्येत्तत्कथितं कल्केरवतारं महोदयम् ।
 घन्यं यशस्यमायुष्य स्वर्ग्यं स्वस्वयपनं परम् ।३५।
 शोकसन्तापपापघ्नं कलिज्याकुलनाशनम् ।
 सुखद मोक्षदं लोके वाञ्छितार्थफलप्रदम् ।३६।

हावच्छस्त्रप्रदीपाना प्रकाशो भुवि रोचते ।

भाति भानु पुराणाखरो यावत्तोकेर्गत कामधुक् ।३७।

श्रुत्वोत्तद्भृगुवशब्दो मुनिगणैः साक सहस्रो वशी

ज्ञात्वा सूतममेपबोधविदित श्रीतोमहर्षिर्मजम् ।

श्रीकल्केरवतारवाक्यममल भक्तिप्रदे श्रीहरेः

द्युयुव पुनराह साधुवचसा मयास्तव संकृतः ।३८।

इनके साधनकाल में इस पृथिवी पर कोई भी स्वर्ग-हीन पक्षीवृष्य, दरिद्रो, पाखण्डी तथा कष्ट पूर्ण आचरण वाला व्यक्ति नहीं रहा और सभी प्राणी धाधि-ध्याधि से रहित, बसेस-रहित और मासर्प-रहित होकर देवताओं के समान सुखी हो गए, उनकी के व्यवहार का का यह प्रमत्त कहा गया है । इसके भ्रमण मार्ग से इन, यत और पादु की वृद्धि होती और परमानन्द की प्राप्ति होती है तथा अन्तकाल में स्वर्ग की उपलब्धि हो जाती है ।३३-३५। यह क्या सुनने से शोक, सन्ताप और पाप को नष्ट करती है । कल्पियुग के उद्भवों का क्षय मोक्ष एवं धार्मिक धर्म देने में यह मन्त्र है ।३६। इन्द्रियत फल को वाला पुराण सभी सूर्य की उदय जब एक सवार से नहीं होता, तबो तक अन्धकार-शासन दीवक बाला का प्रकाश टिक जाता है ।३७। भृगुवंश में उत्पन्न मुनिगण सौनकारि श्रुतियों ने इस भक्ति रस से परिपूर्ण कल्कि कथा के श्रवण से अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया । वे जान गये कि लोका-दर्शन के पुत्र सूतजी ज्ञान में इस प्रकार प्रवृत्त हैं । मुनियों के हृदय में हरि कथा सुनने की इच्छा पुनः जागृत हुई और उन्होंने आदर सहित पद्मस्तोत्र के शिपय में सूतजी से प्रश्न किया ।३८।

ततोर्वाश—

विंश अध्याय

हे सूत ! सर्वंभमंज पत्रया कथित पुरा ।
गगा स्तुत्या समाधाता मुनयः कतिकसन्तिपिम् ।१।
स्तव तं वदा गगाया सर्वपापप्रणाशनम् ।
मोक्षद शुभद भक्त्या शृण्वता पठता मिह ।२।
धृगुध्वमृषया सर्वं गगास्तव मनुत्तमम् ।
शोकमोहर पृष्ठाभृषिभिः परिकीर्तितम् ।६।
इय सुरतरंगिणी भवनवाग्निधेस्तारिणी ।
स्तुता हरिपदाम्बुजादुपगता जगत्समृदः ।
सुमेरुशिखरामरप्रपञ्जला मलक्षालनी ।
प्रसन्नवदना शुभा भवभयः विद्राविणी ।४।
भगीरथमयानुगा मुनकरीद्रवर्पाहा
महेशमुकुटप्रभा निरिशिरः पताकासिना ।
सुरामुरनरोगैजभवाच्युतं म स्तुता
विमुक्तिफलदासिनी कलुषनाशिनी राजते ।५।

दीनकवी बोले—हे सूतकी ! आप सभी षणों के ज्ञानन वाले हैं। आपने कहा था कि मुनिगण गङ्गा जी का स्तवन करते व-रिणी के पास पहुँचे थे, तो वह स्तव कीव-सा है, जिसके शक्ति-सहित पढ़ने या सुनने से मोक्ष की मङ्गल को प्राप्ति होती है और सभी षणों का नाश होता है। उसे हमारे प्रति कहिये ।१-२। हे सूतकी ने कहा—हे सूतकी ! वय

घोर मोह के नाशक पत्यर श्रेष्ठ श्रुति प्रणति गंगा-स्तोत्र को बोलने
 माने कहता हूँ, सुनिये । ११ श्रुतियों ने कहा—यह सुरसरिणी समार
 समुद्र से पार करने वाली भगवान् विष्णु के चरणाब्जिन्दो से उद्भूत
 होकर भूमिजल पर प्रवाहित हुई । यह भवभय विनाशिनी, पाप नाशिनी,
 गुणेश शिखर वाहिनी, धमृद जल वापी, प्रसन्नवदना भगवती गंगाजी
 शुभप्रदायिनी एवं सर्व पूजिता है । ४ यह भगवती राजा भगीरथ के
 पीछे-पीछे पृथिवी पर आयी । इन्होंने ऐरावत का गर्भ सङ्ग किया ।
 यह शिवजी के परतक से भुकुट की प्रभा रूप से शोभायती घोर हिमा-
 मय ही श्वेत पनाका के समान है । सभी देवता, दैत्य, मनुष्य घोर नाग
 प्रादि इनके वश का सदा पान करते रहते हैं । यह पापनाशिनी एवं
 मोक्षदायिनी है । ११।

पितामहकमन्दलुबभयमुक्तिबीजात्ता
 श्रुतिस्मृतिगणान्तुता द्विजकुलालवानामृता ।
 सुनेर्त्तशिखरामिदा निपतिता त्रिलोकावृता ।
 सुधर्मफलशालिनी सुखपलाशिनी राजते । ६।
 चरद्विहगमातिनी सगरवशमुक्तिप्रदा
 मुनीन्द्रवरनन्दिनी दिवि मता च मन्दाकिनी ।
 सदा दुरितनाशिनी विमलवारिसंदशान-
 प्रणाममुकोन्तनादिप जगत्सु सराजते । ७।
 महानिघणुनाङ्गना हिमगिरोशकूटस्तनी
 सफेजलहातिनी सितमरालसचारिणी ।
 धलल्लहरिसत्करा वरसरोजमालाधरा
 रसोल्लसितगामिनी जलधिकामिनी राजते । ८।

इस मुक्ति रूपी बीजसत्ताका प्रादुर्भाव ब्रह्म जी के कमण्डलुसे हुआ
 है । द्विजगण इच्छे मान-वास रूप घोर सुधर्म इसकी फल है । यह
 सुख रूप क्लेशयो से परिपूर्ण भटा सुषेद परंत का भेदन करके प्रगट
 हो गई । तीनों लोही से द्याप्त गंगाजी का यह स्तोत्र श्रुति, स्मृति

मानि सभी बर्ग जात्यों से सम्पन्न है । ६। मगरबल को मोल देने वाली यह बान्हरी, देवताओं के लिए मन्दाकिनो स्वहवा तथा मर्दंग मरण के देने वाली है । प्रणाम पूवक इनका गुणगन करने और इनके निर्मल जन का दर्शन करने से ही सम्सार में सुख की प्राप्ति होती है । ७। हिम-लय के स्थिर कभी घटा वाली यह भगवती महाराज रामानु की रानी हुई थी । इनका केलो से वृत्त जब ही हान है तथा दरेक बर्ण वाले हम त्रिनकी पति, दिले हुए कमलोजीपक्ति त्रिनकी माता तथा शरगही त्रिनक हाथ हैं, ऐसी रसवती यह गंगा प्रसुदित पति से अश्रुत से मिथने के लिए बड़ी बनी आ रही है । ८।

ववचिन्कलकलस्वना ववचिदधीर्यादोगला
 ववचिन्मुनिगणौ. स्तुता क्वचिदनन्तमपूजिता ।
 ववचिद्विकरोज्वला ववचिदुदप्रपाताकुला
 ववचिज्जनविगाहिता जयति भीष्ममातामही । ६।
 स एव कुशलो जन प्रणमतीह भागौरथी
 स एव तस्या निधिजपति जाह्नवीमादगात् ।
 स एव पुष्पोत्तम स्मरति साधु मन्दाकिनो
 स एव विजयी प्रभु मुरारगिणी सेवते । १०।
 तवामल जमातित सगन्धुगालमीनक्षत्र
 घमलहृदि लोसित रुचिर तोर जम्पाजितम् ।
 कदानिजवपुमुंटा सुरनरोरगं सन्तुतोऽ-
 प्यह त्रिपथगामिनि । त्रियमतीव पश्याम्यदी । ११।

त्रिनकी कही मुनिगण स्तुति करते हैं, तो कही मकल भगवान् द्वारा पूजो जाती हैं । त्रिनके जन में कही विकराल जीव विचर रहे हैं, कही त्रिनका जल कल कल गान कर रहा है, कही जल कही भीषण पाद करवा दुष्प्र पशित हो रहा है, जल पर कही सूर्य रश्मिर्वा पड कर ससे प्रकाशमय कर रही है और कही जल में मनुष्य स्नान कर रहे हैं । ऐसी इन घोष्य की माता सती पत्नी की जय हो । ६। इन मगरकी

गया को प्रणाम करने वाले पुण्य कुण्डल है । इनके नाम का अर्थ करने वाले अनुष्ण ही शास्त्र में साम्बो है । इनका स्मरण करने वाले प्राणी ही श्रेष्ठ है । इनकी उपासना करने वाले जीव ही सब को जीतने के लक्ष्य तथा सम्पूर्ण ऐश्वरियो के ग्वाभी है । ११०। हे देवि ! हे विपद्ये ! पारके निर्मल जल में हुमांग शरीर कब प्राप्त होगा ? इस देह के मृत होने पर पत्नी और धर्म गज आदि सब इसे लोभेंगे और फिर कब यह पापनी चबल शरीर में उद्भवना हुआ तट पर स्थित शिवांगे से क्या सजेगा ? हे माता ! मैं स्वर्ग में कब जाऊँ ? कब प्राण पर सक्रमण और सुर, नर नाम सब मेरा स्वर करेगा ? इस प्रकार का अर्थ साक्षात् सोचने के कब देख सकूँगा ? ११।

त्वत्तीरे वसति तवामलजलस्न न तव प्रेक्षण
 तत्रज्ञामस्मरण तमोदयनयासतापन पावनम् ।
 मग मे तव सेवनेकतिपुण्योप्यावदितश्चाहृत,
 स्तुत्वा त्वद्गतपातको भुवि कदा सान्तश्चि प्शाम्यहम् । १२।
 इत्येतद्दुषिभि प्रोक्त गतास्तवमनुत्तमम् ।
 स्वर्ग्य यशस्यमायुष्य पठनाच्छ्रवणादपि । १३।
 सर्वपापहर पु मा बलमायुविवर्द्धनम् ।
 प्रातर्मध्याह्नसाशह्ने गगामान्निध्यता भवेत् । १४।
 इत्येतद् मार्गवास्थान शुकदेवान्मवा धृतम् ।
 पठित्वावित् चाम पुण्य धर्म यशसिगम् । १५।
 अवतार महाविष्णो, कल्के परममद्भुतम् ।
 पठता शृण्वता भक्त्या सर्वाशुभविनाशकम् । १६।

हे गये ! पारके तट पर बाण करता हुआ और पापके निर्मल जल में स्नान करता हुआ मैं कब पारके दर्शन करूँगा ? कब पापका नाम स्मरण करता हुआ पापके परतण्य भी पुनीत दावा का मान रहेंगा ? पापही सेवा करने के कब रूप में मेरे हृदय में पापकी भक्ति

का सञ्चार कर होगा ? मेरे द्वारा किसे दूर पाव कर लष्ट होने ? कब मैं शान्त चित्त में पृथिवी पर विचरण करता हुआ वावर की प्राप्त हुआ ? ११२। इस अष्टमि प्रोक्त गंधा-भक्त का इस प्रकार पाठ किया गया । इसके पढ़ने और सुनने में प्रसन्न-भाव होता तथा भावु की वृद्धि होती है । ११३। इन स्तोत्र का प्रारंभः महाहन् और साय—तीनों कास पाठ करने से गणा की का अन्विष्ट प्राप्त होकर सब पापी का क्षय तथा बल और भावु की वृद्धि होती है । ११४। इस भाष्यवाच्यन का मैंने सुकसेवरी से श्रवण किया था । यह पढ़ने और सुनने में पुण्यश्रद्ध तथा धन और बल के बढ़ाने वाला है । ११५। भगवान् कल्कि के पदधार विषयक यद्गुणु उपाख्यान का अर्द्ध सुदृष्ट पाठ श्रवण श्रवण करने पर सब प्रकार के पापगणों का नाश हो जाता है । ११६।

मृतीयांश—

एकविंश अध्याय

अत्रापि शुक्रसम्वादो मार्कण्डेयेन धीमता ।

अधर्मवशकथन कल्पेविवरणं ततः ॥१॥

देवानाद्ब्रह्मसदनं प्रयाणं गोमृषा सह ।

ब्रह्मणो वचनाद्विष्णोर्जन्म विष्णुयज्ञोमृहे ॥२॥

गुमर्यास्वाशकंभ्रतृचतुभिः शम्भले पुरे ।

पितुः पुत्रेण सम्वादस्तथोपनयनं हरे ॥३॥

पुत्रेण सह सयासो वेदाध्ययनमुत्तमम् ।

शस्त्रास्त्राणां परिज्ञानं शिवसदर्शनं ततः ॥४॥

कल्के, स्तव शिषपुरो वरलाम्, शुक्रपत्नम् ।

शम्भलागमनं चक्रे ज्ञातिभ्यो वरकीर्तनम् ॥५॥

सूतजी बोले—इस पुराण में प्रथम मार्कण्डेयजी और शुक्रदेवजी का सम्वाद वर्णन हुआ है । फिर अर्षर्ष के जन्म का वर्णन और कल्किजी का प्रसंग आया है । इसके अनन्तर गोरूप धारिणी पृथिवी के देवताओं के साथ ब्रह्मलोक गमन और विष्णुयज्ञोमृही के घर कल्किजी के जन्म होने की कथा कही गई । तत्परचान् भगवान् विष्णु के जन्म से चारों भाइयों के सम्भन ग्राम में धरतृपितृ होने का उपाख्यान, पिता-पुत्र-संवाद और कल्किजी के उपनयन संस्कार का विवरण है ॥१॥ ३॥ फिर पिता पुत्री का साथ साथ रहना, कल्किजी का वेद आदेशों तथा सत्कारण की शिक्षा पाने की और भगवान् शक्र के दर्शन होने की कथा कही गई है ॥४॥ अन्ततः कल्किजी द्वारा शक्र-स्तव और वर प्राप्त करना और शिष्यो

द्वारा प्रदत्त शुक के सहित उनका श्रेष्ठतम याम को लौटना तथा ज्ञाति वपुषो ने वर प्राप्ति का वर्णन किया गया है ।१।

वशास्त्रयूपभूषेन निजसर्वात्मवर्णनम् ।

महाभाग्यद्वाहाह्वणानां शुकस्यागमनं ततः ।६।

कल्किना शुकसम्वादे सिंहलाख्यानिमुत्तमम् ।

शिवदत्तवरा पद्या तस्या भूपस्वयं वरे ।७।

दर्शनाद्भूपसंघानां स्त्रीभावपरिकीर्तनम् ।

तस्या विषादः कल्केस्तु विवाहार्थं समुद्यमः ।८।

शुकप्रस्थापन दोषे तथा तस्यापि दर्शनम् ।

शुकपद्यापरिचयः श्रीविष्णुः पूजनदिकम् ।९।

पादादिदेहध्यानञ्च केशान्त परिवर्णितम् ।

शुकभूपणदानञ्च पुनः शुकसमागमः ।१०।

फिर विशालयुव नरेणके प्रति कल्किजी द्वारापाने स्वरूपका और ब्राह्मण—माहाय का वर्णन करना तथा शुक के आगमनकी कथा कही गई है ।३। फिर कल्कि-शुक संवाद, शुक द्वारा सिंहल द्वीप वर्णन, शिव द्वारा पद्या को वर प्राप्ति का प्रसंग पद्या के स्वयंवर में भाग्ये हुए राजाघों को स्त्रीत्व प्राप्ति का वर्णन तथा पद्या के सहाय की चर्चा और विवाह के लिए कल्किजी के उद्यम की कथा कही गई है ।७-८। शुक का दूत-भाव से प्रस्थान, पद्या और शुक की भेंट तथा दोसरे के परिचय का प्रसंग और विष्णु भगवान् के पूजन की कथा है ।९। सद्गुणरन्त वरण से केश पर्यन्त, मगधान् के ध्यान करने का प्रसंग, शुक को घातूषण-दान और शुक का कल्किजी के पास लौटना—यह कथा वर्णित हुई है ।१०।

कल्केः पद्याविवाहार्थं नमनं दर्शनं तयोः ।

जलक्रीडाप्रसङ्गेन विवाहस्तदनन्तरम् ।११।

पुंस्त्वप्राप्तिश्च मूपानां कल्केदर्शनमागतः ।

अनन्तागमनं राज्ञा सम्वादस्तेन संसदि ।१२।

पण्डित्वादात्मनो जन्म कर्म चात्र शिवस्तव ।।
 मृते पितरि तद्विष्णोः क्षेमे माया प्रदर्शनम् ।१३।
 ब्रह्मास्थानमनन्तस्य ज्ञानवैराग्यवैभवम् ।
 राज्ञा प्रयाण क केशव पद्मया सह सम्भले ।१४।
 विश्वकर्माविधानञ्च वसति पद्मया सह ।
 ज्ञातिभ्रातृसुहृत्पुत्रं सेनामिवद्वनिग्रह ।१५।

तदनन्तर विवाह के उद्देश्य से कल्किजी का गमन, जल क्रीडा के प्रसंग द्वारा कल्किजी और पद्मा का पारम्परिक परिचय और इनके विवाह का प्रसंग कहा गया है ।१३। फिर स्त्रीत्व को प्राप्त हुए राजा-परा का कल्कि-दर्शन से पुनः पुरुषत्व की प्राप्ति, अनन्त मुनि का सभा में आगमन और राजाओसे सम्वाद की कथा का वर्णन है ।१४। पण्डित्य रूप से अनन्त मुनि के जन्म का वर्णन, शिवजी की स्तुति और अनन्त मुनि के पिता के परशोक-वसन के पश्चात् विष्णु क्षेत्र में भगवती माया के दर्शन का प्रसंग कहा गया है ।१५। तदनन्तर अनन्त का पारधान, ज्ञान एवं वैराग्य रूप एश्वर्य का प्रसंग, फिर राजाओ का प्रयाण और पद्मा सहित कल्किजी के सम्मेलन-ममन की कथा बही है ।१६। फिर विश्वकर्मा द्वारा सम्भलपुरी का निर्माण और उसमें पद्मा, ज्ञाति-दीपय, भ्रातृगण, सुहृद्गण, पुत्रादि तथा सेना के सहित कल्किजी का विवाह और बोटों से निग्रह की कथा वर्णन की गई है ।१७।

कथितश्चात्र तेषाञ्चा स्त्रीणां सपोथनाश्रयः ।

नतऽपि बालशिल्याना मुनीना रवानिवेदनम् ।१६।

सपुत्राया, कुपोदरा वधश्चात्र प्रकीर्तितः ।

हरिद्वारगतस्यापि कल्केर्मु निस्तमागम ।१७।

सूर्मवशस्य वयन सोमस्य च विधानतः ।

श्रीरामचरित चासूर्मवशानुवर्णने ।१८।

देवापेश्व मरो रानी मुद्रायाश्च प्रकीर्तितः ।

महाघारवनेकोक विकोकविनिधानम् ।१९।

भक्त्याटयमन सत्र शय्याकर्णार्दिभि सह ।

युद्ध क्षत्रिष्वजेनाह मुशागता भक्तिकोर्तनम् ।२०।

शुभ्रगाम्ब शौर्दा की नारियो का रसुभेज मे युद्ध के उदात्त से पाण्डव, बालगित्य मुनिर्षो का प्राणमन मोर घपने वृनाम्न का धरुन ।१३। फिर कुषोदरी नाम की राक्षसी का घपने पुत्र के उद्धित माग जाना गया इतिहास मे कल्किजी मे मुनिर्षो का मिलना कहा गया है ।१७। फिर नृपदश मोर बहवश का पत्नय तथा मूर्खबध के घनत मे मधवात् भी राम का शत्रि-वशुभ हुआ है ।१८। फिर मक मोर ईशानि का पुत्र के लिए प्राणमन, मत्प-त विकराल कोक-विकार का वष, कल्किजी की भक्त्याट नक्ष-यात्रा, शय्याकर्णु घादि से युद्ध, क्षत्रिष्व-कल्किजी का स हाम मोर मुशागता शग भक्ति तव शीर्तन की कथा कही गई है ।१९ २०।

युद्धे कल्केरानयन धर्मस्य च कृतस्य च ।

मुष्णान्नाया, स्वस्मय रमोद्धाहृतु कल्किना ।२१।

सभाया पूर्वकथन निजगृहत्वकारणम् ।

मोक्ष क्षत्रिष्वत्रस्याप भक्तिप्राप्तवित्तुर्विभो ।२२।

विपकन्यामोचनञ्च नृपाणामपिपचनम् ।

मायास्तद शुभ्रमेपु नामायद्वादि साधनम् ।

नारदद्विष्णुमनसो मोक्षदवात्र प्रकीर्तित ।

कृत्तुधर्म प्रवृत्तिश्च चनिमसो धरुकोर्तनम् ।२३।

कतो विहार, कन्केश्च नुशपोत्रादि सुम्भव ।

कथितो देवाग्न्धषगणाममनमयहि ।२४।

फिर युद्ध क्षेत्र से कल्किजी, धन मोर सशस्त्र का क्षत्रिष्व-द्वारा घपने घट जाना, पत्नी मुशागता द्वारा कल्किजी का स्वय मोर कल्कि-रमा विवाह का व्रत प कहा गया है ।२१। फिर गया क्षत्रिष्व-

का करने पूर्व-जन्मों का वृत्तान्त-कथन, मृष्ट देह प्राप्ति का प्रसंग, कल्किजी के प्रति भक्ति का निवेदन और धीरे धीरे राजा शशिध्वज को मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन हुआ है । २२। विषक-या का उद्धार, राजाओं का राज्याभियोग, भगवती माया का हथ लया सम्भव ग्राम में विविध यज्ञों का अनुष्ठान । २३। तदनन्तर विष्णुव्रतों की शारदाओं में मोक्ष-विषयक प्रश्न, मोक्ष में कर्तव्य का स्थापन और दक्षिणो घन का प्रश्न प । २४। फिर कल्किजी का विद्वान्-वर्णन, पुत्र-पौत्रादि की उत्पत्ति और देव-ताओं तथा गणों के सम्भवन ग्राम में प्राणम की कथा कही गई है । २५।

ततो वैकुण्ठगमन विप्रो. नरकेरिहाहितम् ।

शुकप्रस्थान मुचिष्य कथयित्वा कथाः शुभाः । २६।

गणान्धोरभिह प्रोक्तं पुराणे मुनिममतम् ।

जगतामानन्दकर पुराण पञ्च लक्षणम् । २७।

चतुर्वर्ष श्रुत कल्कि पुराण पञ्चोत्तमम् ।

प्रलयान्ते हरिधुरवान्नि मृत लोक विस्तृतम् । २८।

महोभयात्तेन फणित द्विजहपेरामृतते ।

विश्रुतो कल्केभगवत. प्रभाव परमाद्भुतम् । २९।

यैभक्त्याय पुराणसारममन श्रोविष्णु भावाद्भुत ।

शृण्वन्तीह वदन्ति वदन्ति साधुसदसि शेषे सुनीर्याश्रमे ।

दत्त्वासा तुग्गव गजवर स्वर्ण द्विजायादरात्

वस्थातद्भुरणं. प्रपूज्यविधिवन्मुक्तास्त एवोत्तमा । ३०।

फिर कल्किजी के वैकुण्ठ-गमन का वर्णन करके मुक्तदेव जी का कथा समाप्त करके चले जाना कहा गया है । २६। फिर इस पुराण में मुनियों द्वारा कविन गणान्धोर का वर्णन हुआ है । संसार की आनन्द देने वाला यह पुराण पंच लक्षणों से सम्भन्न है । २७। यह कल्कि पुराण, शीर्षन करने से, चतुर्वर्ष के देने वाला है । प्रलय के प्रस

घोर फिर तोपीटन को चले गये ।३३। इसके पश्चात् संनविष्ट एव धर्म-
ज्ञाना मुनिवर शीतकृषी प्रत्यान्व मुनिषो के सहित भगवाद् विष्णु का
प्यान करते हुए सदा को प्राप्त हो गये ।३४। सर्व पुराणो के ज्ञान,
व्यामची के परम जिन्य, मोमद्वयंणपुत्र उन मुनिमेषु मृतची को मैं
प्रणाम करता हूँ ।३५।

आलोच्य सर्वं ज्ञानार्णं विचार्य च पुनः पुनः ।

इममेव सन्निष्यन्त ध्येषो नारायणः सदा । ३६।

वेद रामायणो चैव पुराणो भारतो तथा ।

आदावन्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ।३७।

सजलजलददेहो वातवेगकवाहः

करघृतकरपाल सर्वलोककपालः ।

कलिभ्रूल वनहन्ता सत्यधर्मं प्रसेता ।

कलयतुकुशलवः कल्किरूपः सभूयः ।३८।

मभी शास्त्री के वक्ष्यदन घोर उन पर बारम्बार विचार करने
से वही निष्कर्ष निकलता है कि सर्वत्र भगवान् शीतारायण का प्यान
करना ही श्रेयस्कर है ।३६। क्योंकि वेद, पुराण, रामायण घोर महा
भारत आदि सभी शास्त्रो ने अपने आदि, मध्यादि में सर्वत्र इन्हीं भव-
नान् शीतरि का गुण कीर्तन किया है ।३७। जलमुक्त मेघ जैसे वरुण वाले
वायु के समान वेग वाले अश्वच्छ होने वाले, हाथ में तलवार धारण
करने वाले, सत्य-धर्म के प्रसेना, राजाओ के सहित निवास करने वाले
बनिषु के परिषार रूपी वन का हनन करने वाले भगवाद् कल्किची
हमारा कल्याण करें ।३८।

: श्री कल्कि पुराण सम्पूर्णं ❀